राजा भोज का रचनाविश्व

डॉ० भगवतीलाल राजपुरोहित
आचार्य, हिन्दी विभाग,
सान्दीपनि महाविद्यालय, उज्जैन (म०प्र०)

पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, भारत

ISBN 81-85263-63-9

प्रकाशक :

पब्लिकेशन स्कीम
57, मिश्रराजाजी का रास्ता, जयपुर

मुद्रक :

एस. के. प्रिन्टर्स
आगरा रोड, जयपुर

वितरक :

शरण बुक डिपो
गलता रोड, जयपुर

साहित्य, संस्कृति और इतिहास के अनन्य साधक
महाराजकुमार डॉ० रघुवीरसिंहजी को
सादर समर्पित

पूर्वरङ्ग

'राजा भोज का रचनाविश्व' मेरी पीएच.डी, के शोधप्रबन्ध 'राजा भोज की साहित्यिक रचनाओं का समालोचनात्मक अध्ययन' का संशोधित रूप है। इसमें ज्ञात अद्यतन तथ्यों को भी सम्मिलित कर लिया है।

विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के तत्कालीन संस्कृतविभागाध्यक्ष एवं संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पूर्व कुलपति प्रो० वि. वेङ्कटाचलम्‌जी ने भोज अनुसंधान की जो बृहद् योजना आरंभ की थी, उसी परंपरा में यह प्रथम शोधकार्य था जो उनके ही मार्गदर्शन में तैयार हुआ था। विक्रम विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष एवं कालिदास अकादेमी के संचालक आचार्य श्रीनिवास रथ ने इस ग्रन्थ को 'कीर्तिकामना' से गौरवान्वित किया है। श्रीनटनागर शोधसंस्थान, सीतामऊ के निदेशक सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं इतिहासकार महाराजकुमार डॉ० रघुबीरसिंहजी का प्रोत्साहन और आशीर्वाद तो सदा मेरे साथ है ही। मैं इन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर भी उऋण तो हो ही नहीं सकता। मैं श्रीसियाशरणजी नाटाणी का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ को अपनी संस्था 'पब्लिकेशन स्कीम' से प्रकाशित किया। साथ ही 'भारतीय पुरातत्त्व-सर्वेक्षण' का भी आभारी हूँ जिसके द्वारा प्रेषित भोजपुर मंदिर का चित्र पुस्तक के मुखपृष्ठ को अलंकृत कर रहा है और जिसने चित्तौड़ के भोजनिर्मित मंदिर का चित्र भी सुलभ करवाया।

बिलोटीपुरा, उज्जयनी
श्रीकृष्णजन्माष्टमी,
वि० सं० २०४७

भगवतीलाल राजपुरोहित

कीर्तिकामना

परमार राज-वंश में धारापति भोज का स्थान अद्वितीय है। राजा भोज की नियति रणभूमि थी। विद्याव्यसन उनका पुरुषार्थ था। अजस्र प्रसिद्धि उनका सौभाग्य था।

इतिहास में और भी ऐसे राजा मिल जायेंगे जिनका पूरा जीवन संघर्षों में ही बीत गया हो, परन्तु युद्ध-सक्रियता के साथ अखण्ड सारस्वत साधना का धनी केवल भोजराज ही था। इतिहास में ऐसे और भी राज-दरबार मिल जायेंगे जहाँ विद्वानों को भरपूर आदर मिला हो, परन्तु विद्वत्ता का वैभव केवल भोज के दरबार में ही पनपता दीख पड़ता था। विविध विद्याओं के उत्कर्ष की जो प्रसिद्धि भोज के भाग्य में अंकित हुई, वह भी कल्पनातीत ही है। शास्त्र-चर्या के केन्द्रों से लेकर लोक-कथाओं की चौपालों तक राजा भोज या भोजराज की चर्चा निरन्तर होती रही है।

भोज के बाद निराधार धारा नगरी का ज्ञानदीप मन्द पड़ता गया और कब बुझ गया किसी को खबर नहीं। अनुवर्ती अंधकार में भोज का विपुल साहित्य भी बहुत कुछ तितरबितर हो गया। वर्तमान शताब्दी के सातवें दशक में विक्रम विश्वविद्यालय की संस्कृत अध्ययनशाला ने आचार्य वी. वेंकटाचलम् के नेतृत्व में भोज-साहित्य के अनुसन्धान और परिशीलन की योजना को साकार किया। डॉ० भगवतीलाल राजपुरोहित उसी अनुष्ठान के वरिष्ठ साधक हैं। 'राजा भोज का रचनाविश्व' उसी अनुष्ठान का प्रतिफल है।

किसी विद्वान् के व्यक्तित्व और उसकी रचना में यदि अद्वैत की प्रतिष्ठा झलकने लगे तो रचना जीवन्त हो उठती है। डॉ० राजपुरोहित मूलतः धारा नगरी के निवासी हैं। कौन जानता है कि इनके पूर्वज भोजराज के पुरोधा भी रहे हों। इनके व्यक्तित्व में तनिक भी समसामयिक तड़क भड़क नहीं है। इनकी वाणी में उत्तेजना का स्वर नहीं है। अगाध अध्ययन की रसवत्ता ने इनके अन्तर को किसी अतिलौकिक शान्ति और नीरवता से भर दिया है। फलतः इनके विचार श्रोता या पाठक को अपनी सार्थक अन्विति से वशीभूत कर लेते हैं। डॉ० राजपुरोहित के पास संस्कृत-अध्ययन के साथ

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की गहरी समझ का अनुशासन भी सुरक्षित है। विद्या के क्षेत्र में इनकी रचना निश्चित ही उपादेय होगी।

भोजराजरचनाद्भुतविश्वं
भारतीयविदुषां नवदृष्टिम् ।
संस्करोत्वनुदिशं निजदीप्त्या
लेखकं च रचनार्जितकीर्त्या ।।

उज्जयिनी
श्रावण शुक्ल प्रतिपदा
23 जुलाई, 1990

श्रीनिवास रथ

दो शब्द

डा० भगवतीलाल राजपुरोहित संस्कृत साहित्य और वाङ्मय के जागरूक अध्येता हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ–भोज का रचनाविश्व (राजा भोज की साहित्यिक रचनाओं का समालोचनात्मक अध्ययन)–उनके राजा भोज-संबंधी अनुसन्धान का परिणाम है। इसी शोध-प्रबन्ध पर विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, से उन्हें पी०एच०डी० की उपाधि भी मिली है।

राजा भोज के चरित्र पर छोटी-मोटी पुस्तकें लिखी गयी हैं, इतिहास के ग्रन्थों में उस असामान्य नरेश के राजनीतिक अभियान पर प्रचुर सामग्री भी संगृहीत हैं, पर उस नृपति का साहित्य के परिवेश में अध्ययन अभी अपेक्षित था जिसे ग्रन्थकार ने संपन्न कर दिया है। भोज का भारतीय इतिहास में व्यक्तित्व असामान्य है, अनेक क्षेत्रों में अनुपमेय, अप्रतिम। उसकी बहुमुखी प्रतिभा से अनेक दिशाएँ प्रसन्न हुई हैं—साहित्य, राजनीति, वास्तु-शिल्प-कलाएँ–सभी विषयों पर उसकी लेखनी अविरल चला है। आचार्य की योग्यता और ज्ञानवान् की गरिमा तथा विश्वास के साथ उसने विविध शास्त्रों में नये कीर्तिमान खड़े किये हैं। आयुर्वेद से शब्दशास्त्र तक, रसशास्त्र से अल्केमी तक के विषयों को अपनी प्रबुद्ध मति से उसने समृद्ध किया है। और यह तब जब पचपन वर्ष सात मास तीन दिन के उसके राज्य-काल का अधिकांश युद्धभूमि में बीता था। कल्याणी के चालुक्यों, त्रिपुरी के कलचुरियों, कालंजर–महोबा के चन्देलों, ग्वालियर के कच्छपघातों, गुजरात–लाट आदि के अधीशों ने इस वीरकर्मा भोज की चोट झेली थी। उसने खड्ग और लेखनी दोनों से "कीरति" लिखी। प्रश्नात्मक आश्चर्य होता है कि रणक्षेत्र में असिकर्म का धनी और शान्तिकाल का कलम का सिपाही दोनों क्या एक ही व्यक्ति थे। पर साहित्य और इतिहास तथा परम्परा तीनों इस महामहिम कृती का अजस्र बखान करते हैं जिससे इसकी बहुमानता स्वीकार करनी पड़ती है। पद्मगुप्त, धनिक-धनंजय, हलायुध और मेरुतुंग सभी ने उस यशस्वी प्रजारंजक भोज के प्रभामण्डल को प्रभासित किया है। आज भी मुंज और भोज द्वारा निर्मित सरोवरों-प्रासादों के परिसर में वह 'भोजशाला' खड़ी है जिसका कण्ठाभरण-रूपिणी सरस्वती की प्रतिमा आज लन्दन के प्रसिद्ध संग्रहालय में प्रदर्शित है।

ऐसे यशःकाय कृती का अध्ययन कर ग्रन्थकार स्वयं यशःकाय हुआ है। राजा भोज के चरित और साहित्य के अध्येताओं को उसने उपकृत किया है। यद्यपि लेखक के सभी आग्रहों-निष्कर्षों को स्वीकृत नहीं किया जा सकता—करना आवश्यक भी नहीं—

उसके शोध द्वारा निर्मित इस महान् प्रयत्न और उस प्रयत्न की निःशेष सफलता की सराहना तो करनी ही होगी। विज्ञान, शास्त्र, साहित्य और ललितकलाओं में निष्णात राजा भोज-संबन्धी 'अध्ययन' से हमारी भारती समृद्ध हुई है। विद्वज्जन इस प्रकाशन का स्वागत करेंगे, उस प्रकाशक का भी साधुवाद करेंगे जिसने 'गुणिगणगणनारंभे' राजा भोज के नाम पर सपदि गिरने वाली 'कठिनी' का समादर कर इस आकर-ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा ज्ञान के परिवेश का विस्तार किया।

भगवतशरण उपाध्याय

गन्धमादन, विक्रम विश्वविद्यालय,
उज्जयिनी

विषय-सूची

प्रथम उच्छ्वास

द्वितीय उच्छ्वास

तृतीय उच्छ्वास

भोज का शब्द तथा घटना पर लक्ष्य

शब्द-परिचय, चम्पूरामायण में प्रयुक्त अभिधानों के निर्वचन, व्यतीत तथा वर्तमान घटना के आधार पर भविष्यवाणी, पुनरावृत्त घटनाओं पर दृष्टिपात, चम्पूरामायण के टीकाकार, चम्पूरामायण की समस्याएँ, ग्रन्थगत समस्याएँ, चम्पूरामायण सुन्दरकाण्डपर्यन्त ही क्यों ?, चम्पूरामायण में अतिरिक्त श्लोक, ऐतिहासिक समस्याएँ, चम्पूरामायण की कृतित्व–समस्या, परिशिष्ट—चम्पूरामायण के पूरक अंश ।

चतुर्थ उच्छ्वास

उपदेशात्मक साहित्य **113–142**

भूमिका—चाणक्यराजनीतिशास्त्र, ग्रन्थ का आकार, ग्रन्थ का प्रतिपाद्य, ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्द, ग्रन्थ के स्रोत तथा उसका संकलनकाल, ग्रन्थ का संग्रहकर्ता, ग्रन्थ का प्रयोजन, चारुचर्या—रामचन्द्र बुधेन्द्र की टीका में चारुचर्या के उल्लेख, भोजयुग से परवर्तीकाल के उद्धरण, भोज से पूर्वयुग के उद्धरण, प्रतिपाद्य, प्रयोजन, अधिकारी, ग्रन्थ-कर्तृत्व, अभिव्यक्ति की रमणीयता, छन्द, नीतिवचन, भोज तथा क्षेमेन्द्र की चारुचर्या, चाणक्यराजनीतिशास्त्र तथा चारुचर्या के यथार्थ अभिधानों की सम्भावना, उपदेशात्मक काव्य के परिप्रेक्ष्य में भोज की कृतियाँ ।

पंचम उच्छ्वास

कथा-साहित्य, शृंगारमंजरीकथा **143–221**

कथा-संक्षेप, शृंगारमंजरीकथा की कथनपद्धति, ग्रन्थ का स्वरूप, ग्रन्थ-कर्तृत्व, ग्रन्थ का रचनाकाल, ग्रन्थ का अभिधान, चरित्र-चित्रण, मानवीय सौन्दर्य-चित्रण, प्राकृतिक सौन्दर्य-चित्रण, वर्णन-प्रक्रिया के कतिपय गौण अंग, (क) कविसमय (ख) वीप्सा (ग) पर्याय (घ) गुणबिम्ब (ङ) विलोम (च) निर्वचन (छ) वक्रोक्ति (ज) प्राकृत प्रयोग (झ) संवाद, शृंगारमंजरीकथा की शैली, (क) गति (ख) रीति (ग) गुण (घ) वृत्ति (ङ) कथा की भाषा (च) सूक्तियाँ (छ) अलंकार—अनुप्रास, यमक, श्लेष, विरोधाभास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति, भ्रान्ति, सन्देह, विभावना, परिसंख्या, उल्लेख तथा दीपक, ग्रन्थ में निहित रस—अङ्गीरस–शृंगार, अंगभूतरस–हास्य, करुण, अद्भुत तथा भयानक, शृंगारमंजरीकथा में उद्धृत ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार—अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ, दार्शनिक संप्रदाय, साहित्य के रचयिता, कामशास्त्र के ग्रन्थ तथा उनके प्रणेता, काव्याङ्ग तथा सहायक चरित्र—काव्य के रूप—प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका, वाकोवाक्य, वक्रोक्ति, प्रबन्ध, काव्यरचना, गाथा, काव्यार्थभावना, कडवक्क, आख्यान, मणिकुल्या, निदर्शन, दृष्टान्त, अन्योक्ति, रूपक, क्षुरिका नाट्य, नर्तनपाली, संगीत, चित्र । सहायक-चरित्र–अभिसारिका, वासकसज्जा, महिला सहायिका सखी, प्रतिवेशिनी, दूती, पुरुषसहायक धूर्त, कदर्य, विट, डिण्डिक, भुजंग, पाषण्ड, आधुनिक उपन्यास—कहानी तथा शृंगारमंजरीकथा एवं उसकी कथानिकाएँ ।

षष्ठ उच्छ्वास

सप्तम उच्छ्वास

अष्टम उच्छ्वास

नवम उच्छ्वास

दशम उच्छ्वास

संकेतिका

1	इ० ए०	—	इण्डियन एण्टिक्वेरी
2	ए० इ०	—	एपिग्राफिया इण्डिका
3	का० इ० इ०	—	कार्पस इंस्क्रिप्शनस इण्डिकम्
4	ग० पु०	—	गरुडपुराण, जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता 1890
5	च० रा०	—	चम्पूरामायण, निर्णयसागर प्रेस, 1956
6	चा० रा०	—	चाणक्यराजनीतिशास्त्र (चाणक्यराजनीतिशाखा सम्प्रदाय) सं० लुडविक स्टेर्नबेक विश्वेश्वरानन्द ग्रन्थमाला 28
7	चा० रा० ई०	—	चा० रा०, सं० ईश्वरचन्द्र शास्त्री, कलकत्ता ओरियण्टल सीरीज़, कलकत्ता 1919
8	चा० रा० के० १	—	चा.रा. केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक एडीडी० 2525
9	चा० रा० के० २	—	,, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक एडीडी० 1040
10	चा० रा० ति०	—	,, सुनीतिकुमार, पाठक द्वारा सम्पादित तिब्बती प्रति की छाया, विश्वभारती एनल्स्, भाग 8, शान्तिनिकेतन, 1958
11	चा० रा० पे०	—	,, पेन्सेल्विया विश्वविद्यालय, फिलाडल्फिया में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 1559
12	चा० रा० बी०	—	,, बोडलेयन पुस्तकालय, ग्राक्सफोर्ड में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक, एफ 15

13	चा० रा० मा० १	—	,, भाण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, पूना में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 347 (1892–95)
14	चा० रा० मा० २	—	,, वही, 348 (1892–95)
15	चा० रा० मा० ३	—	,, वही, 74 (1883–85)
16	डि० के० सं० मे० अडि० लाय	—	डिस्क्रिप्टिव केटेलॉग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स, अडियार लायब्रेरी।
17	डि० के० मे० ला० मद्रास	—	डिस्क्रिप्टिव केटेलॉग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स, गवर्नमेण्ट मैन्युस्क्रिप्ट लायब्रेरी, मद्रास
18	प० इ०	—	परमार इन्स्क्रिप्शन्स, धार स्टेट हिस्टॉरिकल रिकॉर्ड्स, 1944
19	प्र० चि०	—	प्रबन्धचिन्तामणि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला-1. 1933
20	शृं० क०	—	शृंगारमंजरीकथा, सिंघी जैन ग्रन्थमाला–30, 1958
21	शृं० प्र०	—	शृंगारप्रकाश भाग 1 व 2 सं० जी० श्रीनिवास, जोस्येर, मैसूर 1955 तथा 1963
22	स० क०	—	सरस्वती-कण्ठाभरण (काव्यशास्त्र) कलकत्ता तथा बम्बई 1925
23	स० सू०	—	समरांगण-सूत्रधार, सं० टी० गणपति शास्त्री, बड़ौदा
24	सं० सा० इ०	—	संस्कृत साहित्य का इतिहास

68
72
76
80
84
30
25
20
CHAUHANS
PRATIHARAS.
R. Jamna
R. Chambal
KACHHWAHAS.
Mt. Abu
R. Betwa
CHANDELS
MALVA
KALACHURIS
SOLANKIS
R. Narbada
R. Tapti
R. Mahanadi
W. CHALUKYA
R. Godavari
TRI KALINGA
E. CHALUKYA
R. Krishna
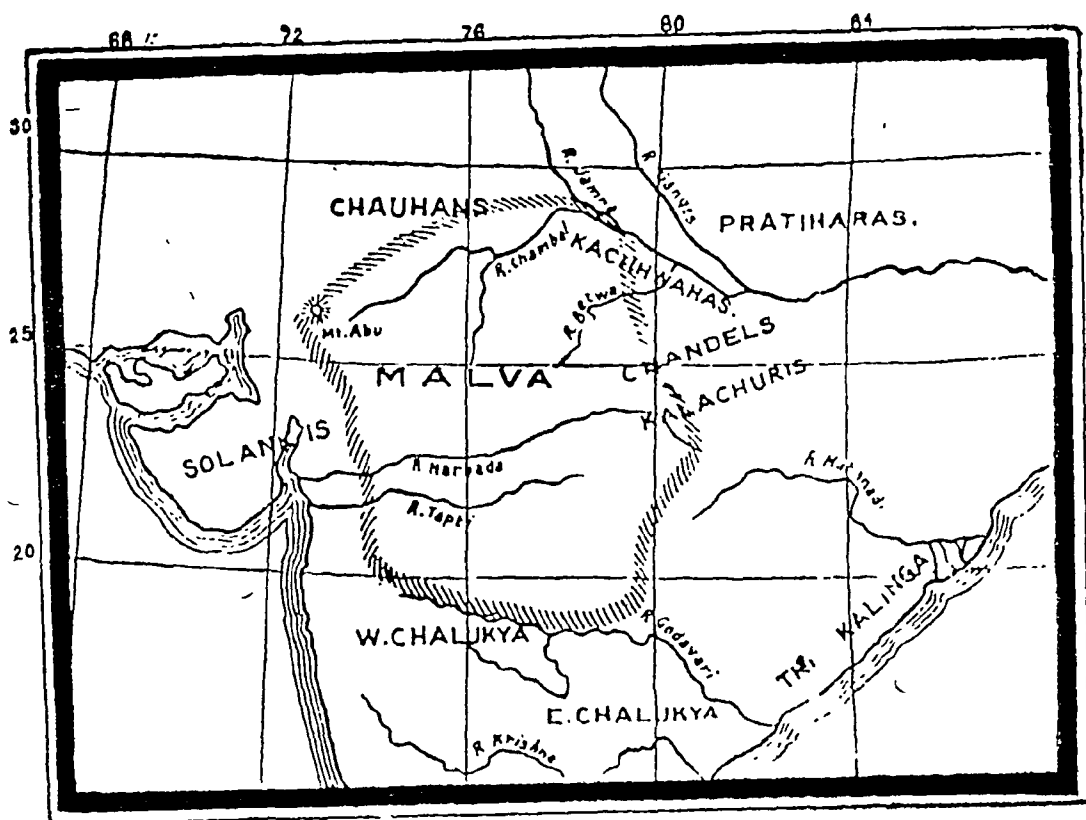
भोज का राज्यक्षेत्र
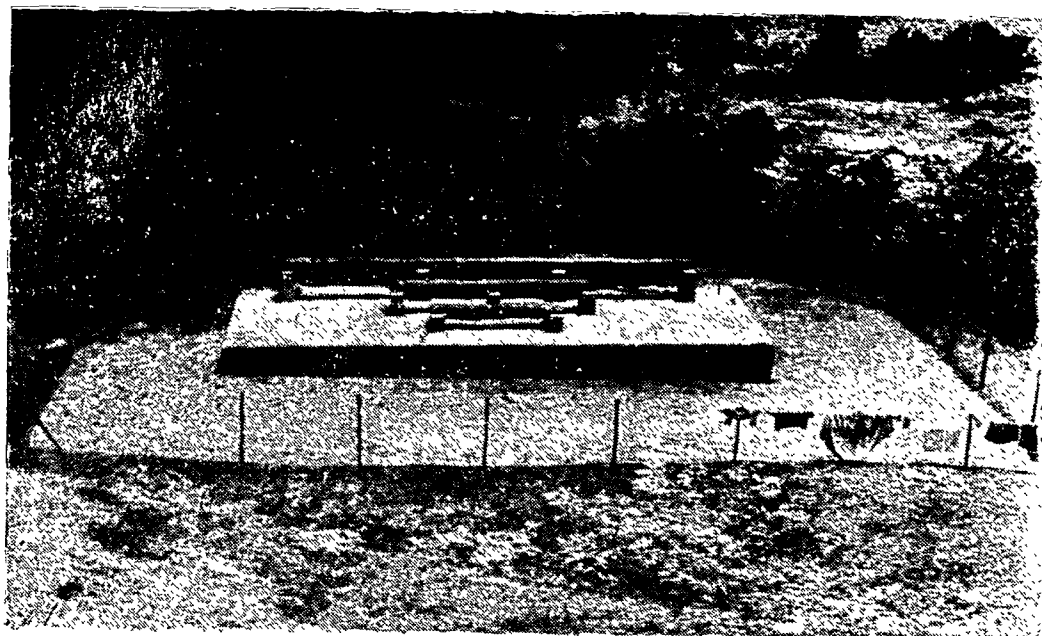
भोज के विशाल लोहस्तम्भ के तीन खंड
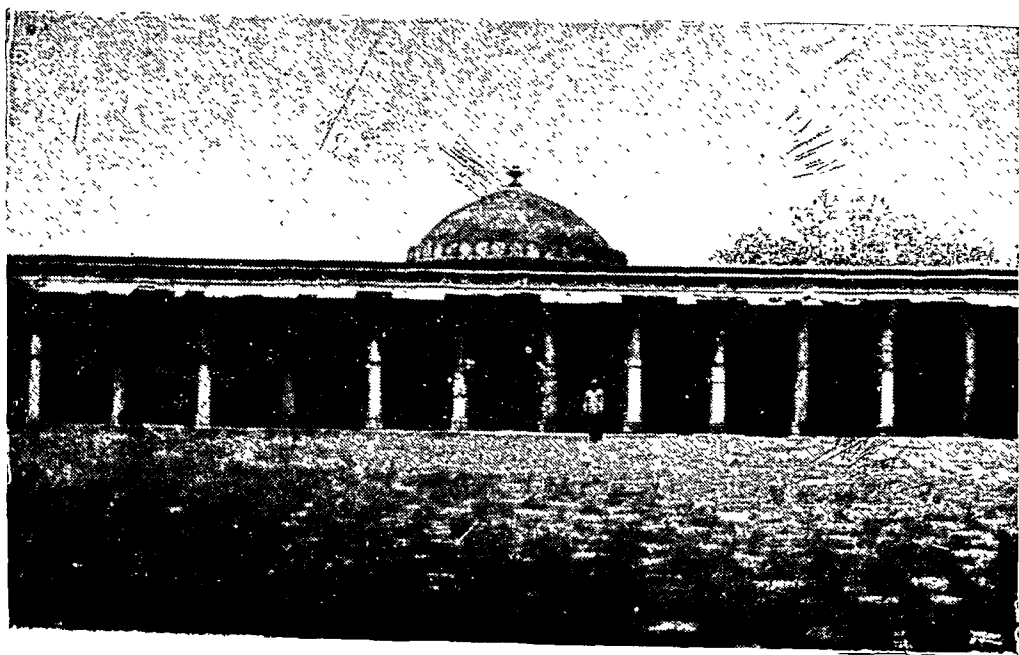
भोज का राजमार्तण्ड या लॉट मसज़िद ? धार

शृङ्गारमञ्जरीकथा के अन्तिम पृष्ठ का अवशेष

शृङ्गारमञ्जरीकथा के प्रथम पृष्ठ का खण्ड

श‍ृङ्गारमञ्जरीकथा का द्वितीय पृष्ठ जहाँ से कथा प्राप्त होती है

चतुर्थ कथा की पुष्पिका

भोज की आराध्या—वाग्देवी की प्रतिमा और उस स्थान का मेहराब जहाँ वह प्रतिष्ठित थी

धार में स्थित भोज द्वारा निर्मित शिव मन्दिर
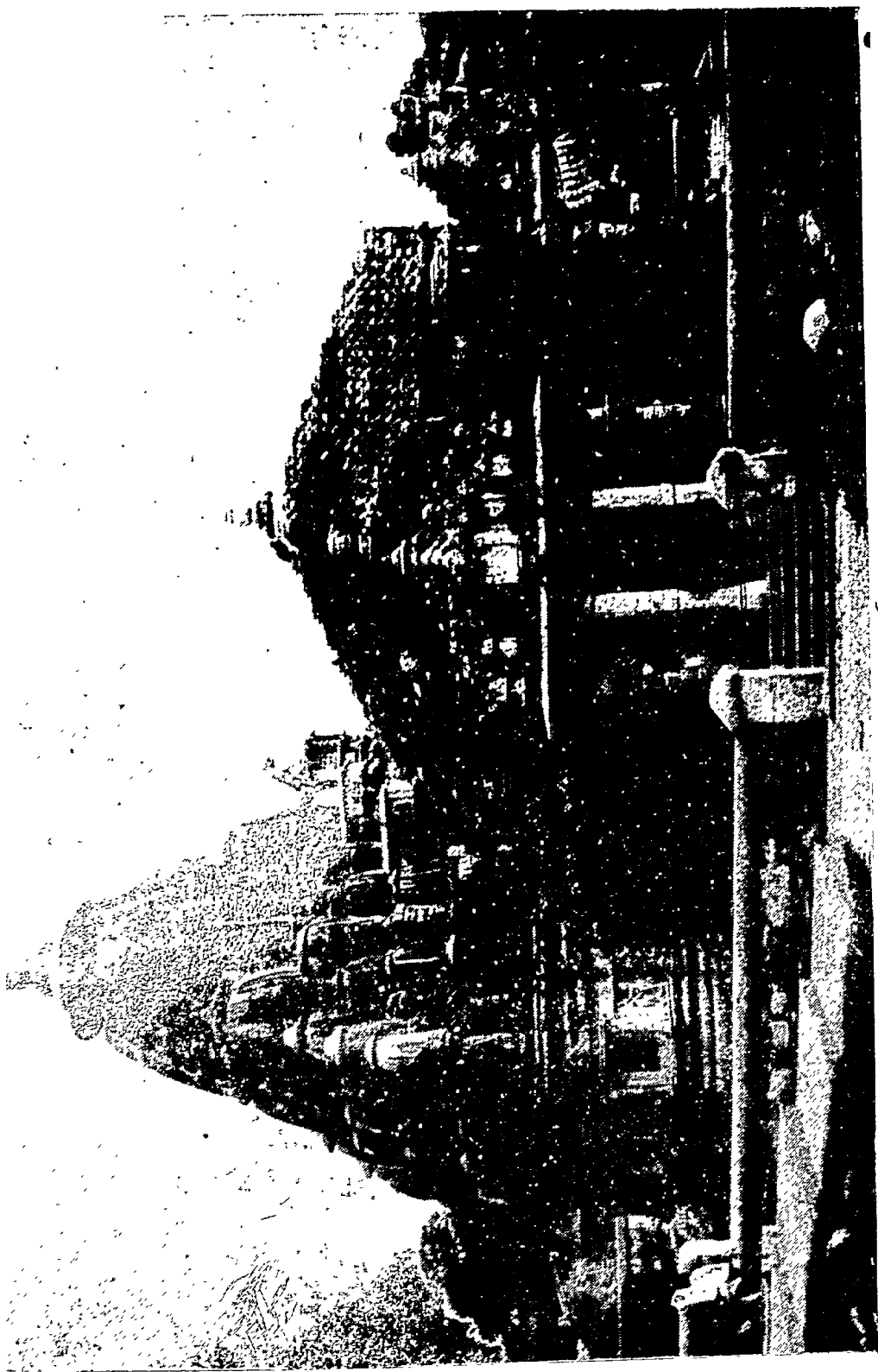
चित्तोडगढ किले में भोज द्वारा निर्मित समाधीश्वर मन्दिर
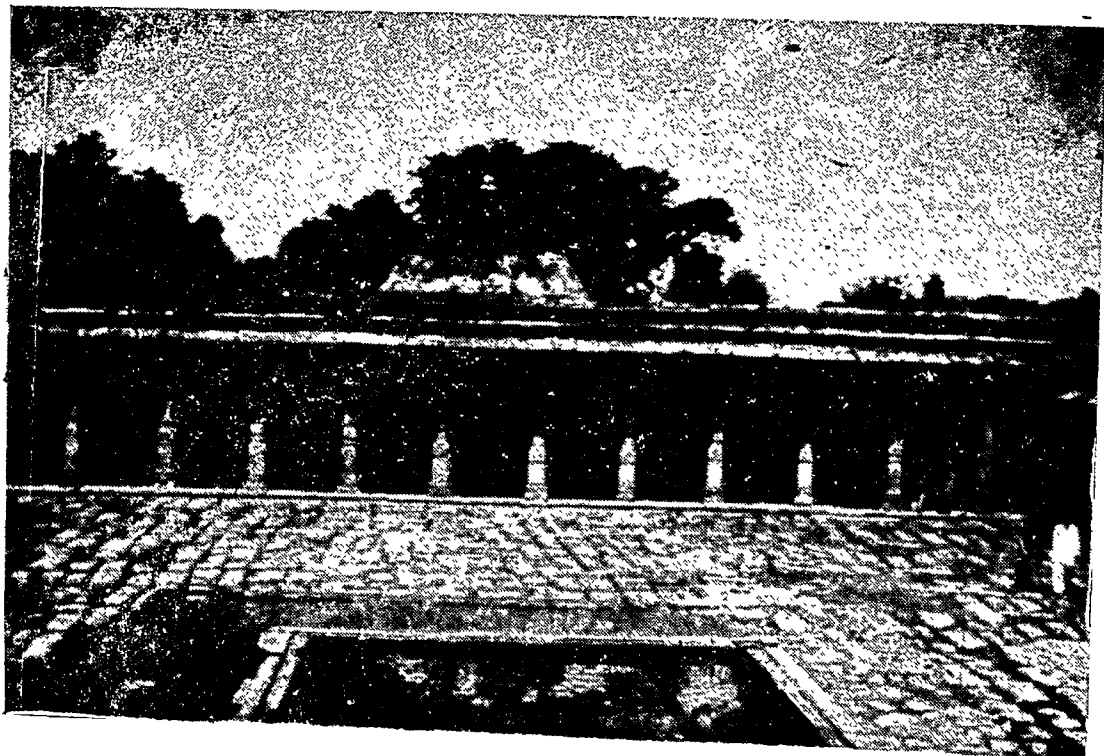
भोजशाला, धार
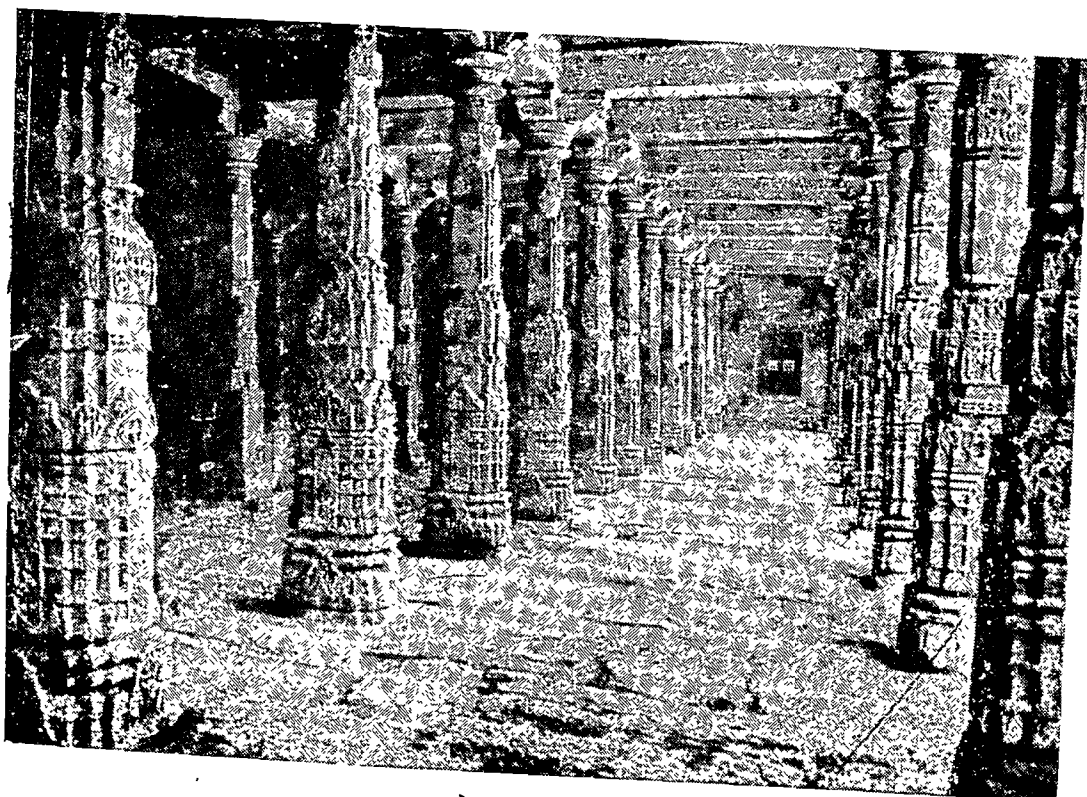
भोजशाला, धार

प्रथम उच्छ्वास

भूमिका

भारतीय ज्ञान-साधक नृपों की परम्परा तथा भोज

भारतीय ज्ञान-साधक नृपों में भोज अग्रणी है। इनसे पूर्व सम्राट अशोक[1], विक्रमादित्य[2], शूद्रक[3], सातवाहन हाल[4], महाक्षत्रप रुद्रदामन[5], समुद्रगुप्त[6], मन्दसौर के यशोवर्मन[7], का अधीनस्थ राजा भगवद्दोष, पल्लवराज महेन्द्रवर्मा[8], हर्षवर्धन[9], कन्नौज का स्वामी यशोवर्मा[10] आदि न केवल विद्वानों के आश्रयदाता अपितु स्वयं भी विद्वान् एवं कवि थे। मालवा के परमार नृपों में विद्वानों की प्रशस्त परम्परा रही है। तिलकमंजरी का रचयिता धनपाल सीयक द्वितीय के काल से भोज के समय तक परमारों के आश्रित रहा। मुंज स्वयं कवि तथा विद्वानों का आश्रयदाता था। वह प्रथित दानी तथा सरस्वती का परम आराधक था[11]। हलायुध, धनपाल, धनंजय, पद्मगुप्त परिमल, धनिक, अमितगति आदि विद्वानों का वह आश्रयदाता था। सिन्धुराज के आश्रित कवि पद्मगुप्त ने उनके चरित को अपनी कृति 'नवसाहसांकचरित' काव्य के द्वारा प्रथित किया। भोज के पश्चात् उदयादित्य तथा नरवर्मा भी विद्या-प्रेमी नृप थे।[12] विन्ध्यवर्मा के सान्धिविग्रहिक मन्त्री बिल्हण-विरचित एक विष्णुस्तुतिपरक श्रेष्ठ काव्यखण्ड प्राप्त हुआ है[13]। इस खण्डित कविता का रचयिता बिल्हण विक्रमांकदेवचरित के रचयिता से भिन्न है। पारिजातमंजरी अथवा विजयश्री नाटिका का रचयिता मदनकवि अर्जुनवर्मा का गुरु था। स्वयं अर्जुनवर्मा ने भी अमरुकशतक पर 'रसिकसंजीवनी' टीका भी लिखी थी। भोज द्वितीय को सम्भवतः उसकी विद्वत्ता के कारण ही अपने पूर्वज भोज से उपमित किया गया[14]। महाराज भोज इस सम्पूर्ण परम्परा के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं।

भोज के व्यक्तित्व के विवध आयाम

महान् विजेता

भोज एक महान् विजेता था। उसने कल्याण के चालुक्य राजा जयसिंह को पराजित किया। चेदिराज गांगेयदेव कलचुरि, आदिनगर के स्वामी इन्द्ररथ, गुजरात के चालुक्य भीम, लाट के स्वामी वत्सराज, कान्यकुब्ज के प्रतिहार राजा राज्यपाल, तुरुष्क राजा महमूद गजनवी, तोग्गलनृप आदि के विरुद्ध भोज के युद्ध हुए[15]। भोज ने चित्तौड़ तथा शाकम्भरी पर आक्रमण कर उन्हें जीता। दूबकुण्ड के राजा अभिमन्यु ने उसकी अधीनता स्वीकार करली थी। ग्वालियर के राजा कीर्तिराज कच्छपघात तथा नाडोल के चौहानों के विरुद्ध भोज को सफलता नहीं मिली। कलचुरी कर्ण तथा गुजरात के चालुक्य राजा भीम की सम्मिलित सेना ने धारा पर आक्रमण किया। इसी समय रुग्ण भोज दिवंगत हो चुका था। इस संघ का भोज से सामना न हो सका तथा इन्होंने धारा को यथेच्छ लूटा[16]। प्रबन्धचिन्तामणि ने गौड़, कलिंग, आन्ध्र आदि पर भी उसका अधिकार बताया है[17]। "भोज ने अनेक विद्वानों को अपना मित्र बनाया; किन्तु राजाओं में किसी को वह अपना मित्र न रख सका[18]।" डॉ. दशरथ शर्मा के इस अभिमत का खण्डन स्वयं भोज[19] के 'प्रणयिभिर्नृपतिभिः' उल्लेख से हो जाता है।

निर्माता

प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार भोज ने 104 प्रासाद धारा में बनवाये थे तथा एक उज्जयिनी में[20]। राजशेखर सूरि के अनुसार उज्जयिनी में भोजका एक प्रासाद था[21]। धारा के सरस्वती-कण्ठाभरण प्रासाद में अनेक काव्य उत्कीर्ण थे[22]। अब भी धारा की भोजशाला से कई शिलांकित काव्य उपलब्ध हुए हैं। मदनकवि की पारिजातमंजरी में इसे शारदासद्म अथवा भारतीभवन कहा गया है[23]। यहीं पर भोज के काल (1034 ई०) निर्मित एक वाग्देवी की प्रतिमा स्थापित थी जो अब ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन में सुरक्षित है[24]। इसी सदन में विद्वत्सभा होती थी तथा छात्र अध्ययन करते थे। धारा में सम्भवतः भोजनिर्मित प्राचीन प्रासाद जो आज लाट मसजिद कहलाता है, के सम्मुख 44 फिट ऊंचा लौह स्तम्भ खड़ा किया गया था, जो भोज का विजय स्तम्भ रहा होगा[25]।

भोज ने चित्तौड़ में एक भोजस्वामिदेव नामक शिव मन्दिर बनवाया था[26]। इसके अतिरिक्त केदार, रामेश्वर, सोमनाथ, सुण्डीर, कालानल तथा रुद्र के मन्दिर बनवाये गये थे[27]। काश्मीर के कपटेश्वर (कोटेर) स्थान पर पापसूदन कुण्ड बनवाया[28] तथा भोपाल के निकट 250 वर्गमील की भोजपुर झील बनवायी थी[29]।

स्थापत्य से सम्बद्ध भोज का सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ समरांगणसूत्रधार है जिसमें सुव्यवस्थित नगरनिर्माण की व्यवस्था का भी विवरण है। भोज ने धारा का पुनर्निर्माण कर, उसे वप्र, परिखा, उद्यान तथा तड़ाग से अलंकृत कर अपनी राजधानी बनाया था[30]। इस प्रकार भोज एक असाधारण निर्माता था।

धार्मिक

भोज ने कई मन्दिर बनवाये। वह परम दार्शनिक था। उसने दर्शन तथा धर्मशास्त्र सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ रचे। भोज मूलतः शैव था। परन्तु अन्य धर्मो तथा सम्प्रदायों के प्रति भी वह श्रद्धालु था। विष्णु तथा उनके अवतार, गणपति आदि की भी वह अर्चना करता था[31]। जैन धर्म के आगमों को वह श्रद्धा से सुनता था और आचार्यो का आदर करता था [32]।

दानी एवं आश्रयदाता

धार्मिक प्रवृत्ति का होने से वह दानी भी था। उसने उत्सव के अवसरों पर कई दान दिये। भूमि-सम्बन्धी दानों की पुष्टि ताम्रपत्रों से होती है[33]। विद्वानों को वह अधिक धन देता था। "प्रत्यक्षरं" लक्षं देने की बात[34] अतिशयोक्ति हो सकती है परन्तु अमूलोक्ति नहीं। दानोत्कर्ष के कारण भोज ने पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त करली थी[35]।

स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ ।
सूरी तस्मिन् क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कविबान्धवौ ।।

जिसकी पुष्टि विक्रमांकदेवचरित,[36] काव्यप्रकाश[37] एवं भोजप्रबन्ध तथा भोजचरित्र, प्रभावकचरित, सुभाषितप्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणि आदि जैनप्रबन्धों से भी होती है।

भोज अमित विद्वानों का आश्रयदाता था। पांच सौ से अधिक विद्वानों ने उसका आश्रय पाया था[38]। भोज का विद्वत्प्रेम तथा उसकी दानप्रियता की ख्याति सुनकर देश के कोने-कोने से, सुदूरवर्ती विद्वान भी उसका आश्रय पाने के लोभ में धारा की ओर खींचे चले जाते थे। बिल्हण भी इसी प्रयोजन से कश्मीर से चलकर धारा पहुँचा था परन्तु वह तब पहुँचा था जब भोज के बिना

धारा के पण्डित निराश्रित हो चुके थे, सरस्वती निरालम्बा रह गयी थी, धारा लूट ली गयी थी,[39] भोज के आश्रित पण्डितों में आप्त विद्वान थे[40]। धनपाल ने अपनी सुप्रसिद्ध कृति तिलकमंजरी की रचना भोज के आश्रयकाल में ही की थी[41]। छित्तप, धनिक उव्वट इत्यादि अनेक प्रथितनामा कवि तथा विद्वान् भोज की विद्वत्परिपत् को अलंकृत करते थे। जब तक भोज जीवित रहा, विद्वानों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। वे आनन्दित तथा सुखी रहे। उनका पर्याप्त आदर होता रहा[42]। योग्यतानुसार विद्वानों को पर्याप्त वृत्ति मिलती थी[43]। परन्तु भोज की मृत्यु के साथ ही सारे पण्डित निराश्रित हो गये।[44]

विविध गुणों का समाहार

भोज मध्ययुगीन भारत का एक अद्वितीय शासक था। वह अशोक के समान था क्योंकि उसने जिन आदर्शों का प्रचार किया उनका स्वयं पालन भी किया। भोज विद्या के प्रचार में संलग्न रहा तथा स्वयं भी उसकी साधना करता रहा। वह खारवेल के समान महान् निर्माता था। विक्रमादित्य के समान भोज ने ज्ञान की विविध शाखाओं के विशेषज्ञों से अपनी सभा को अलंकृत किया तथा अमित दान दिया। वेशजीवन पर सम्यक् प्रकाश डालने की प्रक्रिया अपनाने से तथा विविध ज्ञानों का वेत्ता होने से वह शूद्रक के समान था। हाल के समान उसने महाकवियों को आश्रय दिया, प्राकृत में ग्रन्थ रचे तथा रचवाये एवं संग्रह-ग्रन्थ प्रस्तुत किये। रुद्रदामन के समान वह राजनीतिज्ञ व कुशल समरविजयी, प्रजारंजक तथा गद्य एवं पद्य का समर्थ कवि था। समुद्रगुप्त के समान भोज ने न केवल "कविराज" उपाधि प्राप्त की अपितु संगीत प्रभृति कला में प्रवीणता भी प्राप्त की। वह समुद्रगुप्त के समान महान् विजेता था। मन्दसौर के औलिकर नरेश यशोधर्मा के अधीनस्थ नृप भगवद्दोष के समान उसकी न केवल संस्कृत तथा प्राकृत में काव्य–रचना में अबाध गति थी अपितु उसने भारत में अपने शौर्य की धाक जमा दी थी। महेन्द्रवर्मा के समान वह साहित्य प्रेमी तथा संगीतविज्ञ था। यशोवर्मा के समान उसका वाक्पतिराज से घनिष्ठ सम्बन्ध था। हर्षवर्धन के समान भोज न केवल साहित्य का सर्जक तथा साहित्यकारों का संरक्षक था अपितु महान् विजेता, धर्म का संरक्षक एवं विविध धर्मों के प्रति सहिष्णु भी था। गुप्तों तथा पाल नृपों के समान भोज ने धारा, उज्जयीनी तथा मण्डपदुर्ग (माण्डव) में विद्यालय स्थापित कर शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार किया। इस प्रकार भारतीय इतिहास में भोज ही ऐसा शासक दिखाई देता है जिसमें विविध युगीन, विविध नृपों में उपलब्ध होने वाले गुणों का समाहार प्राप्त हो जाता है। वह विविध गुणों का पुंजीभूत सप्राण पिण्ड था। वह न केवल अपने युग, अपितु प्रायः सम्पूर्ण इतिहास का प्रतिनिधित्व करता है। वह भारतीय संस्कृति का प्रतीक बन गया।

भोज की ज्ञानसाधना :

यह भोज न केवल विद्वानों का आश्रयदाता अपितु स्वयं भी विद्वान् था। वह सारे राज-शास्त्र, ३६ आयुधविज्ञान, ७२ कलाओं एवं सारे लक्षणों से अभिज्ञ था[45]। धनपाल भी भोज को अशेष वाङ्मय का वेत्ता समझता है[46]। शृंगारमंजरी कथा में भी भोज को प्रशस्तगीर्वाण तथा असीम ज्ञान का वेत्ता कहा गया है[47]। उसके मुख का आश्रय पाकर वाग्देवता फूली न समाती है[48]। वह सारे शास्त्र, निखिल कला तथा सकल विज्ञानों का वेत्ता था। एक बार सुनने पर वह कभी नहीं भूलता था[49]। उसमें ग्रन्थ-निर्माण की अद्भुत क्षमता थी। वह बड़ी शीघ्रता से अनेक ग्रन्थों का निर्माण कर सकता था [50]। उसे 104 गीत-प्रबन्धों अथवा 84 प्रबन्धों का प्रणेता माना जाता है[51]। प्रभावकचरित में भोज के विविध विषयक शास्त्रों की सूची प्राप्त होती

है[52]। इनमें से बहुतों के नाम उपलब्ध हो गये हैं एवं अनेक ग्रन्थ भी[53]। मेरुतुंग ने भोज को 104 गीतप्रबन्धों का रचयिता बताया है[54]। समुद्रगुप्त के समान भोजराज को भी "कविराज" उपाधि से अभिहित किया गया है[55]।

कविराज श्री भोजराज ने अपने युग में प्रचलित ज्ञान के प्रायः अशेष आयामों को अपनी तथा अपने आश्रित विद्वानों की लेखनी में समेटने का प्रयास किया। भोज की कृतियाँ प्रायः सभी प्रमुख विषयों से सम्बद्ध ज्ञात होती है। साहित्य, साहित्यशास्त्र, व्याकरण, कोष, इतिहास, दर्शन, धर्मशास्त्र, ज्योतिष्, राजनीतिशास्त्र, आयुर्वेद, स्थापत्य तथा संगीत से सम्बद्ध पचास से अधिक ग्रन्थों के अभिधान उपलब्ध हो चुके हैं[56]। इन सभी विषयों पर भोज ने अधिकारपूर्वक अपना अभिमत प्रस्तुत किया है। वह कई स्थलों पर अपने पूर्ववर्ती विद्वानों की अपेक्षा कई नूतन बातें प्रस्तुत करता है जिनका परवर्ती विद्वानों ने सादर स्मरण किया है। पाणिनि के पश्चात् भोज की अष्टाध्यायी उस युग में विशेष लोकप्रिय हुई। पद-पद पर पाणिनि तथा अमरकोष को उद्धृत करने में निरत मल्लिनाथ भी कतिपय स्थलों पर भोज के व्याकरणगत अभिमतों तथा कोष को उधृत कर देता है। वह आचारशास्त्र, ज्योतिष, अश्वशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि के लिए भी भोज की वाणी का स्मरण करता है।[57] उसके काव्यशास्त्र एवं संगीत से सम्बद्ध अभिमतों का परवर्ती काल में अनेक बार स्मरण किया गया[58]। उसके धर्मशास्त्रगत अभिमतों के उल्लेख शूलपाणि, अल्लाडनाथ, रघुनन्दन तथा विज्ञानेश्वर ने किये हैं। आयुर्वेद के लिए रुग्विनिश्चय तथा भावप्रकाश में, व्याकरण-कोष आदि के लिए भट्टोजि दीक्षित, भानुजि दीक्षित, क्षीरस्वामी, सायण, महीप आदि ने उसे उद्धृत किया। ज्योतिष् के लिए केशवार्क ने भोज का स्मरण किया है। छित्तप, दिवेश्वर, विनायक, शंकरसरस्वती, सरस्वतीकुटुम्बदुहितृ, हरिहर आदि ने भोज की कविरूप में प्रशंसा की है[59]।

विद्वानों का उपमान-भोज :

अजड तथा मेरुतुंग के अनुसार भोज के विरुद तथा उसके ग्रन्थों के अभिधान एक ही थे[60]। कविबन्धु[61] वाक्पतिराज मुंज की परम्परा को सिन्धुराज ने आगे बढ़ाया। भोजराज इस वंश की इस प्रशस्त परम्परा का अन्तिम तो नहीं परन्तु ऐसा देदीप्यमान दीपस्तम्भ था जिसकी ऊंचाई तथा आलोक की समता कोई भी भारतीय नरेश नहीं कर पाया। भोज ने जो साधा, जो विधान किया, जो दिया तथा जो ज्ञात किया वह अपूर्व था,[62] इसीलिए वह इन क्षेत्रों के लिए उपमान बन गया।

वीरभद्र राजा ने स्वयं को भोज के समान विविध विद्या से सम्बद्ध ग्रन्थ का निर्माता कहा है[63]।

भोज इवायं निरतो नानाविद्यानिबन्धनिर्माणे।
समयोच्छिन्नप्राये सोद्योगः कामशास्त्रेपि॥

वेंकटकृष्ण ने अपने आश्रयदाता नरेश गोपाल को भी भोज से उपमित किया है[64]—

बोधे कलानां नवभोजराजः।

दान में भी उसका विक्रम के साथ स्मरण किया गया है[65]—

दाणेण वलिभोयविक्कमकहानिव्वाहगो नायगो।
सो एसौ जयचन्दणाम ण पहू कस्सासयं पीइदो॥

मदनकवि ने अर्जुनवर्मा को भोजसदृश गुणी कहा है[66]-

भोजस्यैव गुणोर्जितमर्जुनमूर्त्यावतीर्णस्य ।

भोज द्वितीय को भी अपने पूर्वज भोज से उपमित किया गया है[67]—

परमारान्वयप्रौढ़ो भोजो भोज इवापरः ।

वस्तुपाल भी भोजराज विरुद से अभिहित होता था[68]—

विद्वद्भिः कृतभोजराजविरुदः श्रीवस्तुपालः कविः ।

वह लघुभोजराज तथा भोज के समान सरस्वतीकण्ठाभरण विरुद भी धारण करता था [69]। मात्रार्णव में विश्वेश्वर अपने आश्रयदाता मान्धाता के पिता मदनपाल को "नूतन भोज" कहता है।

तंजोर का राजा शाहजी "अभिनव भोजराज" कहलाता था[70]।

विजयनगर का कृष्णदेवराय विविधकला का ज्ञाता होने से "अपरभोज" कहलाता था[71]।

विदितनानाकलेन वदनविजिताम्भोजेन भोजेनापरेण ।

नृसिंह चम्पू का रचयिता 1684 ई० में विरचित अपने ग्रन्थ में अपने आश्रयदाता उमापति दलपति को भोज अथवा विक्रम कहता है।[72]

किं भोजः किमु विक्रमः— शूरः श्रीमदुमापतिर्दलपतिः ।

वस्तुतः भोज अनुपम था परन्तु वह विद्वानों, गुणियों तथा दानियों एवं तेजस्वियों का उपमान बन गया था। चक्रपालित के लिए कही गयी यह उक्ति वस्तुतः भोज के लिए अधिक उपयुक्त है।[73]

न विद्यतेऽसौ सकलेपि लोके यत्रोपमा तस्य गुणैः क्रियेत ।
स एव कार्त्स्न्येन गुणान्वितानां बभूव नृणामुपमानभूतः ॥

कूर्म के लिए कही गयी भोज की यह उक्ति स्वयं भोज के लिए सार्थक बन गयी है[74]।

उवमाणं कह लब्भउ पेच्छह कुम्मस्स असमचरिअस्स ।

भोज–साहित्य के अध्ययन के पूर्व प्रयास तथा उनकी अपूर्णताः—

भोज के मुखाम्भोज में श्री तथा भारती का अवैर निवास था[75]। यही स्थिति उसके राज्य तथा प्रमुखतया राजधानी की थी। वहां अपण्डित का अभाव था[76]। वस्तुतः भोज का राज्य एक ऐसा मण्डप बन गया था जहां सतत ज्ञान-यज्ञ होता रहता था। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में[77] "भोज का राज्य कलचर स्टेट का अनुपम उदाहरण है। भोज के राज्य को एक शब्द में काव्यप्रधान राष्ट्र कह सकते हैं। समस्त राष्ट्र एक महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय के समान हो गया, जिसमें शिक्षित समुदाय का कार्य एक मात्र काव्य-साहित्य की उपासना था। विद्या के सर्वभौम मन्दिर में देश और काल का लोप हो गया। परन्तु भोज का पराक्रम, उनकी देशविजय, ग्रन्थरचना, शिल्प और स्थापत्य के अवशेष, दान, प्रशस्तियां आदि के रूप में इतना ऊंचा उठा कि वह इतिहास की वस्तु कम बन सका, कथा-कहानियों की वस्तु अधिक बन गया।[78]

धीरे धीरे इस ओर विद्वानों की दृष्टि गयी। उन्होंने मालव तथा यहां के गौरवशाली परमार नरेशों के इतिहास लिखे[79]। इन इतिहास–ग्रन्थों में परमारों की सारस्वत उपलब्धियों से सम्बद्ध सामान्य संकेतात्मक विवरण उपलब्ध होते हैं।

पी० टी० श्रीनिवास अय्यंगर का प्रथम वार परिचयात्मक "भोज राजा" ग्रन्थ 1931 ई० में प्रकाशित हुआ[80]। इस 110 पृष्ठ के लघु ग्रन्थ में भोज की सारस्वत साधना का केवल 10 पृष्ठ में परिचय दिया गया है। परन्तु पूर्व प्रयासों से यह अपेक्षाकृत प्रमाणिक तथा वृहत्प्रयास था। इसके एक वर्ष पश्चात् विश्वेश्वरनाथ रेउ का लगभग 400 पृष्ठों का "राजा भोज" ग्रन्थ प्रकाशित हुआ[81]। इस ग्रन्थ में भोज सम्बद्ध अधिक तथा प्रामाणिक सूचनाएं सुलभ की गयीं। भोज की सारस्वतसाधना से सम्बद्ध इसमें एक वृहत् अध्याय (पृष्ठ 236 से 312) लिखा गया जिसमें हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्रों एवं प्रकाशित ग्रन्थों के आधार पर भोज के नाम से ज्ञात होने वाले ग्रन्थों की यथासम्भव सूचना दी गयी है। काशीनाथ कृष्ण लेले तथा शिवराम काशीनाथ ओक का "भोजदेव की साहित्य सेवा" लेख वीणा में अगस्त 1934 ई० में प्रकाशित हुआ था जिसे इतिहास आफिस, धार से पुस्तिका रूप में उसी वर्ष प्रकाशित करवा दिया गया था। यह भी सूचनापरक लेख है। भोज के अनुसंधान–क्षेत्र में अद्यावधि सर्वमहत्वपूर्ण डा० वी० राघवन् का शोधप्रबन्ध 'भोजाज शृंगारप्रकाश' है जिसका सुपरिवर्धित संस्करण 1963 ई० में प्रकाशित हुआ[82]। डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल के वास्तुकला से सम्बद्ध ग्रन्थों का आधार भोज का समराङ्गण सूत्रधार है। रेउ तथा लेले के उपर्युक्त ग्रन्थों के आधार पर हीरालाल शर्मा ने भी 72 पृष्ठ की एक लघु पुस्तिका 'महाप्रतापी भोज' प्रकाशित करवायी थी जिसमें मौलिकता का प्रायः अभाव है[83]। इनके अतिरिक्त विभिन्न शोधपत्रिकाओं में समय–समय पर प्रकाशित विकीर्ण निबन्ध उपलब्ध होते हैं।

इनमें से डा० राघवन् तथा डा० शुक्ल के अतिरिक्त विद्वानों के प्रयास मूलतः इतिहास के सन्दर्भ में हुए हैं। इतिहास–रचना में भोज के व्यक्तित्व की ज्ञानशाखा पर प्रकाश डालने के लिए उसके ग्रन्थों का नाम परिगणन कर दिया गया है। उसकी कृतियों का विशिष्ट अध्ययन किसी भी ग्रन्थ में नही हुआ है। स्वभावतः भोज के ज्ञान–गौरव को प्रकाश में लाने का प्रयास अद्यावधि नगण्य ही हुआ है। और कवियों के आश्रयदाता तथा स्वयं कवि के रूप में प्रख्यात भोज का काव्य–साहित्य तो इस दृष्टि से सर्वथा उपेक्षित रहा है।

प्रस्तुत अनुसंधान का लक्ष्य तथा उसकी आवश्यकता :

विषय वैविध्य तथा रचयिता की महत्ता के कारण भोज की कृतियों का अपना विशिष्ट महत्व है। भारतीय संस्कृति के उन्नायक के रूप में. संस्कृत विद्या की विभिन्न शाखाओं में विभिन्न प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानों द्वारा मान्य मूर्धन्य ग्रन्थों के प्रणेता के रूप में तथा देश-व्यापी ख्याति के पात्र होने पर भी अब तक राजा भोज पर क्रमबद्ध एवं व्यापक अनुसंधान–कार्य नहीं हो पाया है। जिस कारण भोज ने सर्वाधिक ख्याति अर्जित की वह साहित्य-विधा तो शोध की दृष्टि से प्रायः अस्पृष्ट ही रही। केवल शृंगारमंजरीकथा की भूमिका में कुमारी कल्पलता मुन्शी ने उसके साहित्यिक वैशिष्ट्यों का उद्घाटन करने का प्रयास किया है[84]। भोज के सर्वाधिक प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय ग्रन्थ चम्पूरामायण पर भी साहित्य के इतिहासों में अधिक से अधिक लघु टिप्पणियां प्राप्त हो सकती हैं। "चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन"[85] के रचयिता डा० छविनाथ त्रिपाठी भी अपने ग्रन्थ में भोज की इस कृति पर चार पृष्ठों की टिप्पणी लिख कर विरत हो गये।

वस्तुतः भोज की साहित्यिक गरिमा के अनुकूल उनके ग्रन्थों का समीक्षण नहीं हो पाया। इस मध्ययुगीन विख्यात साहित्यमर्मज्ञ का साहित्य भी विद्वानों की दृष्टि में उपेक्षित रहा।

विद्वान् केवल उसके ग्रन्थों की सूची देकर ही अपने कर्तव्य से मुक्त हो गये। सूची में भी अन्धानुकरण ही अधिक हुआ। आज तक के संदर्भ-प्रधान युग में भी विद्वानों ने उन कृतियों के प्रायः सन्दर्भ नहीं दिये। यही कारण है कि इ० डी० कुलकर्णी, विश्वेश्वरनाथ रेउ, श्रीनिवास अय्यंगर, क० मा० मुन्शी, ओक व लेले आदि सभी विद्वान् भोज के "महाकाली विजय" ग्रन्थ का उल्लेख करते हैं परन्तु आज तक उसका कहीं कोई स्रोत प्राप्त नहीं होता। 'शालिकथा" अपने निर्दिष्ट स्थान पर सुलभ नहीं है तथा विद्याविनोद की वस्तुस्थिति भी अज्ञात है। डा० राघवन् के अनुसार प्रथम की सूचना गलत है तथा दूसरा ग्रन्थ वैद्यक कृति विश्रान्तविद्याविनोद से सम्भवतः अभिन्न है[86]। द्वितीय अवनिकूर्मशतम्, कोदण्ड (काव्य ?), सुभाषितप्रबन्ध, चाणक्यराजनीतिशास्त्र आदि कृतियों का ग्रन्थकर्तृत्व निर्धारण करना भी अभी शेष है। चम्पूरामायण के विषय में यह प्रवाद सर्वाधिक प्रबल है।

साहित्यिक मानदण्डों के परिप्रेक्ष्य में भोज की साहित्यिक कृतियों का समालोचन करना भी अभी शेष है। भोज की काव्य-प्रतिभा उसकी साहित्येतर कृतियों में भी असुलभ नहीं है। उन कृतियों के साहित्यिक मूल्यांकन के अभाव में भोज की साहित्याभिरुचि का पूर्ण ज्ञान सम्भव नहीं है।

भोज ने न केवल साहित्यिक ग्रन्थों का ही प्रणयन किया अपितु वह अलंकारशास्त्रीय ग्रन्थों का भी प्रणेता रहा। सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश उसके ऐसे ही सर्वप्रथित ग्रन्थ हैं। स्वभावतः जिज्ञासा होती है कि स्वयं भोज के निकषों पर उसके ही साहित्य-रत्न कहाँ तक खरे उतरते हैं? वह स्वनिर्मित नियमों से कहाँ तक प्रतिबद्ध है?

भोज की कृतियों में रूपक, खण्डकाव्य, महाकाव्य आदि प्रथित काव्य-विधाओं का अभाव है। भोज के अनुसार प्रत्यक्षप्रतीयमान पदार्थों में वह आस्वाद नहीं जो वाग्मियों की वाणी में होता है। अतः वे अभिनेता की अपेक्षा कवि को तथा अभिनय की अपेक्षा काव्य को अधिक महत्व देते हैं। भोज ने अपना यह अभिमत शृंगारप्रकाश में स्पष्ट किया है[87]। प्रतीत होता है भोज के समय रंगमंच की वह सुव्यवस्था तथा अभिनय की वह दक्षता असुलभ थी जो भास, शूद्रक अथवा कालिदास के युग में प्राप्त थी। एक "सरस्वतीकण्ठाभरण नाटक" का उल्लेख उपलब्ध होता है परन्तु उसके रचयिता एवं स्थिति-स्थान आदि के विषय में अज्ञान होने से तद्विषयक निर्णयात्मक रूप से कुछ कहना असंगत होगा।[88]

इस प्रकार भोज की उपलब्ध साहित्यिक कृतियों का सर्वाङ्गीण अध्ययन होना अपेक्षित, परन्तु शेष है।

शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा प्रशस्तिपरक साहित्य के आधार पर भोज के व्यक्तित्व को आंकने का प्रयास होता रहा। परन्तु भोज-साहित्य की अन्तःप्रवृत्ति भोज के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के किन-किन आयामों का उद्घाटन करती है, इस दृष्टि से अध्ययन अभी शेष है। ऐसा समीक्षण अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक माना जा सकता है। भोजयुगीन सभ्यता का ज्ञान, उसके ही ग्रन्थों मे होना, अधिक स्वीकार्य होगा। क्योंकि ये स्रोत अधिक प्रामाणिक माने जा सकते हैं। पुनः भोज स्वयं राजा था, उसकी दृष्टि अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट तथा स्वस्थ मानी जा सकती है।

इस प्रकार भोज की उपलब्धियों तथा उसकी ज्ञानगरिमा को ज्ञात करने के सर्वाधिक प्रामाणिक उपकरणों की सम्भावना उसके ही ग्रन्थों से की जा सकती है। भोज के साहित्य तथा युग की मनोभूमि अपरिमित सम्भावनाओं से उद्वेलित है। प्रस्तुत शोध-प्रयास में भोज साहित्य के उपर्युक्त विविध आयाम गवेष्य होंगे। साथ ही ज्ञात रहस्यों की नवीकृत व्याख्या तथा अज्ञात तत्वों के उद्‌घाटन में भी यह निरत रहेगा।

सन्दर्भ

1. भारत के विभिन्न स्थानों से उपलब्ध सम्राट् अशोक के अभिलेखों के रूप में उसका अमित साहित्य उपलब्ध हो गया है। यह पालि साहित्य धर्म के अधिक निकट है।
2. नवरत्नों के आश्रयदाता के रूप में विक्रमादित्य की प्रसिद्धि है। ये सभी रत्न विविध ज्ञानों के विशेषज्ञ थे।
3. शूद्रक का 'मृच्छकटिक' प्रकरण तथा 'पद्मप्राभृतकम्' भाण सुविज्ञात हैं।
4. गुणाढ्य के आश्रयदाता तथा गाथासप्तशती के रचयिता के रूप में इनकी प्रसिद्धि है।
5. स्फुटलघुमधुरचित्रकान्तशब्दसमयोदारालंकृतगद्यपद्य (काव्यविधानप्रवीणे) न... महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना।—रुद्रदामा प्रथम का जूनागढ़ लेख।

   —ए० इ०, भाग 8 पृ० 42
6. अध्येय: सूक्तमार्ग: कविमतिविभवोत्सारणं चापि काव्यम्। श्लो०8 तथा
   विद्वज्जनोपजीव्यानेककाव्यक्रियाभि: प्रतिष्ठितकविराजशब्दस्य........।
   कार्पस इण्डिकेरम इण्डिकम्, भाग 3, क्रमांक 1, पंक्ति 27। समुद्रगुप्त ने प्रथम बार सिक्कों पर काव्यत्मक लेख लिखवाये। रसशाला, गोंडल से इसके नाम से "कृष्णचरित" प्रकाशित हुआ है।
7. वचनरचनबन्धै : संस्कृतप्राकृतैर्य:
   कविभिरुदितमार्गं गीयते गिरभिज्ञ:। श्लोक 17
   · का० इ० इ०, भाग 3, पृ० 152
8. मत्तविलासप्रहसन के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध है।
9. रत्नावली, प्रियदर्शिका तथा नागानन्द रूपकों के रचयिता एवं बाणभट्ट के आश्रयदाता के रूप में प्रसिद्ध है।
10. ये "रामाभ्युदय" नाटक के रचयिता एवं भवभूति तथा गउडवहो प्राकृत काव्य के रचयिता वाक्पतिराज के आश्रयदाता के रूप में प्रसिद्ध हैं।
11. अतीते विक्रमादित्ये गतेऽस्तं सातवाहने।
    कविमित्रं विशश्राम यस्मिन् देवी सरस्वती॥
    पद्मगुप्त, नवसाहसांकचरित, 11/93
    तथा
    गते मुंजे यश:पुञ्जे निरालम्बा सरस्वती।
    —प्र० चि०, पृ० 25, श्लोक 49

12. उदयादित्य की वर्णनागकृपाणिका एवं नरवर्मा की सिद्धासिपुत्रिका धारास्थित भोजशाला के स्तम्भों पर उत्कीर्ण है ।
    ←पी० टी० श्रीनिवास अय्यंगर, भोज राजा, पृ० 98-99
    अन्नामलाय विश्वविद्यालय, मद्रास, 1931
13. प० इ०, पृ० 40–44
14. परमारान्वयप्रौढो भोजो भोज इवापरः ।
    —नयचन्द्रसूरि, हम्मीरमहाकाव्य. 9/18
    —राजस्थान प्राच्य प्रतिष्ठान, जोधपुर,
15. चेदीश्वरेन्द्ररथतोग्गलभीममुख्यान्
    कर्णाटलाटपतिगुर्जरराट्तुरुष्कान् ।
    यद्भृत्यमात्रविजितानवलोक्य मौला–
    दोष्णां बलानि कथयन्ति न योद्धृलोकान् ।
    –ए०इ०, भाग 1, पृ० 235, श्लोक 19
16 डा० दशरथ शर्मा, पंवारवंशदर्पण, पृ० 63–69
17. प्र० चि०, पृ० 22 श्लोक 34 तथा पृ० 31 श्लोक 72–73
18. पंवारवंशदर्पण, पृ० 68-69
19. शृं० क०, पृ० 1
20. प्र० चि०, पृ० 50-51
21. प्रबन्धकोष, पृ० 59
22. प्र० चि०, पृ० 36-40
23. परमार इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० 46
24. रूपम, कलकत्ता, 1924, पृ० 1-2
25. मध्यप्रदेश सन्देश, दिसम्बर 1970 का मासान्त अंक
26. विएना ओरिएन्टल जर्नल, भाग 21, पृ० 143 तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 3, पृ० 1-18
27. केदार-रामेश्वर-सोमनाथ-
    सुण्डीरकालानलरुद्रसत्कैः ।
    सुराश्रयैर्व्याप्य च यः समन्ताद्
    यथार्थ-संज्ञां जगतीं चकार ।। ए० इ०, भाग 1, पृ० 236 श्लोक, 20
28. कल्हण, राजतरंगिणी, 7/190-196
29. इ० ए०, भाग 17, पृ० 348-52 तथा पी० टी० श्रीनिवास अय्यंगर,
    भोजराजा, 1931 ई०, पृ० 105–109
30 द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का नवम उच्छ्वास
31. द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध के सप्तम तथा नवम उच्छ्वास
32. तिलकमंजरी, श्लोक 50 तथा राजाभोज, पृ० 95–97
33. द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का नवम उच्छ्वास
34. बल्लाल, भोजप्रबन्ध, पृ० 40, 46
35. कल्हण, राजतरंगिणी, 7/259

36. बिल्हण, विक्रमांकदेवचरित, 3/71,18/47,18/96
37. मम्मट, काव्यप्रकाश, उदाहरण श्लोक, 505
38. भोजप्रबन्ध, बल्लालकृत, पृ० 14, श्रीनिर्णयसागर, 1932 ई०
39. प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० 51–52 तथा विक्रमांकदेवचरित, 18/96 तथा
ए० इ० भाग 1,1,220
40. कतिपयैर्विद्वद्‌भिराप्तैः शृ० क०, पृ० 1
41. तिलकमंजरी, श्लोक 50
42. पण्डिता मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवंगते। भोजप्रबन्ध, श्लोक 327 तथा श्लोक 66 मी
43. लक्षं महाकवेर्देयं तदर्धं विबुधस्य च।
दैयं ग्रामैकमर्धस्य तस्याप्यर्धतदर्थिनः॥
बल्लाल, भोजप्रबन्ध, श्लोक 62
44. अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवंगते॥
वहीं, श्लोक 326
45. सः (भोजः) अभ्यस्तसमस्तराजशास्त्रःषट्त्रिंशदायुधान्यधीत्य द्वासप्ततिकला-कूपारपारंगमः समस्तलक्षणक्षितो ववृधे। प्र० चि०, पृ० 22, रासमाला, पृ० 85
46. निःशेषवाद्‌मयविदोपि....। तिलकमंजरी, श्लोक 50
47. यथा एतद्‌ वो जानाति न तथास्मादृशाः।....शृं०क०, पृ० 1
48. यद्‌वक्त्राम्बुजमाप्य गर्वमसमं वाग्देवतापि श्रिता।
—राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति, अन्तिम श्लोक,
49. सर्वाणि शास्त्राणि, निखिलाः कलाः सर्वाणि विज्ञानानि च जानामि।
सकृच्छ्रुतं गृह्णामि।—शृं०, क० पृ० 66
50. साक्षाद्वाचस्पतिरिव जवाद्‌दृब्धनानाप्रबन्धः।
—प्र० चि०, पृ० 52, श्लोक 127
51. द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का नौंवा उच्छ्‌वास।
52. प्रभाचन्द्राचार्य, प्रभावकचरित, 22/75-78
53. द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का नौंवा उच्छ्‌वास।
54. प्र० चि०, पृ० 50
55. किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते॥—ए० इ०, भाग 1, पृ० 233, श्लोक 18
56. द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का नौंवा उच्छ्‌वास।
57. प्रतिभा भोजराजस्य ग्रन्थ में ग्रन्थकार का "मल्लिनाथ में भोज-सन्दर्भ" शोधपत्र
58. डा० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, 1963 इ०, पृ० 695-721 तथा पृ० 606-7
59. थियोडोर आफ्रेक्ट, केटेलोगस केटेलागारम्, भाग 1,1962, पृ० 272
60. प्र० चि०, पृ० 50 तथा डा० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 5
61. नवसाहसांकचरित, 18/71
62. साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं तद्यन्न केनचित्।
किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते॥
—ए० इ०, भाग 1, पृ० 233, श्लोक 18

63. वीरभद्र, कन्दर्पचूडामणि,1/2
64. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास भाग 20, पृ० 7749
65. नयचन्द्रसूरी, रम्भामंजरी सट्टक, (विश्वेश्वरनाथ रेउ, राजाभोज, पृ० 312)
66. पारिजातमंजरी, (प० इ०), 1/1
67. हम्मीरमहाकाव्य, 9/18
68. प्र० चि०, पृ० 105 श्लोक 237
69. वही, पृ० 100 तथा राजशेखरसूरि, सुभाषितप्रबन्ध कोष, पृ० 59
70. मदनपाल तथा शाहजी के लिये द्रष्टव्य विक्रम विश्वविद्यालय के द्वारा आयोजित भोज-सेमिनार में डा० राघवन् का उद्घाटन भाषण
71. हम्पीलेख, ए० इ०, भाग 1 पृ 365 तथा 370
72. केशव भट्ट, नृसिंह चम्पू, 1/3, कृष्णाजी गणपत प्रेस, बम्बई, 1909
73. का. इ, इ, भाग 3, स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ लेख, श्लोक 19
74. संस्कृतच्छाया—

    उपमानं कथं लभ्यतां प्रेक्षध्वं कूर्मस्यासमचरितस्य ।

    – अविनकूर्मशतम्, गाथा 25

75. तत्र श्रीभोजराजोस्ति राजा निर्व्याजवैभवः ।

    अवैरं यन्मुखाम्भोजं भारती श्रीनिवासयोः ॥

    प्रभावकचरित, 17/7

76. निखिलमपि नगरं विलोक्य कमपि मूर्ख अमात्यौ नापश्यत ।

    —भोज प्रबन्ध, पृ० 18 तथा यही भाव प्र० चि०, पृ० 29 पर भी प्राप्य है ।

77. वासुदेवशरण अग्रवाल, वीणा (इन्दौर), नवम्बर, 1932, पृ० 2,
78. वही, मध्यप्रदेश सन्देश पृ० 5, 12 सितम्बर, 1964 तथा लेखक का शोधपत्र 'राजस्थानी साहित्य में भोज सन्दर्भ'—राजस्थान भारती (बीकानेर), दिसम्बर, 1971, पृ० 5–9 ।
79. काशीनाथ कृष्ण लेले तथा कैप्टन सी०इ०लुआर्ड, 'धार स्टेट गजेटियर,' 1908 में परमार्स आफ धार एण्ड मालवा, (पृ० 129–73) में प्रकाशित जो बाद में स्वतन्त्र रूप से भी प्रकाशित कर दिया गया है ।

    डी०सी० गांगुली, दि हिस्ट्री आफ परमार डायनेस्टी, ढाका 1933 ई०

80. अन्नामलाई यूनिवर्सिटी हिस्टोरिकल सीरिज, 1931 ई०
81. हिन्दुस्तानी अकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद 1932 ई०
82. पुनर्वसु, 7, श्रीकृष्ण स्ट्रीट, मद्रास, 14
83. श्री दीनानाथ बुक डिपो, इन्दौर, सं० 2014.
84. भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1958 ई०
85. चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1965 ई०

86. बिक्रम विश्वविद्यालय के द्वारा 1970 में आयोजित भोज सेमिनार का उद्घाटन भाषण

87 तत्र न तथा पदार्थाः प्रत्यक्षेण प्रतीयमानाः
स्वदन्ते, यथा वाग्मिनां वचोभिरावेद्यमानाः ।।
अतोभिनेतृभ्यः कवीनेव बहुमन्यामहे, अभिनयेभ्यश्च काव्यमेवेति ।

—शृं० प्र०, पृ० 2

88. कवीन्द्राचार्य का सूचीपत्र, ग्रन्थ क्रमांक 1963,

—गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरिज, 17 बड़ोदा, 1921 ई०

द्वितीय उछ्वास

भोज के साहित्यिक ग्रन्थों का वर्गीकरण एवं सामान्य विवरण

भारतीय नरेश कवियों की सुदीर्घ परम्परा में भोज सर्वाधिक लोकविश्रुत रहे। वे न केवल कविबन्धु अपितु स्वयं भी कविराज थे। भोजविरचित कई साहित्यिक कृतियां उनकी काव्य-रसिकता से सम्बद्ध प्रचलित किंवदन्तियों एवं उपाधियों की मूर्त प्रमाण हैं। पुरातन विविध सुभाषित ग्रन्थों में भोज के श्लोक प्राप्त होते हैं तथा अनेक साहित्यिक ग्रन्थों के भी यत्र-तत्र उल्लेख उपलब्ध होते हैं। परन्तु भोज की साहित्यिक रचनाओं में महाकाव्य, खण्डकाव्य अथवा रूपक का कहीं कोई सन्दर्भ प्राप्त नहीं होता।

कवीन्द्राचार्य के सूचीपत्र[1] में "सरस्वतीकण्ठाभरण" नाटक का उल्लेख प्राप्त होता है। इसी नाम के भोज विरचित अलंकारशास्त्र तथा व्याकरण सम्बद्ध ग्रन्थ सुप्रसिद्ध हैं। परन्तु अब तक निर्मित हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचीपत्रों से सरस्वतीकण्ठाभरण नाटक का स्थितिज्ञान पुष्ट नहीं हो पाया है। हनुमन्नाटक की मोहनदास विरचित दीपिका टीका के संस्करण में ग्रन्थ के अन्त में इस नाटक के उद्धारक के रूप में भोज का स्मरण किया गया है[2] जिसकी पुष्टि बल्लालकृत भोजप्रबन्ध,[3] प्रभाचन्द्राचार्य विरचित प्रभावकचरित,[4] मेरुतुंगकृत प्रबन्धचिन्तामणि[5] तथा कविचन्दकृत पृथ्वी-राजरासो[6] से भी होती है। परन्तु हनुमन्नाटक मूलतः भोज की कृति न होने से इस प्रबन्ध में उसका अध्ययन अभीष्ट नहीं है।

गोविन्दविलासकाव्य

भोजकृत "गोविन्दविलास" काव्य राजस्थान-प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में हस्त-लिखित ग्रन्थ क्रमांक 12259 पर उपलब्ध होता है। इसमें नौ सर्ग तथा 591 श्लोक हैं[7]। इसके रचयिता भोज हैं, इसकी पुष्टि प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक से होती है। केवल द्वितीय सर्ग में ही अन्तिम श्लोक अन्य सर्गों के एक समान श्लोकों से भिन्न है—

> वाग्देवतानुग्रहकल्पशाखि प्रसूतसूहस्तवकैः प्रक्लृप्तम्।
> मान्दोदरेयेन बुधाः स्वकण्ठं नयन्तु गोविन्दविलासदामा ॥

अन्य सर्गों के अन्तिम श्लोकों में श्लोक के पूर्वार्ध को यथावत् दुहराया गया है। केवल श्लोक के उत्तरार्द्ध में ही सर्गसंख्या के भेद तथा रचयिता के विशेषणों में परिवर्तन पाया जाता है। उदाहरणार्थ षष्ठ सर्ग का अन्तिम श्लोक इस प्रकार है—

> श्रीमल्लः सविदग्धवर्धकिशिरोलंकाररत्नांकुरो
> मन्दोदर्यपि यं कवीन्द्रतिलकं प्रासूत भोजं सुतं
> तस्य श्रीचरिताप्रसादविकसद्वास्वात्रकाद्ये तते
> श्री गोविन्दविलासनाम्नि विरति सर्गोयमाद्योगमत् ॥

श्लोक के अशुद्ध होने पर भी इतना तो स्पष्ट है कि इस काव्य के रचयिता भोज के पिता का नाम श्रीमल्ल तथा माता का नाम मन्दोदरी था। धाराधीश राजा भोज के पिता का नाम सिन्धुराज था। स्पष्ट है धाराधीश भोज से गोविन्दविलास काव्य का रचयिता भोज भिन्न है। इस भिन्नता के अन्य भी गौण कारण हैं—

(क) उपर्युक्त श्लोक पर नैषधचरितकार श्री हर्ष का स्पष्ट प्रभाव है। श्री हर्ष ने भी अपने काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में[8] अपने माता-पिता तथा काव्य के अभिधान एवं सर्ग-संख्या का संकेत किया है। यह असम्भव है कि श्री हर्ष इस अप्रसिद्ध तथा अलोकप्रिय काव्य से प्रभावित रहा हो। अतः इस काव्य का कर्त्ता भोज श्रीहर्ष (1170-1191 ई० तक शासन करने वाले कन्नोज के राजा जयचन्द्र का आश्रित अतः समकालीन) से परवर्ती था। श्रीहर्ष राजा भोज के मृत्युकाल से लगभग डेढ़ सौ वर्ष परवर्ती था।

(ख) राजा भोज के प्रायः ग्रन्थों के प्रारम्भ अथवा अन्त के श्लोकों में एवं पुष्पिकाओं में उसकी राजत्वसूचक विशेषताओं अथवा उपाधियों का प्रायः उल्लेख रहता है जिसका इस ग्रन्थ में अभाव है। यहाँ उसे केवल "कवीन्द्रतिलक" के रूप में अभिव्यक्त किया गया है, नरेश के रूप में नहीं। इस काव्य की उपलब्ध प्रति की पुष्पिका[9] से ज्ञात होता है कि भोज विरचित इस काव्य की प्रस्तुत प्रति संवत् 1602 (1545 ई०) में दामोदर ने लिखी। एक अन्य प्रति संवत 1514 (1457 ई०) में लिखी गयी जो बीकानेर के अनूप ग्रन्थालय में है।[10] इससे स्पष्ट है कि यह कृति सोलहवीं सदी अथवा इससे पूर्ववर्ती काल की है।

प्रस्तुत महाकाव्य में मनोरम भाषा तथा रमणीय कल्पना का सुन्दर समन्वय हुआ है। उदाहरणार्थ ग्रन्थ के प्रारम्भ के स्तुत्यात्मक दो श्लोक प्रस्तुत हैं—

स्मितामिषोऽभिषदं श्रुतरंगित—व्रजवधूजनरागपयोनिधिः ।
शमनभीतितमः समनोहरं मुदमुद्रंचयतान्मुखचन्द्रमाः ॥ ?
नवमिवोन्नतमम्बुदमण्डलं वलयितं तरुणारुणरश्मिभिः ।
सुरतलग्नरमाकुचकुंकुमं शितिशिवाय ममास्तु हरेरुरः ॥

"गोविन्दविलास" काव्य राजा भोज की कृति न होने से प्रस्तुत प्रबन्ध में उसका अध्ययन अभीष्ट नहीं है।

अर्जित कविकीर्ति के अनुरूप राजा भोज के विविध विषयक ग्रन्थों की संख्या विपुल है। भाषा तथा भाव की दृष्टि से उनका कोई भी ग्रन्थ, चाहे वह किसी भी विषय से सम्बद्ध रहा हो, काव्यगरिमा तथा सरसता से रीता नहीं है। परन्तु ऐसे ग्रन्थ जो केवल काव्य ही हों, जिनके उद्देश्य की इतिश्री केवल काव्य रचना में ही होती हो, संख्या में अधिक नही है। इनमें से कुछ प्रकाशित हैं तथा कुछ केवल नामतः ज्ञात हैं। भोज की इन सभी रचनाओं का विधानुरूप इस प्रकार विभाजन किया जा सकता है—

(क) चम्पू साहित्य— (1) रामायण चम्पू अथवा भोज चम्पू (सुन्दरकाण्डपर्यन्त)

(ख) उपदेशात्मक साहित्य— (2) चाणक्यमाणिक्यम् (चाणक्य राजनीतिशास्त्र के नाम से प्रकाशित)

(3) चारुचर्या

(ग) कथा साहित्य— (4) श्रृंगारमंजरी कथा

(5) शालिकथा (नामतः ज्ञात)

(घ) स्त्रोत साहित्य— (6) महाकाली विजय (नामतः ज्ञात)

(ङ.) प्रकीर्ण साहित्य— (7) अवनिकूर्मशतम् (प्रशस्ति काव्य)

(8) सुभाषित-प्रवन्ध

(9) विद्या विनोद (नामतः ज्ञात)

प्रस्तुत उच्छ्वास में इन ग्रन्थों का परिचयात्मक सामान्य विवरण प्रस्तुत किया जायेगा। उपलब्ध ग्रन्थों का विस्तृत समालोचनात्मक तथा समीक्षात्मक विवरण आगामी उच्छ्वासों में प्रस्तुत किया जायेगा।

चम्पू साहित्य

चम्पू रामायण अथवा भोजचम्पू :–

रामायण चम्पू अथवा चम्पूरामायण के नाम से विख्यात भोजविरचित यह चम्पू काव्य भोजचम्पू के नाम से भी पहचाना जाता है। राजचूडामणि दीक्षित के काव्यदर्पण[11] तथा चम्पूरामायण की कामेश्वरसूरि विचरित विद्वत्कौतूहल टीका[12] मे इसकी पुष्टि होती है। भोज की राजमार्तण्ड-योगसूत्रवृत्ति, सरस्वती कण्ठाभरण, चम्पूरामायण आदि कुछ ऐसे लोकप्रिय ग्रन्थ हैं जिनकी अगणित प्रतियां विभिन्न लिपि तथा प्रान्तों में सुलभ हैं। काश्मीर से मद्रास तक भारतीय विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहालयों में चम्पू रामायण की तीन सौ से अधिक हस्तलिखित प्रतियाँ पूर्ण अथवा खण्डितावस्था में प्राप्त होती है। वम्बई[13], कलकत्ता[14], मद्रास[15], पूना[16], वाराणसी[17] आदि विभिन्न स्थानों से इसका प्रकाशन हो चुका है। भोज की यह कृति सुन्दरकाण्ड पर्यन्त ही है जिसे परवर्ती काल के विभिन्न विद्वानों ने युद्धकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड की रचना कर पूर्ण किया।[18] भोज के अतिरिक्त रामानुजदेशिक ने भी रामायण चम्पू की रचना की, जो अप्रकाशित है।[19] शिवरामसूरि विरचित चम्पू रामायण भी अप्रकाशित है।[20]। सम्भवतः यह शिवरामसूरि भोजकृत चम्पू रामायण व्याख्या के रचयिता से अभिन्न है। सुन्दरवली विरचित रामायण मद्रास से प्रकाशित है।[21] अभिनव रामायणचम्पू भण्डारकर सूची 1 (1893) में क्रमांक 39 पर उल्लिखित है इस प्रकाशित ग्रन्थ के रचयिता लक्ष्मण दांते हैं।[22] कृष्णमाचारी ने शाम्वशास्त्री के अप्रकाशित अभिनव चम्पू रामायण का उल्लेख किया है।[23] वेंकट कृष्ण यज्वा ने भी एक चम्पू रामायण की रचना की थी।[24] ये ही सम्भवतः रामायण की सर्वार्थसार टीका के रचयिता तथा पितृमेधसार नामक धर्मग्रन्थ के प्रणेता है। इनके गुरु आदिवन शठगोप (1460-1520 ई०) थे।

भोज की साहित्यिक कृतियों में केवल चम्पूरामायण ही ऐसा ग्रन्थ है जिस पर अनेक टीकाएं रची गयीं। किसी ग्रन्थ की लोकप्रियता उस पर रचित टीकाओं की संख्या से भी ज्ञात होती है। स्पष्ट है भोज की अन्य कृतियों की अपेक्षा रामायणचम्पू अधिक लोकप्रिय रही अथवा विद्वानों में समादृत हुई। चम्पूरामायण की अव तक सात टीकाएं ज्ञात तथा उपलब्ध हुई हैं।

वाल्मीकिरामायण के कथानक के आधार पर परवर्ती काल में अनेक रूपक तथा महा-काव्य रचे गये। इन सारी कृतियों में वाल्मीकिरामायण के कथानक में यत्र-तत्र यथारुचि

परिवर्तन कर रामायण को नूतन कलेवर में प्रस्तुत किया गया। पुरातन कथानक का आधार ग्रहण करने पर भी अपनी कृति में मौलिकता लाने के लिए ये परिवर्तन उन्हें आवश्यक लगे होंगे। वाल्मीकि के पुरुषोत्तम राम परवर्ती काल की साहित्यिक कृतियों में पुराणपुरुष विष्णु के अवतार बन गये। भोज ने चम्पू रामायण में राम को विष्णु का अवतार स्वीकार करते हुए वाल्मीकि-कृत कथानक को संक्षेप में यथावत् उपस्थित कर दिया। पुरातन कथानक को संक्षेप में यथावत् पुनः उपस्थित करने पर भी चम्पूशैली में अभिव्यक्ति की अभिरामता ने उसे सर्वथा अभिनवता प्रदान कर दी। प्रतीत होता है यह युग प्रायः प्राचीन ग्रन्थों को संक्षेप में उपस्थित करने की कला में कौशल दिखाने में व्यापृत रहा। भरत के नाट्यशास्त्र को धनंजय ने मुंज के शासनकाल में दशरूपक की रचना कर संक्षेप में प्रस्तुत कर दिया। स्वयं भोज ने पाणिनि की अष्टाध्यायी को सरस्वतीकण्ठाभरण के रूप में प्रस्तुत किया। इसी समय क्षेमेन्द्र ने रामायणमंजरी, भारतमंजरी तथा वृहत्कथामंजरी की रचना कर क्रमशः रामायण, महाभारत तथा वृहत् कथा को संक्षेप में प्रस्तुत किया।

रामायण का कथानक सुप्रसिद्ध है। रामायण चम्पू के बालकाण्ड में प्रारम्भिक देवस्तुति के साथ ही तमसा सरिता की ओर जाते वाल्मीकि क्रौंचवध के हृदयविदरक दृश्य से अनुकम्पित होकर "मा निषाद. आदि श्लोक का उच्चारण करते हैं। ब्रह्मा का आदेश पाकर वे रामायण की रचना करते हैं। लव कुश इसका गान करते हैं। अयोध्या के राजा दशरथ अनपत्य होने से पुत्रार्थ अश्वमेध करते हैं। राम आदि चार पुत्रों की प्राप्ति से लगाकर सीतादि से विवाह कर उनके साथ अयोध्या में सुखपूर्वक समय व्यतीत करने के साथ बालकाण्ड की समाप्ति होती है।

भरत तथा शत्रुघ्न के मातुल के घर जाने के साथ प्रारम्भ होकर भरत को अपनी पादुका-सहित अयोध्या की ओर रवाना कर राम के दण्डकारण्य पहुंचने के साथ अयोध्या काण्ड समाप्त होता है।

उसी वन में विचरण करते रामादि को विराध नामक निशाचर से युद्ध के साथ प्रारम्भ होकर राम लक्ष्मण के पम्पा-सरोवर पहुंचने के साथ ही अरण्यकाण्ड की समाप्ति होती है।

सीताविरही राम की सुग्रीव से भेंट के साथ प्रारम्भ होने वाला किष्किन्धाकाण्ड सीता की खोज में हनुमान की समुद्र लाँघने की तैयारी के साथ समाप्त होता हैं एवं हनुमान के समुद्र पार करने के वर्णन के साथ सुन्दरकाण्ड का प्रारम्भ होता है तथा सीता द्वारा प्रेषित अभिज्ञान का हनुमान के द्वारा राम को समर्पित होने के साथ ही समाप्त होता है।

भोजकृत ग्रन्थ यहीं समाप्त हो जाता है।

उपदेशात्मक साहित्य

(1) चाणक्य-माणिक्यम् अथवा चाणक्य-राजनीतिशास्त्रम्

पण्डित ईश्वरचन्द्र शास्त्री के सम्पादन में इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण कलकत्ता ओरियण्टल सीरिज क्रमांक 2 में 1919 ई० में प्रकाशित हुआ तथा 1926 ई० में द्वितीय। आठ अध्यायों में विभाजित इस ग्रन्थ में कुल 658 श्लोक हैं।

इस ग्रन्थ के चौथे तथा पांचवें अध्याय, जो वस्तुतः राजनीति से सम्बद्ध हैं, का 1950 ई० में इटेलियन भाषा में अनुवाद प्रकाशित हुआ।[25] इसी ग्रन्थ के कतिपय विकीर्ण श्लोकों का जर्मन भाषा में भी अनुवाद हुआ जिनका स्रोत सम्भवतः गरुड़पुराण रहा।[26]

1958 ई० में सुनीतिकुमार पाठक के सम्पादत्व में 253 श्लोकमय चाणक्य-राजनीति शास्त्र का भूमिका सहित शान्तिनिकेतन मे प्रकाशन हुआ।[27] तंजुर से उपलब्ध तिब्बती प्रतिका, ईश्वरचन्द्र के चाणक्य-राजनीतिशास्त्र के संस्करण तथा गरुड़पुराण (अध्याय 108 से 115) की वृहस्पतिसंहिता के आधार पर इसमें संस्कृत रूपान्तर किया गया। वृहस्पतिसंहिता के 390 श्लोकों में से इस ग्रन्थ के 190 श्लोक अभिन्न हैं। श्री पाठक के अनुसार मूलतः चाणक्य-राजनीतिशास्त्र बौद्ध ग्रन्थ नहीं, ब्राह्मण ग्रन्थ था परन्तु तिब्बती में अनुवाद करते समय बौद्धग्रन्थानुरूप कतिपय आवश्यक परिवर्तन कर इसे बौद्धिक ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध कर दिया गया।

चाणक्यनीति-शाखा-सम्प्रदाय के परिश्रमी अध्येता लुडविक स्टेर्नबेक ने इस ग्रन्थ की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों का तुलनात्मक अध्ययन तथा गरुड़पुराण की वृहस्पतिसंहिता से इस ग्रन्थ का सम्बन्ध आदि से सम्बद्ध न केवल विविध शोधपत्र प्रकाशित करवाये अपितु ज्ञात विभिन्न प्रतियों के आधार पर एक सुन्दर संस्करण भी तैयार कर विस्तृत भूमिका सहित विश्वेश्वरानन्द भारत भारती ग्रन्थमाला क्रमांक 28 मे प्रकाशित करवाया। इस ग्रन्थ की विस्तृत भूमिका में सम्पादक के द्वारा पूर्वप्रकाशित सम्बद्ध शोधपत्रों के सार का भी समन्वय कर दिया गया है। भाण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, क्रमांक 74 (आफ 1883-84) में उपलब्ध "चाणक्यनीति" की हस्तलिखित प्रति का इस संस्करण में उपयोग नहीं किया गया है। अतः श्री लुडविक स्टेर्नबेक के संस्करण से इस प्रति का पाठभेद इस प्रबन्ध के अन्त में, परिशिष्ट में दिया जा रहा है।

ए० वेंकटसुब्बैयाह ने एक शोधपत्र के द्वारा चाणक्यराजनीतिशास्त्र के 18 श्लोक पंचतन्त्र में प्राप्त होने की स्थिति पर प्रकाश डाला है।[28]

चाणक्यनीति के प्रसिद्ध संस्करणों के समान ही इस ग्रन्थ का प्रारम्भ होता है। विषय-वस्तु भी लगभग वही है। चाणक्य-नीति में सत्रह अध्याय हैं तथा इसमें आठ। राजनीति से सम्बद्ध विवरण, राजा तथा उसके सेवकों के लक्षण चाणक्य-राजनीतिशास्त्र के चौथे तथा पांचवें अध्याय में वर्णित हैं। अन्य अध्यायों में मित्र, अरि, स्त्री, वैश्या आदि से सम्बद्ध तथा धर्म-अर्थ-काम पुरुषार्थों से सम्बद्ध विविध नीतिउपदेशों का क्रमरहित आकलन किया गया है। पुराण, नीतिग्रन्थ, स्मृति, काव्य आदि प्राचीन अनेक ग्रन्थों से श्लोकों का प्रायः मूलरूप में अथवा यत्किंचित् परिवर्तन के साथ आकलन किया गया है।

चारुचर्या

चारुचर्या का प्रथम प्रकाशन तेलगु लिपि में मद्रास से 1949 ई० में हुआ।[29] इसमें कुल 136 श्लोक हैं। साथ ही इसमें 76 श्लोकों का अप्पन मन्त्री कृत तेलुगु पद्यानुवाद भी है। 1922 ई० में श्री वेटुरी प्रभाकर शास्त्री ने अप्पमा मन्त्री कृत चारुचर्या के उपर्युक्त तेलुगु अनुवाद को प्रकाशित करवाया था।[30] वेटुरी वेंकट शास्त्री के अनुसार यह तेलुगुकरण तेरहवीं सदी में हुआ था। श्री वेटुरी वेंकट शास्त्री ने भी 1956 ई० में तेलुगु अनुवाद सहित उसी लिपि में चारुचर्या प्रकाशित करवायी।[31] इसकी भूमिका में सम्पादक ने यह भी व्यक्त किया है कि चारुचर्या आन्ध्र में तेरहवीं सदी से लोकप्रिय अथवा प्रचलित रही है। शासकीय प्राच्य हस्तलिखित ग्रन्थ पुस्तकालय, मद्रास की एक प्रति[32] के आधार पर इस ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है।

भोजविरचित चारुचर्या की विविध हस्तलिखित प्रतियां भारत के विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रहालयों में प्राप्त होती हैं। इस ग्रन्थ की प्रतियां प्रायः एकरूप नहीं हैं। चारुचर्या की ज्ञात विभिन्न प्रतियों का विवरण इस प्रकार है—

(1) शासकीय प्राच्य हस्तलिखित ग्रन्थ पुस्तकालय, मद्रास में क्रमांक डी०, 13267 प्रति में 375 श्लोक हैं।

(2) वहीं, क्रमांक डी० 13268 में 404 श्लोक तथा तेलुगु लिपि।

(3) वहीं, क्रमांक डी० 13269, 136 श्लोक तथा तेलुगु लिपि।

(4) संस्कृत तथा प्राकृत हस्तलिखित ग्रन्थों के इण्डिया आफिस केटलाग में क्रमांक 5614 पर उल्लिखित। प्रति अशुद्ध है। लेखन समय 1877 ई० है।

(5) बर्नेल के तंजोर केटलाग में पृष्ठ 136 पर उद्धृत प्रति जिसकी प्रतिलिपि उपर्युक्त इण्डिया आफिस पुस्तकालय में है।

(6) उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में हस्तलिखित ग्रंथ क्रमांक 104 पर सत्रहवीं सदी की प्रति है जिसकी अवस्था जीर्ण है।

(7) वहीं, क्रमांक 503 पर अठारहवीं सदी की जीर्ण प्रति।

(8) बम्बई विश्वविद्यालय में हस्तलिखित ग्रंथ क्रमांक 193 पर प्राप्त प्रति शकसंवत 1725 की कार्तिक कृष्णा 13 को लिखी गयी जिसमें 330 श्लोक हैं।

(9) सरस्वती भवन पुस्तकालय, वाराणसी में हस्तलिखित ग्रंथ क्रमांक 45087 पर 1847 संवत की प्रति है। इसमें 218 श्लोक हैं।

(10) सिन्धिया प्राच्यविद्या शोधप्रतिष्ठान, उज्जैन में हस्तलिखित ग्रंथ क्रमांक 7495 पर संवत् 1843 में लिखित प्रति है जिसमें 217 श्लोक हैं।

(11) पद्मभूषण डा० सूर्यनारायण व्यास, उज्जैन के पास उपलब्ध व्यक्तिगत प्रति में भी 217 श्लोक हैं। प्रथम पत्र प्राप्त न होने से इसमें प्रारम्भिक दस श्लोक नहीं है।

(12) ओरियण्टल रिसर्च इण्स्टीट्यूट, मैसूर में क्रमांक एस० ए० 71 पर उपलब्ध प्रति वृहत्काय है। यह 854 खण्डों में विभाजित है।

यह ग्रंथ नीति, वैद्यक एवं धर्मशास्त्र का समवेत रूप है। हस्तलिखित ग्रंथों के प्रायः सभी सूचीपत्रों में इस ग्रंथ को वैद्यक विषयक स्वीकार किया गया है।

दैनिक जीवन को सुचारु रूप से व्यतीत करने के लिए ऐसे उपयोगी साधन जो धर्म, स्वास्थ्य एवं नीति के अनुरूप हों, का विवरण इस ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है।

शौच, दन्तधावन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, पुष्प, लेपन, भोजन, भोजनपात्र, ताम्बूल, स्त्रीसेवन एवं नीतिवाक्यों में सम्पूर्ण ग्रंथ विभाजित है। मैसूर की प्रति में जल, दुग्ध, दधि, घृत आदि के साथ ही उपर्युक्त विषयों पर भी विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अतः यह प्रति अन्य प्रतियों की अपेक्षा विशालकाय हो गयी है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में धर्मशास्त्र एवं वैद्यक का अध्ययन न कर केवल नीतिगत श्लोकों का, जिनमें साहित्यिक वैशिष्ट्य उपलब्ध होता है, अध्ययन किया जायेगा।

शृंगारमंजरी कथा—

जैसलमेर के जैन-शास्त्र-भण्डार में क्रमांक क 325 (2) पर प्राप्त एकमात्र ताड़पत्रीय

खण्डित एवं अपूर्ण हस्तलिखित प्रति के आधार पर कु० कल्पलता मुन्शी ने शृंगारमंजरीकथा को सम्पादित कर उसका समालोचनात्मक संस्करण प्रकाशित करवाया।[33] इस ग्रन्थ" की उपलब्ध हस्तलिखित प्रति का आकार ११.७"×२" है। प्रत्येक पृष्ठ पर छः पंक्तियां एवं प्रत्येक पंक्ति में ५२ से ५५ तक अक्षर हैं। इसके १५८ पत्रों में से १६ पत्र अनुपलब्ध तथा 26 पत्र खण्डित रूप में विभिन्नाकार के प्राप्त हुए हैं जिससे कई मनोरम विवरण तथा कथांश अपूर्ण रह गये हैं। इन पत्रों पर लिखित सुन्दर देवनागरी लिपि ग्यारहवीं-बारहवीं सदी की है। इस प्रति में अनेक लेखकीय त्रुटियां भी हैं।[34]

शृंगारमंजरीकथा ललित गद्य में रचा गया संस्कृत कथा-ग्रन्थ है। कथा के प्रारम्भ में उन परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है जिनमें भोज को यह ग्रन्थ रचने के लिए तत्पर होना पड़ा।

एक बार वसन्त के अवसान तथा ग्रीष्म के प्रारम्भ में, धारागृह में विराजित राजा भोज से उनके मित्रों ने अभिनव कथा सुनाने का आग्रह किया। कुछ आनाकानी के बाद भोज ने कथा प्रारम्भ की।

धारा नाम की मनोरम नगरी के शासक भोजदेव के राजकुल में विशेष प्रतिष्ठा-प्राप्त वारवनिता शृंगारमंजरी निखिल कलाओं में निपुण रही। उसकी माता विषमशीला अपनी पुत्री को लोक-व्यवहार तथा अपने कर्म में पारंगत होने की शिक्षा देती हुई बतलाती है कि पुरुष कई प्रकार के होते हैं। उनकी मनोवृत्तियां एकसी नहीं होती हैं। वेश्या को चाहिये कि प्रत्येक आगत मानव की मनोवृत्ति को ताड़कर तदनुरूप व्यवहार करे। इस कर्म में राग की प्रधानता होती है। वे बारह प्रकार के होते हैं—नीली, रीति, अक्षीव, मंजिष्ठा, कषाय, सकल, कुसुम्भ, लाक्षा, कर्दम, हरिद्रा, रोचन तथा काम्पिल्य। इन्हीं बारह रागों के उदाहरण के रूप में वह शृंगारमंजरी को तेरह कथानिका सुनाती है। वे कहानियां क्रमशः ये है—रविदत्तककथानिका, विक्रमसिंह कथानिका, माधवकथानिका, सूरधर्मकथानिका, देवदत्ताकथानिका, लावण्यसुन्दरीकथानिका, कुट्टनीवंचनकथानिका, स्त्र्यनुरागकथानिका, उभयानुरागकथानिका, सर्पकथानिका, मलयसुन्दरीकथानिका परमारककथानिका तथा मूलदेवकथानिका। अन्त में विषमशीला पुनः शृंगारमंजरी को वेशकर्म में पुरुषों से सावधान रहने की शिक्षा देती है। मालिनी एवं शिखरिणी श्लोकों के पश्चात् चार प्राकृत गाथाओं के उपरान्त अन्तिम परिचयात्मक अनुष्टुप् के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है। इन सारी कथानिकाओं की सीमा पहले से रागों में निर्धारित करने से यह ग्रन्थ सोद्देश्य विरचित है। इन अनेक प्रारम्भिक वर्णनों तथा विविध कथानिकाओं के आकलनात्मक ग्रन्थ को ग्रन्थकार ने 'कथा' कहा है इस ग्रन्थ का विशिष्ट विवरण तथा समालोचना इसी प्रबन्ध के पांचवें परिच्छेद में की जायगी।

शालिकथा

शालिकथा काव्यग्रन्थ का उल्लेख रायबहादुर हीरालाल ने किया है।[35] तथा ग्रन्थ-स्वामी के रूप में जबलपुर जिले के बेलखेड़ा ग्राम के श्री ठाकुरदास बानि का नामनिर्देश किया है। पत्र से कोई उत्तर उपलब्ध न होने पर बेलखेड़ा जाने से ज्ञात हुआ कि ठाकुरदासजी बानि के पुत्र वर्षों पूर्व बेलखेड़ा से जबलपुर चले गये जहां उनके पौत्र वस्त्रव्यवसाय करते हैं। ठाकुरदासजी के पौत्र तथा प्रपौत्र से शालिकथा विषयक तो कुछ भी संकेत प्राप्त नहीं हुआ परन्तु यह अवश्य ज्ञात हुआ कि उनकी बहिन ब्रह्मचारिणी गिरिजाबाई, जैन साध्वी, जो अब उदासीन आश्रम, ईसरीबाजार, हजारीबाग (बिहार) में रहती है, को सतत अध्ययन में निरत रहने से इस विषय में कुछ ज्ञान हो। ब्रह्मचारिणीजी ने 25 अक्टूबर 1968 के पत्र में लिखा—"मैं बेलखेड़ा (जबलपुर) के शास्त्रभण्डार के विषय में कुछ भी नहीं बता सकती हूं। क्योंकि मै 2 वर्ष की अवस्था से ही अपने माता-पिता

के साथ जबलपुर शहर में आ गई थी। शास्त्रभण्डार का क्या हुआ—यह हमारे कुटुम्ब वाले अब कुछ नहीं बता सकते क्योंकि हमारे वयोवृद्ध पुरुष सब दिवंगत हो चुके हैं। लड़के मौजूद हैं जिन्होंने कि बेलखेड़ा देखा भी नहीं है।" स्पष्ट है कि ठाकुरदासजी के परिवार को इस ग्रन्थ के विषय में कुछ ज्ञान नहीं है। यह ग्रन्थ कहीं लुप्त अथवा नष्ट हो गया है।

शालिकथा की किसी अन्य प्रति की अन्यत्र स्थिति अभी अज्ञात है। भोज के समकालीन अथवा परवर्ती स्रोतों में भी इसका उल्लेख अनुपलब्ध होने से इसका स्वरूप तथा विषयवस्तु सर्वथा अज्ञात है।

डा० राघवन्[36] के अनुसार सूचीकार श्री हीरालाल की शालिकथा विषयक सूचना सही प्रतीत नहीं होती। ग्रन्थ तथा तद्विषयक ज्ञानाभाव में शालिकथा का प्रस्तुत प्रबन्ध में अध्ययन प्रस्तुत करना असम्भव है।

स्तोत्रसाहित्य

(1) वाग्देवी स्तोत्र

१९८२ ई. में उज्जैन में सम्पन्न भोज सेमिनार के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका में यह स्तोत्र प्रकाशित है। इसकी एकमात्र प्रति महाराजा सवाई मानसिंह द्वितीय संग्रहालय, जयपुर में विद्यमान है।

(2) महाकालीविजय

महाकालीविजय काव्य का उल्लेख विश्वेश्वरनाथ रेउ, श्रीनिवास अय्यंगर, काशिनाथ कृष्ण लेले व लुआर्ड, क० मा० मुन्शी, एकनाथ दत्तात्रेय कुलकर्णी आदि विद्वानों ने किया है।[37] परन्तु किसी महानुभाव ने इस ग्रन्थ की स्थिति के मूल सन्दर्भ की ओर संकेत नहीं किया है। अब तक निर्मित हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचियों में भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं हो पाया है।

कोदण्ड (काव्य ?) की 46 वीं पंक्ति में कालिका का उल्लेख उपलब्ध होता है—'हं भिन्नायं सच्चेएं कालिआ तुहं मुमय—---।' तथा खड्गशतम की 19 वीं पंक्ति में भी——'कालिआ इमा मिलिआ[38]।" उल्लेख उपलब्ध होने से प्रतीत होता है कि सम्भवतः भोज की कुलदेवी कालिका रही। प्रबन्धचिन्तामणि में उल्लेख उपलब्ध होता है कि भोज नित्य "गोत्रदेवी" के दर्शनार्थ जाता था।[39] असम्भव नहीं, यदि भोज ने अपनी गोत्रदेवी अथवा कुलदेवता "कालिका" की स्तुति अथवा प्रशंसा में महाकालीविजय स्तोत्र या काव्य की रचना की हो। शृंगारप्रकाश में काली की स्तुति में विरचित एक शिखरिणी प्राप्त होती है परन्तु उसका रचयिता अज्ञात है।[40]

प्रकीर्ण-साहित्य

अवनिकूर्मशतम्

धार में भोजशाला की दक्षिणी मेहराब से स्वर्गीय पं० काशीनाथ कृष्ण लेले को 1902 ई० में एक शिलालेख उपलब्ध हुआ जिसे तत्कालीन भारतीय वायसराय तथा गवर्नर-जनरल लार्ड कर्जन की अनुमति से बाहर निकाला गया। इस शिलालेख में दो अवनिकूर्मशतम् उत्कीर्ण हैं। प्रत्येक शतक में 109 गाथा हैं। इस शिलालेख में 83 पंक्तियां हैं। सर्वप्रथम प्रो० इ० हल्ट्श् ने इसका विवरण प्रकाशित करवाया।[41] तदनन्तर प्रो०आर० पिशेल ने इन्हें सम्पादित कर सुव्यवस्थित व्याकरणगत टिप्पणियों सहित प्रकाशित करवाया।[42] 1944 ई० में पुनः परमारों से सम्बद्ध अन्य लेखों के साथ इनका भी प्रकाशन 'परमार इन्स्क्रिप्शन्स्' में हुआ।[43]

प्रस्तुत कूर्मशतम् महाराष्ट्री प्राकृत में विरचित है। प्रथमशतम् में कूर्म को भुवनभार वहन करनेवाले किरि, शेष, कूर्म, दिग्गज आदि में भी सक्षम तथा श्रेष्ठ बताते हुए उसकी माता को निखिल मातृजाति में अप्रतिम घोषित किया है जिसकी कोख से ऐसे लोकोपकारी अद्वितीय पुत्र ने जन्म लिया। द्वितीय कूर्मशतम् में भोज को कूर्म से भी श्रेष्ठ व्यक्त किया गया जिसने कूर्म के भुवनभार वहन करने के कर्तव्य को बड़ी सरलता से अपने ऊपर ले लिया।

सुभाषितप्रबन्ध—

भाण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, पूना में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 248 (आफ विस १) पर भोजप्रबन्ध के नाम से उपलब्ध ग्रन्थ का प्रारम्भ 'भोजकृत ग्रन्थः प्रारम्भ' लेख से होता है तथा 255 श्लोकों के पश्चात् अन्त 'इति भोजराजकृतः सुभाषितप्रबन्धः 'पुष्पिका से। इसी से ज्ञात होता है कि भोजकृत इस ग्रन्थ का नाम सुभाषितप्रबन्ध है। पत्र क्रमांक 2 अ से 39 ब तक इस ग्रन्थ का विस्तार है। पत्र-क्रमांक 39 ब से ही 'अथ भोजप्रबन्धः' लेख के साथ 37 श्लोकात्मक उस ग्रन्थ का प्रारम्भ हो जाता है जिसकी समाप्ति पत्र-क्रमांक 44 अ पर 'इति भोजप्रबन्धीयः सारश्लोकसंग्रहः सम्पूर्णः 'पुष्पिका से होती है। तत्पश्चात् इसी पत्र पर सम्पूर्ण' प्रति की पुष्पिका इस प्रकार उपलब्ध होती है—

'ईव नाम संवत्सरस्य कार्तिक शुद्ध 7 समाप्तं। इति भोजकृत सुभाषितं समाप्तम्।' अन्त में संलग्न 37 श्लोकात्मक 'भोजप्रबन्ध के आधार पर ही सम्भवतः इस सम्पूर्ण प्रति का अभिधान भोजप्रबन्ध प्राप्त होता है। इस प्रति में कुल 45 पत्र हैं जिनमें से प्रथम तथा अन्तिम अलिखित है। प्रत्येक पृष्ठ पर 7 पंक्तियां, तथा प्रत्येक पंक्ति में 24 मे 28 तक अक्षर है। ग्रन्थ का आकार $8\frac{1''}{5}$ X $3\frac{9''}{10}$ है। प्रतिलिपि का समय ग्रन्थ में नहीं दिया गया है।

अन्त में उपलब्ध भोजप्रबन्ध के कई श्लोक वल्लालकृत भोजप्रबन्ध में प्राप्त होते हैं तथा कई भिन्न भी हैं। इस भोजप्रबन्ध के संग्रहकर्ता का अभिधान अज्ञात है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में भोजकृत सुभाषितप्रबन्ध के विषय में विमर्श करना ही अभीष्ट है। 255 श्लोकात्मक इस ग्रन्थ में एक श्लोक दो स्थानों (क्रमांक 102 तथा 251) पर उपलब्ध होने से प्रस्तुत सुभाषित प्रबन्ध के श्लोकों की कुल संख्या 254 होगी।

ग्रन्थ के अन्त में 'प्राप्त इव नाम संवत्सरस्य कार्तिक शुक्ल 7 समाप्तम्।' लेख से इसका प्रतिलिपि वर्ष ज्ञात नहीं होता। देवनागरी में लिखित इस ग्रन्थ की लिपि भी 18वीं सदी से पुरातन नहीं है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में विविध काव्यों से आकलित श्लोक स्तुति, प्रताप, कीर्ति, प्रातःकाल, सन्ध्याकाल, चन्द्रोत्प्रेक्षा, चन्द्रांक, कटाक्ष, शृंगार, विरह, वायु, पर्जन्य, दारिद्र्योक्ति, अन्योक्ति, राजवर्णन, पण्डितवर्णन, समस्या, प्रस्ताव, वैराग्य, आदि शीर्षकों में विभाजित हैं।

विद्याविनोद

'विद्याविनोद' काव्य का उल्लेख बूलर ने किया है।[44] बूलर की सूचना के अनुसार इस काव्यग्रन्थ में 66 पत्र हैं तथा प्रत्येक पत्र पर 19 पंक्तियां हैं। 'भुजस्थराजप्रसादे' लिखकर ग्रन्थस्थिति-स्थान का निर्देश किया गया है। विक्रम विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष तथा मेरे आदरणीय निर्देशक श्री वि० वेंकटाचलम्जी के द्वारा, कच्छ के भूतपूर्व नरेश महाराव साहिब से

ग्रन्थसम्बद्ध सूचना प्राप्त करने के लिए एकाधिक बार रजिस्टर्ड पत्र देने पर भी कोई उत्तर उपलब्ध नहीं हुआ। डा० वी० राघवन् के अनुसार[45] बूलर ने अपनी सूची में आयुर्वेदिक ग्रन्थ 'विश्रान्त विद्याविनोद' के स्थान पर 'विद्याविनोद' काव्य लिखने की सम्भवतः त्रुटि की है। ग्रन्थसम्बद्ध कोई सूचना प्राप्त न होने से तद्विषयक ज्ञानाभाव में न तो इस ग्रन्थ के विषय में कुछ टिप्पणी करना संगत होगा एवं सम्भव होगा न इस प्रबन्ध में उसका विशेष पर्यालोचन कर पाना ही सम्भव होगा।

वादविद्यविनोद में निरत[46] राजा भोज के सभापण्डितों में विद्याविनोद नामक एक कवि भी था।[47] असम्भव नहीं यदि इसी कवि ने उपर्युक्त विद्याविनोद ग्रन्थ रचकर उसका कृतित्व अपने आश्रयदाता नरेश, भोज को समर्पित कर दिया हो। सरस्वतीकण्ठाभरण, राजमार्तण्ड आदि की भांति 'विद्याविनोद' भी भोज की उपाधि हो सकती है। कमलाकर भट्ट (1612 ई.) ने अपने निर्णय-सिन्धु में विद्याविनोद का उल्लेख किया है।

विद्याविनोदनारायण–विरचित अमरकोष व्याख्या भी सुलभ है।[48] विद्याविनोद नामक एक बंग ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद बाबू गोपालराम ने संवत् 1950 के पश्चात् किया था।[49] परन्तु भोजकृत अभीष्ट काव्य 'विद्याविनोद के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है

उपसंहार

भोज के उपलब्ध प्रकाशित तथा अप्रकाशित साहित्यिक गन्थों का आगामी परिच्छेदों में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा। भोज की उपलब्ध साहित्यिक कृतियों में से रामायणचम्पू, शृंगारमंजरीकथा, अवकूनिर्मशतम् तथा चाणक्यराजनीतिशास्त्र ग्रन्थ प्रकाशित हैं। चारुचर्या तेलुगू लिपि में प्रकाशित है। सुभाषितप्रबन्ध अप्रकाशित ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त शालिकथा, महाकाली विजय, विद्याविनोद आदि ग्रन्थ अप्राप्त हैं।

सन्दर्भ

1. गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज–17, 1921 में क्रमांक 1963.
2. रचितमनिलपुत्रेणाथ वाल्मीकिनाब्धौ
   निहितममृतबुद्ध्या प्राङ् महानाटकं यत्।
   सुमतिनृपतिभोजेनोद्धृतं तत्क्रमेण
   ग्रथितमवतु विश्वं मिश्रदामोदरेण।

   हनुमन्नाटक 14/96, मोहनदास की दीपिका व्याख्या सहित. वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बइ, संवत् 1966.
3. निर्णयसागर, 1932, पृ० 70–71.
4. 17 / 171–79
5. पृष्ठ 40–41.
6. रघुनाथचरित हनुमन्तकृत भोजभूप उद्धरिय जिमि।
   पृथीराजसुजस कवि चंदकृत चंदनंद उद्धरिय तिमि॥

रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 15 वां संस्करण, 2022 वि० संवत्, पृष्ठ 42 (नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी)

7. ग्रन्थ का आकार 26.3X12.5 से० मी०, पत्र 53 तथा प्रत्येक पृष्ठ पर 9 पंक्तियां हैं।
8. उदाहरणार्थ नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग का अन्तिम श्लोक इस प्रकार है—

   श्री हर्षः कविराजराजिमुकुटालंकारहीर. सुतं
   श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।
   तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृंगारभंग्या महा-
   काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गोयमादिर्गतः ॥

9. सम्पूर्णमिदं श्रीगोविन्दविलासाख्यं महाकाव्यम्। संवत् 1602 वर्षे मार्गशिर वदिद्भूमे लिखितमिदं। रा। दामोदरेण शुभं भवतु। श्री रामो जयतु।
10. A Cat. of Sanskrit Mss. in the Anup Skt. Lib., Fort Bikaner No. 3009 C. Kunhan Raja and K. Madhav Krishna Sharma and Cat. Cat— V. Raghavan.
11. यश्चैकाह्नाभोजचम्पोर्युद्धकाण्डमपूरयत्। डि० के० मे० ला० मद्रास, 22, पृ० 8616
12. कामेश्वरविरचिते योऽनेन भोजचम्प्वाः.... । वही, 2, 1 मी०, पृ० 2372 तथा 2374
13. निर्णयसागर प्रेस से प्रथम संस्करण 1917 ई० में तथा दसवां संस्करण 1956 में प्रकाशित हुआ।
14. जीवानन्द भट्टाचार्य, सरस्वतीप्रेस 1878 ई०
15. 1915 ई० में तेलुगु लिपि में तथा 1941 में देवनागरी में रामशास्त्री शास्त्रुलु द्वारा प्रकाशित।
16. 1848 ई० (शक संवत् 1770) में प्रकाशित।
17. चोखम्बा प्रकाशन, 1956 ई० (हिन्दी अनुवाद सहित)
18. रामायणचम्पू के पूरक अंशों के लिये द्रष्टव्य परिशिष्ट—रामायणचम्पू के पूरक अंश के निर्माता।
19. डि० के० मे० ला०, मद्रास, 21, 8504
20. डि० के० सं० म० अडि० लाय०, भाग 5, पृष्ठ 294, क्रमांक 883.
21. छविनाथ त्रिपाठी, चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृष्ठ 249.
23. ज्ञानमन्दिर, नासिक से 1871 ई० में प्रकाशित तथा 1711 ई० के चैत्र शुक्ल 7 को रचित इन्होंने 'आमोदमन्दार' की भी रचना की थी।
23. छविनाथ त्रिपाठी, चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ० 251.
24. सरस्वतीभवन पुस्तकालय, वाराणसी में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 41578.
25. ओसकर वाटा डल ट्रेटाम डी सिक्षा पोलिटिका डी चाणक्य, उन टेस्ट्स पोलिटीको इंडियन इन रिविस्ता डी फिलोसाफी व्हा० 41, सी० 3.5, फ्रेन्का 1950, पी०पी० 298,315.
26. लुडविक स्टेर्नबैक, विश्वेश्वरानन्द भारतभारती ग्रन्थमाला—28 इन्ट्रोडक्शन, पेज 35.
27. विश्वभारती एनल्स, भाग 8, 1958 ई०
28. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, 8, पृष्ठ 506–13
29. वि० वेंकटेश शास्त्रुलु, रामास्वामी शास्त्रुलु एण्ड सन्स, वविल्ला प्रेस, मद्रास, 1949.
30. वही, भूमिका

31. आर्ष रसायनशाला, मुक्त्याल, कृष्ण जिला, आन्ध्रप्रदेश, 1956.
32. डि० के० मे० ला० मद्रास, भाग 1, क्रमांक 6339.
33. सिंघी जैन ग्रन्थमाला–30 के अन्तर्गत सन् 1959 में भारतीय विद्या भवन, बम्बई से प्रकाशित इसी प्रति का प्रस्तुत प्रबन्ध में उपयोग किया गया है।
34. विशेष विवरणार्थ द्रष्टव्य. वहीं, इण्ट्रोडक्शन, पृष्ठ 1 से 6.
35. केटेलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्यूस्क्रिप्टस् इन दी सेन्ट्रल प्राविन्सेस बरार, 1926, पृ० 507, क्रमांक 5648.
36. भोज सेमिनार 1970, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, उद्घाटन भाषण, पृष्ठ 6.
37. क्रमशः इन ग्रन्थों में राजा भोज, भोज राजा, धार स्टेट गजेटियर, द ग्लोरि देट वाज गुर्जर देश एवं शालिहोत्र।
38. परमार इन्सक्रिप्शनस्, धार स्टेट हिस्टोरिकल रेकार्ड सीरिज, 1944, पृष्ठ 75 एवं 79.
39. धारानगर्याः शाखापुरे प्रासादस्थिताया गोत्रदेव्या नमश्चिकीर्षया नित्यमागच्छन्........।
40. शिखण्डे खण्डेन्दुः शशिदिनकरौ कर्णयुगले
गले तारास्तारातरलमुडुचक्रं च कुचयोः।
तटित्काञ्चीसन्ध्यासिचयरुचिरः कालि तदयं
तवाकल्पः कल्पव्युपरमविधेयो विजयते ॥—शृं० प्र०, पृ० 460
41. रिपोर्ट आफ दी आरकियालाजिकल डिपार्टमेण्ट, 1903–4
42. एपीग्राफिया इण्डिका, व्हा० 8, पृ० 241–60
43. धार स्टेट हिस्टोरिकल रिकार्डस्, 1944
44. केटेलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्टस् कन्टेन्ड इन दी प्राइवेट लायब्रेरी आफ गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, सिन्ध एण्ड खानदेश, व्हा 2, पेज 106–107, नं० 215, 1872 ए० डी०
45. विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन द्वारा 1970 के फरवरी माह में आयोजित भोज सेमिनार का उद्घाटन भाषण.
46. प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ 66.
47. बल्लालकृत भोजप्रबन्ध, पृ० 14, निर्णयसागर, 1932.
48. डि० के० मे० ला० मद्रास, आर० 3645, टी 2.15 तथा डा० राघवन्, भोजाजशृंगारप्रकाश, पृ० 721.
49. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 470.

तृतीय उच्छ्वास

चम्पूरामायण

भूमिका

काव्यरसिक के रूप में भोज ने अमित ख्याति अर्जित की। उसके उपलब्ध काव्यों में चम्पूरामायण[1] का विद्वानों में विशेष आदर हुआ। बाणभट्ट की कादम्बरी के समान इस कृति को भी इसका रचयिता पूर्ण नहीं कर पाया था। यद्यपि इन दोनों ग्रन्थों के पूर्ण न हो पाने के कारणों में भेद हो सकता है। भोज का चम्पूरायण सुन्दरकाण्डपर्यन्त ही प्राप्त होता है। यह स्थिति आज ही नहीं, प्राचीन काल से रही है। जिस प्रकार बाणभट्ट की कादम्बरी को पूर्ण करने के लिए उनका पुत्र पुलिन्दभट्ट प्रवृत्त हुआ, उसी प्रकार भोज की कृति को पूर्ण करने के लिए परवर्ती अनेक अनेक रसिकजन जुट पड़े और इस प्रकार इस ग्रन्थ के कई पूरक अंश बन गये। यह भी एक संयोग की बात है कि पूरक अंश के निर्माताओं ने केवल युद्धकाण्ड का ही निर्माण कर भोजकृति को पूर्ण मान लिया। परन्तु अन्य कतिपय विद्वानों को तब भी अपूर्णता ही प्रतीत हुई और उन्होंने उत्तरकाण्ड की रचना कर ग्रन्थ की पूर्णता में सन्तोष पाया। इन पूरक अंशों में से लक्ष्मण कवि का युद्धकाण्ड सर्वप्राचीन है क्योंकि प्रायः टीकाकारों ने भोज के रामायणचम्पू के साथ ही लक्ष्मण कवि विरचित चम्पूरामायण की भी टीका की है। बाणभट्ट की शैली के भार को जिस प्रकार पुलिन्दभट्ट ने सफलता से वहन किया उसी प्रकार भोज की गरिमामयी चम्पूशैली को लक्ष्मणकवि ने अपने युद्धकाण्ड में यथावत् बनाये रखा। दोनों कवियों के काव्यों में अन्तर कर पाना कठिन है। प्रायः यही स्थिति अन्य कवियों की पूरक कृतियों की भी है। इन पूरक अंशों के निर्माताओं के विषय में विशिष्ट विवरण, प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्त में "चम्पूरामायण के पूरक अंशों के निर्माता" नामक परिशिष्ट में दिया गया है।

उद्देश्य

ग्रन्थ-प्रणयन का प्रयोजनः—

रामायणचम्पू की रचना के प्रयोजन के विषय में टीकाकारों तथा रचयिताओं में मतभेद है।

(1) चम्पूरामायण के टीकाकार करुणाकर के अनुसार भोज ने इस ग्रन्थ की रचना अपने सारे व्याकरणों के सार, व्याकरणग्रन्थ "सरस्वतीकण्ठाभरण" के द्वारा निर्णीत साधु शब्दों के उदाहरणार्थ की है—

> **श्रीमद्रामायणं लोकोपकारार्थं संक्षिप्य सकलव्याकरणसमुद्धृतसारांशसुन्दर-स्वनिर्मित-सरस्वतीकण्ठाभरणनिर्णीतसाधुशब्दोदाहरणतया गद्यपद्यात्मक-चम्पूरूपेण कमपि प्रबन्धम्** ………………।[1]

सरस्वतीकण्ठाभरणानुसार साधु-शब्दों के उदाहरण रूप में यदि इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ होता तो

व्याकरणगत वैशिष्ट्यों एवं शब्दसिद्धियों की क्रमबद्धता के कारण इसका भाषागत वैसा ही स्वरूप होता जैसा भट्टिकाव्य का है। चम्पूरामायण में ऐसी स्थिति का अभाव होने से करुणाकर का अभिमत ग्राह्य नही हो सकता।

(2) उपर्युक्त करुणाकर के उद्धरण से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना लोकोपकार के लिए हुई है। इस अभिमत को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

(3) चम्पूरामायण की एक हस्तलिखित प्रति[1] की पुष्पिका के अनुसार भोज की रामायणचम्पू विचत्रतर है—

'इति विदर्भराज विरचिते श्रीमति विचित्रतरे चम्पूरामायणे सुन्दरकाण्डः समाप्तः'।

पांचाली रीति का अवलम्बन, अलंकृत गद्य-पद्य की रमणीय शय्या, उस युग के काव्यगत, गद्य तथा पद्य के, वैशिष्ट्यों के समाहार में भी रामायण की सरसता निहित होना आदि उसके वैचित्र्य में वृद्धि करते हो तो आश्चर्य नहीं। टीकाकार रामचन्द्र के अनुसार यह अभिमत स्वयं भोज का भी है कि वे चमत्कार के लिए गद्यपद्यात्मक काव्य का निर्माण कर रहे हैं।[2]

(4) गन्थ के प्रणेता स्वयं भोज के अनुसार रामायणचम्पू की रचना कविपथ के अनुयायी, सहृदयों के सुख के लिए हुई है—

तस्माद्दधातु कविमार्गजुषां सुखाय ।
चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया ॥[3]

रामायण के विराट् कलेवर को ऐसी नूतन शैली मे प्रस्तुत करना, जिसमें कभी पहले प्रस्तुत नही हुआ, कविपथ के अनुयायियों के लिए निश्चय ही सुखदायी बात थी। इस नूतन पथ का अवलम्बन करने से भोज को कीर्ति भी प्राप्त हुई तथा वह विद्वानों के आकर्षण का केन्द्र भी बना। सहृदयों में कुतूहल उत्पन्न करनेवाली भोज की अमर कृति शृंगारमंजरीकथा भी, स्वयं भोज के अनुसार प्रीति तथा व्युत्पत्ति के लिए रची गयी—

"तदति निबिडकौतुकाचान्तचेतसामस्माकं प्रीत्यै व्युत्पत्तये च काममपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु स्वामी।"

काव्यनिर्माण में प्रवृत्त होने के इन प्रयोजनों का निर्देश भामह[2], वामन[3], तथा सरस्वतीकण्ठाभरण के निर्माता स्वयं भोज ने किया है[4]—

निर्दोषं गुणवत् काव्यं अलंकारैरलंकृतम् ।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्ति प्रीतिं च विन्दति ॥

जहां तक किसी कृति से सहृदय सन्तुष्ट नहीं होते तब तक कवि न कीर्ति तथा न प्रीति का भाजन बन पाता है।

अब तक रामायण कथा को उपजीव्य बनाकर प्रणीत काव्य या तो महाकाव्य थे अथवा रूपक। गद्य काव्य सम्भवतः इस कथा के लिए समुचित नही समझा गया। इस कथा के लिए पद्य के साथ ही गद्य का भी उपयोग करने का प्रथम प्रयास भोज ने किया। यह प्रवृत्ति अनायास नही, युक्तिसंगत थी। क्योंकि गद्य वाद्य के समान है तो पद्य गीति के समान। केवल वाद्य उतना हृदयावर्जक नहीं होता जितना गीति से युक्त तथा केवल गीत उतना आकर्षक नहीं होता, जितना वाद्य से संयुक्त होकर। स्वतन्त्र रूप में इनका अपना व्यक्तित्व तथा महत्व हो सकता है परन्तु इन दोनों

का सामंजस्य उस स्वतन्त्र स्थिति से अधिक हृद्य होता है। इसमें काव्यरसिकों को अधिक आमोद प्राप्त होने की सम्भावना रहती है। उसी आमोद के लिए कवि ने काव्य की, गद्य-पद्य-सम्मिश्रणात्मक चम्पूपद्धति का अवलम्बन किया। इस काव्य-आराधना से कवि तथा सहृदयों को वही सुख अथवा फल मिला जो अर्धनारीश्वर की आराधना में मिलता है। केवल शिव अथवा पार्वती की अपेक्षा अर्धनारीश्वर की कल्पना एवं आराधना अधिक सुखद एवं ऋजुमार्ग है, वैचित्र्य तो उसमें प्रकट ही है।

जिस प्रकार शिव एवं पार्वती की गरिमा तथा स्वरूप तो सर्वविज्ञात है परन्तु उन्हें संयुक्त रूप में प्रस्तुत करने में ही कलाकार की अनूठी कल्पना का चमत्कार है। इस अवस्था में इन दोनों का रूप अधिक आवर्जक होगा तथा प्रभाव अधिक प्रबल। सौन्दर्यदृष्टि की जो भूमि ऐसी मूर्ति की प्रथम कल्पना में थी लगभग वही भूमि गद्य एवं पद्य के सम्मिलित रूप चम्पू की कल्पना में भी रही।

चम्पूरामायण की लक्ष्यपूर्ति

रामायण के प्राचीन कथानक को नये आवरण में उपस्थित कर भोज ने लोक को चमत्कृत कर दिया और भोज का यह अपूर्ण तथा लघु ग्रन्थ अपनी प्रौढ़ता तथा रमणीयता के कारण परवर्ती रसिकों तथा पण्डितों के लिए उपजीव्य[11] अथवा प्रेरणास्रोत बन गया। वह अपने उद्देश्य में सफल रहा एवं कीर्ति तथा प्रीति का भाजन भी बना।

प्रतिमा नाटक आदि रूपकों तथा रघुवंश आदि महाकाव्यों ने रामायण के कथा-कलेवर को संक्षेप में लोकसुलभ बनाने का क्रम अपनाया था। परन्तु गद्य तथा पद्य को समान रूप से स्वीकार करने वाली चम्पू-शैली में इस प्रकार का, प्रथम प्रयास भोज का ही था। रामायण को उपजीव्य मानकर रची गयी पूर्व कृतियों में रचयिताओं ने कथानक को यथावत् नहीं, उसे परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया है। अपनी कृति को आकर्षक बनाने के लिए तथा उसमें नवीनता लाने के लिए उन्हें ऐसा करना समुचित लगा होगा। परन्तु भोज ने रामायण के कथानक तथा उसके पात्रों को, उनके मूल गुण-दोषों सहित प्रस्तुत किया है। वस्तुतः आकर्षण ग्रन्थ के कथानक में नहीं, उसके प्रस्तुतीकरण में है।

भोज की चम्पूरामायण परवर्ती-काल में पर्याप्त लोकप्रिय तथा प्रचलित रही। इस पर अनेक टीकाएं रची गयी। टीकाकारों में से घनश्याम पण्डित ने चम्पूरामायण का पूरक युद्धकाण्ड भी रचा। चम्पूरामायण काव्य-रचना का निकर्ष बन गया। और इस पर क्रमशः अनेक युद्धकाण्ड रचे जाने लगे। इस प्रकार के युद्धकाण्डों में उपर्युक्त के अतिरिक्त लक्ष्मण, राजचूड़ामणि दीक्षित, गरलपुटी शास्त्री, एकाग्रनाथ, अथवा एकामरनाथ, मुकीश्वर दीक्षित एवं एक अज्ञात कवि का युद्धकाण्ड प्राप्त हो चुका है। कई विद्वानों को इसमें भी सन्तोष नहीं हुआ और वेंकटाध्वरी, राघवाचार्य, भगवन्त, वेंकटकृष्ण, रामानुजदास,यतिराज, शंकराचार्य, हरिहरानन्द, गरलपुटी शास्त्री, राघवाचार्य, ब्रह्मपण्डित आदि ने चम्पूरामायण के उत्तरकाण्ड की भी रचना की है।[12] भोज से परवर्ती काल में चम्पू-रामायण के आदर्श पर कई चम्पू-रामायण रचे गये। जिस प्रकार मम्मट-प्रणीत काव्यप्रकाश के टीकाकार उस ग्रन्थ से प्रेरित होकर स्वयं भी काव्यशास्त्र से सम्बद्ध नूतन ग्रन्थ-रचना में प्रवृत होते रहे उसी प्रकार चम्पूरामायण के टीकाकार शिवराम सूरी ने एक स्वतन्त्र चम्पूरामायण का भी प्रणयन किया। भोज के चम्पूरामायण से प्रेरित होकर वेंकटकृष्ण यज्वा, रामानुजदेशिक, सुन्दरवल्ली, लक्ष्मण दान्ति, शाम्ब शास्त्री आदि ने भी चम्पूरामायण रचे[18]। इससे प्रतीत होता है कि भोजकी यह कृति परवर्ती युग में विद्वानों में पर्याप्त प्रचलित तथा लोकप्रिय रही।

रामायण सिद्धरस कृति है । उसके कथानक में परिवर्तन करना, भोज जैसे काव्यशास्त्रज्ञ को समुचित प्रतीत नहीं हुआ । ध्वन्यालोक के अनुसार रामायण आदि सिद्धरस कृतियों की कथा में न तो तनिक भी परिवर्तन किया जाय एवं न ऐसी स्वेच्छा अपनायी जाय जिससे रस-विरोध उपस्थित हो[14] ।

सन्ति सिद्धरसप्रख्या ये च रामायणादयः ।
कथाश्रया न तैर्योज्या स्वेच्छा रसविरोधिनी ॥
तेषु हि कथाश्रयेषु तावत् स्वेच्छैव न योज्या ।
यदुक्तम्—"कथामार्गे न चाल्पोऽप्यतिक्रमः ॥"

इस आदर्श का भोज ने यथावत् पालन किया । वाल्मीकि रामायण के आधिकारिक तथा प्रासंगिक कथानक को, उसमें निहित पताका तथा प्रकरी सहित अपनी कृति—चम्पूरामायण में संक्षेप में प्रस्तुत कर दिया । उसके संवाद तथा आख्यान—उपाख्यान, स्थान तथा ऋतुवर्णन, ऐसा कुछ भी न बचा जो वाल्मीकि-रामायण का अनिवार्य अंग था परन्तु चम्पूरामायण में न आ सका हो, अथवा आया भी हो तो परिवर्तित रूप में । स्वभावतः इस कृति में रामायण की कथा तथा उसके पात्रों के गुणदोष अपनी मूल विशेषताओं के साथ अवतरित हो गये । भोज ने केवल राम के चरित्र में परिवर्तन किया है । उन्होंने वाल्मीकि के पुरुषोत्तम राम को दिव्य गुणों से मण्डित कर दिया ।

मूलस्रोत— वाल्मीकि–रामायण तथा भोजचम्पू

चम्पूरामायण में भोज की नूतन उद्भावनाएं

सहज जिज्ञासा होती है कि यदि भोज ने वाल्मीकि के कथानक को परिवर्तित नहीं किया तो यह प्रयास पिष्टपेषण ही कहा जाएगा । उसमें नूतनता की अपेक्षा नहीं की जा सकती । वस्तुतः वाल्मीकि-निर्मित कथानक को उपजीव्य रूप में स्वीकार करने पर भी उनकी रामायण तथा भोज-चम्पू में उतना ही अन्तर है जितना भूमि तथा उससे उत्पन्न होने वाले गुलाब में । उद्यान-प्रणाली में बहने वाले जल का एक ही आस्वाद होता है परन्तु उससे जीवन पाकर उत्पन्न होने वाले आम, अमरुद, नींबू आदि के आस्वादन को एक नहीं कहा जा सकता । यही स्थिति रामायण को उपजीव्य बनाकर रची गयी भास, कालिदास, कुमारदास, भट्टि, भवभूति, मुरारी, राजशेखर, भोज, क्षेमेन्द्र आदि की कृतियों में अन्तर की भी है । एक ही वस्तु को जितनी प्रतिभाओं का संस्पर्श प्राप्त होगा उसके उतने ही रूप होंगे । क्योंकि प्रत्येक की अनुभूति की श्रेणी तथा अभिव्यक्ति की विशेषताएं एक दूसरे से भिन्न होती हैं । प्रत्येक रचनाकार की शब्दचयन-प्रक्रिया अपनी होती है और इसी से विशिष्ट शैली का निर्माण हो जाता है । यही कारण है कि वाल्मीकि, कालिदास अथवा भोज की शैली एक दूसरे से मेल नहीं खाती । इस शैली की भिन्नता से ही कृति को विशिष्टता प्राप्त होती है ।

कवि का महत्व नवीन वस्तु के शोध में नहीं है परन्तु धारावाही विचारसरणि को नवीन भूमिका प्रदान करने में है और इस दृष्टि से भोज की कृति वाल्मीकि-रामायण तथा उसके आधार पर रची गयी प्राग्भोजकालीन कृतियों से विशिष्ट है । उसने अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम अपनाया जिसका इस रूप में कभी उपयोग ही नहीं हुआ था । वाल्मीकि-रामायण के कथानक को रूपक का कलेवर प्रदान करने का द्वार भास ने खोला, महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत करने का पथ कालिदास ने प्रशस्त किया तथा चम्पू रूप में सुलभ करने का मार्ग भोज ने दिखाया ।

वैसे तो रामायण के तथ्यों को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया वह शैली की दृष्टि से आमूल नवीन है। यही नहीं, रामायण से भोज तक आने वाली साहित्य-यात्रा में वाङ्मय ने जिन वैशिष्ट्यों की उपलब्धि की उसका समाहार भी इस कृति में उपलब्ध होने से यह अन्य कृतियों से विशिष्ट बन गयी है। तथापि रामकथा में कुछ ऐसे अपूर्व सन्निवेश कर दिये गये हैं जिनसे वाल्मीकिकृत वस्तु से किसी प्रकार विलग प्रतीत नहीं होते, परन्तु हैं नवीन। ये नूतन आयोजन ऐसे हैं जिनसे वाल्मीकिरामायण की कथावस्तु पर किसी प्रकार की आँच नहीं आती है। ऐसे ही कतिपय वैशिष्ट्य इस प्रकार हैं—

वाल्मीकि रामायण में प्राप्त कतिपय संकेतों का भोज ने अपनी कल्पना से पल्लवन कर दिया। इस पल्लवन से कथा में किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा मोड़ नहीं आने पाता है। ऐसे प्रसंगों में सर्वप्रधान है–गंगा वतरण का दृश्य। आकाश से धरा पर उतरती गंगा का काल्पनिक दृश्य अलंकृत शैली में उपस्थित किया गया है[15]—

अथ वीचीचयच्छन्नदिगन्तगगनान्तरा।
शशांकशंखसम्भिन्नतारामौक्तिकदन्तुरा॥
तरंगाकृष्टमार्तण्डतुरंगायासितारुणा।
फेनच्छन्नस्वमातंगमार्गणव्यग्रवासवा।
आविःशाखाशिखोन्नेयनन्दनद्रुमकर्षणा।
एकोदकनभोमार्गदिङ्मूढदिवसेश्वरा॥
आवर्तगर्तसम्भ्रान्तविमानप्लवविप्लवा।
नीलजीमूतशैवालकृतरेखाहरिच्छटा॥
अवलेपभराक्रान्ता सुरलोकतरंगिणी।
पपात पार्वतीकान्तजटाकान्तारगह्वरे॥

वैसे तो स्थान-स्थान पर कथानक की रक्षा करते हुए वर्णनों में नूतनता का सन्निवेश किया गया है। यह नूतनता कहीं भावक्षेत्र में है तथा कहीं चमत्कारिकता के क्षेत्र में। हेमन्त,[16] वर्षा,[17] शरत् आदि वर्णनो में कवि ने कल्पना-स्वातन्त्र्य का पर्याप्त आश्रय लिया है। महेन्द्रपर्वत,[18] सन्ध्यावर्णन.[19] रावणवर्णन,[20] लंकादहन[21] आदि वर्णनों में भोज की वाक्चातुरी, अलंकरण-कल्पना तथा सूक्ष्मदृष्टि का स्वतन्त्र उल्लास प्राप्त होता है। कैकेयी के प्रति दशरथ की अभिव्यक्ति[22], रामवनवास,[23] ताराविलाप,[24] लंकादहन से त्रस्त लंकावासियों की पुकार[25] आदि स्थानों पर भोज की अलंकरण-प्रवृत्ति दब जाती है तथा सीधी-सादी हृदय पर चोट करने वाली वाणी उभरने लगती है। ये सारी विवृतियां वाल्मीकि-रामायण में भी प्राप्त होती हैं, भोज ने इन्हें नूतन आवरण तथा अलंकारों से आवृत्त कर दिया।

सम्पूर्ण चम्पूरामायण में केवल दो ही स्थान ऐसे हैं, जहां वाल्मीकि के वाक्यों को यथावत् उद्धृत कर दिया गया है; प्रथम है वाल्मीकि का सुप्रसिद्ध आदि श्लोक "मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्"[26]॥ तथा द्वितीय है-हनुमान की पुच्छ मे आग लगने की बात सुनकर सीता की वह्नि से शीतल होने की हनुमान की पुच्छ शान्त के लिए प्रार्थना 'शीतो भव हनुमतः" इति[27]।

परन्तु कतिपय ऐसे भी सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जो वाल्मीकिरामायण में उपलब्ध नहीं होने से नवीन हैं, यद्यपि न तो इनकी संख्या अधिक है तथा न ये कथानक में किसी प्रकार का भेद उपस्थित करने का सामर्थ्य रखते हैं—

(१) वाल्मीकि रामायण के अनुसार[28] प्राजापत्य पुरुष से प्राप्त पायस में से दशरथ ने आधा कौसल्या को दिया, आधे का आधा अर्थात् चौथाई भाग सुमित्रा को दिया एवं कैकयी को अवशिष्ट का आधा भाग दिया तथा सुमित्रा को अवशिष्ट आधा भाग पुनः दिया।

कौसल्यायै तत्पतिः पायसार्धं ददौ तदा।
अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः॥
कैकेयै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात्।
प्राददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम्॥
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः।
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक्।

परन्तु चम्पूरामायण में दशरथ सुमित्रा को नहीं देते। वे आधा पायस कौसल्या को तथा आधा कैकयी को देते हैं। पति का भाव की आलोचना कर वे दोनो अपने-अपने भाग में से आधा-आधा पायस सुमित्रा को देती हैं।[29]

कौसल्यायै प्रथममदिशद्भूपतिः पायसार्धं
प्रादादर्धं प्रणयमधुरं कैकयेन्द्रस्य पुत्र्यै।
एते देव्यौ तरलमनसः पत्युरालोच्य भावं
स्वार्धांशाभ्यां स्वयमकुरुतां पूर्णकामां सुमित्राम्॥

भोज ने पायस-विभाजन में कालिदास के अभिमत का अनुसरण किया है। रघुवंश में पायस-विभाजन इसी प्रकार व्यक्त किया गया है।[30]

स तेजो वैष्णवं पत्न्योर्विभेजे चरुसंज्ञितम्।
द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्पतिरिवातपम्॥
अर्चिता तस्य कौसल्या प्रिया कैकयवंशजा
अतः संभावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः
ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः।
चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे॥

कालिदास तथा भोज का यह पायस-विभाजन रामायण के अनुरूप नहीं है। परन्तु इनका अभिमत पुराणों से मिलता है। नरसिंहसंहिता तथा अन्य पुराणों से इसकी पुष्टि होती है। मल्लिनाथ की रघुवंश की संजीविनी में सतर्क अभिव्यक्ति है।[31]

अयं च विभागो न रामायणसंवादी।...............
...........किन्तु पुराणान्तरसंवादो द्रष्टव्यः।
उक्तं च नारसिंहे –

ते पिण्डप्राशने काले सुमित्रायै महीपतेः।
पिण्डाभ्यामल्पमल्पं तु स्वभगिन्यै प्रयच्छतः॥

इति। एवमन्यत्रापि विरोधे पुराणान्तरात्समाधातव्यम्।

रामचन्द्र ने अपनी टीका में मल्लिनाथ के इन्हीं शब्दों को यथावत् प्रस्तुत कर दिया है।[32]

(२) राम के राज्याभिषेक का समाचार पाकर उल्लसित अयोध्या की जनता को देखकर दशरथ अपने अमात्यों से पूछते हैं कि प्रजापालन का पथ त्यागकर अभी हम तपोवन की ओर रवाना भी नहीं हुए तथापि इन दुधमुँहे राम की ओर जनता इतनी शीघ्र आकर्षित कैसे हो गयी।[33]

अस्माननाश्रिततपोवनभूमिभागानुन्मुच्य मार्गपरिपालनजागरूकान् ।
अम्लाननौग्ध्यमचिरादवलम्ब्य राममेवंविधः कथमुदेति जनानुरागः ॥

मंत्रियों ने उत्तर दिया कि आपके रहते आपके पुत्र राम की ओर जनता के स्वयं आकर्षित होने में आश्चर्य ही क्या है ? प्यासा चकोर अपनी तृषा बुझाने चन्द्र के पास ही जाता है, उसके पिता समुद्र के पास नहीं।

देवे स्थितेऽपि तनयं तव रामभद्रं लोकः स्वयं भजतु नाम किमत्र चित्रम् ।
चन्द्रं विना तदुपलम्भनहेतुभूतं क्षीरोदमाश्रयति किं तृषितश्चकोरः ॥[34]

यह दशरथ तथा उनके मन्त्रियों की गम्भीर नहीं, विनोद-वार्ता है । उत्सव के अवसर के अनुकूल दशरथ की प्रवृत्ति पर भी इस वार्ता से प्रकाश पड़ता है।

(३) वाल्मीकि रामायण में शूर्पणखा[35] सीता को असती, विकराल तथा निर्णतोदरी विरूपा कहकर स्वयं को राम के योग्य सिद्ध करती है। परन्तु भोज-कल्पित शूर्पणखा सीता के रूप को देखकर अपने वंश के आदिपुरुष ब्रह्मा को कोसती है कि उन्होंने उसे भी सीता के समान रूपवती क्यों नहीं बनाया ? अथवा इस वनवास के रसिये राम को वह कान्ति क्यों प्रदान की जो जंगल में बिखरी ज्योत्स्ना के समान व्यर्थ हो रही है[36]—

लावण्याम्बुनिधेरमुष्य दयितामेनामिवैनं जनं
कस्मान्नासृजदस्मदन्वयगुरोरुत्पत्तिभूः पद्मभूः ।
आस्तां तावदरण्यवासरसिके हा कष्टमस्मिन्निमां
कान्तिं काननचन्द्रिकासमदशां किं निर्ममे निर्ममे ॥

भोज की यह अभिनव कल्पना है।

(४) राम की वैखरी के अनुकरण पर मायामृग के 'हतोऽस्मि' चिल्लाने पर सीता लक्ष्मण को राम की स्थिति ज्ञात करने का आदेश देती है। लक्ष्मण उस ध्वनि को मिथ्या बताते हैं। सीता की कठोरवाणी सुनकर लक्ष्मण कहते हैं, मेरे लिए अब तक तुम वास्तव में माँ सुमित्रा थीं तथा निःसन्देह तुम्हारा सान्निध्य पाकर मैं मा के साथ रहने का सुख पाता रहा परन्तु हाय ! दुर्दैव से इस अरण्य में अपनी वाणी के दोष से तुम कैकेयी बन गयी ।[37]

सुमुखि ! मम सुमित्रा सत्यमम्बा यदासी-
स्तदभजमवितर्कं मातृसम्पर्कसौख्यम् ॥
अहह विधिविपाकाद्व्याहरन्ती दुरुक्तिं
त्वमसि विपिनमध्ये मध्यमाम्बा हि जाता ॥

वाल्मीकि-रामायण में लक्ष्मण सीता को समझाते अवश्य हैं। उसकी दुरुक्ति सुनकर स्त्री-सामान्य पर रोष प्रकट करते हैं । परन्तु हृदय से उसे 'दैवत' का मान नहीं देते हैं। वहाँ वे उसे इतनी कठोरवाणी का उपयोग नहीं करते तथा न कैकेयी के तुल्य घोषित करते हैं। यह भोज की ही कल्पना है। इससे भोज के लक्ष्मण के चरित्र की अधिक तीक्ष्णता का आभास होता है।

(५) सुन्दरकाण्ड के १९ वें श्लोक में रावण के साथ वेश्याओं का उल्लेख तथा ६७ वें श्लोक में सीता को लंकादहन की सूचना चारणों से प्राप्त होना भोज की स्वयुगानुरूप कल्पना है।

(६) वाल्मीकि तथा कालिदास ने[38] हिमालय की पत्नी का नाम "मैना" कहा परन्तु भोज उसे मनोरमा अथवा पाठभेद में मेनका के नाम से अभिहित करता है ।

राम के चरित्र की अलौकिकता–

वाल्मीकि के राम पुरुषोत्तम रहे परन्तु भोज ने उन्हें विष्णु के अवतार के रूप में ही देखा तथा तदनुरूप ही उन्हें दिव्य चरित्र से मण्डित किया ।

वाल्मीकि के राम की अपेक्षा भोज के राम के ये वैशिष्ट्य रहे—

राम विष्णु के अवतार थे। विष्णु ने दशरथ-पुत्र राम के रूप में जन्म लिया ।[39] उनकी सहायता के लिए देवताओं ने सुरयुवतियों से भालू, बन्दर आदि प्रभावशाली सन्ततियाँ उत्पन्न कीं ।[41] कौसल्या के गर्भ में विष्णु का पदार्पण हुआ ।[42] हरि ने रघुकुल को राम के नाम से अलंकृत किया—

अथ रामाभिधानेन कवेः सुरभयन् गिरः ।
अलंचकार कारुण्याद्रघूणात्मन्वयं हरिः ॥[43]

कालिदास भी राम को हरि का ही अवतार स्वीकार करते हैं ।—

रामाधिधानो हरिरित्युवाच ।[44]

'राम' शब्द की 'रमन्ते योगिनो यस्मिन्' व्याख्या करते हुए उसे योगसुलभ बताया जाता है वही बात भोज भी कहते हैं[45]—

योगेन लक्ष्यो यः पुंसां संसारापेतचेतसाम् ।
नियोगेन पितुः सोऽयं रामः कौशिकमन्वगात् ॥

राम का वनवास जगत् की रक्षा के लिए था ।[46] वसिष्ठ का शोक में नेत्र बन्द करना भी राम के वास्तविक रूप को ध्यानमुद्रा से देखना है ।[47] देवताओं का उद्देश्य सिद्ध करना ही राम-जन्म का प्रमुख उद्देश्य था ।[48]

राम के चरित्र में दिव्यता लाने के अतिरिक्त अन्य पात्रों के चरित्र में वाल्मीकि-रामायण से कोई अन्तर नहीं है।

रामायण को संक्षिप्त करने के उपायः–

रामायण सिद्धरस कृति है। उसके कथानक में परिवर्तन करना भोज जैसे काव्यशास्त्रज्ञ तथा मर्मज्ञ को समुचित प्रतीत नहीं हुआ। ध्वन्यालोक के अनुसार रामायण आदि सिद्धरस कृतियों की कथा में न तो तनिक भी परिवर्तन किया जाय एवं न हि ऐसी स्वेच्छा अपनायी जाय जिससे रसविरोध की स्थिति आ सके ।[49]

सन्ति सिद्धरसप्रख्या ये च रामायणादयः ।
कथाश्रया न तैर्योज्या स्वेच्छा रसविरोधिनी ॥
तेषु हि कथाश्रयेषु तावत् स्वेच्छैव न योज्या ।
यदुक्तम्– कथामार्गे न चाल्पोऽप्यतिक्रमः ।

इस आदर्श का भोज ने यथावत् पालन किया। वाल्मीकि-रामायण के आधिकारिक तथा प्रासंगिक कथानक को उसमें निहित पताका तथा प्रकरी सहित अपनी कृति में उतार दिया। उसके संवाद तथा आख्यान,-उपाख्यान, स्थान तथा ऋतुवर्णन ऐसा कुछ भी नहीं बचा, जो वाल्मीकि-रामायण का अनिवार्य अंग था परन्तु चम्पूरामायण में स्थान नही पा सका अथवा परिवर्तित रूप में स्थान पा सका। रामायण की कथा तथा उसके पात्रों के गुणदोष अपनी मूल विशेषताओं के साथ अवतरित हो गये। केवल एक अन्तर अवश्य हुआ। वाल्मीकि के पुरुषोत्तम राम चम्पूरामायण में पुराणपुरुष विष्णु के अवतार के रूप में दिखायी देते हैं। राम को विष्णु के अवतार रूप में प्रस्तुत करने की परम्परा, कालिदास तथा उनसे पूर्व भास की कृतियों में भी रही है।

रामायण के विराट् ग्रन्थकलेवर को संक्षेप मे, अत्यन्त लघु रूप में, कथानक में कटौती न करते हुए यथावत् प्रस्तुत कर देना, विशेप चातुर्य-प्रक्रिया तथा उपाय से ही सम्भव है। स्वयं भोज ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा है[50]—

वाल्मीकिगीतरघुपुंगवकीर्तिलेशैस्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्।
गङ्गाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः किं तर्पणं न विदधाति नरः पितृणाम्॥

श्लोक से स्पष्ट है कि वाल्मीकि रामायण गंगा के समान विशाल तथा पवित्र है। चम्पूरामायण पितृ-तर्पण के लिए आवश्यक अंजलीभर जलतुल्य लघु है। दोनों के आकार की कोई तुलना नहीं। परन्तु गंगा अपनी पवित्रता में जितनी महर्घ है, पितृ-तर्पण के लिए उससे उठाया हुआ जल उससे कम महर्घ नहीं। गंगा के विस्तृत तटों तथा गहराई में वहता जल भी गंगाजल है तथा उसमें से अंजलीभर अलग किया हुआ जल भी गंगाजल है। दोनों जलों की पवित्रता तथा पवित्र करने की शक्ति में कोई अन्तर नहीं।

स्पष्ट है, वाल्मीकि-रामायण तथा चम्पूरामायण के आकार में अन्तर हो सकता है, उनके गुणों में नहीं। जो तथ्य तथा कथानक का वैशिष्ट्य रामायण के विराट् कलेवर में है, भोज की कृति में भी वही है। परन्तु इतनी वड़ी कृति को चम्पूरामायण जैसा लघु कलेवर देना साधारण वात नहीं है। उपर्युक्त श्लोक के द्वितीय चरण में प्रयुक्त "कथमपि" से स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि महान् प्रयत्न से चम्पूरामायण की लघु आकृति में, रामायण अवतीर्ण हुई। इस संक्षिप्तीकरण में विशिष्ट प्रयास आवश्यक रहा होगा।

भोज ने कथानक को यथासंभव संक्षिप्त तथा रुचिकर वनाने का प्रयास किया। उसकी शैली की रुचिरता तथा वाणी के आकर्षण से यह कृति संस्कृत साहित्य में विशिष्ट वन सकी।

(1) अभिव्यक्ति की सामासिक शैली में भोज रामायण के विस्तृत विवरणों को भी संकेतात्मक रूप से स्पष्ट करता चलता है। प्रथम श्लोक में, जहां कथानक प्रारम्भ होता है—

वाचं निशम्य भगवान् स तु नारदस्य प्राचेतसः प्रवचसां प्रथमः कवीनाम्।
माध्यंदिनाय नियमाय महर्षिसेव्यां पुण्यामवाप तमसां तमसां निहन्त्रीम्॥

वाल्मीकि-रामायण का प्रथम सर्ग समाप्त हो जाता है।

अयोध्या का परिचय रामायण के सम्पूर्ण पांचवे सर्ग में है परन्तु चम्पूरामायण में यह परिचय एक श्लोक मे ही समाप्त हो जाता है।[51]

अस्ति प्रशस्ता जनलोचनानामानन्दसन्दायिषु कोसलेषु।
आज्ञासमुत्सारित-दानवानां राज्ञामयोध्येति पुरी रघूणाम्॥

दशरथ तथा उसकी उपलब्धियों का विवरण छठे तथा सातवें सर्ग में प्राप्त होता है परन्तु चम्पू-रामायण के केवल एक श्लोक में यह सम्पूर्ण विस्तार सिमट गया है[52]।

संक्षिप्तीकरण की यही स्थिति सर्वत्र रही है।

(२) गद्य का उपयोग प्रायः कथानक को बढ़ाने में सहायक हुआ है। श्लोकों के मध्य छोटे छोटे गद्यवाक्य वाल्मीकि-रामायण के विस्तृत कथाभाग को संकेतात्मक रूप से व्यक्त कर देते हैं। लवकुश का एक श्लोक[53] में परिचय देने के उपरान्त प्रयुक्त गद्यवाक्य[54]—

'एतौ मुनिः परिगृह्य स्वांकृतिमपाठयत् तौ पुनरितस्ततो गायमानौ दृष्ट्वा रामः प्रहृष्टमनाः स्वभवनमानीय भ्रातृभिः परिवृतो निवचरितं गातुमन्वयुङ्क्त।

में कथा अविच्छिन्न रहते हुए भी वाल्मीकि-रामायण का चतुर्थ सर्ग समाप्त हो जाता है।

(३) गद्य के माध्यम से सूचनाएं दी गयी हैं—

एवं वादिनीमेनां भूयोऽपि भूपतिरवदत्[55]।

जो कथानक को आगे बढ़ाने में सहायक है।

(४) ललित गद्य में दी गयी सूचनाएं भी कथा के विस्तृत भाग को व्यक्त कर देती हैं। कथा अविच्छिन्न रहती है, संक्षिप्त हो जाती है तथा मनोरम गद्य से पाठक आकर्षित भी हो जाते हैं। रामायण के अरण्यकाण्ड के ७२ से ७५, चार सर्गों को भोज ने जिस शैली में संक्षिप्त किया, उसमें काव्यमाधुरी, काव्योत्कर्ष आदि का आकर्षण भी कम नहीं है[56]।—

तस्मिन्नृष्यमूकमार्गमुपदिश्य स्वर्गं गते मतङ्गाश्रमवासिन्या तपस्विन्या शबर्या कृतां सपर्यां परिगृह्य रामस्तदनुज्ञया मनोज्ञविविधविहगकूजितं मृगगणविहरणमनोहरं गहनपदमवगाह्य व्याकोशकुशेशयपरिचय-कषायैर्वनदेवतालताकोलानुकूलैः कूलायतलीलापरवशवशावल्लभमदाम्बु-चुम्बिभिः शम्बराराातिशरधृसदृशतटरुहसहकारशिखरविसरदास-वासारशीकरशेखरैर्विविधलतालासिकालास्योपदेशदेशिकायमानैः कायमानसमानाभोगलतागृहकोकिललुब्धलुब्धकपुरन्ध्रीशिथिलधम्मिल्ल-मल्लिकागन्धमांसलैर्पल्लिकामपक्षविक्षोभक्षोदीभूतपाथः पाथेयैस्तटवनपवनैरनुकम्प्यमानः पम्पामभजत्।

(5) अत्यन्त विस्तार को भी "इत्यादि" के उदर में समेटा जा सकता है। अनेक अभिधानों में से प्रथम तथा प्रमुख को व्यक्त कर अन्य के लिए मौन हो जाना भी संक्षिप्तीकरण का एक उपाय रहा है। कौशाम्बी, महोदय, धर्मारण्य तथा गिरिव्रज नगरियों के स्थापक कुश के चार पुत्र थे। भोज इनमें से कुशाम्ब का ही उल्लेख कर आगे बढ़ जाता है।[57]—

कुशाम्बप्रमुखैश्चतुर्भिः

यहां कुशनाभ, धूर्तरजस् तथा वसु के अभिधान नहीं दिये गये हैं।

(6) वाक्चातुर्य से विस्तृत वर्णन का संकेत देकर आगे बढ़ जाने की प्रक्रिया भी अपनायी गयी है। वाल्मीकि रामायण में, अरण्यकाण्ड में ६० से ६३ तक के चार सर्गों में सीताहरण पर राम-विलाप है। भोज आरण्यकाण्ड के ३६ से ४० तक के पांच श्लोकों में रामविलाप तथा उनकी व्यथा व्यक्त कर, विस्तार में न जाने की भावना से कहते हैं—

इस प्रकार रुदन करते हुए, सीता को खोजते हुए राम तथा लक्ष्मण अधीर हो उठे। उनकी वैसी दशा का वर्णन अपनी वाणी से व्यक्त करने में कठोर हृदयी वाल्मीकि ही समर्थ हैं।[58]

इत्थं विलप्य दयितां विपिने विचिन्वन्
रामो न तत्र धृतिमान्न च लक्ष्मणोऽपि।
तादृग्विधामपि कथां कथयन् स्ववाचा
वल्मीकजन्ममुनिरेव कठोरचेताः॥

(७) "वाणी के विस्तार से क्या" अथवा "अधिक क्या कहें" जैसे वाक्यों से भी विस्तृत तथा अथिक अनावश्यक कथाभाग को छोड़कर, उसका सार व्यक्त कर दिया गया है—

बहुभिरिह किमुक्तैः[59]–।

अथवा

वाचामिदानीं किमु विस्तरेण[60]।

(८) सर्वथा अनावश्यक तथ्यों का त्याग भी किया गया है। यथा, चित्रकूट में वाल्मीकि से राम की भेंट का उल्लेख नहीं है।

इस प्रकार भोज ने संक्षिप्तीकरण के विविध आकर्षक उपाय अपनाये हैं।

संक्षिप्तीकरण के उपायों में कालिदास तथा भोज की प्रक्रिया में अन्तर—

कालिदास ने भी सम्पूर्ण रामायण को रघुवंश के १० से १५ वें सर्ग तक के छः सर्गों में संक्षिप्त कर दिया है। १० वें सर्ग में रामादि चारों भाइयों का जन्म तथा शैशव वर्णित है तथा ११ वें में जनकपुरी से विवाह कर लौट आने तक का कथानक है। इन दोनों सर्गों में वाल्मीकि-रामायण के बालकाण्ड का कथानक है। राम–वनवास से प्रारम्भ होने वाले अयोध्याकाण्ड से युद्ध-काण्ड तक का वह सम्पूर्ण कथानक जिसमें राम अयोध्या से बाहर रहे, बाहरवें सर्ग में वर्णित है। चौदहवाँ तथा पन्द्रहवां सर्ग उत्तरकाण्ड की कथा समेटे हुए हैं। कालिदास ने इस संक्षिप्तीकरण में ये साधन अपनाये हैं—

(१) प्रासंगिक अनावश्यक कथानक त्याग दिये
(२) संकेतात्मक शैली
(३) वर्णन-विस्तार का अभाव
(४) कथानक के जिन अंशों पर वाल्मीकि ने विशेष अवधान दिया, कालिदास उन्हें केवल स्पर्श कर आगे बढ़ गये हैं। परन्तु कथानक के जिन मार्गों को वाल्मीकि केवल स्पर्श कर आगे बढ़ गये थे कालिदास की लेखनी प्रायः वहीं ठहर गयी है। रघुवंश का नौवां तथा तेरहवां सर्ग इसका प्रमाण है।

भोज ने प्रामाणिक रूप से वाल्मीकि के चरण-चिह्नों का अनुसरण किया। उन्होंने आवश्यक अथवा अनावश्यक किसी भी प्रकार के कथानक को छोड़ा नहीं। संक्षिप्तीकरण होने से शैली कहीं-कहीं संकेतात्मक अवश्य हो गयी है, परन्तु कथानक तथा स्थल का विवरण देने में जिन-जिन स्थलों पर वाल्मीकि ने विशेष रुचि ली, भोज की लेखनी भी वहीं रमी।

अतः संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया में कालिदास तथा भोज में मौलिक भेद है।

संक्षिप्तीकरण में सफलता—

लघु गद्यभागों से कथानक में गति लाकर पद्यों के माध्यम से प्रायः कथानक को रुचिकर बनाया गया है। कहीं-कहीं, यथा हेमन्त आदि के वर्णन में कथानक को रुचिकर बनाने में गद्य से भी सहायता ली गयी है।

भाषा पर परम अधिकार होने से उसके सरल हृदयहारी तथा अलंकृत, दोनों ही रूपों में कथानक प्रस्तुत किया गया है। पाठक भाषा के व्यामोह में सर्वत्र सरसता का अनुभव करता है।

अभिव्यक्ति की अनुपम शक्ति होने से वस्तु चाहे संक्षेप में कही गयी हो परन्तु आकर्षण सर्वत्र यथावत् बना रहता है।

यथावसर छन्द, अलंकार, रस आदि समुचित प्रयोग तथा अभिव्यक्ति में रसवत्ता होने से कथानक में आकर्षक गति बनी रही है।

संक्षिप्तीकरण के अवसर पर प्रयुक्त गद्य अथवा पद्य भी ललित है। उसकी माधुरी तथा काव्योत्कर्ष हृदयहारी रहा है।[61] संक्षिप्तीकरण में कुछ विवरण देने के उपरान्त[62]—

तादृग्विधामपि कथां कथयन् स्ववाचा

वाल्मीकजन्ममुनिरेव कठोरचेताः।

जैसे वाक्यों का आश्रय लेने से कथा अथवा वर्णन में विशृंखलता नहीं आने पायी है। अपितु काव्य में एक विशिष्ट अनुभूति की सर्जक स्थिति उपस्थित हो गयी है। उसी प्रकार—

"वाचामिदानीं किमु विस्तरेण"

अथवा

"बहुभिरिह किमुक्तैः"

जैसे वाक्यों का प्रयोग भी जहां संक्षिप्तीकरण क प्रयोजन को सिद्ध करते हैं वहीं पर सरसता तथा कथा-शृंखला बनाये रखने में सहयोगी भी होते हैं।

अतः कथानक के संक्षिप्तीकरण में भोज को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

संक्षिप्तीकरण में अपूर्णता तथा त्रुटियां—

चम्पूरामायण अपनी कई विशेषताओं के साथ ही सर्वथा निर्दोष नहीं है। उसमें उपलब्ध कतिपय दोषों का विवरण इस प्रकार है—

(१) कथानक के प्रारम्भ में ही—

"वाचं निशम्य भगवान् स तु नारदस्य"[63]

आदि श्लोक से स्पष्ट नहीं होता है कि नारद की कौनसी बात वाल्मीकि ने सुनी। आगे चलकर पुनः कहा जाता है "रामचरितं यथाश्रु॰"। इससे भी यह स्पष्ट नहीं होता कि रामचरित नारद से ही सुना था। प्रारम्भ से ही ऐसी प्रतीति होती है मानो भोज अपने पाठकों से वाल्मीकि-रामायण के सम्यक् ज्ञान की अपेक्षा करता हो।

(२) "कुशाम्बप्रमुखैस्चतुर्भिः"[64] कह देने से, रामायण[65] में उल्लिखित अमूर्तरज, कुशनाभ तथा वसु आदि अभिधानों का ज्ञान नहीं हो सकता। "प्रमुखैः" शब्द का अर्थज्ञान रायायण के ज्ञान की अपेक्षा करता है।

(३) कैकेयी ने दो वरदान चाहे[66]—

तयोरेकस्य संरम्भो भरतस्याभिषेचनम् ।
अन्यस्य वनवृत्यैव वने रामस्य वर्तनम् ।।

परन्तु यह स्पष्ट नहीं कि राम की वनवृत्ति की अवधि क्या होगी ?

क्या आजीवन वनवास ? कैकेयी राम की जिज्ञासा शान्त करते हुए भी[67]—

"वरद्वयं तावत्तव मुनिवृत्यैव वने वर्तनमवनेरवनं भरतस्येति" ।

राम-वनवास की अवधि स्पष्ट नहीं करता । इस अवधि का स्पष्टीकरण राम के वन चले जाने पर निषादराज के मुख से प्रासंगिक रूप से हो जाता है[68]—

"मन्दाकिनीसंदर्शनेन मन्दायमानजननीजनवियोगदुर्दशश्चतुर्दशदशरथथिताः (समाः) समापयतु भवानिति ।

वनवास के वर्षों की स्पष्ट संख्या का इतनी देर से व्यक्त होना कथानक को अपूर्ण रख देता है । यहां भी प्रतीत होता है कि रचयिता पाठक से वाल्मीकि-रामायण के ज्ञान की अपेक्षा करता है ।

साधारणी क्षितिभुजां मृगयेति पूर्व
मुक्ता त्वयैव जनसंसदि सत्यवादिन् ।[69]

भोज चम्पू में ऐसी घोषणा कहीं भी नही है । यह घोषणा रामायण में है[70]—

"यान्ति राजर्षयश्च मृगयां धर्मकोविदः ।"

जिसे पूर्व में व्यक्त करना भोज विस्मृत कर गया परन्तु उसका बाद में उपयोग कर लिया है । त्वरा में यह समझकर कि यह बात पहले इसी चम्पू ग्रन्थ में कह दी गयी होगी ।

(५) सीता को समझाने के लिए रावण राक्षसियों को आदेश देता है[71]

भवत्यः चतुर्भिरप्युपायैरेनामवश्यं वश्यां कुरुध्वम् । इयमननुकूला चेदिमां हताशां प्रातरशनाय महानसं नयत इत्यादिश्य निशान्ते प्रत्यासन्ने निशान्तमेव प्रविवेश ।

तदनन्तर सीता हनुमान् से कहती है कि वह एक माह से अधिक जीवित रहने में असमर्थ है[72]—

नियतमहमपि मासादूर्ध्वं न शक्नुयां प्राणान्कृपणान् धारयितुम् ।

जिसे प्रातःकाल का ही कलेवा बनाया जा रहा है वह एक माह से अधिक जीवित न रह सकने की बात कैसे कर सकती है ? भोज वस्तुतः रावण के आदेश मे दो माह की वह अवधि देना विस्मृत कर गया जिसका उल्लेख रामायण मे है ।[73]

संक्षिप्तीकरण इन दोषों से युक्त होने पर भी सम्पूर्ण प्रभाव की दृष्टि से इसलिए निर्दोष कहा जा सकता है कि ये दोष ऐसे भयंकर नहीं जिसमे कथानक को तोड़ने अथवा मोड़ने की शक्ति रखते हों । ये क्षीण प्रभाव के दोष हैं जो भोज की आकर्षक शैली तथा रामायण की गरिमामयी कथा मे कही खो जाते है, जिन पर पाठकों का विशेष ध्यान नही जा पाता है ।

चम्पूरामायण का काव्यशास्त्रीय अध्ययन

चम्पू काव्यों में काव्य की दृष्टि से चम्पूरामायण विशेष लोकप्रिय है । स्वभावतः काव्य-शास्त्रीय मानदण्डों के परिप्रेक्ष्य में भोज के इस चम्पू–काव्य का अध्ययन प्रस्तुत करना समुचित होगा ।

रीति—

भोज के अनुसार रीतियां छः होती हैं।[74] वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली, लाटी, आवन्तिका तथा मागधी। इसमें से प्रथम तीन ही अधिक स्फुट तथा सभी काव्यशास्त्रकारों द्वारा स्वीकृत होने से इनके परिप्रेक्ष्य में ही यहां चम्पूरामायण पर विचार किया जा रहा है—

चम्पू-रामायण में गद्य-विस्तार नहीं है। वह पद्यों के मध्य छोटे-छोटे खण्डों के रूप में प्राप्त होता है। वैसे तो भावग्राहिता, गाढ़बन्ध, ओज, प्रौढ़ता, वैदग्ध्य, वाक्पटुता आदि वैशिष्ट्य जो संस्कृत गद्यकाव्यों में विशेषतः प्राप्त होते हैं, भोज के गद्य मे भी उपलब्ध होते हैं। उत्कलिका-प्राय, चूर्णक, तथा वृत्तगन्धि, तीनों प्रकार की गद्य-शैली भोज के चम्पू-रामायण में देखी जा सकती है। ये शैलियां वातावरण तथा परिस्थिति की अपेक्षानुसार व्यवहृत हुई है।

भरत का चित्रकूट की ओर प्रयाण,[75] हेमन्त,[76] राक्षसवध,[77] ऋष्यमूक की ओर प्रयाण,[78] महेन्द्रपर्वत,[79] लंका की सन्ध्या[80] अशोकवनिका[81] आदि का विवरण उत्कलिकाप्राय गद्य में प्रस्तुत किया गया है। महेन्द्रशैल के शिखर पर से हनुमान् के लंका की ओर प्रस्थान करने पर पर्वत की दशा का वर्णन उत्कलिकाप्राय गद्य में ही हुआ है,[82] गौड़ी रीति का भी यह समुचित उदाहरण है—

तदानीमुदन्वदुल्लङ्घनदृढतरनिहितचरणनिष्पीडनं

सोढुमक्षमः क्ष्माभृदेष निःशेषनिःसरन्निर्झरौघतया निरन्तरनिष्पतद्बाष्पवर्ष इव इतस्ततो विततजीमूतवृन्दतया पारिप्लवशिथिलधम्मिल्ल इव, संत्रस्यमानकुञ्जरयूथतया सञ्जातश्वयथुरिव साध्वसधावमानहरिणगणचरणखरतरखुरकोटिपाटनोद्धूतधातुधूलीपालीपाटलितविकटकटकतया क्षरितशोणित इव, तत्क्षणप्रबुद्धकण्ठीरवमुखरितकन्दरतया कृताक्रन्द इव, परिसरगह्वरनिबिरीसनिःसृतसरीसृपतया निर्गलितान्त्रमाल इव, घूर्णमानतरुविटपकोटिताडितजलवृन्दस्यन्दितशीकरनिकरकोरकिताकारतया समुपजात-स्वेद इव, स्फटिकतटोपलपतनदलितकीचकसुषिरसंमूर्च्छत्पवनफूत्कारपरिपूरितगगनतया प्रवर्धमानोर्ध्वश्वास इव वचसामविषयं दौःस्थ्यमभजत।

चम्पू-रामायण में प्रायः चूर्णक शैली का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ एक वाक्य यहां उद्धृत किया जाता है जो वैदर्भी रीति का वाहक भी है।[83]

ततस्तस्या निकृत्तकर्णनासिकायाः कनीयस्याःपरिभवं वदनं वचने च दृष्ट्वा श्रुत्वा च जनस्थानवर्ती समरमुखमुखरः खरश्चतुर्दशसहस्त्रसख्याकशाखं चतुर्दशाध्यक्षरक्षितं रक्षोबलं रामलक्ष्मणौ जिघृक्षुः प्रेषयामास।

अलंकृत शैली मे तीव्रगति से बढ़ती कथा को व्यक्त करने के लिए वृत्तगन्धि शैली का उपयोग भोज ने समुचित समझा। यहां तक कि संवादों में भी इसी शैली का उपयोग किया गया है। पांचाली रीति की स्थिति इसमें पायी जा सकती है। शोकाभिभूत जनों के मुख से भी वेदनावाणी इसी शैली में व्यक्त होती है। इसके उदाहरण क्रमश. इस प्रकार हैं—

हनुमान् अपना परिचय देते हुए राम से कहते हैं[84] —

तेन भ्रातृभयादृष्यमूकमुपाश्रितेन युवाभ्यां समं सख्यमिच्छता प्रेषितं हनुमदभिधानं भिक्षुरूपच्छन्नं वानरमिमं जनमाञ्जनेयं प्रभञ्जनसञ्जातं जानीतमिति।

यहां अनुष्टुभ् का चरण वाक्य के प्रारम्भ में ही प्रतीत हो रहा है। अथवा बालीवध पर रुदन करते हुए वानर कहते हैं[85]—

तत्र हा सकलभुवनबहुमतबाहुबलगोलभगन्धर्वसिन्धुरपञ्चताकरणपञ्चाननदशमुखभुजङ्ग-भोगनिरोधाहितुण्डिकायितवालवलयवालिन् ।

कथं गतोसीति बाष्पाविलमुखा वलीमुखास्तस्य रामाज्ञया यथाभिप्रेतं प्रेतकृत्यं सर्वं निर्वर्तयामासुः ।

यहां उपेन्द्रवज्रा का चरणांश प्रकट है ।

परन्तु प्रायः संवादों में चूर्णक तथा वृत्तगन्धि का मिश्रित रूप भी प्रयुक्त हुआ है । सीता के प्रति लक्ष्मण का यह कथन इसी शैली में है[86]—

ततश्चार्य ! न कार्यमिदमादिष्टम् । दिष्टदोषान् मिथ्याप्रतीतिः परिभवति भवतीं परम् ।

अथवा जटायु की यह उक्ति[87]—

आयुष्मन् , मां खड्गविक्षतपक्षतिं क्षितितले निक्षिप्य क्षिप्रमपजहार मैथिलीं रावण इति ।

लक्ष्मण के प्रति राम का यह कथन भी इस शैली का आदर्श बन सकता है[88]—

वत्स ! सवितृवशजातानां पितृनिदेश एव देशिकः सर्वकर्मसु ।

इन तीनों गद्यांशों में रेखांकित अंश अनुष्टुभ के चरण है । निम्न पंक्ति में अनुष्टुभ् के दो चरण प्राप्त होते हैं[89]—

ततस्तत्क्षणसंभूतविस्रम्भाय प्रतिश्रुतवालिवधाय कथितनिज ।........

तथा इस पंक्ति में मालिनी का यति के पूर्व का चरण है[90]—

विरचितभुवनसांख्यं सख्यतपनतनयेन ।........

शोकाभिभूत हृदय से सुमन्त्र दशरथ से कहते हैं[91]—

देव ! कथं ब्रवीमि ? कठिनहृदयोहं ।

इस प्रकार भोज की इस कृति में गद्य अपनी पूर्ण शक्ति तथा विशेषताओं के साथ अवतरित हुआ है । परन्तु समग्र रूप से देखा जाय तो चम्पू-रामायण के रचयिता की श्लोक-निर्माण की अबाध क्षमता के परिणाम-स्वरूप गद्य में भी पद-पद पर अथवा पद्य-भाग की अनवरत छटा प्राप्त होने से इस कृति में वृत्तगन्धि गद्य की ही बहुलता है ।

रामायण के अनुरूप ही भोजचम्पू में विविध ऋतु, लंका-नगरी तथा महेन्द्रपर्वत के एवं इसी प्रकार अन्य अनेक दृश्यों के मनोहारी भाषा में कल्पनापूर्ण विवरण प्राप्त होते हैं । वसन्त-वर्णन[92] ललित भाषा में व्यक्त किया गया है—

ततस्तस्यास्तटवने नानानोकहनिवहपरिष्कृते निभृतेतरभ्रमणपरभृतव्रातचञ्चूमयविपञ्ची-समुदञ्चितपञ्चमाञ्चिता संतताकुञ्चितपञ्चशरशरासनवञ्चितपथिकजनसञ्चारप्रपञ्चा प्रमद-चञ्चलचञ्चरीककुलकञ्चुकितमाधवी माधवीभूतिरुदजृम्भत ।

यत्र कान्तैर्वियुक्तानां युक्तानामपि सुभ्रुवाम् ।
दोलाकर्म वितन्वन्ति मनांसि च वपूंषि च ॥

करतलैरपचायमथेक्षणैरपचयं च वनेषु जनेषु च ।
सुमनसां मनसामपि यद्दिने विरचयन्ति विलोलविलोचना ॥

यहां पांचाली रीति की विशेषताएं भी सुलभ हैं। भोज की इस कृति में पांचाली रीति को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। उपर्युक्त वर्णन में गद्य तथा पद्य का समान रूप से प्रयोग हुआ है। वर्षा-वर्णन में[93] गद्य का अत्यन्त उपयोग किया गया है तथा हेमन्तवर्णन[94] में केवल एक ही अनुष्टुभ् प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार प्रत्येक ऋतु के वर्णन में भिन्न-भिन्न शैली का उपयोग किया गया है।

गुण—

भोज की इस कृति में गद्य तथा पद्य दोनों ही ओज, प्रसाद एवं माधुर्य; इन तीनों गुणों से मण्डित है। अवसर, वातावरण एवं वर्णन की प्रकृति के अनुरूप गुणों का उपयोग किया गया है।

ओज गुण से मण्डित सूक्तियां इस प्रबन्ध में अगणित हैं। वीररस के अनुकूल इस गुण का एक उदाहरण यहां दिया जाता है[95]

वक्षःसंघट्टचूर्णीकृतकनकमहाभित्तिवैत्यौत्यधूल्या
नक्षत्राणामकाले सरणिमरुणयन्वीरलक्ष्म्या समेतः।
रक्षः शूराह्यशारां क्षितितलफलके क्षेपणीयां हनूमा-
नक्षक्रीडां विधातुं दशमुखनगरीचत्वरे तत्वरेसौ॥

प्रसादगुण से मण्डित स्थलों की भी इस कृति में न्यूनता नहीं है। बालकाण्ड में तो कथा को तीव्रता से आगे बढ़ाने के लिये पुराणवत् सरल अनुष्टुभ् की परम्परा उपस्थित कर दी गयी है[96] सीता को अशोकवनिका में देखकर हनुमान् के चिन्तन-सम्बद्ध एक उदाहरण यहां दिया जाता है[97]—

ज्योत्स्नां विनापि निवसेन्निशि शीतभानु-
श्छायां विनापि विलसेद्दिवसेश्वरोऽपि।
एनां विना रघुपतिः परिगृह्य धैर्यं
सप्राण एव वसतीति विचित्रमेतत्॥

श्रुतिमधुर स्वर से सम्पन्न लवकुश का वर्णन माधुर्य गुण का उदाहरण बन सकता है[98]—

उपागतौ मिलितपरस्मरोपमौ
बहुश्रुतौ श्रुतिमधुरस्वरान्वितौ
विचक्षणौ विविधनरेन्द्रलक्षणौ
कुशीलवौ कुशलवनामधारिणौ॥

रुचिर स्वरों में गाने वाले कुशलव का परिचय भी रुचिरा वृत्त में ही दिया गया है।

अवसरानुकूल गुणों का उपयोग करने की वृत्ति ने ही एक श्लोक में सारे गुण उपस्थित करने के लिए कवि को प्रेरित किया प्रतीत होता है।[99]

प्रिये! जनकन्दिनि! प्रकृतिपेशलामीदृशीं
कथं ग्लपयितुं सहे तव शिरीषामृद्वीं तनूम्।
गृहीतहरिणीगणत्रिकविसारिनानाशिरा-
क्षतक्षरितशोणितारुणवृकानने कानने॥

श्लोक के पूर्वार्द्ध में वन में न चलने के लिए समझाने की स्थिति होने से सरलता अतः प्रसादगुण है, पर प्रिया को समझाया जा रहा है अतः लालित्य भी, माधुर्य भी सुलभ है। इस प्रकार दोनों का सम्मिश्रण हो गया है। परन्तु श्लोक का उत्तरार्द्ध भी प्रिया के समक्ष ही कहा जा रहा है अतः माधुर्य गुण से गर्भित तो है ही सही परन्तु वर्ण्य विषय कानन की कठोरता तथा भयंकरता होने से समासमण्डित ओजमय हो गया है। अतः उत्तरार्द्ध माधुर्य एवं ओज के मिश्रण से युक्त है। तथा पूवार्द्ध माधुर्य एवं प्रसाद से युक्त है। और इस प्रकार एक ही सम्पूर्ण श्लोक ओज, माधुर्य तथा प्रसाद तीनों गुणों का एकत्र उदाहरण प्रस्तुत कर देता है। कवि का भाषा पर अधिकार तथा काव्यचातुरी एवं भावों की महत्ता को समझाने का यह एकान्त महत्वपूर्ण उदाहरण है।

अथवा इसे यों समझा जा सकता है कि पूवार्द्ध में प्रसाद एवं माधुर्य को संकीर्ण रूप से प्रस्तुत कर दिया गया है तथा उत्तरार्द्ध में माधुर्य एवं ओज को संकीर्ण रूप से प्रस्तुत कर दिया गया है। और इस प्रकार पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में संसृष्टि है।

भोज ने शब्दगुण, अर्थगुण तथा दोषगुण; तीन प्रकार के गुण स्वीकार कर इनमें से प्रत्येक के २४ भेद किये हैं। परन्तु सर्वप्रथित उपर्युक्त गुण ही होने से यहां उन्हें ही प्रस्तुत किया गया है।

वृत्ति—

भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में छः तथा शृंगारप्रकाश में पांच वृत्तियां गिनायी हैं। भारती, आरभटी, कैशिकी, सात्वती आदि चार वृत्तियां तो सर्वस्वीकृत हैं। भोज ने सरस्वती कण्ठाभरण में मध्यमारभटी तथा मध्यमकैशिकी आदि दो अतिरिक्त वृत्तियां स्वीकार की हैं।[100] शृंगारप्रकाश में इन दोनों के स्थान पर विमिश्रा वृत्ति स्वीकार की गयी है।[101] परन्तु रूपक प्रकरण में अन्तिम दो का स्मरण न कर भरत-सम्मत चार ही वृत्तियां स्वीकार की गयी हैं।[102] सरस्वती कण्ठाभरण में सात्वती शक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है[103]—

प्रौढार्थाकोमलप्रौढसन्दर्भा सात्वतीं विदुः।

शृंगार प्रकाश में इसका स्फुट लक्षण प्राप्त होता है[104]—

या सात्वतेनेह गुणेन युक्ता त्यागेन वृत्तेन समन्विता च।
हर्षोत्कटा संहितशोकभावा सा सात्वती नाम भवेत्तु वृत्तिः॥

सत्वगुण, त्यागी चरित्र, हर्ष तथा शोक से युक्त सात्वती वृत्ति कहलाती है।

दशरूपक के अनुसार इस वृत्ति में शोक नहीं होना चाहिए। परन्तु शौर्य, त्याग, दया, आर्जव आदि गुणों से युक्त होना चाहिए[105]—

विशोका सात्वती सत्वशौर्यत्यागदयार्जवैः।

भोज तथा धनंजय के द्वारा निर्दिष्ट सारी विशेषताएं चम्पूरामायण में सुलभ हैं। अतः चम्पूरामायण में सात्वती वृत्ति है।

अलंकार—

अलंकृतिप्रिय कवियों में भोज अग्रगण्य है। उनका सरस्वतीकण्ठाभरण अलंकारों के सूक्ष्मविवेचन तथा वैज्ञानिक विभाजनों से पूर्ण है। वहां शब्द, अर्थ तथा उभयालंकारों में से प्रत्येक

के २४ भेद किये गये हैं। भाषा में रमणीयता लाने के लिए तथा भावों की सम्यक् एवं हृदयहारी प्रेषणीयता के लिए अलंकार सहायक भी रहे हैं। भोज का चम्पूरामायण अलंकारों की अक्षय राशि है। वहां शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों का पर्याप्त सन्निवेश किया गया है। शब्द तथा शब्द, शब्द तथा अर्थ एवं अर्थ तथा अर्थ अलंकारों की संसृष्टि तथा संकर भी न्यून नहीं हैं। यह स्थिति गद्य तथा पद्य में समान रूप से उपलब्ध होती है।

सुन्दरकाण्ड पर्यन्त केवल उपमा का ही ८५ बार प्रयोग किया गया है। अलंकार प्रयोग की प्रचुरता में अन्य अलंकारों की स्थिति दयनीय नहीं है। अनुप्रास का साम्राज्य तो पद-पद पर पाया जा सकता है। साधर्म्यमूलक अलंकारों के उपादान ये रहे हैं—स्वर्ग एवं धुःस्थानीय तत्त्व, रोदसी के मध्यवर्ती मेघ-दिवस-रात्रि-सन्ध्यादि तत्त्व, पर्वत, पशु, पक्षी आदि प्राकृतिक उपादान, सामाजिक, व्यावहारिक, राजनीतिक तथ्यात्मक तथा धर्म, ललितकला, पौराणिक, भावात्मक एवं रूढ़िगत तथ्य।

ये सादृश्य चेतन तथा अचेतन में, मूर्त तथा अमूर्त एवं लिंग में हैं। इन सादृश्यों में औचित्य का अभाव नहीं है।

विकसित कमल पर चन्द्रिका के समान, दशरथ के शरीर पर वृद्धावस्था व्याप गयी। जिसका किसी तरह परिहार करना असम्भव है[106]—

मम सुरनरगीतख्यातिमिर्हृतिभिर्वा
दिवि भुवि च समानप्रक्रमैर्विक्रमैर्वा।
नियतमपरिहार्या या जरा सा मदङ्गे
विकचकमलखण्डे चन्द्रिकेवाविरासीत्॥

इस उपमा से प्रकट होता है कि जिस प्रकार कमल चन्द्रिका से संकुचित हो जाते हैं उसी प्रकार दशरथ के अवयव भी शिथिल हो रहे हैं। आकर्षक शरीर पर केशों के श्वेत हो जाने से वर्ण की दृष्टि से भी यह उपमा उपयुक्त है क्योंकि कमल की कमनीयता रात की चांदनी में लिपटकर धवलता में परिवर्तित हो जाती है।

कथा में क्षिप्रता के कारण अर्थान्तरन्यास जैसे महत्वपूर्ण अलंकार को भी कवि अधिक स्थान नहीं दे पाया। दो स्थलों पर ही यह अलंकार स्थान पा सका है।[107]

नूनं जनेन पुरुषे महति प्रयुक्त-भागः परं तदनुरूपफलं प्रसूते।
कृत्वा रघूद्वहगतेः क्षणमन्तरायं यद्भार्गवः परगतेर्विहतिं प्रपेदे॥

यहां पर सामान्य का विशेष से समर्थन किया गया है।

सामान्य का विशेष से समर्थन तथा पुनः विशेष का सामान्य से समर्थन इस श्लोक में किया गया है[108]—

साधारणी क्षितिभुजां मृगयेति पूर्वं
मुक्ता त्वयैव जनसंसदि सत्यवादिन्!
शाखामृगीं तदिह मारय मां शरेण
को नाम राम! मृगयुर्दयते मृगीणाम्॥

प्रसन्न वानरों के अनुभावों को व्यक्त करने वाली स्वभावोक्ति असाधारण है[109]—

आरुह्याद्रिमथावरुह्य विपिना—न्यासाद्य नानाफला-
न्यास्वाद्य प्लुतमारचय्य वदनैरापाद्य वाद्यक्रमान् ।
आलिङ्ग्य द्रुममक्रमं मदवशादाधूय पुच्छच्छटा-
मारादाविरभूदहं प्रथमिकापीनां कपीनां चमूः ॥

पहाड़ों पर चढ़ना, उतरना, जंगल में विविध फलों को चखकर कूदना, मुंह से वाद्य जैसी ध्वनि करना, वृक्षों पर उल्टा-सीधा लटकना, मस्ती में पूंछ झटक्कर पहिले पहुंचने की स्पर्धा करना आदि अनुभाव हैं किष्किन्धा की ओर जाने वाली वानर सेना के, जिनमें वानर की स्वभावगत विशेषताओं को सफलता से अंकित किया गया है।

प्रस्तुत सांगरूपक अपनी पूर्णता के साथ अवतरित हुआ है[110]

सीताभिधानकमलां प्रभवे प्रदातुं लङ्कार्णवं क्षुभितसैन्यतरंगभीमम् ।
वेधा ममन्थ किल रज्जुभुजंगराजभोगावृतेन पवनात्मजमन्दरेण ॥

प्रस्तुत उदाहरण में विरोधाभास तथा अतिशियोक्ति का मनोहारी सामंजस्य उपलब्ध होता है[111]—

युगपत्प्राप्तगुणयोश्चाप भार्गवरामयोः ।
ऋजुता वक्रतां प्राप्ता वक्रतापि तथार्जवम् ॥

स्फुट श्लेष का वैशिष्ट्य इस श्लोक में देखा जा सकता है जहां सपक्ष तथा विपक्ष में ही श्लेष है[112]—

त्वत्पित्राहं परित्रातः पूर्वं पर्वतभेदिनः ।
तस्मान्नास्मि विपक्षोऽद्य सपक्ष इति मां भज ॥

लंका के उद्यान का विध्वंस करते हुए हनुमान् तथा रावण के चरित का श्लेष के माध्यम से सुन्दर निरूपण हुआ है[113]—

स्वकृत्यैः शाखानामवनतिमतीव प्रकटयन्-
मार्गेण भ्राम्यन्परिकलितमङ्गः सुमनसाम् ।
द्विजानां संत्रासं श्रुतिमधुरवाचां विरचयन्-
अयं लङ्कोद्याने दशवदनलीलामतनुत् ॥

वैसे तो कई स्थलों पर यमक अलंकार पाये जा सकते हैं परन्तु सन्दष्ट यमक का केवल एक बार ही प्रयोग हुआ है[114]—

योगं वितन्वति हनुमति राघवस्यवैवस्वतेन हरिणा समवर्तिना च ।
मेने विधिर्घटयितुं कपिमिन्द्रपुत्रं वैवस्वैतेन हरिणा समवर्तिना च ।

द्वितीय चरण की चतुर्थ चरण में आवृत्ति है, परन्तु भिन्नार्थ में। इसी प्रकार किष्किन्धा का २६ वां श्लोक[115] तथा अयोध्याकाण्ड का २१ वां श्लोक[116] भी अलंकार के साथ ही कोमल भावों का वाहक भी है।

भोज के अनुसार वाड्.मय का प्राण रीति है तथा हृदय उसकी वृत्तियां, रचना उसकी मूर्ति है तथा अनुप्रास उसका जीवन।[117]

रीतियो वाड्मयप्राणा हृदयं तस्य वृत्तयः ।
रचनादित्रयं मूर्तिरनुप्रासस्तु जीवितम् ॥
श्लेषः पुष्णाति सर्वासु प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम् ।
वाकोवाक्येन हृष्यन्ति मनांसि कृषतामपि ॥
विनयेन विना का श्रीः का निशा शशिना विना ।
विना यमकचित्राभ्यां कीदृशी वाग्विदग्धता ॥

श्लेष वक्रोक्ति की कान्ति को पुष्ट करता है तथा वाकोवाक्य से मन प्रसन्न हो जाता है। जिस प्रकार विनय के बिना कान्ति एवं शशि के बिना निशा की सार्थकता नहीं, उसी प्रकार यमक एवं चित्रालंकार के बिना वाग्वैदग्ध्य भी कैसा ? स्पष्ट ही भोज का रीति, वृत्ति आदि के साथ ही अनुप्रास, श्लेष, यमक, चित्र आदि अलंकारों के प्रति विशेष आकर्षण है जिसकी पुष्टि चम्पूरामायण से भी होती है। चम्पूरामायण में श्लेष तथा यमक के साथ ही अनुप्रास का बाहुल्य परिलक्षित होता है, विशेषतः वृत्यनुप्रास का जिसका टीकाकार रामचन्द्र ने उल्लेख भी किया है[118]—

अयमेवालड्.कारः (वृत्यनुप्रासः शब्दालड्.कारः) प्रायशो
भोजराजोक्तिष्वनुसन्धेयः ।

अलंकार विषयक यह बाहुल्य चम्पूरामायण के गद्य तथा पद्य में समान रूप से सुलभ है। गद्य में अनुप्रास की छटा इस उद्धरण से प्रतीत हो सकेगी [119]—

ततस्तस्यास्तटवने नानानोकहनिवहपरिष्कृते निभृतेतर-
भ्रमणपरभृतव्रातचञ्चूमयविपञ्चीसमुदंचितपंचमांचिता
संतताकुंचितपंचशरशरासनवंचितपथिकजनसंचारप्रपंचा
प्रमदचंचलचंचरीककुलकंचुकितमाधवी माधवीभूतिरुदजृम्भत ।

रचणीय तथा समान ध्वनि के व्यंजक वर्णों एवं शब्दों के प्रयोग की कुशलता भोज विरचित छन्दों में भी प्राप्त की जा सकती है[120]—

तत्र तत्पत्रसंछन्नगात्रः पुत्रो नभस्वतः ।
न्यग्रोधदलसंलीनजनार्दनदशां दधौ ॥

इस प्रकार भोज के चम्पूरामायण में न केवल अर्थालंकारों की बहुलता है अपितु शब्दालंकारों से चमत्कार का सर्जन भी किया गया है।

चम्पूरामायण में विविध अलंकारों का अनेक बार उपयोग हुआ है। उन सबका विवरण दे पाना न यहां सम्भव है तथा न समुचित ही। फलतः चम्पूरामायण में उपलब्ध अलंकारों के अभिधानों की वर्णानुक्रम सूची तथा उनकी संख्या इस प्रकार है—

क्रमांक	अलंकारों के अभिधान	अलंकार-प्रयोग संख्या
१	अतिशयोक्ति	२३
२	अधिक	१
३	अनुप्रास	अगणित वार प्रयुक्त
४	अपह्नुति	६
५	अर्थान्तरन्यास	२
६	अर्थापत्ति	१
७	आक्षेप	१
८	आशी	१
९	उत्प्रेक्षा	३७
१०	उदात्त	२
११	उपमा	८५
१२	एकावली	१
१३	काव्यलिंग	१
१४	तद्गुण	२
१५	तुल्ययोगिता	६
१६	दीपक	१
१७	दृष्टान्त	३
१८	निदर्शना	५
१९	परिकर	३
२०	परिसंख्या	१
२१	पर्यायोक्ति	१
२२	प्रतीप	१
२३	प्रत्यनीक	१
२४	भ्रान्ति	२
२५	यथासंख्य	४
२६	यमक	६७
२७	रूपक	३०
२८	विरोधाभास	७
२९	विशेषोक्ति	१
३०	विषम	१
३१	व्यतिरेक	२

३२	श्लेष	१३
३३	संकर	२५
३४	सन्देह	३
३५	समाधि	१
३६	समासोक्ति	१
३७	संसृष्टि	११
३८	सहोक्ति	२
३९	सामान्य	१
४०	स्वभावोक्ति	२

औचित्य--

काव्य में औचित्य की विशेष अपेक्षा की जाती है। ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्धन किसी रचना की शोभा औचित्य में ही स्वीकार करते हैं[121]--

रसबन्धोक्तमौचित्यं भाति सर्वत्र संश्रिता।
रचना विषयापेक्षं तत्तु किंचिद् विभेदवत्॥

उनके अनुसार अनौचित्य के अतिरिक्त रसभंग का और कोई कारण नहीं है[122]--

अनौचित्यादृते नान्यद्रसभंगस्य कारणम्
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा॥

भोज ने अपने शृंगारप्रकाश में भवभूति एवं वाक्पतिराज के आश्रयदाता कन्नौज के स्वामी यशोवर्मा द्वारा विरचित नाटक का एक श्लोक उद्धृत किया है[123]--

औचित्यं वचसां प्रकृत्यनुगतं सर्वत्र पात्रोचिता
पुष्टिः स्वावसरे रसस्य च कथा-मार्गे न चातिक्रमः।
शुद्धिः प्रस्तुतसंविधानकविधौ प्रौढिश्च शब्दार्थयो-
र्विद्वद्भिः परिभाव्यतामवहितैरेतावदेवास्तु नः॥

पात्र की प्रकृति के अनुसार वाणी में औचित्य, रस की यथावसर पुष्टि, कथाक्रम का अनतिक्रमण, संविधानविधि में शुद्धि, शब्द तथा अर्थ में प्रौढ़ता आदि बातों पर रचयिता को अपनी रचना में विशेष ध्यान देना चाहिए। इनका व्यतिक्रम होने पर अनौचित्य होता है जो रसभंग का कारण है।

चम्पूरामायण में कतिपय सामान्य दोषों[124] के अतिरिक्त रचना-वैशिष्ट्य की दृष्टि से कोई अनौचित्य उपलब्ध नहीं होता। उपलब्ध दोषों से भी ऐसी कोई स्थिति उपस्थित नहीं हुई है जिससे रसभंग हो सके।

वाल्मीकि-रामायण की प्रकृति के अनुरूप चम्पूरामायण का अंगी रस 'करुण' ही है। शृंगार, वीर, वीभत्स, भयानक आदि रसों की अंग रूप में स्थिति है। शृंगार रस पर रचयिता ने सम्भवतः इसलिए विशेष अवधान नहीं दिया कि सीता-राम का शृंगार-वर्णन, देवताओं का

शृंगार वर्णन होने से अनुचित होता। कुमारसम्भव के उमा-महेश्वर के शृंगार वर्णन की ओर इंगित करते हुए उस स्थिति को आनन्दवर्धन पहले ही अनुचित बता चुके हैं।[125]

कथा-विकास में भोज ने वाल्मीकि-रामायण का प्रायः यथावत् अनुसरण किया है। सम्भाषण में पात्रों की प्रकृति के अनुसार संवाद तथा उनकी भाषा का आयोजन किया गया है। राम की वाणी में शालीनता, रावण की वाणी में औद्धत्य, कैकेयी की वाणी में निष्ठुरता तथा अन्य पात्रों की भाषा में यथावसर वैशिष्ट्य का निवेश किया गया है।

चमत्कारपूर्ण शब्द-प्रयोगों में भी उनकी अर्थवत्ता बलवती है। उनकी अनुकूल सार्थकता सर्वत्र पायी जा सकती है।

अलंकार, छंद आदि का यथावसर उपयोग हुआ है। अलंकार भाषा को सशक्त तथा अर्थ को स्फुट एवं मनोरम बनाने में सार्थक हुए हैं। छन्दों का प्रयोग प्रायः परिस्थिति के अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने में भी हुआ है।

सात्वती वृत्ति से पूर्ण इस कृति में यथावसर गुण, रीति आदि का उपयोग हुआ है।

इस प्रकार भोज की चम्पूरामायण में अनौचित्य का प्रायः अभाव पाया जा सकता है।

ध्वनि—

भोज ने काव्य में ध्वनि के महत्व को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। सरस्वती-कण्ठाभरण में शब्दगुण के एक भेद, गम्भीर्य में ध्वनि को आवश्यक बताया गया है[126]—

ध्वनिमत्ता तु गाम्भीर्यम्।

व्याख्या में रत्नेवश्र मिश्र कहता है—

ध्वननन्ध्वनिर्व्यंजनात्मा व्यापारः।

इस काल के काव्य-शास्त्र के पण्डित शब्दशक्ति के क्षेत्र में प्रमुखतः दो खेमों में बंटे हुए थे। एक तात्पर्यवादी थे तथा दूसरे ध्वनिवादी। दोनों ही एक-दूसरे के अभिमतों का खण्डन करने में अपनी मेधा-शक्ति तथा शौर्य का व्यय करते थे। भोज ने इन दोनों अभिमतों में सामंजस्य स्थापित करने की दृष्टि से ही सम्भवतः शृंगारप्रकाश के प्रारम्भ में कहा[127]—

तात्पर्यमेव वचसि ध्वनिरेव काव्ये।

काव्यप्रकाश में मम्मट ने ध्वनि पर विस्तार से विचार किया है। तदनुसार ध्वनि दो प्रकार की होती है—अविवक्षित-वाच्य तथा विवक्षित-वाच्य। विवक्षित-वाच्य के भी अलक्ष्यक्रम तथा लक्ष्यक्रम दो भेद होते हैं। रस, भाव, उनके आभास आदि अलक्ष्यक्रम के अन्तर्गत परिगणित होते हैं।[128] संलक्ष्यक्रमव्यंग्य के तीन भेद होते हैं—

शब्दशक्त्युत्थ, अर्थशक्त्युत्थ तथा उभयशक्त्युत्थ। शब्दशक्त्युत्थ ध्वनि के वस्तुध्वनि तथा अलंकार ध्वनि, दो उपभेद होते हैं। अर्थशक्त्युत्थ ध्वनि भी स्वतःसिद्ध, कविप्रौढोक्ति सिद्ध तथा कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध रूप तीन प्रकार की होती है। इनमें से प्रत्येक के चार-चार भेद होते हैं—

1. वस्तु से वस्तु-ध्वनि,
2. वस्तु से अलंकार-ध्वनि,

3. अलंकार से वस्तु-ध्वनि तथा
4. अलंकार से अलंकार-ध्वनि ।[129]

गुणीभूत व्यंग्य के आठ भेद होते हैं[130]—

1. अगूढ,
2. अपर का अंग,
3. वाच्यसिद्ध्यंग,
4. अस्फुट,
5. सन्दिग्ध-प्राधान्य,
6. तुल्य-प्राधान्य,
7. काकु से आक्षिप्त तथा
8. असुन्दर ।

चम्पूरामायण में निहित ध्वनि तथा रसप्रभृति, उसके अंग-प्रत्यंगों के उपलब्ध उदाहरणों का यथासम्भव विवरण 'ध्वनि' के अन्तर्गत ही दिया जायगा ।

(क) असंलक्ष्यक्रम-व्यंग्य-रस—

रामायण का अंगी रस – करुण

स्वयं भोज के अनुसार चम्पूरामायण वाल्मीकि-रामायण का सार है । स्वभावतः इस कृति का निर्माण उसी के चरण-चिह्नों पर हुआ । आदिकाव्य के उद्गम का मूल कारण शोक है । स्वयं वाल्मीकि भी इसे स्वीकार करते हैं[131]

शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ।

तथा

शोकः श्लोकत्वमागतः ।

इसी तथ्य को कालिदास भी स्वीकार करते हैं[132]

श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।

तथा भवभूति ने स्थायीभाव स्वीकार किया तो एकमात्र शोक को, रस स्वीकार किया तो करुण को[133]

एको रसः करुण एक निमित्तभेदात् ।

जो पत्थर को भी रुला दे, जो वज्र का भी हृदय विदीर्ण कर दे । वही करुण है —

अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।

आनन्दवर्धनाचार्य स्वीकार करते हैं कि रामायण का अंगी रस करुण है[134]—

रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादिकविना सूचितः
'शोकः श्लोकत्वमागतः' इत्येवं वादिना । निर्यूढश्च स एव
सीतात्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता ।

रामायणचम्पू भोज की अपूर्ण कृति है। उसमें सीता तथा राम के अत्यन्त वियोग की अवस्था वर्णित नहीं है परन्तु इससे पूर्व भी अनेक स्थलों पर करुण का परिपाक हो जाता है जिन्हें भोज अपनी कृति में प्रत्यक्षवत् प्रस्तुत करता है।

उपर्युक्त स्थलों पर प्रस्तुतीकरण संक्षिप्त परन्तु इतना हृदयद्रावक हुआ है कि वह करुण रस की निष्पत्ति कर पाने में अत्यन्त सफल हैं। यहां भोज की उक्तियां सहृदयों के हृदय को पिघला पाने में सहज समर्थ हैं।

'देखन में छोटे लगें घाव करें गम्भीर'

की स्थिति भोज की इस संक्षिप्त कृति में असुलभ नहीं है।

रामायण के अनुरूप ही चम्पूरामायण का भी अंगी-रस करुण तथा अन्य रस अंगरूप में प्रस्तुत हुए हैं तथा इनका परिपाक भी इसी रूप में हुआ है।

चम्पूरामायण का अंगीरस—करुण

अलंकारों से भूपित तथा चमत्कार से पूरित शैली का उपयोग करने पर भी चम्पूरामायण में कतिपय मार्मिक स्थल भी पाये जा सकते हैं जहां अलंकारों का अभाव है। यदि हैं भी तो उनका या तो प्रभाव क्षीण है अथवा भावोद्दीपन में सहयोगी ही रहे है। कैकेयी के प्रति दशरथ अपने हृदय की व्यथा सीधे-सादे शब्दों में व्यक्त करते हैं[135]

वत्सं कठोरहृदये ! नयनाभिरामं
रामं विना न खलु तिष्ठति जीवितं मे।
धातुर्बलादुपयमस्त्वयि जातपूर्वः
कैकेयि ! मामुपयमं नयतीति मन्ये ॥

'उपयम' में अर्थभेद के अतिरिक्त यदि इस श्लोक का चमत्कार है तो वह यही कि दशरथ के हृदय की दारुण व्यथा मार्मिक ढंग से व्यक्त कर दी गयी है।

साथ ही यह श्लोक भी इस दृष्टि से उपेक्षणीय नहीं है[136]

वासस्त्वचां भवतु किंचन तारवीणां
छायाद्रुमाश्च भवनानि भवन्तु धन्याः।
कैकेयि ! तस्य शयनानि कथं भवेयु-
स्त्वच्चेतसोऽपि कठिनानि शिलातलानि ॥

वनवास की बात सुनकर सीता की मनोदशा की अभिव्यक्ति मार्मिक बन पड़ी है।[137] वन में साथ चलने के लिए सीता का आग्रह होने पर राम समझाते हैं[138]—

प्रिये ! जनकनन्दिनि ! प्रकृतिपेशलामीदृशीं
कथं ग्लपयितुं सहे तव शिरीषमृद्वीं तनूम्।
गृहीतहरिणीगणत्रिकविसारि नानाशिरा-
क्षतक्षरितशोणितारुणवृकानने कानने ॥

पूर्वार्द्ध में सीता को समझाने की स्थिति होने से प्रसाद गुण है परन्तु उत्तरार्द्ध में जंगली भेड़िये के द्वारा विदारित हरिणी का भयंकर वर्णन होने से ओजमयी वाणी हो गयी है। भयंकर वन में कोमलांगी सीता की कल्पना मात्र से राम सिहर जाते हैं।

दशरथ की मरणावस्था का वर्णन भी कवि की सहानुभूति प्राप्त कर लेता है, वह संवेदनशील हो उठता है[139]

नाक्रान्तास्त्रिदिवः परैः सुमनसां कान्ता न बन्दीकृता
नाकीर्णं पुरुहूतशासनधरैः साकेतबाह्याङ्गणम् ।
नादिष्टाः सचिवाश्च भूतलपरित्राणाय यद्यप्यसौ
नाकं शोकवशादगाद्दशरथो नास्थां वहन्वाहने ॥

वाक्य में प्रयुक्त विशिष्ट शब्द अथवा सम्बोधन कभी-कभी इतना सशक्त होता है कि वाक्य की सारी आकांक्षाएं उसमें केन्द्रित हो जाती हैं। महानाटक में उक्त 'रामोऽस्मि सर्वं सहे' में राम का दुःख–सहिष्णुत्व प्रकट होता है। वहां 'राम' का वाच्यार्थ या लक्ष्यार्थ नहीं अपितु उपर्युक्त व्यंग्यार्थ ही अभीष्ट है।

वह शब्द, जो किसी के सम्बोधनार्थ प्रयुक्त किया जाता है, उसके व्यक्तित्व का उन्मीलन करने में बहुत सीमा तक समर्थ होता है। सम्बोधनों के माध्यम से वक्ता वर्ण्य व्यक्ति के भूत तथा वर्तमान को ही प्रकट नहीं करता वरन् उसके भविष्य को भी प्रभावित करता है। ताराविलाप में प्रयुक्त कतिपय सम्बोधनों की यहां चर्चा की जायेगी।

कारुण्यं निरवधि यत्त्वप्रसिद्धं
शीतांशोः सहजमिवार्तिहारि शैत्यम् ।
तत्सर्वं मनुकुलनाथ ! रम्यकीर्ते ।
मत्पापात्कथय कथं त्वया निरस्तम् ॥[140]

'मनुकुलनाथ' कहने मात्र से प्रकट हो जाता है कि राम उस वंश में उत्पन्न हुए जो महापुरुषों की परम्परा से महान् है तथा जिसका आदिपुरुष धर्मप्रस्थापक तथा धर्मनियन्ता मनु रहा। उसी राम की असीम करुणा-सम्बन्धी कथाएं भी विज्ञात हैं। वही राम अकरुण होकर, अकारण बाली का हन्ता बने। क्या यह उनकी उस कुल-परम्परा तथा मनु द्वारा स्थापित धर्म-परम्परा के अनुकूल है? अब तक जिस राम ने अपने सत्कर्मों से कीर्ति अर्जित की, क्या इस जघन्य कृत्य से उनकी 'रम्यकीर्ति' पर आंच नहीं आयेगी?

श्लोक में प्रयुक्त दो सम्बोधनों के प्रयोग से राम के कुल की गौरवशाली महत्ता, उनकी वर्तमान लोकप्रियता तथा भावी अपयश का एक साथ उद्घाटन कर दिया गया है।

इसी प्रकार इस श्लोक में—

एवंविधे प्रियतमेऽप्यनपेतजीवां
मां राक्षसीति रघुपुंगव ! साधु बुद्ध्वा ।
बाणंविमुञ्च मयि सम्प्रति ताटकारे !
श्रेयो भवेद्दयितसंग ारिणस्ते ॥[141]

में प्रयुक्त 'रघुपुंगव' कहने मात्र से असीम शक्ति के आधार के रूप में राम की मूर्ति प्रस्तुत हो जाती है जिसमें विवेक का सम्यक् सामंजस्य है। ऐसे विवेकशील शक्तिशाली पुरुष से ही अपेक्षा की गयी है कि पति के साथ सती न होने वाली स्त्री को राक्षसी की संज्ञा दे। 'ताटकारे'! सम्बोधन ही स्पष्ट कर देता है कि यदि वध्य स्त्री क्रूर राक्षसी हो तो ऐसी महिलाओं के वध को राम-औचित्य की परिधि में ले आते हैं। ऐसी स्त्रियों के हन्ता को स्त्रीवध का पाप नहीं लगता। ताटका का वध इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है और ऐसे ताटका के हन्ता से ही यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह अन्य राक्षसीतुल्य महिला का भी वध करे। राक्षसीवध के प्रस्ताव को अन्य व्यक्ति स्त्रीवध के पाप के डर से ठुकरा सकता है, परन्तु राम नहीं ठुकरा सकते। 'राक्षसी' शब्द में ताटका की हृदयवेदना पुंजीभूत हो गयी है।

साधारणी क्षितिभुजां मृगयेति पूर्व-
मुक्ता त्वयैव जनसंसदि सत्यवादिन्!
शाखामृगीं तदिह मारय मां शरेण
को नाम राम! मृगयुर्दयते मृगीणाम्॥[142]

'सत्यवादिन्' सम्बोधन देकर राम से यह अपेक्षा की गयी है कि वे शाखामृगी तारा को मारकर अपने इस पूर्वोक्त वचन का पालन करें जिसमें उन्होंने कहा था कि राजाओं में आखेटवृत्ति साधारण रूप से प्राप्त होती है। फिर मानवी पर एक बार दया की जा सकती है परन्तु मृगी पर कौन शिकारी दया करेगा? यहां 'राम' सम्बोधन देकर भी उस आखेटक राम की वृत्ति प्रकट करने का प्रयास किया गया जिसने वत्स जनपद में चललक्ष्यवेध से चार मृगों का आखेट[143] किया तथा मायामृग का भी।[144] पुनः शिकारी के लिए 'मृगयु' (मृग का शिकारी) शब्द का प्रयोग, राम के हृदय में मायामृग के आखेट की स्मृति भी जगा देता है जिसके परिणाम में सीता-हरण से स्वयं सन्तप्त हैं। प्रियविरह की पूर्व घटना की स्मृति से तारा यह अनुभूति करा देना चाहती है कि केवल सीता के विरह से तुम्हारी विकल दशा हो गयी है तो सदा के लिए मुझे बाली से वियुक्त करते तुम्हें दया का लेश भी न छू पाया।

इसी प्रकार 'राघव' तथा 'रघुवर' सम्बोधन राम की युद्धपटुता तथा शौर्य के व्यंजक हैं।[145] इस ग्रन्थ में प्रयुक्त विशेषण भी इसी प्रकार सार्थक हैं।

नाहं सुकेतुतनया न च सप्तसाली
वाली न च त्रिभुवनप्रथितप्रभावः।
तारास्मि वज्रहृदया विशिखैरभेद्या
धन्वी कथं भवसि राघव! मामविध्वा॥[146]

ताराविलाप में भी इस श्लोक को भोज का सर्वाधिक संवेदन प्राप्त हुआ है। ध्वन्यालोककार के द्वारा उद्धृत—'कठोरहृदयो रामोऽस्मि सर्वं सहे' में व्यंजना के माध्यम से जो करुण वेदना प्रस्फुटित होती है वही वेदना, उसी शक्ति तथा तीक्ष्णता से यहां 'तारास्मि वज्रहृदया' में प्रस्फुटित हो रही है। भाषा की सरलता, व्यंग्य की प्रधानता तथा अलंकारों के भार से मुक्त तारा की यह मार्मिक वाणी सर्वाधिक हृदयविदारक है। करुण रस के ये सशक्त उदाहरण हैं।

चम्पूरामायण के शृंगरस—

चम्पूरामायण में ऐसे स्थलों का अभाव है जहां शृंगाररस का परिपाक हुआ हो। बालकाण्ड के अन्त में ऐसा अवसर उपलब्ध था[147] जहां रचयिता शृंगार को यदृच्छया विस्तार से प्रस्तुत कर सकता था। परन्तु भोज को यह अभीष्ट नहीं था। कथा की त्वरा के साथ ही सम्भवतः यह भी कारण हो कि यहां जो शृंगार वर्णन होता वह राम तथा सीता आदि का होने से देवी-सम्भोग वर्णन होता, जो माता-पिता के सम्भोग वर्णन के समान निन्द्य माना गया है।[148] कुमार सम्भव के ऐसे ही वर्णन के कारण कालिदास आनन्दवर्धन, मम्मट आदि आचार्यों के आलोचना के पात्र बने थे।

शृंगाराभास की स्थिति शूर्पणखा की रतिप्रार्थना में पायी जा सकती है।[149] चन्द्रमा को शृंगारोद्दीपक 'शृंगारजीवित' कहा गया है।[150] परन्तु रसों में शृंगार को प्रमुख मानने की जिस भावना का सरस्वतीकण्ठाभरण में वपन किया तथा शृंगार प्रकाश में[151]—

शृंगार एव हृदि मानवतो जनस्य।

तथा

शृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः।

कहकर एवं सम्पूर्ण शृंगारप्रकाश की रचना कर जिसका पल्लवन किया गया उसी शृंगार को रामायण चम्पू में भी 'रसों में प्रमुख' कहने की लालसा कवि रोक नहीं पाया।[152] भोज की शृंगार विषयक यह भावना बद्धमूल थी।

विप्रलम्भ शृंगार की स्थिति सीताहरण के पश्चात् रामाविलाप में प्राप्त होती है।[153]

हा कष्टमत्र न हि सा किमिदं प्रवृत्त-
मालोकयाभि चटुलामिह पादमुद्राम्।
मां वीक्ष्य नूनमगृहीतमृगं मुहूर्त-
मन्तर्हिता तरुषु रोषवतीव सीता॥[154]

हा! यहां सीता नहीं है। यह क्या हो गया? यहां अस्तव्यस्त चरणचिह्न दिखाई दे रहे हैं। मुझे मृगरहित देखकर (सीता) अवश्य ही क्रोधित होकर वृक्षों के पीछे छिप गयी होगी।

मृगलोचने! यदि अपूर्व मृग की ही चाह है तो चन्द्र का मृग तुझे लाकर दे दूं। तू प्रकट तो हो जा। और जब तक तुम उस मृग को न छोड़ोगी, मृगरहित चन्द्रमा (लांछन के अभाव में) तुम्हारे मुख सा ही बना रहेगा।[155]

यद्यस्ति कौतुकमपूर्वमृगे मृगाक्षि!
चान्द्रं हरामि हरिणं मम सन्निधेहि!
यावन्न मुञ्चसि मया हृतमेणमेनं
तावद्दधातु तव वक्त्रतुलां मृगाङ्कः॥

लोकान्तर को सिधारे अपने श्वशुर को प्रणाम करने के लिए, वनवास की अवधि पूर्ण किये बिना ही यदि तुम चली गयीं, तो अनुशंसा करके मुझे भी वहीं बुला लो। भरत को राज्य देने का काम लक्ष्मण कर लेंगे।[156]

लोकान्तरप्रणयिनं श्वशुरं प्रणन्तु-
माज्ञाप्तकालमतिलङ्घ्य यदि प्रयासि ।
विज्ञाप्य मामपि समाहूवय साध्वि ! तस्यै
सौमित्रिरेव भरते निदधातु राज्यम् ॥

परन्तु प्रतीत होता है कि इस हृदयविदारक अवसर पर भी भोज का मन रमा नहीं । और इसीलिए वे—

तादृग्विधामपि कथां कथयन् स्ववाचा
वाल्मीकजन्ममुनिरेव कठोरचेताः ॥

कहकर इस प्रसंग को यथाशीघ्र समाप्त कर आगे बढ़ जाते हैं ।[157]

स्वभावोक्ति के माध्यम से भयानक रस के क्षेत्र में अवतीर्ण होने का प्रयास इस उक्ति में किया गया है[158]—

हित्वाद्रेः शिखराणि तानि परितः क्षिप्त्वा हसित्वा क्रुधा
कृत्वा हस्तविघट्टनं तत इतः स्थित्वा नटित्वा मुहुः ।
सिक्त्वा क्ष्मामसृजा स्रजान्तकृतया बद्ध्वा कचान् खेचरान्
दग्ध्वाग्नेः सदृशा दृशा निशिचरा रुन्धन्ति रन्ध्रं दिवः ॥

पर्वत-शिखरों को फेंकते हुए क्रोध से हंसकर, हाथ फटकारते हुए इधर-उधर घूमते हुए नाचकर, धरती को रुधिर से सींचकर, आंतों की माला से बालों को बांधकर तथा आकाशचारियों को अपनी आग के समान दृष्टि से जलाकर राक्षस आकाश में छा गये ।

अपहृत सीता को ले जाते हुए रावण का मार्ग जटायु रोकता है तथा रोषभरी ललकार से रावण का क्रोध भड़काता है तो वीररस में प्रवेश कर जाते हैं[159]—

हा नाथ का चिरायसीति बहुशो व्याकुश्य बाष्पाविलं
चक्षुर्दिक्षु विमुञ्चतीं दशरथस्याद्यामवेक्ष्य स्नुषाम् ॥
रे रे राक्षस मा वधूं प्ररुदतीं मुञ्चेति गृध्राधिपो
रुद्ध्वा ध्वानमनल्पकोपमकरोदग्रे वणं रावणम् ॥

स्थायी भाव उत्साह, विभाव, अनुभाव तथा संचारियों से पुष्ट हो जाता है[160]—

दशमुखरथमाशु ध्वस्तरथ्यं विसूतं
शिथिलतरवरूथं शीर्ण-चक्रं स चक्रे ।
गरुदमिहतशक्ति प्रासबाणासखड्ग-
त्रिशिखविशिखतूणीपाशकुन्तः शकुन्तः ॥

सुरसा को जीतने के लिए हनुमान् के द्वारा अपनी आकृति बढ़ाना, ऐसी कि चरण सागर को छूने लगे तथा शिर आकाश गंगा को ।[161]

उज्जृम्भितस्य तरसा सुरसां विजेतुं
पादौ पयोधिकलितौ पवमानसूनोः ।

तस्योत्तमाङ्गमभवद्गगनस्रवन्ती-
वीचीचयस्खलितसीकरमालभारि ॥[162]

तब अचानक लघु होकर सुरसा के जठर में प्रवेश कर बाहर निकल आये और इस प्रकार उन्होंने वामन का आचरण किया ।[163]

तनूं तनूकृत्य तदा हनुमान्
कृत्वा प्रवेशं जठरे तदीये ।
ततो विनिष्क्रम्य स चक्रपाणे
स्त्रिविक्रमस्य क्रममेव चक्रे ॥

यहां अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है ।

विश्वामित्र, भरद्वाज, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि ऋषियों तथा उनके आश्रमों के वर्णन से शान्त रस की पुष्टि की जा सकती थी परन्तु भोज केवल संकेत देकर ही आगे बढ़ गये। केवल अगस्त्य ऋषि के आश्रम का कुछ विशद वर्णन किया गया है परन्तु वहाँ शान्त की अपेक्षा अद्भुत तथा भयानक का ही अधिक संचार होता है। ऐसे विशाल अजगर, जिनके खुले मुख में, उन्हें महापथ जानकर वन्य हाथी घुस जाते हैं। तथा अगस्त्य के करपात से विन्ध्य का झुक जाना एवं ऐसे ही उनके अनेक विचित्र कर्मों का यहां विवरण प्राप्त होता है ।[164] शम का कुछ संकेत मात्र दिया गया है—[165]

प्रभामिवार्की तमसां निहन्त्री
ब्राह्मीं दधानं नियमेन लक्ष्मीम् ।
तपोनिधिं शौर्यनिधिः प्रसन्नः
स्वनाम संकीर्त्य ननाम रामः ॥

इस प्रकार चम्पूरामायण में वाल्मीकि-रामायण में उपलब्ध रसों को प्रायः पाया जा सकता है। उसके सीमित आकार में भी इन विविध रसों ने जो उल्लास पाया वह श्लाघ्य ही कहा जा सकेगा। स्वयं भोज के अनुसार वही कृति हृदयावर्जक तथा कविप्रिय बन सकती है जो रस-भाव से पूर्ण होती है ।[166]

संलक्ष्य–क्रम–व्यंग्य—

स्वतःसिद्ध कविप्रौढ़ोक्ति—

युगपत्प्राप्तगुणयोश्चाप भार्गवरामयोः ।
ऋजुता वक्रतां प्राप्ता वक्रतापि तथार्जवम् ॥

इस श्लोक में विरोधाभास के साथ ही असम्बन्ध में भी सम्बन्धरूपा अतिशयोक्ति है। और वह स्वतःसिद्ध कविप्रौढ़ोक्ति से सिद्ध कार्यकारण की पौर्वापर्यनिबन्धना है ।[167]

अलंकार से अलंकार–ध्वनि —

अलंकारों की बहुलता होने पर भी चम्पूरामायण में ऐसे स्थलों का अभाव नहीं जहां भाषा को दबाकर भाव आगे बढ़ गये हों[168]—

वासस्त्वचां भवतु किंचन तारवीणां
छायाद्रुमाश्च भवनानि भवन्तु धन्याः ।
कैकेयि तस्य शयनानि कथं भवे -
स्त्वच्चेतसोऽपि कठिनानि शिलातलानि ।।

तरुओं की त्वचा के वसन बन जायेंगे तथा छायादार द्रुम भवन का काम दे देंगे । परन्तु कैकेयि ! तेरे चित्त से भी कठिन शिलातल शयन कैसे बन पायेंगे ? टीकाकार रामचन्द्र के अनुसार[169]—

रामस्य भावीनि शयनानि शिलातलानि
त्वच्चेतसोऽपि कठिनानि कथं भवेयुः ?
त्वच्चेतसः कठिनतराणि नैव, किंतु त्वच्चेतः
शिलातलसमकठिनमिति ध्वन्यते ।

राम के भावी शयन, शिलातल तेरे चित्त से भी कठिन कैसे होंगे ? इस प्रसंग से यह ध्वनित होता है कि वे तेरे चित्त से कठिन नहीं, वरन् तेरा चित्त ही शिलातल के समान कठिन है । यहां उपमा में व्यंजित व्यतिरेक होने से, अलंकार-ध्वनि है ।

इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड के ही इस श्लोक में[170]—

अथ दशरथः पुत्रं रामं स्वतस्त्रिजगत्पतिं
स्वविषयमहीमात्रे कर्तुं पतिं विदधे मतिम् ।
भुवनकरणे कल्पं कल्याणभूदरमादरा-
त्स्वगृहपटलीधुर्यस्तम्भं विधातुमना इव ।।

अलंकार से अलंकार-ध्वनि है । राम की धुर्यस्तम्भ रूप में सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है । तथा इससे निदर्शना व्यंजित होतीं है । क्योंकि उत्प्रेक्षा से विशिष्ट मति-विधान तथा मेरुस्तम्भ-विधान करने वाले वाक्यार्थ में निर्दिष्ट एकत्व के असम्भव होने से सादृश्यलक्षणा में असम्भव वस्तु सम्बन्धित वाक्यार्थ वृत्ति निदर्शना का भेद व्यंजित होता है ।[171]

यद्यस्ति कौतुकमपूर्वमृगे मृगाक्षि !
चान्द्रं हरामि हरिणं मम सत्र धेहि ।
यावन्न मुञ्चसि मया हृतमेणमेनं
तावद्दधातु तव वक्त्रतुलां मृगाङ्कः ।।

इस[172]पद्य में 'तुलां दधातु' कहने से सम्भावितार्थोपमा हुई । तथा इससे उपमान से उपमेय का आधिक्य प्रतिपादन रूप व्यतिरेक व्यंजित होता है । अतः यहां भी अलंकार-ध्वनि ही परिलक्षित होती है ।

अलंकार से वस्तुध्वनि—

प्रारब्धयात्रस्य रघूद्वहस्य प्रागेव सीता रथमारुरोह ।
आनीलरथ्यं रथमारुरुक्षोरहृतां प्रभोरग्रसरी प्रभेव ।।[173]

यहां श्रौती पूर्णोपमा है। तथा इससे राम तथा सीता का अत्यन्त अविनाभूत रूप वस्तु व्यंजित होने से यहां उपमा अलंकार से वस्तुध्वनि है। इसी प्रकार[174]—

देव ! त्वत्तनयस्य कुन्तलनरं क्षीरैः स्वधेनूद्भवैः
सेक्तुं नालमरुन्धतीपतिरभूत्तस्याभिषेकोत्सवे ।
सिक्तो हन्त स एष मैथिलसुताबाष्पोदकोरावकै-
र्न्यग्रोधक्षरितैर्जटां रचयितुं क्षीरैर्निषादाहृतैः ॥

इस श्लोक में, अरुन्धतीपति वसिष्ठ की कामधेनु के दूध से अभिषेक हो सकने पर भी वह नहीं हो सका, इस उक्ति से 'सम्बन्धे सम्बन्धरूपा अतिशयोक्ति' है। इस अतिशयोक्ति से 'कुन्तलनर' की रमणीयता व्यंजित होती है अतः अलंकार से वस्तुध्वनि है।

गुणीभूत व्यंग्य—

वाच्यसिद्ध्यङ्ग व्यंग्य—

विलङ्घ्य विविधान् देशान् भरतो धृतवल्कलः ।
विषयं स्वमुपाश्रित्य विषये विमुखोऽभवत् ।[175]

प्रकृत अर्थ के अतिरिक्त यहां पर अप्रकृत अर्थ भी ध्वनित होता है। टीकाकार रामचन्द्र ने लिखा है—

अत्रायं ध्वनिः—भरतो नाम कश्चन मुनिर्विविधां-
स्तिर्यङ्मनुष्यादिरूपेण बहुप्रकारान् । दिश्यन्त इति
देशान् शरीराणि विलङ्घ्य, तत्तत्कर्मानुसारेण
तत्तच्छरीरोपाध्यवच्छिन्नतया यावत्कर्मानुभवं स्थित्वा
तत्तत्कर्मक्षये तानि सर्वाण्यतिक्रम्येत्यर्थः । धृतवल्कलश्चरम-
शरीरावच्छिन्नदशायां वैराग्याद्वल्कलधारी सन् ।
स्वं स्वहृदयाकाशान्तस्थविषयं ज्ञेयतया निर्दिष्टं
चिदानन्दात्मकं ब्रह्मोपाश्रित्य कुतश्चिद् भाग्योदयाद्ध्यानगोचरं
कृत्वा विषये तुच्छे सांसारिक सुखे विमुखो विरक्तोऽभवत् ।
अत्र अभिधायाः प्रकृतार्थनियन्त्रणादप्रकृतमुनिगोचरशब्दमूलोयं
ध्वनिरिति संक्षेपः ।

यहां मुनिचरितव्यंजक 'धृतवल्कल' शब्द से अपर भरत सम्बद्ध अर्थ ध्वनित होता है। अतः शब्दमूलक वाच्यसिद्ध्यङ्ग व्यंग्य है।

सीतापतेः किसलयैः परिकल्प्य तल्पं
संवार्य तत्वदमनाय निशासु दृष्टिम् ।
धन्वी तदंघ्रिभजनादिव पुण्यलभ्या-
दस्वप्न एव वनवर्त्मनि लक्ष्मणोभूत् ॥

इस श्लोक में हेतूत्प्रेक्षा है। यहां 'अस्वप्न' शब्द के कारण विपय शब्दशक्तिमूलक ध्वनि है। एवं वह उत्प्रेक्षानिर्वाहक होने से वाच्यसिद्व्यंग है।

काकुव्यंग्य—

काकुगुणीभूत व्यंग्य का उदाहरण भी चम्पूरामायण में प्राप्त होता है—

तातः स्ववाचा व्यवहृत्य हृद्यं
वत्साभिषेकोत्सवमंगलं मे।
प्रणामसंज्ञस्य मयार्पितस्य
किं पूर्णपात्रस्य न पात्रमासीत् ॥

'नासीत् किं' इस काकु से दशरथ की योग्यतापादान द्वारा, राम के द्वारा भरत का अंगीकरण आक्षिप्त किया गया है। अतः यहां गुणीभूत व्यंग्य है।

इस प्रकार भोज के चम्पूरामायण में ध्वनि के विविध रूप दृष्टिगत होते है। स्वयं कवि के अनुसार कवियों को वह अलंकार-निबन्ध रुचिकर नहीं लगता जो रसभाव से रहित होता है।

रूपचित्रण तथा दृश्यवर्णन

रूपचित्रण--

चम्पूरामायण में ऐसे अनेक स्थल आते हैं जहां पर विविध पात्रों के व्यक्तित्व का उन्मीलन उनके रूपचित्रण से किया गया है। इस ग्रन्थ में रूपचित्रण के लिए, गद्य तथा पद्य दोनों का आश्रय लिया गया है।

विश्वामित्र के विशिष्ट व्यक्तित्व का उन्मीलन श्लिष्टोपमा के माध्यम से व्यक्त हुआ है।

पङ्क्तिरथस्तपश्चर्या जाता नामाश्चर्याणाभायतनं
त्रिशङ्कुयाजिनं भगवन्तं पद्यप्रबन्धमिव दर्शितसर्गभेदं
प्राकृतव्याकरणमिव प्रकटितवर्णव्यत्यासं बुधमिव
सोमसुतं कुशिकसुतमद्राक्षीत्।

इसे पढ़कर सहसा बाणभट्ट की कादम्बरी के शूद्रकवर्णन के इस अंश का स्मरण हो आता है—

चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशंखचक्रलांछनः, हर इव
जितमन्मथः, गुह इवाप्रतिहतशक्तिः कमलयोनिरिव
विमानीकृतराजहंसमण्डलः............।

अगस्त्य का परिचय देते हुए भोज रूपवर्णन की अपेक्षा गुणवर्णन में अधिक लिप्त हो जाते है।[179]

एवं विपिनविलोकनविस्मितमतिस्तद्टजनिकटमासाद्य रामः
शिष्यैः प्रवेशितः सकललोकवन्द्यमानचरणारविन्दमरविन्द-

सम्भवमिव वृन्दारकैर्मुनिवृन्दारकैश्च परिवृतं कोपहुंकारनिरहंकाराय
नहुषाय भुजंगभावदूषिताय दत्तभुजंगभावाय खगगतिनिरोधकल्य-
वैपुल्ययोर्दुरवगाहमहावनयोर्विन्ध्यशैलसिन्धुराजयोरगाधतागाधता-
तस्करकरोदरमुदरजातवेदोविरचितवातापिदानवावलेपलोपं
लोपामुद्रावल्लभं सकलसरिद्वल्लभनिःशेषीकरणवाडवं
वाडवप्रशस्तमपास्तमपास्तमपास्तसमस्ताशमभ्युपगतदक्षिणाशं
वृषेकतानजन्मानमपि कुम्भजन्मानं भगवन्तमगस्त्यमपश्यत् ।

कुशलव का परिचय, उनकी देहकान्ति तथा स्वरसुभगता बड़ी कुशलता से व्यक्त की गयी है[180]—

उपागतौ मिलितपरस्परोपमौ
बहुश्रुतौ श्रुतिमधुरस्वरान्वितौ ।
विचक्षणौ विविधनरेन्द्रलक्षणौ
कुशीलवौ कुशलवनामधारिणौ ॥

मुनिजनानुरूप राम के मनोहारी रूप को प्रस्तुत करने में भोज की वर्णनपटुता प्रत्यक्ष हो जाती है[181]—

अथावासं शान्तेरकृतसुकृतानामसुलभं
नवाम्भोदश्यामं नलिननयनं बल्कलधरम् ।
जटाजूटपीडं भुजगपतिभोगोपम-भुजं
ददर्श श्रीमन्तं विपिनभुवि सीतासहचरम् ॥

रावण के रूपवर्णन में भोज की कल्पनाशक्ति का चमत्कार परिलक्षित होता है[182]—

सोऽयं ददर्श दशकन्धरमन्धकारि-
लीलाद्रितोलनपरीक्षितबाहुवीर्यम् ।
बन्दीकृतेन्द्रपुरवारवधूकराग्र-
व्याधूतचामरमरुच्चलितोत्तरीयम् ॥

आपाटलाधरपुटान्तविराजमान-
दंष्ट्रामहः प्रसरशारशरीरकान्तिम् ।
सन्ध्याम्बुदान्तरितमध्यसुधामयूख-
रेखाभिराममिव वासवनीलशैलम् ॥

सङ्ग्रामकेलिपरिघट्टनभग्नमग्न-
दिग्दन्तिदन्तकृतमुद्रभुजान्तरालम् ।
छायात्मना प्रतितरङ्गविराजमान-
शीतांशुमण्डलसनाथमिवाम्बुराशिम् ॥

निःश्रेयसप्रणयिनीं पदवीं निरोद्धुं-
त्रैलोक्यपापपरिपाकमिवात्तरूपम् ।
सूर्येन्दुपावकमहांसि तपोबलेन
जित्वा यथेच्छमभिषिक्तमिवान्धकारम् ॥

इसी प्रकार बालकाण्ड में निरूपित विष्णु का भव्यदर्शन[183] तथा रावण के वीरकृत्यों का वर्णन[184] भी आकर्षक तथा प्रभावशाली है।

उपर्युक्त मुनिवेषधारी श्रीराम, रावण, विष्णु आदि का इतना मनोरम चित्रण हुआ है कि चित्रकार की तूलिका भी इन वर्णनों के आधार पर सुन्दर चित्रांकन कर सके। ऐसे चित्रांकन-सदृश वर्णनों में वह दृश्य भी असाधारण है जहां घुटनों के बल बैठा राम के बाण से आहत बाली धनुष के सिरे पर हाथ धरे समीप ही खड़े श्रीराम से वार्तालाप कर रहा है। वह निर्भय दृष्टि से सुग्रीव की ओर भी देख रहा है। रक्त प्रवाहित होने से शरीर का वर्ण शार (श्वेत श्याम रतनार) हो रहा है, वृत्ति से वह उस समय शान्त सागर सा है तथा जिससे लिपटकर तारा विलाप कर रही है।[185]

नगर-वर्णनः—

नगर-वर्णन के पर्याप्त अवसर उपलब्ध थे परन्तु कथा की त्वरा में भोज की लेखनी नगर-वर्णन के लिए रुक न सकी, प्रवृत्त न हो सकी।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में अयोध्या का परिचय केवल एक ही श्लोक में दिया गया है[186]—

अस्ति प्रशस्ता जनलोचनाना-
मानन्दसंदायिषु कोसलेषु ।
आज्ञासमुत्सारितदानवानां
राज्ञामयोध्येति पुरी रघूणाम् ॥

इसी प्रकार एक श्लोक से रावण की राजधानी लंका की दुर्गमता तथा मणिभवनों की मोहकता प्रकट कर दी गयी है।[187]

अस्ति प्रशस्तविभवैर्विबुधैरलङ्घ्या-
लङ्केति नाम रजनीचर-राजधानी ।
माणिक्यमन्दिरभुवां महसां प्ररोहै-
स्तेजस्त्रयाय दिनदीपदशां दिशन्ति ॥

लंका के उद्यान, तोरण, प्रासाद आदि के सम्बन्ध में प्रासंगिक विकीर्ण निर्देश सुन्दरकाण्ड में भी प्राप्त होते हैं। परन्तु कथा की त्वरा में विस्तृत परिचय नहीं दिया जा सका है।

उपर्युक्त संक्षेप में अयोध्या तथा लंका का जो भी परिचय दिया गया वह उनकी भव्यता प्रस्तुत करने में समर्थ है।

सैन्य-वर्णनः—

चित्रकूट की ओर प्रयाण करते समय भरत की सेना का अत्यन्त संक्षेप में वर्णन प्राप्त होता है। अपर्याप्त होने पर भी वहां चतुरंगिणी सेना के सामने पथ को सम करते चलने का विवरण तथा इसकी भीड़ से उड़ने वाली घटाटोप धूल के विषय में संकेत दिये गये हैं।[188]

तत्र सान्तःपुर एव पुरान्निर्गत्य शिल्पिवर्गसभीकृतसरणिर्भरतः
पुरतः प्रसृतनरगजरथतुरगचरणक्षुण्णक्षोणीतलसमुत्कीर्णेन
रेणुनिकुरुम्बेण जम्बालयन्नम्बरगड्.गां गड्.गाञ्च............।

आश्रम-वर्णनः—

विश्वामित्र, वसिष्ठ, अहिल्या, भरद्वाज, सुतीक्ष्ण आदि ऋषियों के आश्रमों का विस्तृत तथा हृदयावर्जक विवरण दिया जा सकता था। परन्तु भोज ने किसी भी आश्रम का अपेक्षित वर्णन नहीं किया है। केवल अगस्त्य मुनि के आश्रम का संकेतात्मक विवरण दिया गया है। वहां भी आश्रम-वर्णन की अपेक्षा कुम्भज के अलौकिक कृत्यों से परिचय करवाने में ही कवि की लेखनी अधिक रमी है।[189]

वस्तुतः ऐसे विस्तृत विवरणों की अपेक्षा करने से ही रामायण के विस्तृत कथाभाग को चम्पूरामायण के लघुकलेवर में यथावत् उतार पाने में कवि समर्थ हो सका।

भोज की प्रिय कल्पनाएं:—

कई स्थानों पर चम्पूरामायण का रचयिता एक ही कल्पना का एकाधिक स्थानों पर उपयोग कर लेता है।

(१) हनुमान् को लंकाप्रवेशनाटक का सूत्रधार कहा गया है[190]—

लड्.काप्रवेशनवनाटकसूत्रधारः।

तथा मायामृग को समरनाटक का सूत्रधार कहा गया है।[191]

मायामृगे समरनाटकसूत्रधारे।

(२) मायामृग तथा शाखामृग शब्दों को वसन्ततिलका के क्रमशः प्रथम तथा द्वितीय चरण में रखकर नादसौन्दर्य की सर्जना का प्रयास किया गया है।[192]

मायामृगेण तव मैथिलि! वञ्चितायाः
शाखामृगेण पुनरागतिरित्ययुक्तम्।
तथा[193]
मायामृगे समरनाटकसूत्रधारे
शाखामृगे च भवतः प्रतिकूलवाले।

(३) देवालय अथवा सूने देवालय से जैसे श्वान मांस के भ्रम में माला उठा ले जाय उसी प्रकार रावण राम के आश्रम से सीता को उठा ले गया तथा मांस को ले जाकर श्मशान में फेंकने समान सीता को लंका में रख दी।

मालां नवोत्पलमयीं पललभ्रमेण
देवालयादिव निरस्तजनादलर्कः।[194]
तथा
मालां देवकुलादिवामिषधिया क्षिप्तां श्मशाने शुना।[195]

इसी प्रकार अनेक स्थलों पर विविध शब्द तथा अर्थसम्बन्धी समता प्राप्त होती हैं। प्रतीत होता है, ये कल्पनाएं भोज को विशेष प्रिय थीं।

छन्दः—

विविध रस तथा भावों को लयबद्ध पद्य में प्रस्तुत करने के लिए छन्दों की आवश्यकता रही है। भोज का चम्पूरामायण पद्यबहुल ग्रन्थ है। इसमें कुल ३७१ श्लोक हैं जो २१ प्रकार के छन्दों में निबद्ध किये गये हैं। भोज की इस कृति में प्रयुक्त विभिन्न छन्दों की संख्या इस प्रकार है—

क्रमांक	छन्दोऽभिधान	कुल श्लोक-संख्या
१	अनुष्टुभ्	१०६
२	आर्या	१
३	इन्द्रवज्रा	१३
४	उपजाति	२५
५	उपेन्द्रवज्रा	४
६	औपच्छन्दसिक	२
७	तत्कुटक	२
८	द्रुतविलम्बित	४
९	पुष्पिताग्रा	६
१०	पृथ्वी	५
११	प्रहर्षिणी	३
१२	मन्दाक्रान्ता	९
१३	मालिनी	४३
१४	रथोद्धता	८
१५	रुचिरा	
१६	वसन्ततिलका	८९
१७	शार्दूलविक्रीडित	३१
१८	शालिनी	२
१९	शिखरिणी	६
२०	स्रग्धरा	८
२१	हरिणी	१
	योग	३७१

इन ३७१ श्लोकों में से बालकाण्ड में ११७, अयोध्याकाण्ड में ८६, अरण्यकाण्ड में ४३, किष्किन्धाकाण्ड में ४८ तथा सुन्दरकाण्ड में ७७ श्लोक हैं।

कवि ने एक शार्दूलविक्रीडित छन्द में उस छन्द का अभिधान-सूचक शब्द शार्दूलविक्री-डितम्' व्याज से भी प्रयुक्त किया है[196]—

काकुत्स्थोऽप्यथ रक्षसामधिपतेर्वाग्वागुरावेष्टिते
कृत्वा हाटकताटकेयहरिणे शार्दूलविक्रीडितम् ।
आगच्छन्ननुजेन तत्र गदितामाकर्ण्य वार्तां ततः
सीतासंगमलालसस्तदुटजं रामः प्रतस्थे द्रुतम्'॥

भोज के शृंगारप्रकाश के अनुसार छन्द प्रयोग में औचित्य होना चाहिये ।[197] शृंगार में द्रुतविलम्बित, वीर में वसन्ततिलका, करुण में वैतालीय, रौद्र में स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित आदि का सर्वत्र प्रयोग किया जाय । रामायण-चम्पू में इन तथ्यों का सर्वत्र तो नहीं परन्तु प्रायः अनुसरण किया गया है ।

रुचिर स्वरों के गायक कुशलव का परिचय तथा मधुमोदित वानरों की शिकायत रुचिरा छन्द में निबद्ध की गयी है ।[198] निषेधाभिव्यक्ति के लिए शालिनी छन्द का प्रयोग किया गया है ।[199] नितान्त कोमल गीति के लिए आर्या का उपयोग किया गया है ।[200] हर्षाभिव्यक्ति के लिए 'प्रहर्षिणी' का प्रयोग किया गया है ।[201] अन्य अवसरों पर भी इन छन्दों का उपयोग हुआ तथा होता रहता है । इन प्रयोगों में आकस्मिक वैशिष्ट्य भी आ गया हो तो असम्भव नहीं ।

भोज ने अनुष्टुभ् के पश्चात् सर्वाधिक प्रयोग वसन्ततिलका का किया है । मालिनी का प्रयोग भी पर्याप्त हुआ है ।

चम्पूरामायण की चमत्कार-प्रवृत्तिः—

उस मिश्र प्रबन्ध को चम्पू कहते हैं जिसमें गद्य तथा पद्य का समान उपयोग हुआ हो ।[202] भोज के रामायण का नाम चम्पूरामायण है । स्पष्ट ही, यह चम्पू ग्रन्थ है अतः गद्य-पद्य का समान मिश्रण भी इसका वैशिष्ट्य है । रामायण-चम्पू में दोनों का उपयोग हुआ है । परन्तु पद्य की बहुलता है । यहां तक कि गद्य भी पद्यात्मक ध्वनि तथा संयम का वहन करता है ।

यही कारण है कि वृत्तगन्धि गद्य की बहुलता चम्पूरामायण की अपनी विशेषता बन गयी है ।

विषय-प्रवर्तन[203], स्तुति[204], व्यक्ति विशेष का वर्णन[205], युद्धवर्णन[206], स्वभावोक्ति[207], शोकवर्णन[208], संवाद[209], दृश्यवर्णन[210], पुराणवत् कथावर्णन[211], इत्यादि सन्दर्भों में श्लोकों का उपयोग किया गया है । परन्तु इनके व्यक्तिक्रम भी अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं, जहां ऐसे ही वर्णन गद्य में भी सुलभ हो जाते हैं ।

भोज ने अपनी कृति के रूप में गद्य तथा पद्य का प्रौढ़ उदाहरण प्रस्तुत किया है । भोज से पूर्व गद्य तथा पद्य की सुदीर्घ परम्परा रही है । पद्य में यदि रामायण, महाभारत, पुराण, महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि रचे गये तो गद्य में कई आख्यायिकाएं तथा कथाएं । गद्य तथा पद्य दोनों ही भाव तथा कला के क्षेत्र में पर्याप्त विकास पा चुके थे । परन्तु कवियों की विविध साहित्यिक विधाओं मे काव्यनिर्माणक्षमता से सम्बन्धित विप्रतिपत्तियां रही हैं ।

एक ओर गद्य का इतना विकास हो चुका था कि उसके अश्रान्त गद्य से पाठक डरकर उसी प्रकार भागने लगे जैसे व्याघ्र से डरकर भाग रहे हों ।[212]—

अखण्डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात् ।
व्याघ्रादिव समाघ्रातो गद्याद्व्यावर्तते जनः ।।

और इस वर्णक्रीड़ा में गद्य कवियों के लिए कसौटी माना जाने लगा[213]—

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति ।'

दूसरी ओर यह भावना भी बद्धमूल हो गयी थी कि गद्य के रचयिता पद्य-प्रणयन में भी उतने ही सफल हों, यह आवश्यक नहीं है[214]—

'यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः ।'

स्पष्ट है, गद्य तथा पद्य दोनों ही शैली की दृष्टि से चरम सीमा छूने लगे थे। परन्तु पद्यकार का अवलेप पद्य तक ही सीमित रहता था तथा गद्यकार का गद्य तक ही। दोनों में समान रूप से प्रवल गति रखने वाले कवि दुर्लभ रहे। परन्तु जो कवि गद्य तथा पद्य–निर्माण में समान क्षमता–सम्पन्न थे उन्हीं के दर्प के कार्यरूप परिणाम ने चम्पू को जन्म दिया। फलतः चम्पू की विधा नूतन हो सकती है परन्तु उसके अवयव गद्य तथा पद्य एक सुदीर्घ धारावाही परम्परा की लगभग अन्तिम कड़ी के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। स्वभावतः चम्पूकार जब पद्य रचते थे तो वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भारवि, भट्टि, माघ आदि के काव्यों की विशेषताओं का इसमें समाहार हो जाता था तथा गद्य रचते थे तो सुबन्धु, बाण, दण्डी आदि की रचनाओं की गद्य-बन्ध-सम्बद्ध विशेषताओं का। और इस प्रकार चम्पू शैली में कवियों ने स्वयं से पूर्ववर्ती पद्यकारों तथा गद्यकारों का अनुकरण करने का प्रयास किया अथवा उनकी समग्र विशेषताओं को एकत्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया अथवा उसे परम्परा से आगे बढ़ाया। और इस दृष्टि से चम्पू साहित्यिकस्पर्धा का परिणाम कहा जा सकता है।

वस्तुतः चम्पू गद्य तथा पद्य की मिश्रित विशिष्ट शैली मात्र होने से न भाव तथा न कला क्षेत्र में सीमित रह सका। गद्य तथा पद्य में स्वीकृत सारी विशेषताएं इसे स्वीकार हैं। यहां तक कि यह भी विभाजन नहीं हो पाया कि कहां गद्य प्रयुक्त होगा तथा कहां पद्य। रचयिता स्वेच्छा से उनका जहां चाहे प्रयोग कर सकता है। उच्छ्वास एवं अंकों में विभाजित करने की परम्परा[215] भी एक मत से स्वीकार न हो सकी। वे काण्ड, स्तवक, आश्वास, तरंग, सर्ग इत्यादि अनेक अभिधानों से विभाजित किये गये।[216] इन सारी परिस्थितियों में चम्पू एक गद्य-पद्यात्मक शैली के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है। इन दोनों का मिश्रण, चमत्कार का सर्जक होने से हृदयावर्जक होता रहा। भोज भी कहता है कि केवल गद्य अथवा केवल पद्य में रचे गये प्रबन्ध की अपेक्षा, इन दोनों के मिश्रण से रची गयी, गद्य में बंधी रसभरी पद्यसूक्तियों से युक्त साहित्यिक कृति उसी प्रकार अधिक हृद्य हो जाती है जिस प्रकार वाद्यकला से गीति कलित हो जाती है।[217] स्पष्ट ही गद्य का उपयोग वाद्य के रूप में करने से उसमे उसी प्रकार की गति भोज की कृति में भी उपलब्ध होना चाहिए।

चम्पूकारों के श्रम की परिणति चमत्कार में होती है। भोजकृत रामायणचम्पू भी इसका अपवाद नहीं है। चम्पू को चमत्कारपूरित करने के लिए भोज ने कई साधन अपनाये—

(१) पद्य-रचना में अनेक छन्दों का उपयोग किया गया है। भोज ने अपनी इस लघु कृति में भी २१ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है और असम्भव नहीं, यदि इसे

ही देखकर धनपाल ने अपनी तिलकमंजरी में चम्पू की पद्यप्रचुरता से कथा-रस में हानि व्यक्त कर दी हो[218]—

जहाति पद्यप्रचुरा चम्पूरपि कथारसम् ।

(२) अलंकार तथा विशेषतः वर्णचमत्कार उत्पन्न करने वाले अनुप्रास आदि का विशेष सन्निवेश किया गया है। साहित्यमंजूषा व्याख्या के रचयिता रामचन्द्र के अनुसार भोजराज की उक्तियों में वृत्यनुप्रास की ही बहुलता है।[218]

(३) चम्पूरामायण में उक्तिवैचित्र्य की प्रबलता है। वक्रोक्ति, रसोक्ति तथा स्वभावोक्ति के रूप में भोज ने वाङ्मय को तीन भागों में विभाजित किया है।[219] ऊपर से देखने से प्रतीत होता है कि भोज का शृंगार परिपाक की ओर अधिक आकर्षण नहीं था। बालकाण्ड के अन्त में जब रति की पुष्टि कर शृंगार को परिपक्वावस्था में प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त था तब भी कवि केवल संकेत देकर आगे बढ़ जाता है[220]—

लज्जावशादविशदस्मरविक्रियाभि-
स्ताभिर्वधूभिरतिवेलमवाप्तसौख्यान् ।
इक्ष्वाकुनाथतनयान्प्रथमो रसानां
तारुण्ययोगचतुरश्चतुरः सिषेवे ॥

इसी प्रकार सुन्दरकाण्ड में प्रस्तुत युद्ध के वर्षारूपक[221]—

संग्रामदुर्दिने तस्मिंज्जहर्षशरवर्षिणि ।
बर्हेव मेघनादेन मेघनादेन मारुतिः ॥

में निहित स्थायीभाव, उत्साह को पुष्ट किया जा सकता था परन्तु कवि ने वैसा नहीं किया।

(४) अरण्यकाण्ड के इस शार्दूलविक्रीडित छन्द में[222]—

काकुत्स्थोऽप्यथ रक्षसामधिपतेर्वाग्वागुरावेष्टिते
कृत्वा हाटकताटकेयहरिणे शार्दूलविक्रीडितम् ।

'शार्दूलविक्रीडित' शब्द का प्रयोग भिन्न अर्थ में करके भी इस छन्द का अभिधान व्यक्त करके चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है।

(५) 'के का' के प्रयोग से उत्पन्न चमत्कार भी श्लाघनीय है[223]—

महासमरसूचकः प्रतिदिशं मनोजन्मनो-
र्मयूरगलकाहलीकलकलः समुज्जृम्भते ।
पयोदमलिने दिने परुषविप्रयोगव्यथां
नरेषु वनितासु वा दधति हन्त के का इति ॥

(६) मायामृग तथा शाखामृग शब्दों से उत्पन्न चमत्कार इस श्लोक में पाया जा सकता है[225]—

मायामृगेण तव मैथिलि वञ्चितायाः
शाखामृगेण पुनरागतिरित्ययुक्तम् ।

यद्यपि भाव की दृष्टि से श्लोक बड़ा रमणीय है परन्तु श्लोक का गौरव शब्द-वैचित्र्य से भी बड़ा हैं ।

(७) पद्य के समान ही गद्य को भी श्लिष्ट, समासबहुल तथा अनुप्रासों से अनुप्राणित किया गया है । कल्पना का चमत्कार, भाषा का लालित्य तथा उक्ति का वैचित्र्य वहां भी पद-पद पर पाया जा सकता है ।

दोषः—

चम्पूरामायण, अपनी अनेक विशेषताओं से अलंकृत होने पर भी नितान्त दोषरहित नहीं कही जा सकती । उसमें कतिपय सामान्य दोष प्राप्त होते हैं जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) दशरथ का मरण व्यक्त करने के लिए 'दशमीं दशां' कहा गया है[225]—

ततो दशरथायाशु दिदेश दशमीं दशाम् ।

साहित्यमंजूषा का टीकाकार रामचन्द्र इसे भूल से काम की दसवीं 'मरण' अवस्था मान लेता है[227]—

मन्मथावस्थास्वस्या दशमत्वादित्थं निर्देशः ।
तदुक्तं—
दृङ्मनः संगसंकल्पो जागरः कृशता रतिः ।
ह्रीत्यागोन्मादमूर्च्छान्त इत्यनंगदशा दश ॥
इति दशरूपके ।

यह श्लोक दशरूपक का नहीं है । यदि कामावस्था की दशमी दशा 'मरण' से दशरथ के मरण का अर्थ ग्रहण किया जाता है तो भोज की अभिव्यक्ति में दोष माना जायेगा । क्योंकि पुत्रवियोग से दुःखी होकर दशरथ ने प्राण त्यागे थे । उनके लिए काम की दशमी दशा का प्रयोग करना समुचित नहीं है परन्तु यहां वस्तुतः टीकाकार ने दशमी दशा को समझने में भूल की है । भारत में शतायु को पूर्ण आयु स्वीकार किया है यह आयु दश दशाब्दियों अर्थात् दशाओं में विभाजित रहती है । अन्तिम अर्थात् दसवीं दशाब्दी को 'दशमी' कहते हैं ।[228] अन्तिम दशा आयु की पूर्णता का द्योतन करती है । कालिदास ने भी इसे 'दशान्त' कहा है[229]—

निर्विष्टविषयस्नेहः स दशान्तमुपेयिवान् ।

अतः 'दशमीं दशां' कहने से भोज का काम की दशमी, मरण-दशा से तात्पर्य नहीं है । उस अवस्था में यह दोष होगा ।

(२) सीता को समझाने के लिए रावण राक्षसियों को आदेश देता है कि चारों उपायों से भी यदि यह वश में न हो तो इसे प्रातराश के लिए महानस में ले जाओ । यह आदेश भी प्रातः होते–होते दिया जाता है[230] –

भवत्यः चतुर्भिरप्युपायैरेनामवश्यं वश्यां कुरुध्वम् ।
इयमननुकूला चेदिमां हताशां प्रातरशनाय महानसं

नयत इत्यादिश्य निशान्ते प्रत्यासन्ने निशान्तमेव
प्रविवेश ।

तदनन्तर हनुमान् से सीता कहती है कि वह एक माह से अधिक जीवित रहने में असमर्थ है[231]—

नियतमहमपि मासादूर्ध्वं न शक्नुयां प्राणान्कृपणान्
धारयितुमिति ।

जिसे प्रातःकाल का ही कलेवा बनाया जा रहा है वह एक माह से अधिक जीवित न रह सकने की बात कैसे कर सकती है ? भोज वस्तुतः रावण के आदेश में दो माह की वह अवधि देना विस्मृत कर गया जिसका उल्लेख रामायण में है ।[232]

बहवः खलु पितृनिदेशगौरवाद् गोहत्यामपि मातृवधमपि
तारुण्यविनिमयमपि कण्डुरेणुकेयपूरुप्रभृतयः कुर्वाणा........।[233]

पुरु के तारुण्य-विनिमय की कथा रामायण में नहीं, महाभारत में है। परवर्ती ग्रन्थ में निहित कथानक को भोज ने अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है ।

कामदेव को[234]—

अथास्य व्यसनं तु पञ्चविशिखादासीदुपेन्द्रात्मजा ।

श्लोक-चरण में उपेन्द्र का आत्मज कहा है। उपेन्द्रात्मज का अर्थ है—प्रद्युम्न रूप में अवतीर्ण कामदेव । प्रद्युम्न कृष्ण के पुत्र थे जो राम से पर्याप्त परवर्ती है । तथा जिनका विवरण तारा लक्ष्मण को दे रही है । स्पष्ट ही यहां काल-दोष है ।

(५) श्लिष्ट विशेषणमयी उपमा से वर्षा का वर्णन किया गया है[235]—

दत्तार्जुनविकासेन धार्तराष्ट्रान्निरस्यता ।
तेन जीमूतकालेन देवकीनन्दनायितम् ।।

रामायण की रचना करते समय परवर्ती महाभारत की कथा के पात्रों का स्मरण करना काल-दोष है । यहां पर अर्जुन, धार्तराष्ट्र (दुर्योधनादि) तथा देवकीनन्द का नामतः उल्लेख किया गया है । वर्षा को कृष्ण से उपमित किया गया है। यदि रामायणचम्पू का वक्ता भोज स्वयं होता तो ये विवरण काल-दोष में परिगणित नहीं होते परन्तु इस चम्पू में व्यक्त रामकथा के वक्ता कुशलव हैं जो रामायण के रचयिता वाल्मीकि के शिष्य एवं राम के ही पुत्र हैं । राम तथा उनके परिवार को ही वे यह कथा सुनाते हैं । उस काल में उनके मुख से परवर्ती युगीन पात्रों तथा घटनाओं का विवरण करवाना समुचित नहीं है ।

इस प्रकार भोज की कृति अनेक गुणों से युक्त है परन्तु सर्वथा निर्दोष भी नहीं कही जा सकती ।

चम्पूरामायण में काव्य तथा काव्यशास्त्रीय विवरणः—

सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश जैसे सुप्रसिद्ध तथा विपुलकाय काव्यशास्त्रीय कृतियों के प्रणेता, भोज की काव्यशास्त्रीय विवरण तथा संकेत देने की प्रवृत्ति रामायणचम्पू में भी यथावत् प्रवृत्त रही । वहां काव्यांग, रस, भाव, छन्द, नाटक, सूत्रधार आदि के उल्लेख अथवा विवरण प्राप्त होते हैं ।

चम्पूः—

चम्पूरामायण के प्रारम्भ में ही भोज ने चम्पूकाव्य के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डाला है[236]—

गद्यानुबन्ध-रस-मिश्रितपद्यसूक्ति-
हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।
तस्माद्दधातु कविमार्गजुषां सुखाय
चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया॥

कविपथ के अनुयायी सहृदयों के लिए चम्पूरामायण की रचना हुई है। कवि अपने परिश्रम को सफल इसी में स्वीकार करता है कि उसका काव्य सहृदयों को आकर्षित कर सके। कालिदास का भी लगभग यही अभिमत है[237]—

आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।

गोस्वामी तुलसीदास का भी यही अभिमत है[228]—

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं।
सो श्रम वादि बालकवि करहीं॥

चम्पू-शब्द का निर्वचनः—

भोज ने अपने व्याकरण ग्रन्थ, सरस्वतीकण्ठाभरण[239] में चम्पू-शब्द का विधायक सूत्र प्रस्तुत किया है—

दृभिचपोर्नु च।

जिस पर यह वृत्ति लिखी गयी—

आभ्यामूप्रत्ययो नुमागमश्च भवति। दृम्भूः सर्वजातिः। चम्पूःकथा।

डॉ० सी० आर० देशपाण्डे ने अपने एक शोधपत्र के द्वारा इस सूत्र के आधार पर 'चम्पू' शब्द की व्युत्पत्ति करने का प्रयास किया है।[240] उनके अनुसार पाणिनि के धातुपाठ में उपलब्ध 'चप् सान्त्वने', 'चपि गत्याम्' तथा 'चह् परिकल्कने', और 'चप् इत्येके' ये तीनों ही धातु 'चम्पू' शब्द के निर्माण के लिए उपयुक्त हैं:—

(क) अश्रान्त गद्य के भय से[241] सहृदयों को विश्रान्ति अथवा सान्त्वना देने के लिए बीच-बीच में पद्य का निवेश होने से 'चप् सान्त्वने' धातु से इस शब्द की निष्पत्ति उपयुक्त है।

(ख) पद्य के पश्चात् गद्य तथा गद्य के पश्चात् पुनः पद्य आ जाने से, शैली में स्थिति-परिवर्तन होने से गति बनी रहती है अतः 'चपि गत्याम्' से भी 'चम्पू' शब्द की निष्पत्ति सम्भव है।

(ग) 'परिकल्कन' के अर्थ में प्रयुक्त चप् धातु से भी यह शब्द सिद्ध हो सकता है। आयुर्वेद में कल्क-निर्माण प्रसिद्ध है। ऐसा मिश्रण जिसके मिले हुए पदार्थों को भिन्न नहीं किया जा सके। चम्पू में गद्य तथा पद्य एक-दूसरे से इस प्रकार संयुक्त रहते हैं कि उन्हें भिन्न नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार गीत तथा वाद्य के एक साथ प्रयोग होने पर, उनकी मिश्रित ध्वनि को विलग नहीं किया जा सकता। वह मिश्रित ध्वनि केवल गीति अथवा केवल वाद्य की अपेक्षा अधिक आकर्षक

होती है। उसी प्रकार केवल गद्य अथवा केवल पद्य की अपेक्षा इन दोनों का कल्क (मिश्रण) अधिक हृदयावर्जक होता है।

शृंगारप्रकाश में गद्य, पद्य तथा मिश्र; तीन प्रकार के प्रबन्ध बताये हैं[242] जिसमें गद्य तथा पद्य दोनों का व्यायोग हो वह मिश्र प्रबन्ध है।[243] यह पद्य-प्रधान, गद्य-प्रधान तथा तुल्य रूप होता है। तुल्यरूप भी सजातीय, विजातीय तथा उभय, तीन प्रकार का होता है। इसमें सजातीय प्रकार का तुल्यरूप मिश्र प्रबन्ध चम्पू है।[244] मूल ग्रन्थ में चम्पू के उदाहरण-स्थानीय अक्षर नष्ट हो गये हैं। शृंगारप्रकाश में ही चम्पू को 'गद्यपद्यमयी चम्पूः'[245] कहा गया है जो दण्डी की परिभाषा[246]—

गद्यपद्यमयी काचित् चम्पूरित्यभिधीयते।

से भिन्न नहीं है। परन्तु भोज ने उस दिव्य गद्य-पद्यमयी कृति को चम्पू माना है जो सांका तथा सोच्छ्वासा होने के कारण ही आख्यायिका से भिन्न हो।[247]

आख्यायिकैव साङ्का सोच्छ्वासा दिव्यगद्यपद्यमयी।
सा दमयन्तीवासवदत्तादिरिहोच्यते चम्पूः॥

दमयन्तीकथा त्रिविक्रमभट्ट के नलचम्पू से अभिन्न है तथा वासवदत्ता चम्पू, पतंजलि की वासवदत्ता आख्यायिका एवं सुबन्धु की कथा से भिन्न है।[248] हेमचन्द्र ने भोज की इसी परिभाषा का अनुकरण किया है।[249] चम्पूरामायण की वस्तु काल्पनिक न होकर प्रख्यात होने से यह आख्यायिका के निकट कही जा सकती है।

वाल्मीकिगीतरघुपुङ्गवकीर्तिलेशै-
स्तृप्तिकरोमि कथमप्यधुना बुधानाम्।
गङ्गाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः
किं तर्पणं न विदधाति नरः पितृणाम्॥[250]

प्रख्यात वस्तु को ही काव्य का आधार बनाना कोई दोष नहीं है।

पद्यप्रबन्धः—

पद्यप्रबन्धमिव दर्शित सर्गभेदम्।[251]

गद्य, पद्य तथा मिश्र प्रबन्ध में से पद्यप्रबन्ध भी अनेक प्रकार के होते हैं।[252] इनमें से सर्गबन्ध का लक्षण इस प्रकार है[253]—

यस्मिन्नितिहासार्थनिपेशलान्पेशलान्कविः कुरुते।
सहयग्रीववधादिप्रबन्ध इव सर्गबन्धः स्यात्॥

उपर्युक्त सर्गभेद वाला पद्यप्रबन्ध, शृंगारप्रकाश के सर्गबन्ध से अभिन्न है।

रामायणः—

शुभमतनुतकाव्यं स्वादुरामायणाख्यम्।[254]

रामायणकाव्य शृंगारप्रकाश के अनुसार काण्डबन्ध काव्य है[255]—

यत्रेतिहासमखिलं यथास्थितं चैकमेव भाषन्ते।
ऋषयस्स काण्डबन्धो रामायणसन्निभो भवति॥

कथाः—

इति विविधरसाभिः कौशिकव्याहृताभिः
श्रुतिपथमधुराभिः पावनीभिः कथाभिः ।
गलितगहनकृच्छ्ं गच्छतोर्दाशरथ्योः
समकुचदिव सद्यस्तादृशं मार्गदैर्घ्यम् ॥[256]

शृंगारप्रकाश में कथा की परिभाषा इस प्रकार प्राप्त होती है[257]—

या नियमितगतिभाषा दिव्यादिव्योभयेति वृत्तवती ।
कादम्बरीव लीलावतीव वा सा कथा कथिता ॥

दिव्य तथा अदिव्य दोनों का मिश्रित इतिवृत्त उपर्युक्त विश्वामित्र द्वारा व्यक्त कथाओं में है। शिव का कामदेव को भस्म करने की कथा, सुकेतु यक्ष की पुत्री एवं सुन्द की पत्नी ताटका की कथा वामन कथा आदि उभयगुणों से मण्डित हैं। पुनः प्रथम रौद्ररस, द्वितीय वीररस तथा तृतीय अद्‌भुत एवं शान्तरस से युक्त होने से अनेक रसों से युक्त भी है।

कथा श्रुतिमधुर हो, यह भोज की शृंगारमंजरी कथा से भी प्रकट होता है जहां इसी ग्रन्थ की गद्यप्रवृत्ति पर भी प्रकाश डाला गया है[258]—

'शृंगारमञ्जरीगद्यप्रवृत्तिरिव सुललितपदा ।'

ये कथाएं मनोरंजन, समय को संकुचित करने तथा व्युत्पत्ति के लिए[259] कही जाती हैं। उपर्युक्त श्लोक से ही स्पष्ट है कि समय जल्दी कट गया, अनेक रसों से युक्त होने से मनोरंजक भी रहीं तथा अश्रुतपूर्व होने से व्युत्पत्ति के लिए भी उपयोगी सिद्ध हुईं।

कथामयी होने से नलचम्पू को भी त्रिविक्रम ने कथाबन्ध ही कहा।[260] जिसे भोज भी दमयन्तीकथा के नाम से पुकारता है।[261]

नाटक-सूत्रधारः— नाटक का प्रारम्भ—

तस्मिन्प्रदोषसमये सहसा हनूमान्
कीर्तिच्छटा जवनिकामपनीय शत्रोः ।
आविर्बभूव सुमनः परितोषणाय
लङ्‌काप्रवेशनवनाटकसूत्रधारः ।[262]

तथा

मायामृगे समरनाटकसूत्रधारे
शाखामृगे च भवतः प्रतिकूलवाले ।[263]

रूपक का एक प्रकार नाटक होता है। सूत्रधार उसका प्रवर्तक होता है। वह पर्दा हटाकर अचानक रंगमंच पर प्रकट होता है, उसे देखकर, नाटक के प्रारम्भ होने की प्रतीक्षा में उत्सुक सामाजिकों को (नाटक प्रारम्भ होने से) सन्तोष हो जाता है। उपर्युक्त श्लोकों में दो नाटकों की कल्पना की गयी है—(१) लङ्‌काप्रवेश तथा (२) समर।

जिस नाटक का मंचीकरण हो रहा हो वह अपूर्व अथवा नवीन हो तो उसका आकर्षण बढ़ जाता है।

नाटकान्तः—

तापोपशान्तिनटनात्कृतलोकहर्षा
वर्षानटी गगनरङ्गतलात्प्रयाता।
अम्भोदवाद्यमचिरेण शशाम सर्व
निर्वापिताश्च सहसैव तडित्प्रदीपाः॥[264]

अपने कुशल अभिनय से सामाजिकों को प्रसन्न करके नटी, अभिनय समाप्त होते ही रंगमंच से चली जाती है। उसके मंच से हटने के साथ वाद्य बन्द हो जाते हैं तथा अभिनय समाप्त हो जाने से रंगमंच के दीपक बुझा दिये जाते हैं। नाटक-समाप्ति को व्यक्त करने वाला यह रूपक वस्तुतः अपूर्व है।

रसः—

भोज ने ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है जो किसी न किसी रस के अभिधान भी हैं। अथवा किसी स्थायी भाव के साथ 'रस' शब्द का प्रयोग किया गया है। यथा[265]—

नेतुं शोकरसं निशाचरपतेः।

परन्तु यहां सम्पूर्ण शब्द का अर्थ विषाद है, कोई रस आदि नहीं। अन्य 'करुण' शब्द का भी प्रयोग किया गया है[266]—

अलङ्चकार कारुण्याद्रघूणामन्वयं हरिः
अथवा[269]
कारुण्यापं त्रिदशपरिषत्कालमेघं ददर्श।

परन्तु ये प्रयोग केवल 'दया' के अर्थ में ही हुए हैं। दशरथ की मृत्यु का करण 'शोकवशात्' कहकर करुण के स्थायी भाव को व्यक्त किया गया है।[270]

नार्कं शोकवशादगाद्दशरथो नास्थां वहन्वाहने।

अन्यत्र शृंगार रस का उल्लेख हुआ है[271]—

इक्ष्वाकुनाथतनयान्प्रथमो रसानां
तारुण्ययोगचतुरश्चतुरः सिषेवे।

रसों में प्रमुख या प्रथम शृंगार है। भोज शृंगार को ही प्रमुख रस मानते हैं। सरस्वतीकण्ठाभरण[270] में शृंगार को ही प्रमुख तथा एकमात्र अथवा उपजीव्य रस मानने का जो बीजवपन हुआ था, शृंगारप्रकाश में उसका पल्लवन हुआ। वैसे तो रसों की गणना में वाल्मीकि ने भी शृंगार को ही प्रथम स्थान दिया है[271]—

रसैः शृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम्॥

परन्तु शृंगारप्रकाश तो केवल शृंगार को ही रस की पदवी प्रदान करता है[272]—

शृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः ।

असम्भव नहीं यदि इसी मूल भावना का संकेत चम्पूरामायण के उपर्युक्त श्लोक में रहा हो ।

भोज का शब्द तथा घटना पर लक्ष्य

शब्द—परिचय—

भोज शब्दों का मर्मज्ञ था । वह न केवल सरस्वतीकण्ठाभरण जैसे व्याकरण-ग्रन्थ तथा नाममालिका जैसे कोषों का ही रचयिता था अपितु शृंगारप्रकाश तथा सरस्वतीकण्ठाभरण जैसे सशक्त काव्यशास्त्रों का रचयिता भी रहा । शृंगारप्रकाश के प्रथम आठ प्रकाश तो शब्द-विवेचन में ही व्यापृत रहे । पुनः इन कृतियों में अलंकार, गुण, रीति आदि के अपूर्व विभाजन में उसकी शब्द-मर्मज्ञता स्वतः प्रकट हो जाती है । चम्पू-रामायण में उसका यह स्वरूप साहित्य के परिवेश में प्रस्तुत हुआ ।

विश्वामित्र का परिचय देते हुए भोज प्राकृत व्याकरण के वर्ण-परिवर्तन के वैशिष्ट्य का उद्घाटन करते हैं ।

'प्राकृतव्याकरणमिव प्रकटितवर्णव्यत्यासम् ।'

यथा 'आर्जेर्विढप्पः' के अनुसार 'अर्जित' के स्थान पर 'विढप्प' आदेश हो जाता है ।[273]

वैसे तो एक ही शब्द का एक साथ अनेक बार प्रयोगकर यमक के माध्यम से कवि, पाठक को शब्द का अर्थभेद जानने के लिए विवश कर देता है । परन्तु एक जैसे प्रतीत होने वाले शब्दों का एक साथ प्रयोग करके भी वह इसी लक्ष्य की पूर्ति कर लेता है । अनुप्रास-प्रिय होने से भोज की चम्पूरामायण में ऐसे प्रयोग विपुल मात्रा में प्राप्त होते हैं । यथा[274]—

केशहस्तं स्वहस्तेन गृहीत्वा तद्वधोद्यतम् ।

यहां पर 'हस्त' शब्द का अर्थभेदज्ञान पाठक के लिए आवश्यक है । अथवा सुन्दरकाण्ड के इस श्लोक-चरण में[275]—

'तनुं तनूकृत्य तदा हनुमान्'

'तनुं' तथा 'तनूकृत्य' का एक साथ प्रयोग भी ऐसे ही अभीष्ट की पूर्ति करता है ।

यमक, श्लेष तथा अनुप्रास की बहुलता स्वतः व्यक्त कर देती है कि कवि के ज्ञान कोष में अमित शब्दों का संकलन ही नहीं अपितु उनका समुचित स्थान पर प्रयोग करने की कविप्रतिभा तथा उन्हें अपने अभीष्ट के अनुरूप स्वरूप प्रदान करने का व्याकरण-ज्ञान भी असीम रहा । यही कारण है कि वह पद-पद पर ऐसे वाक्यों का प्रयोग करता चलता है जिनमें एक ही वर्ण की बहुलता रहती है । यथा[276]—

तदनु निहतस्य तस्य शरीरं वाली बलावलेपेन सकललोकविलयविलोललसितातुलबलपवनचलितलघुतूललीलया मतंगाश्रमक्षितौ क्षिप्रमक्षिपत् ।

इसी प्रकार के वर्णों तथा शब्दों की समरसता से पूर्ण वाक्य चम्पूरामायण में पद-पद पर प्राप्त किये जा सकते हैं ।

चम्पूरामायण में प्रयुक्त अभिधानों के निर्वचनः—

ब्राह्मण, उपनिषद् एवं वाल्मीकि, व्यास, कालिदास तथा अनेक परवर्ती ग्रन्थकारों ने अपनी कृतियों में अभिधानों की व्याकरणगत अथवा काल्पनिक निरुक्ति की है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत ने पात्रों के अभिधानों की सार्थकता पर बल देने का निर्देश किया है।[277] कालिदास ने कहीं परम्परागत निर्वचन स्वीकार कर लिए तथा कहीं उन्हें अस्वीकार कर नूतन निरुक्तियां की हैं। क्षत्व, राजा, राम, उमा, अपर्णा, भरत आदि शब्दों की अभिनव निरुक्तियां की गयीं हैं। कहीं संकेत तथा कहीं उपमानों अथवा विशेषणों के माध्यम से अभिधानों का निर्वचन किया गया है।[278] व्याकरण तथा साहित्यशास्त्र का सर्जक होने से, भोज की भी निर्वचन-प्रवृत्ति प्रबल है। सरस्वती-कण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश में स्थान-स्थान पर विभिन्न पारिभाषिक शब्दों की निरुक्तियां प्राप्त होती हैं। रामायण-चम्पू में कई अभिधानों की भोज ने निरुक्तियां की हैं।

रामः—'अभिरामस्य रामस्य'[279] कहकर वाल्मीकि ने राम में अभिरामता व्यक्त की जिसे कालिदास ने इस शब्द के निर्वचन का आधार बना लिया था[280]—

राम इत्यभिरामेण वपुषा तस्य चोदितः।
नामधेयं गुरुश्चक्रे जगत्प्रथम-मङ्गलम्॥

अभिराम शरीर होने से अभिधान भी 'राम' रख दिया गया। मल्लिनाथ[281] ने विनयाभिराम तथा गोस्वामी तुलसीदास[282] ने 'रामाभिराम' में 'राम' शब्द की सार्थकता पायी। भोज भी इसी परम्परा में 'विनयाभिरामेण रामेण'[283] कहकर अभिरामता में ही 'राम' शब्द का निर्वचन प्राप्त करते हैं।

कुशीलवः—भोज कुशीलव की सार्थकता कुशलव मे पाने का प्रयास करते हैं[284]—

कुशलवौ कुशलवनामधारिणौ।

तमसाः—तमोपहन्त्री होने से 'तमसा' शब्द की सार्थकता जिस प्रकार कालिदास स्वीकार करते हैं[285]—

'तमोपहन्त्रीं तमसाम वगाह्य'

उसी प्रकार भोज भी[286]—

तमसां तमसां निहन्त्रीम्।

कौशाम्बीः—कुशाम्ब के द्वारा स्थापित होने से नगरी का नाम भी कौशाम्बी हुआ, इस तथ्य को वाल्मीकि के समान ही भोज भी स्वीकार करते हैं।[286]

विशालाः—विशाल नामक राजा ने अपने ही नाम से 'विशाला' नाम की नगरी बसायी। वाल्मीकि तथा भोज दोनों ही इसे समान रूप से स्वीकार करते है।[288]

कुम्भजः—'कुम्भजन्मानं' शब्द से व्यक्त किया गया है कि कुम्भ से उत्पन्न होने से अगस्त्य का कुम्भज अभिधान हुआ।[289]

वाल्मीकिः—'वल्मीकजन्ममुनिरेव' से व्यक्त किया गया है कि वल्मीक से जन्म होने के कारण वाल्मीकि का अभिधान सार्थक है।[290]

बला तथा अतिबला:—'तपस्या के बल से प्राप्त होने में बला तथा अतिबला शक्तियों की सार्थकता व्यक्त करने का प्रयास किया गया है[291] —

बलेन तपसा लब्धे बलेत्यतिबलेति च ।

सुतीक्ष्ण:--कालिदास के द्वारा स्वीकृत निर्वचन[292]—

'नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्त:'

की अपेक्षा भोज ने इसे अधिक सार्थक करने का प्रयास किया—

तीक्ष्णतपस: सुतीक्ष्णस्य ।[293]

शरभंग:--अपने मन में काम के शरों को भंग करने से शरभंग अभिधान की सार्थकता में भोज की नूतन कल्पना उपलब्ध होती है[294]—

मनसिजशरभंगकारिवृत्ते-
र्मनसि मुने: शरभंगनामभाज: ।

भोज ने कतिपय निरुक्तियां पाठकों की कल्पना पर छोड़ दी हैं। इन शब्दों की निरुक्ति करना पाठकों के लिए अनिवार्य है, अन्यथा वे उन शब्दों तथा अभिधानों की सार्थकता नहीं समझ सकेंगे ।

कबन्ध:—

यथार्थनामा कबन्ध: ।[295]

में कबन्ध के 'अपमूर्धकलेवर' अर्थ का द्योतक 'कस्य शिरसो बन्धोऽस्यास्तीति कबन्ध:' निर्वचन आवश्यक है। तथैव

चिरजीवी:—काक चिरजीवी अभिधान अन्वर्थ है[296]

चिरजीवी स दधौ यथार्थसञ्ज्ञाम् ।

यहां पर 'चिरं जीवति' निर्वचन किये बिना अर्थबोध सम्भव नहीं है ।

इस प्रकार भोज ने कतिपय अभिधानों की सार्थकता, परम्परागत अथवा काल्पनिक रूप से व्यक्त की है ।

व्यतीत तथा वर्तमान घटना के आधार पर भविष्यवाणी:—

शासनतन्त्र में इस प्रकार की कई स्थितियां उपस्थित हो जाती हैं जब भूत तथा वर्तमान के आधार पर भावी घटनाओं की पूर्ण एवं पूर्व कल्पना कर ली जाती है। भोज का शासन-अनुभव इस प्रकार के निर्णय लेने में पटु हो गया होगा। यही कारण है कि चम्पूरामायण में स्थान-स्थान पर, बालकाण्ड के पश्चात् ऐसी भविष्यवाणियां व्यक्त की गयी हैं—

(१) **यथा यथा राघवराजधानीं विहाय सीता विपिनोत्सुकाभूत् ।**
तथा तथाजायत यातुकामा लंकां विना राक्षसराजलक्ष्मी: ।।[297]

सीता ही लंका की राजलक्ष्मी के विनाश का कारण रही। फलत: उसके प्रयाण के साथ ही राज-लक्ष्मी ने भी लंका से हटने का विचार कर लिया ।

(२) राक्षसों के विनाश का मूल मन्थरा थी। यही कारण है कि खर आदि राक्षसों के मारे जाने पर दण्डकारण्य के ऋषियों ने सर्वप्रथम मन्थरा को आशीष दिया, तब राम और लक्ष्मण को।[298] राक्षसकुल के विनास का मूल हेतु मन्थरा ही थी[299] तथा हनुमान् रावण के यशरूप चन्द्रमा के मूर्तिमान् कृष्णपक्ष थे।[300] वस्तुतः 'रावणहीन लोकत्रय की भाग्यलिपि' के प्राचीन नाम क्रमशः मन्थरा, महिषी कैकेयी, दोनों वरदान, धर्महानि से व्यथित दशरथ की वाणी, राम के वनवास की बात आदि रहे।[301]

प्रड्.मन्थरेति महिषीति वरद्वयीति
धर्मव्ययव्यथितभूपतिभारतीति।
काकुत्स्थकाननकथेति च सन्ति संज्ञाः
पौलस्त्यहीनभुवनत्रयभाग्यपड्.क्तेः॥

राम के वनवास से सम्बन्धित सारी व्यतीत घटनाओं के सर्वेक्षण के आधार पर भावी घटना-रावण के नाश की कल्पना की गयी है।

(३) राम की सुग्रीव के साथ मैत्री होने के साथ ही वाली की भावी मृत्यु की भोज ने घोषणा कर दी[302]—

योगं वितन्वति हनूमति राघवस्य
वैवस्वतेन हरिणा समवर्तिना च।
मेने विधिर्घटयितुं कपिमिन्द्रपुत्रं
वैवस्वतेन हरिणा समवर्तिना च॥

भाग्यवशात् इन्द्रपुत्र वाली को सूर्यपुत्र यमराज से मिलाने के लिए ही मानो हनुमान् ने समभाव से व्यवहार करने वाले सूर्यपुत्र सुग्रीव से राम का मेल करवाया।

(४) लंका के तोरण द्वार पर हनुमान् तथा मेघनाद का जो युद्ध हुआ, वह लंका के भविष्य के लिए सुखद नहीं था। रावण को विषाद, राक्षससेना का विनाश, उसके अन्तःपुर की अंगनाओं को विना मान के रोदन, तथा सूर्य-चन्द्र को भी जहां प्रवेश निषिद्ध था उस लंका का अग्नि से शुद्धीकरण आदि भावी परिणाम थे उस युद्ध के[303]—

नेतुं शोकरसं निशाचरपतेर्हन्तुं चमूं रक्षसां
तस्यान्तःपुरयोषितां रचयितुं मानं विना रोदनम्।
सूर्याचन्द्रमसोः प्रवेशविकलां लड्.कापुरीमग्निना
शुद्धां कर्तुममुष्य वासवजिता जातो रणस्तोरणे॥

यह सारा परिणाम लङ्कादहन के पश्चात् ही दिखाई देता है, जिसकी पूर्वसूचना इस श्लोक में दी गयी है।

(५) राक्षस की रस्सियों से हनुमान् का बन्धन, उन देवाङ्गनाओं के बन्धमोक्ष का कारण बन गया, जिन्हें पहले रावण ने बन्दी बना लिया था[304]—

स मारुतेर्नैऋतपाशजन्मा बन्धोऽभवद्बन्धविमोक्षहेतुः।
पुरा पुलस्त्यान्वयपांसनेन बन्दीकृतानां सुरसुन्दरीणाम्॥

(६) रामरावणयुद्ध रूपी नाटक का सूत्रधार—मारीच था।[305]

'मायामृगे समरनाटकसूत्रधारे'

वस्तुतः नाटक का प्रारम्भ सीताहरण से होता है, उससे पूर्व सूत्रधार मारीच का प्रवेश होता है, जो उसकी प्रस्तावना उपस्थित करता है।

ग्रन्थ-रचना के साथ ही एक सतर्क राजनीतिज्ञ की भांति भोज घटना तथा उसके परिणामों पर समीक्षात्मक दृष्टि से विचार करते हुए उन पर टिप्पणी करना भी नहीं भूलता। फलतः अतीत तथा वर्तमान को भोज ने भविष्य में खोजने का प्रयास किया।

इस दृष्टि से देखा जाय तो भोज ने चम्पूरामायण के रूप में रामायण का एक समीक्षात्मक संस्करण प्रस्तुत किया है, जो अपनी दृष्टि से महत्त्वशाली भी है।

पुनरावृत्त घटनाओं पर दृष्टिपातः—

भोज ने अपनी चम्पूरामायण में रामायण की ऐसी घटनाओं तथा स्थितियों का अंकन किया है जिनमें व्यतीत के समान ही अन्य घटना होने पर पूर्वघटना की स्मृति हो आए, जिससे पुनरावृत्त घटनाओं के सर्वेक्षण के साथ ही उनके मूल हेतु, सदोष अथवा निर्दोष, उनकी पूर्णता-अपूर्णता अथवा अन्य परिस्थितियों का सम्यक् लेखा-जोखा हो सके। ऐसे कतिपय सन्दर्भ इस प्रकार हैं—

(१) बहुत समझाने पर भी रावण के न मानने पर मारीच ने स्वयं की अपेक्षा अपने भाई सुबाहु को ही श्रेष्ठ माना जिसने ऐसी बन्धनात्मक स्थिति का सामना न करते हुए राम के हाथ से वध पाया।[306] विश्वामित्र के क्रतुरक्षण के समय राम ने सुबाहु को अपने शर का निशाना बनाया था। मारीच की स्थिति से सुबाहु का स्मरण हो आता है।

(२) सीता[307] जैसी शीलसम्पन्न महिला अकारण दुरुक्ति का व्यवहार करती है तो लक्ष्मण कह उठते हैं कि तुम्हारे साथ रहकर मैं मां का सुख पाता रहा परन्तु तुम्हारी कटूक्ति सुनकर ऐसा लगता है कि इस वन में तुम मेरी असली नहीं, मझली मां कैकेयी की भूमिका निभा रही हो। तात्पर्य यह कि उस मां ने अपनी वाणी से हमें वन में भेजा अब तुम यहां वन में उसी की भूमिका निभाकर कहां भेजोगी? स्पष्ट है, पूर्वघटना की समता के आधार पर भावी विपत्ति की ओर संकेत है। सीता की वाणी सुनकर कैकेयी का स्मरण हो आता है।

(३) रुदन करते हुए राम से मृत जटायु ने वह जलांजली प्राप्त की जो दशरथ भी (निकट न होने से) प्राप्त नहीं कर सके[308]—

जटायु को जलाजली देने के अवसर पर भोज को दशरथ की स्मृति हो आती है।

नयनसलिलमिश्रं रामहस्तेन दत्तं
दशरथदुरवापं प्राप नैवापमम्भः॥

(४) कामयाचना के लिए आयी किसी अयोमुखी राक्षसी को लक्ष्मण ने शस्त्र से शूर्पणखा की दशा प्रदान की।[309]

'राक्षसी काचिदयोमुखी नाम सौमित्रिमभिसृत्य तदीयेन शस्त्रेण शूर्पणखासिद्धिमभजत।'

अयोमुखी का व्यवहार शूर्पणखा के समान ही था उसने वैसा ही फल पाया।

(५) राक्षसी प्रवृत्ति की स्त्रियों को मारने अथवा दण्ड देने में राम की स्त्रीवध आदि की दोष से सम्बद्ध आशंका का विश्वामित्र ने निवारण कर दिया था। अतः उन्होंने निःशंकभाव से ताटका का वध किया। तथा शूर्पणखा, अयोमुखी आदि के नाक-कान कटवाये। परन्तु राम ने राक्षसियों के प्रति ही ऐसा व्यवहार किया। इसीलिए वाली की मृत्यु पर विलाप करती तारा, स्वयं को प्रियवध के उपरान्त भी जीवित होने से राक्षसी कहकर, ताटका राक्षसी को मारने वाले राम से प्रार्थना करती है कि मुझ पर बाण छोड़कर प्रियसंगम करा दोगे तो, तुम्हारा कल्याण होगा[310]—

एवं विधे प्रियतमेऽप्यनपेतजीवां
मां राक्षसीति रघुपुङ्गव ! साधु बुद्ध्वा।
बाणं विमुञ्च मयि सम्प्रति ताटकारे !
श्रेयो भवेद्दयितसङ्गमकारिणस्ते ॥

परिस्थिति की समानता, स्त्रीवध की अवस्था होने से यहां ताटकावध का स्मरण किया गया है।

(६) 'नरेशों के लिए मृगया सर्व–सम्मत है' यह बात राम ने जनसभा में कही थी।[311] तारा कहती है कि वह तो शाखामृगी है, उस पर तीर चलाया जा सकता है। कौन शिकारी मृगियों पर दया करता है।[312]

साधारणी क्षितिभुजां मृगयेति पूर्व-
मुक्ता त्वयेव जनसंसदि सत्यवादिन् !
शाखामृगीं तदिह मारय मां शरेण
को नाम राम ! मृगयुर्दयते मृगीणाम् ॥

'मृगयु' शब्द कहकर तारा ने राम की मृग के आखेट की वृत्ति को प्रकट किया है। वत्स जनपद में चललक्ष्य में चतुर राम ने चार मृगों की हत्या की थी[313] तथा स्वर्णमृग के आखेट के प्रसंग में सीता का अपहरण हो गया। 'मृगयु' शब्द राम के लिए मर्मवेध सा तीखा है क्योंकि वह सीता-प्रसंग का स्मारक है। इस प्रकार पूर्वघटनाओं के प्रसंग उपस्थित किये गये हैं।

(७) किष्किन्धा नगर में रहने के सम्बन्ध में राम से की गयी प्रार्थना को राम ने, धर्म तथा कर्त्तव्य की दृष्टि से अस्वीकार कर दिया और सुग्रीव की प्रार्थना भी भरत की प्रार्थना के समान (निष्फल) हो गयी[314]—

न योग्या नगरप्राप्तिरित्युक्तवति राघवे।
सुग्रीवप्रार्थनाप्यासीद्भरतप्रार्थना समा ॥

यहां पूर्ववृत्त की पुनरावृत्ति की ओर संकेत किया गया है।

(८) शूर्पणखा रावण के पास अपनी आर्त पुकार सुनाने के लिए पहुंची। इसी घटना के सम्बन्ध में भोज का कहना है कि जिस प्रकार जनस्थान खर आदि राक्षसों से रहित कर दिया गया उसी प्रकार राम के द्वारा लंका को भी निर्जन बनवाने के लिए वह रावण के पास पहुंची[315]—

'अथ शूर्पणखा लड्.कामति जनस्थानमिव विजनस्थानं काकुत्स्थेन कारयितुं ।'

समानता के आधार पर व्यतीत घटना को भावी घटना से जोड़ा गया है। जनस्थान भी शूर्पणखा के कारण उजड़ा तथा लंका भी उसी के कारण। जिस प्रकार जनस्थान को राम ने राक्षसों से रहित कर दिया उसी प्रकार बाद में लंका को भी। अतः घटना की पुनरावृत्ति की स्थिति उपस्थित होने की सम्भावना व्यक्त की गयी है, जो बाद में अवितथ भी सिद्ध हुई।

इस प्रकार भोज ने रामायणचम्पू में ही पूर्व व्यक्त घटनाओं को परवर्ती घटनाओं का उपमान बनाकर अथवा निकटता प्रदान कर एक ही कथानक में उनकी पुनरावृत्ति भिन्न परिस्थिति तथा भिन्न परिवेश में व्यक्त करने का लक्ष्य भी साध लिया तथा कथानक में रोचकता की परिवृद्धि भी करली। अलंकार तथा भावों की पुष्टि में तो इन तथ्यों से सहायता मिली ही है।

चम्पूरामायण के टीकाकारः—

चाहे चम्पूरामायण अपूर्ण रही परन्तु गुणग्राहक पण्डितों की दृष्टि से वह बची न रह पायी। और एक के बाद एक इस पर विभिन्न युगों में विविध टीकाएं रचीं गयीं। भोज कृति के साथ ही, अपने काव्यगत वैशिष्ट्य के कारण ही लक्ष्मण का युद्धकाण्ड भी टीकाओं का भाजन बना और इस सन्दर्भ में भी लक्ष्मण की यह उक्ति सार्थक हो गयी[316]—

न व्रीडितोऽहमधुना नवरत्नहार-
सड्.गेन किन्न हृदि धार्यत एव तन्तुः ।

भोज के चम्पूरामायण पर निम्नांकित टीकाकारों ने व्याख्या रचीं—

रामचन्द्र बुधेन्द्र —

ये शाण्डिल्य गोत्र के तेलंग निवासी कौण्ड पण्डित तथा गंगा के पुत्र थे। इनकी साहित्य-मंजूषा टीका भोजचम्पू तथा लक्ष्मण के लंकाकाण्ड पर उपलब्ध होती है। इन्होंने भर्तृहरिशतक पर भी 'सहृदयानन्दिनी' नाम की पाण्डित्यपूर्ण स्फुट टीका रची।[317] चम्पूरामायण के साथ इनकी टीका का एकाधिक बार प्रकाशन हो चुका है। भोज-चम्पू के भावों को स्फुट करने में यह टीका पूर्णतया समर्थ है। उपजीव्य ग्रन्थ, रामायण प्रायः सर्वत्र तुलनात्मक दृष्टि से उद्धृत किया गया है। टीका के विस्तार के लिए उन्होंने युक्ति दी है कि ग्रन्थ/गौरव के भय से जो टीकाकार स्फुट युक्तियों से व्याख्या नहीं करते वे अध्येताओं को धोखा देते हैं। ऐसी कृति की रचना करना कोई बड़ी बात नहीं है। कवि के हृदयगत भावों को वैखरी वाणी से स्फुट करने के लिए ही इस विस्तृत टीका का निर्माण किया जा रहा है—

व्याकुर्वन्ति निबन्धगौरवभयान्नैव स्फुटं युक्तिभिः
ये तेऽध्येतृजनप्रतारणपराः का नैपुणी वा ततः ।
वैखर्या वचसा कवीशहृदयं प्रख्यापयन्नन्वय-
द्वारैवाहमिहाखिलं प्रविवृणोम्युक्तिव्रजोज्जृम्भितम् ॥

भोज के व्यक्तित्व का उन्मीलन करते हुए टीकाकार कहता है कि उसके अभिराम आनन के दर्शनमात्र से दृष्टा कवियाने लगता है।[318] यह सार्वभौम नरेश भोज, निखिल विधाओं का ज्ञाता था, जो अपनी विचित्र तथा सरस कविता से सतत विबुध-समाज का आमोद करता रहता था।[319]

अत्र खलु तत्रभवान् विचित्रसरसकविताकल्पलतामजर्यामोदिताशेषविबुधसमाजोऽनवद्यनिखिलविद्याभिज्ञः सर्वज्ञसार्वभौमो भोजनामा महाराजः........।

भोज ने चम्पूबन्ध की पंचमकाण्ड पर्यन्त ही रचना की।[320] वृत्यनुप्रासबहुल[321] भोज के काव्य में रामचन्द्र बुधेन्द्र किसी प्रकार का दोष नहीं देखता।[322]

एतदभिप्रायेणैव सर्वज्ञो भोजोपि मध्यमाम्बानियोगादिति प्रयुक्तवानित्यलम्।

भर्तृहरिशतक की टीका में भी उन्होंने भोज को सर्वज्ञ कहा है[323]—

तदुक्तं चारुचर्यायामृतुचर्याप्रस्तावे सर्वज्ञभोजराजेन।

घनश्याम—

चौण्डाजी वाला के पौत्र तथा महादेव एवं काशी के पुत्र घनश्याम (१७००–१७५० ई०) २६ वर्ष की अवस्था में तंजौर के राजा तुक्कोजि प्रथम (१७२६–३५ ई०) के मन्त्री नियुक्त हुए। इन्होंने ६४ ग्रन्थ संस्कृत में, २० प्राकृत में तथा २५ देशी भाषा में रचे। इनकी रचनाओं में एक 'कुमारविजय' नाटक भी है।[324] इन्होंने भोजचम्पू का पूरक 'युद्धकाण्ड' अठारह वर्ष की अवस्था में रचा तथा लक्ष्मणकवि के युद्धकाण्ड सहित भोजचम्पू पर 'संजीवनी' व्याख्या की सर्जना भी की। यह व्याख्या अप्रकाशित है।[325] टीका का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

अथ विदर्भदेशाधिपतिः कविवदान्यः स्वयं कविर्भोजराजो पञ्चकाण्डीं यशस् सङ्गृह्णन् अविघ्नपरिपूर्तये मङ्गलं चरीकरीति।

इस अद्भुत प्रतिभाशाली पण्डित के लिए 'भोजचम्पू' जैसे ग्रन्थ की टीका करना कठिन कर्म नहीं था—

भुव्यन्यदुष्करकृतेर्मम विद्वसाल-
व्याख्यायितुः कठिनभारतचम्पुटीका।
दध्यन्नभोक्तुरिह यल्लिकुचोपदंश-
स्तद्भोजचम्पुविवृतिर्जलतक्रमानम्॥

यह कवि स्वयं को कालिदास से भी महान् बतलाते हुए अपनी वाणी को ही नमस्कार करता है[326] उसकी वाणी क्रीड़ाचन्द्र, बाण, क्षेमेन्द्र, श्रीकण्ठ, भर्तृमीढ (भर्तृमेण्ठ ?). भोज आदि निखिल विद्वानों के गुणों का आगार है।[327]

नारायण—

नारायण अथवा वेंकटनारायण की 'पदयोजनाविवृति' संक्षिप्त है।[328] नरसका इनकी माता का नाम था तथा नागेश्वर इनके पिता का। ये स्वयं को कोलाचल के वंशज कहते हैं, जो सम्भवतः मल्लिनाथ के वंश से अभिन्न है।[329] ये चम्पूरामायण में पापहरण करने का सामर्थ्य पाते हैं। ग्रन्थ का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

तत्रभवान् भोजराजः श्रीराममनूपासनालब्धमहिमा तत्प्रेरितो भूत्वा चम्पूरामायणाख्यं प्रबन्धं प्रारिप्सुः........।

यह टीका अप्रकाशित है। लक्ष्मण कवि के युद्धकाण्ड की टीका रचने से पूर्व वह लिखता है—

लक्ष्मणमहाकविः श्रीमद्भोजराजप्रणीतचम्पूरामायणस्य परिपूर्तये अवशिष्टं युद्धकाण्डं प्रारिप्सुः........।

शिवराम सूरि–

इनकी चम्पूरामायण की व्याख्या अप्रकाशित है।[330] सम्भवतः इन्होंने ही 'चम्पूरामायण' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ की भी रचना की है।[331] इससे स्पष्ट है कि भोज की चम्पूरामायण तथा उसकी शैली से ये प्रभूत रूप से प्रभावित थे।

करुणाकरः

कालीकट-नरेश विक्रम के अनुरोध पर श्री करुणाकर ने चम्पूरामायण की व्याख्या की।[332] ग्रन्थ के प्रारम्भ में लिखते हैं कि यह कृति कालिदास तथा भोज का सम्मिलित प्रयास है। तथा सरस्वतीकण्ठाभरण के द्वारा निर्णीत साधु शब्दों के उदाहरणार्थ इस चम्पू का निर्माण किया गया—

राजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजःकविशेखरेण श्रीकालिदासेन सह श्रीमद्रामायणं लोकोत्तरार्थं संक्षिप्य सकलव्याकरणसमुद्धृतसारांशसुन्दरस्वनिर्मितसरस्वती-कण्ठाभरणनिर्णीतसाधुशब्दोदाहरणतया गद्यपद्यात्मकचम्पूप्रबन्धेन कमपि प्रबन्धन्........।

न तो हम भोज एवं कालिदास को एक काल में रख सकते हैं एवं न चम्पूरामायण के अध्ययन से ऐसी प्रतीति होती है कि वह 'सरस्वतीकण्ठाभरणनिर्णीत' साधु शब्दों के उदाहरण के लिए रची गयी। हां, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि चम्पूरामायण, रामायण को संक्षिप्त कर रची गयी। यह टीका अप्रकाशित है।

कामेश्वर सूरिः

इनकी विद्वत्कौतुहल टीका अप्रकाशित है।[333] यह टीका युद्धकाण्डपर्यन्त रची गयी।[334] इसी टीका से यह भी ज्ञात होता है कि रामायणचम्पू 'भोजचम्पू' के नाम से भी विख्यात रहा।[335]

मानदेवः

मानविक्रम, मानदेव अथवा मानवेद की चम्पूरामायण व्याख्या अप्रकाशित है।[336]

........स मानदेवनृपतिर्भोजदेवोदितां साम्प्रतं चम्पूं व्याकुरुते........।[337]

यह मानदेव कालीकट का राजा था। मानदेव ने चम्पूभारत की भी रचना की भी रचना की है।[338]

चम्पूरामायण की एक व्याख्या अज्ञात रचयिता की प्राप्त होती है।[339] इसके प्रारम्भ तथा अन्त का भाग उपलब्ध न होने से ग्रन्थकार के विषय में ज्ञान नहीं हो पाया है।

पं० रामचन्द्र मिश्रः

रांची के आधुनिक पण्डित रामचन्द्र मिश्र की 'प्रकाश' टीका चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी से १९५६ ई० में प्रकाशित हुई है। यह टीका रामचन्द्र बुधेन्द्र की साहित्यमंजूषा टीका

के आधार पर रची गयी है। यह स्वयं टीकाकार ग्रन्थ की भूमिका के अन्त में इसे स्वीकार करते हैं। परन्तु उससे पूर्व यह भी बताते हैं कि 'टीका (साहित्यमंजूषा) में कुछ ऐसी भ्रामक बातें लिखी गई हैं, जिनसे साधारण पाठक ही नहीं, कोई भी विद्वान् गुमराह हो सकता है।' जिनमें सुधार करने को ये प्रवृत्त हुए हैं। परन्तु वस्तुतः पूर्व टीका में कुछ यहां-वहां परिवर्तन कर, उसे अपनी टीका बना लिया गया है। स्वभावतः पूर्व टीका के गुण-दोष इसमें भी सुलभ है—। उदाहरणार्थ—

ततो दशरथायाशु दिदेश दशमीं दशाम्।[340]

की टीका में रामचन्द्र बुधेन्द्र ने काम की दशमी 'मरण' दशा माना है जो प्रसंग के परिप्रेक्ष्य में अनुचित है। यह वस्तुतः आयु की अन्तिम दशा है। परन्तु रामचन्द्र मिश्र की टीका में भी यही व्याख्या प्राप्त होती है।

चम्पूरामायण की-समस्याएं

ग्रन्थगत समस्याएं—

चम्पूरामायण सुन्दरकाण्ड-पर्यन्त ही क्यों?

भोज की चम्पूरामायण सुन्दरकाण्ड-पर्यन्त ही प्राप्त होती है। युद्धकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड अन्य कवियों ने रचकर इस कृति को पूर्ण करने के प्रयास किये हैं। सहज प्रश्न उठता है कि भोज ने इस कृति को सुन्दरकाण्ड-पर्यन्त ही रचा था अथवा आगे भी। यदि सुन्दरकाण्ड तक ही रचा तो भोज ने इसे अपूर्ण क्यों छोड़ दिया। यहां यथासम्भव इन जिज्ञासाओं पर विचार किया जायगा।

यह असम्भव नहीं कि परवर्ती काल में चम्पूरामायण के युद्ध आदि काण्ड किसी कारण से नष्ट हो गये हों एवं ग्रन्थ को मूलतः अपूर्ण समझकर परवर्ती पण्डितों ने इसे भोज की शैली में ही पूर्ण करने के प्रयास किये हों। परन्तु लक्ष्मण पण्डित का युद्धकाण्ड निकट भूत का प्रतीत नहीं होता क्योंकि रामचन्द्र बुधेन्द्र आदि प्राचीन टीकाकारों ने भोजचम्पू के साथ ही इस युद्धकाण्ड पर भी टीका रची। इस पूरक-काण्ड की प्राचीनता तथा भोजचम्पू से घनिष्टता इससे भी प्रकट होती है कि भोजचम्पू की उपलब्ध प्रायः हस्तलिखित प्रतियों में लक्ष्मणकवि का युद्धकाण्ड भी सम्पृक्त प्राप्त हुआ है। प्रतीत होता है, यह काण्ड प्राचीन काल से ही भोजचम्पू का अभिन्न अंग बन गया था। भोज ने पांच ही काण्ड रचे, इसकी पुष्टि लक्ष्मण कवि के युद्ध-काण्ड के अन्तिम श्लोक से होती है—

प्राग्भोजोदितपञ्चकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः
काण्डो लक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोऽपि जीयाच्चिरम्॥[341]

यह भी सम्भव नहीं कि भोज पांच काण्ड तक ही ग्रन्थ रचना चाहता था क्योंकि सुन्दरकाण्ड के अन्त में ऐसा कोई लक्षण प्रतीत नहीं होता जिससे ग्रन्थ की पूर्णता द्योतित हो। सीता के द्वारा प्रेषित चूड़ामणि हनुमान् रामचन्द्रजी को सौंपते हैं और काण्ड समाप्त हो जाता है। यहां भोज की उस प्रतिज्ञा की पूर्ति नहीं होती है जो उसने ग्रन्थ के प्रारम्भ में की थी[342]—

वाल्मीकिगीतरघुपुङ्गवकीर्तिलेशैस्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्।

इस पंचकाण्डात्मक कृति में न तो कथानक पूर्ण होता है तथा न भोज का उद्देश्य ही। अतः भोज की यह कृति अपूर्ण ही थी जैसा कि लक्ष्मणकवि युद्धकाण्ड के प्रारम्भ में—

भोजेन तेन रचितामपि पूरयिष्य-
न्नल्पीयसापि वचसा कृतिमत्युदाराम् ।

भोज की अपूर्ण कृति को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करता है तथा वह भी एक ही काण्ड से[345]—

प्रारेभे हृदि लक्ष्मणः कलयितुं पौलस्त्यविध्वंसनं
धीरः पूरयितुं कथां च विमलामेकेन काण्डेन सः ।

स्पष्ट है, भोज ने चम्पूरामायण के सुन्दरकाण्डपर्यन्त पांच काण्ड ही रचे, जिसे सर्वप्रथम, युद्धकाण्ड की रचना कर लक्ष्मण कवि ने पूर्ण किया ।

जिज्ञासा होती है, वाल्मीकि की कृति का यथावत् सारांश प्रस्तुत करने की प्रतिज्ञा करने पर भी भोज ने चम्पूरामायण को पूर्ण न करते हुए अपूर्ण ही क्यों छोड़ दिया ? उत्तर में कतिपय ये सम्भावनाएं की जा सकती हैं—

रामायणचम्पू के पांच काण्डों को युद्धकाण्ड[346] रचकर पूर्ण करने वाले एक अन्य पण्डित राजचूड़ामणिदीक्षित के अनुसार भोज ने इस रामचरित की रचना एक रात में की थी जिसे वह एक दिन में युद्धकाण्ड रचकर पूर्ण कर रहा है—

भोजेन रामचरितं ग्रथितं निशयैकया ।
एकेन पूरयत्यह्ना श्रीचूडामणिदीक्षितः ॥

इस प्रथम श्लोक तथा पुष्पिका—

एकदिवससंदृब्धो युद्धकाण्डः चम्पूः, सम्पूर्णा ।

के अतिरिक्त अपनी अन्य रचना काव्यदर्पण में भी वह इस विशेषता को प्रकट करता है[347]—

'यश्चैकाह्ना भोजचम्पोर्युद्धकाण्डमपूरयत् ।'

एक रात्रि में रामायण के पांच काण्डों का निर्माण असाधारण प्रतिभा तथा काव्य-निर्माण-क्षमता की अपेक्षा करता है । भोज की ग्रन्थनिर्माण में इतनी त्वरा-क्षमता की पुष्टि प्रबन्धचिन्तामणि से भी होती है,[348] जिसके अनुसार भोज साक्षात् वाचस्पति के समान अनेक ग्रन्थों को अचानक रच लेता था—

साक्षाद्वाचस्पतिरिव जवाद्दृब्धनानाप्रबन्धः ।

यह ग्रन्थ शीघ्रता में रचा गया, इसको पुष्टि ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्यों से भी होती है । कई स्थानों पर इस ग्रन्थ का रचयिता अपने पाठकों अथवा श्रोताओं से यह अपेक्षा करता है कि उन्हें वाल्मीकिरामायण का ज्ञान है और इसलिए वह–

ग्रन्थ के कथानक को–

वाचं निशम्य भगवान् स तु नारदस्य
प्राचेतसः प्रवचसां प्रथमः कवीनाम् ।[349]

प्रारम्भ करते समय यह स्पष्ट करना अनावश्यक समझता है कि नारद ने क्या कहा था ? आगे चलकर 'रामचरितं यथाश्रुतं'[350] से भी यह स्पष्ट नहीं होता कि रामचरित नारद से ही सुना था ।

वस्तुस्थिति का ज्ञान वाल्मीकिरामायण से ही होता है। स्पष्ट है, ग्रन्थ को शीघ्र समाप्त करने के संभ्रम में ही यह अपूर्णता रही होगी।

बालकाण्ड के ५३ वें श्लोक के पश्चात्–

'कुशाम्बप्रमुखैश्चतुर्भिः कौशाम्बी-महोदय-धर्मारण्य-गिरिव्रजाख्यानां पुरीणांकर्तृभिः........।'

में रामायण[351] से ही ज्ञात होगा कि कुशाम्ब के अतिरिक्त कुशनाभ, असू (धू)-र्तरजस् तथा वसु ने क्रमशः उपर्युक्त नगरियां बसायीं।

कैकेयी ने दो वरदान चाहे[352]—

तयोरेकस्य संरम्भो भरतस्याभिषेचनम्।
अन्यस्य वन्यवृत्यैव वने रामस्य वर्तनम्॥

परन्तु यह स्पष्ट नहीं कि द्वितीय वरदान में राम की वनवृत्ति की अवधि क्या होगी? क्या आजीवन वनवास? कैकेयी राम की जिज्ञासा शान्त करते हुए भी[353]—

वरद्वयं तावत्तव मुनिवृत्यैव वने वर्तनमवनेरवनं भरतस्येति।

राम-वनवास की अवधि स्पष्ट नहीं करती। इसका स्पष्टीकरण राम के वन चले जाने पर निषाद-राज के मुख से प्रासंगिक रूप से हो जाता है[354]—

'........मन्दाकिनीसंदर्शनेन मन्दायमानजननीजनवियोगदुर्दशश्चतुर्दशदशरथकथिताः समाः सभापयतु भवानिति।'

वस्तुतः यह स्पष्टीकरण उपर्युक्त श्लोक में ही होना था।

रामविलाप को संक्षेप में कहने के लिए ही कवि कह देता है—

तादृग्विधामपि कथां कथयन् स्ववाचा
वल्मीकजन्ममुनिरेव कठोरचेताः॥
साधारणी क्षितिभुजां मृगयेति पूर्व-
मुक्ता त्वयैव जनसंसदि सत्यवादिन्।[355]

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य-वाल्मीकिरामायण[356]—

भोज चम्पू में राम की ऐसी घोषणा कहीं भी दृष्टिगत नहीं होती। शीघ्रतावश ये रामायण में निहित 'यान्ति राजर्षयश्च मृगयां धर्मकोविदः' बात बीच में ही छोड़ गये, परन्तु शीघ्रता में यह ध्यान नहीं रहा कि यह उक्ति इस ग्रन्थ में नहीं दी गयी है। मूलरामायण में ही है।

लंकादहन का कुछ विवरण देने के पश्चात् कवि सार की बात—

'वाचामिदानीं किमु विस्तरेण'

कहकर विशेष वर्णनादि से बच निकलता है। इस बचने में कवि प्रतिभा की न्यूनता नहीं, समय की बचत तथा संक्षिप्तीकरण की प्रवृत्ति काम कर रही है।

इन सारे विवरणों से स्पष्ट है कि कवि को ग्रन्थ रचने में त्वरा थी। वह कहीं कथानक के, कहीं वर्णन के विस्तार से वचना चाहता है। कहीं जल्दी में शापावधि जैसी प्रमुख वात भी विस्मृत कर जाता है।

अन्ततः इस ग्रन्थ के निर्माण में त्वरा की क्या आवश्यकता थी और यदि त्वरा भी थी तो ग्रन्थ अपूर्ण क्यों रह गया ? इस सम्बन्ध में ये सम्भावनाएं हो सकती हैं—

(१) भोज विस्तृत साम्राज्य का शासक था। समय-समय पर वह युद्धों में भी व्यापृत रहता था। साथ ही राजकीय कर्तव्यों से आवृत रहने से सतत् साहित्य-साधना में निरत रहना भोज के लिए सम्भव भी नहीं था। परन्तु अपनी अवाध तथा प्रगाढ़ साहित्याभिरुचि होवे के साथ ही शीघ्र ग्रन्थ-निर्माण करने की परम शक्ति से सम्पन्न होने से, अवसर पाते ही वह ग्रन्थ-निर्माण में निरत होकर अवकाश का सदुपयोग करता रहा होगा। सम्भवतः यही कारण है कि रात्रिकाल में उसने इस ग्रन्थ की रचना की तथा प्रातः होते ही पुनः राजकीय कार्यों अथवा किसी आकस्मिक समस्या में उलझ जाने पर रचयिता को इसे पूर्ण करने का अवसर नहीं मिल पाया हो।

(२) प्रबन्धचिन्तामणि[357] के अनुसार अपने प्रतिद्वन्द्वी काशीराज कर्ण से भोज ने यह शर्त ली थी कि एक ही लग्न में पचास हाथ ऊंचे प्रासाद का निर्माण भोज उज्जैन में तथा कर्ण काशी में प्रारम्भ करे। जिसके प्रासाद पर शिखर पहिले चढ़े, वही विजयी घोषित हो। एक रात में रामायणचम्पू निर्माण की भी कहीं भोज ने किसी पण्डित अथवा कवि से वैसी ही शर्त कर ली हो तथा सुन्दरकाण्ड की पूर्णता के साथ ही प्रातः हो गया हो एवं ग्रन्थ पुनः आगे न रचा जा सका हो। चम्पू-शैली इसलिए स्वीकारी गयी हो कि शर्त के अनुसार कवि की गद्य तथा पद्य में एक साथ प्रौढ़ता ज्ञात हो सके।

ग्रन्थ की अपूर्णता-विषयक ये केवल सम्भावनाएं ही हैं। अन्य निश्चित तथ्यों के अभाव में निर्णयात्मक रूप से कुछ भी कहना असंगत होगा।

चम्पूरामायण में अतिरिक्त श्लोकः—

चम्पू-रामायण की एक अप्रकाशित प्रति[358] में वालकाण्ड के प्रथम श्लोक के पश्चात् निम्नांकित दो श्लोक और प्राप्त होते हैं—

वन्दे वेतण्डवदनं यच्छुण्डालीलयोद्धृता।
ब्रह्माण्डमण्डपारम्भस्तम्भतां लभते क्षणम्॥
वन्दामहे महेशानचण्डकोदण्डखण्डनम्।
जानकीहृदयानन्दचन्दनं रघुनन्दनम्॥

ये श्लोक चम्पूरामायण के प्रकाशित संस्करणों में प्राप्त नहीं होते हैं। इनमें से प्रथम—

'वन्दे वेतण्डवदनं.......'

श्लोक से ही वादिशेखर-रचित शिवचरित-चम्पू[359] का प्रारम्भ होता है। यह चम्पू अप्रकाशित है। द्वितीय श्लोक रामस्तवराजस्तोत्र में उपलब्ध होता है। जिसका प्रारम्भ 'वन्दे त्वां च महेशान चण्डकोदण्डखण्डनं' के रूप में होता है।[360]

दोनों ही श्लोकों की शब्दशय्या आकर्षक है। प्रथम श्लोक पर बाणभट्ट के हर्षचरित की छाया स्पष्ट प्रतीत होती है—

नमस्तुंगशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे।
त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शम्भवे॥

ऐतिहासिक समस्याएं

चम्पूरामायण की कृतित्व-समस्या—

विद्वानों में विशेष लोकप्रिय भोज की सुप्रसिद्ध कृति चम्पूरामायण का कृतित्व भी सन्देह के परे नहीं है। युद्धकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड तो निश्चय ही परवर्ती विद्वानों द्वारा अनेक रूपों में रचे गये तथा सुन्दरकाण्ड तक पांच काण्ड भोजकृत माने जाते हैं परन्तु ये पांच काण्ड भी क्या भोजराज ने ही रचे तथा वह भोजराज धाराधीश ही था अथवा कोई अन्य? विद्वज्जन इन प्रश्नों पर एकमत नहीं है। इन सन्देहों का कारण चम्पूरामायण की विभिन्न प्रतियों में प्राप्त पुष्पिकाओं की अनेकरूपता ही है। इन्हीं के आधार पर विद्वानों ने चम्पूरामायण के कृतित्व विषयक विभिन्न निर्णय लिए हैं।

आफ्रेक्ट[360] के अनुसार चम्पूरामायण के बालकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड, भोज एवं कालिदास के रचे हुए हैं। अरण्य, किष्किन्धा तथा सुन्दरकाण्ड विदर्भराज के रचे हुए हैं। चम्पूरामायण की कतिपय प्रतियों की पुष्पिकाओं में कालिदास को भी इसका रचयिता व्यक्त किया गया है। विक्रम संवत् १८९८ में लिखी गयी एक प्रति[361] के बालकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड की पुष्पिका में उन काण्डों के रचयिता के रूप में कालिदास का ही उल्लेख है—

इति श्रीकालिदासकविना विरचित रामायणचम्पू बालकाण्ड समाप्तं।
तथा
इति श्रीकालिदासकृत अयोध्याकाण्ड समाप्तं॥

इसके अतिरिक्त परवर्ती अन्य काण्डों की पुष्पिकाओं में ग्रन्थकार का नामनिर्देश उपलब्ध नहीं होता, यहां तक कि युद्धकाण्ड मे भी नहीं।

चम्पूरामायण के एक टीकाकार करुणाकर[362] के अनुसार चम्पूरामायण कालिदास तथा भोज के संयुक्त प्रयास का परिणाम है—

राजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजः कविवीरशेखरेण श्रीकालिदासेन सह........
लोकोपकारार्थं संक्षिप्य...........गद्यपद्यात्मकचम्पूरूपेण कमपि प्रबन्धं....
........।

श्री एम० कृष्णमाचारियर[363] के अनुसार इस कथन में अधिक तथ्य नहीं है कि चम्पूरामायण भोज तथा कालिदास के संयुक्त प्रयास का फल है, जहां तक यह न मान लिया जाय कि पद्मगुप्त नामधारी परिमल कालिदास का इसकी रचना में हाथ था। लुइस एच० ग्रे पद्मगुप्त परिमल को कालिदास मानने के पक्ष में नहीं हैं।[364] इस कृति की रचना में कालिदास के हाथ की पुष्टि अन्य सशक्त प्रमाणों से नहीं होती। सम्भवतः बल्लाल के भोजप्रबन्ध की रचना की प्रसिद्धि के पश्चात् भोज तथा कालिदास की गाढ़ मैत्री की कल्पना भी बद्धमूल हो गयी। असम्भव नहीं

यदि इसी आधार पर परवर्ती विद्वानों ने चम्पूरामायण के कृतित्व में भोज के साथ कालिदास का भी नाम जोड़ दिया हो। यह इसलिए भी अधिक समुचित प्रतीत होता है कि विद्वानों के सामने उस कालिदास की कल्पना की जो पद-पद पर श्लोक बनाकर अथवा समस्यापूर्ति कर भोज को प्रसन्न करता रहता था।

चम्पूरामायण के रचयिता के रूप में प्रायः विदर्भराज का स्मरण किया जाता है। तंजौर की एक प्रति की पुष्पिका में इसे विदर्भराज की कृति व्यक्त किया गया है[365]—

इति श्रीविदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणे...........।

इस प्रति में भोज का कहीं भी निर्देश नहीं है। वहीं की एक अन्य प्रति की पुष्पिका[366] में भी विदर्भराज को ही रचयिता व्यक्त किया गया है—

इति विदर्भराजविरचिते श्रीमति विचित्रतरे चम्पूरामायणे...........।

इसी आधार पर कतिपय विद्वानों ने चम्पूरामायण को विदर्भराज की कृति माना है[367] तथा इसीलिए चम्पूरामायण की प्रकाशित प्रतियों में भी सर्वत्र इसे विदर्भराजविरचित ही कहा गया है।

विदर्भराज किसी व्यक्ति का अभिधान नहीं हो सकता। यह किसी नरेश का विरुद प्रतीत होता है। यह विरुद किस नरेश का है? इसका ज्ञान हमें चम्पूरामायण की विभिन्न प्रतियों तथा टीकाकारों से होता है।

१. चम्पूरामायण का टीकाकार घनश्याम विदर्भदेशाधिपति (विदर्भराज) तथा कवि भोजराज को अभिन्न मानता है[368]—

अथ विदर्भदेशाधिपतिः कविवदान्यः स्वयं कविर्भोजराजः पंचकाण्डीं यशस् संगृह्णन् अविघ्नपरिपूर्तये मंगलं चरीकरोति... ....।
भोजेन आङ् ईषत् आसमन्ताद्वा बोधिताः सूचिताः गद्यपद्यात्मना ग्रथिताः ये पंचकाण्डाः...........।

२. चम्पूरामायण के पूरक युद्धकाण्ड के रचयिता राजचूडामणि दीक्षित ने १७वीं सदी के प्रारम्भ में ही इस कृति को भोजविरचित घोषित कर दिया था[369]—

भोजेन रामचरितं ग्रथितं निशयैकया।
एकेन पूरत्यत्यह्ना श्रीचूडामणिदीक्षितः॥

३. चम्पूरामायण के सर्वप्रसिद्ध पूरक युद्धकाण्ड के रचयिता लक्ष्मणकवि ने इसे स्पष्ट ही भोजकृत स्वीकार किया है[370]—

भोजेन तेन रचितामपि पूरयिष्य-
न्नल्पीयसापि वचसा कृतिमत्युदारान्।
तथा
प्राग्भोजोदितपंचकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः काण्डो लक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोपि जीयाच्चिरम्।

४. किसी अज्ञात रचियता ने भी युद्धकाण्ड के प्रारम्भ में व्यक्त किया है कि चम्पूरामायण भोज तथा लक्ष्मण कवि का संयुक्त प्रयास है[371]—

श्रीभोजलक्ष्मणसुधीन्द्रकृते प्रबन्धे
लग्नं सदल्पमपि ते लपितं स्वदेत।
कल्याणरत्नकलशद्वयसम्भृतेन
क्षीरेण वारिसहितं महितं किल स्यात्॥

५. वेङ्कटाध्वरी ने चम्पूरामायण के पूरक उत्तरकाण्ड में भोज को इसके पाँच काण्डों का रचयिता बताया है[372]—

यः काण्डा निबबन्ध चम्पुविधया पंचापि भोजः कविः
यो वा षष्ठमचष्ट लक्ष्मणकविस्ताभ्यामुभाभ्यामपि।

६. नारायण-विरचित चम्पूरामायण की पदयोजना—टीका में भी भोज का ही उल्लेख है[373]—

तत्रभवान् श्रीभोजराजः........चम्पूरामायणाख्यं प्रबन्धं प्रारिप्सुः।

७. टीकाकार रामचन्द्र ने साहित्यमंजूषा टीका में भोज को कई स्थलों पर 'सर्वज्ञ' कहा है। युद्धकाण्ड की टीका प्रारम्भ करते हुए वह लिखता है—

तत्रभवता भोजराजेन विरचितपंचकाण्डसम्बद्धं चम्पूरामायण
प्रबन्धं...........।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही टीकाकार ने चम्पूरामायण के रचयिता भोज को भारती की क्रीडास्थली तथा कवियों का उपजीव्य कहा है—

नित्यंभ्रसम्भ्रमजृम्भिता नटति यज्जिह्वाङ्गणे भारती
जायन्ते कविपुंगवास्तनुभृतो यद्वक्त्रनिर्वर्णनात्।
भोजक्षोणिभुजामुना विरचितश्चम्पूप्रबन्धोऽधुना
व्याख्यां तस्य करोमि मंजुलतरां साहित्यमंजूषिकाम्॥
एवं........
........अनवद्यनिखिलविद्याभिज्ञः सर्वज्ञसार्वभौमो भोजनामा महाराज........
श्रीरामस्य चरितानुवर्णनम्...........।

८. (क) चम्पूरामायण भोज की ही कृति है, यह भावना प्राचीन काल से ही बद्धमूल हो गयी थी। यही कारण है कि उसका अभिधान भोज से सम्पृक्त होकर 'भोजचम्पू' हो गया। १७वीं सदी के प्रारम्भ में युद्धकाण्ड के रचयिता राजचूडामणि दीक्षित ने चम्पूरामायण को 'भोजचम्पू' के नाम से पुकारा है[374]—

यश्चैकाह्ना भोजचम्पोर्युद्धकाण्डमपूरयत्।

(ख) कामेश्वरसूरि ने चम्पूरामायण की विद्वत्कौतुहल टीका में इसे 'भोजचम्पू' ही कहा है[375]—

तस्य श्रीसूनुकामेश्वरकविरचिते योजने भोजचम्प्वाः
विद्वत्कौतूहलाख्ये समभवदमलो युद्धकाण्डः समाप्तः ॥

(ग) घनश्याम ने भी संजीवनी टीका में इसे भोजचम्पू के नाम से ही अभिहित किया है[376]—

तद्भोजचम्पुविवृतिर्जलतक्रपानम् ।

इस प्रकार चम्पूरामायण का अभिधान ही भोज के अभिधान से सम्पृक्त होकर एकाकार हो गया।

९. गौरीमायूर-माहात्म्य-चम्पू के रचयिता अप्पा दीक्षित ने भोज को चम्पूकाव्य का प्रवर्तक स्वीकार किया है[377]—

भोजादिभिः कृतपदं कविभिर्महद्भि-
श्चम्पूक्तिसौधमधिरोढुमहं यतिष्ये ।
निःशंकमम्बरतलं पततः पतत्रि-
राजस्य मार्गमनुसर्तुमिवाण्डजोऽन्यः ॥

यह कृति १७वीं सदी के उत्तरार्द्ध तथा १८ वीं सदी के पूर्वार्द्ध में रची गयी।[378]

१०. होशियारपुर पुस्तकालय में उपलब्ध चम्पूरामायण की एक प्रति[379] में उसे विदर्भराज की कृति व्यक्त किया गया है तथा अन्य प्रति[380] को भोजचम्पू ही कहा गया है।

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि चम्पूरामायण भोज की कृति है जिसका विरुद विदर्भराज था।

भोज अनेक हो गये हैं।[381] स्वयं विद्वान् तथा विद्वानों के आश्रयदाता भी अनेक भोज हो गये हैं। कच्छ के राजा भारमल्ल प्रथम (१५८५–१६३१ ई०) का पुत्र राव भोजराज (१६३१–४५ ई०) भी अपने पिता के समान विद्वान् तथा विद्वानों का आश्रयदाता था। धर्मप्रदीप, भोजव्याकरण आदि उसी के आश्रित विद्वानों की कृतियां हैं।[382] परन्तु इस भोज का विरुद्ध विदर्भराज नहीं रहा तथा न इसका राज्य भी विदर्भपर्यन्त रहा। अतः यह भोजराज विदर्भराज नहीं हो सकता।

प्रतिहार मिहिरभोज (८३६–८५ ई०) प्रथम तथा भोज द्वितीय (९१०–१२ ई०) ग्रन्थ-रचयिता के रूप में प्रसिद्ध नहीं हैं।

परमार राजा भोज द्वितीय (१२८०–१३१० ई०)[383] प्रतापशाली नहीं था। यह सम्भव नहीं कि विदर्भराज विरुद से वह अलंकृत रहा हो क्योंकि उसका राज्यक्षेत्र सीमित था। यहां तक कि उसकी राजधानी धारा के समीप के माण्डव का दुर्ग भी उसके अधिकार में नहीं रहा था।[384] वह विद्वान् अवश्य रहा होगा क्योंकि नयचन्द्रसूरि की इस अभिव्यक्ति में सार तभी प्रतीत होगा[385]—

परमारान्वयप्रौढो भोजो भोज इवापरः ।

परन्तु उसकी विदर्भराज उपाधि नहीं थी तथा न अब तक यह ज्ञात हो पाया है कि उसने किसी ग्रन्थ की रचना भी की थी।

विदर्भ में भोजवंश का राज्य था।[386] अशोक के तेरहवें अभिलेख,[387] खारवेल के अभिलेख,[388] रघुवंश,[389] दशकुमारचरित,[390] अल्बरुनी,[391] धर्मपाल के खालिमपुर ताम्रपत्र[392] आदि से इसकी पुष्टि होती है। ये स्वभावतः विदर्भराज थे परन्तु इनकी साहित्याभिरुचि की पुष्टि नहीं होती है तथा न यह सिद्ध होता है कि इनमें से किसी राजा ने किसी ग्रन्थ तथा विशेषतः काव्यग्रन्थ का प्रणयन किया हो।

सेतुबन्ध काव्य के टीकाकार रामसेतुप्रदीप के कर्ता रामदास (१६ वीं सदी) के अनुसार इस काव्य का कर्ता प्रवरसेन है जो भोजदेव से अभिन्न है। इस काव्य का कर्ता कुन्तल का शासक, प्रवरसेन द्वितीय था। जो भोजकटक के भोज लोगों की शाखा से सम्बद्ध होने से भोजदेव कहलाता रहा होगा।[393] पर यह केवल सम्भावना ही है। पुनः इस प्रवरसेन का समय पांचवी सदी के पश्चात् का नहीं है। चम्पूरामायण इतना प्राचीन ग्रन्थ नहीं है। चम्पू ग्रन्थों के उपजीव्य रूप में पहचाने जाने वाले इस ग्रन्थ की अलंकृत शैली, तथा रामायण को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने की वृत्ति दसवीं-ग्यारहवीं सदी के ही अनुकूल है।

ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्वयं विद्वान् तथा विद्वानों का आश्रयदाता धाराधीश भोज हुआ। वह विविध विषयक कई ग्रन्थों के रचयिता के साथ ही काव्यप्रणेता के रूप में भी प्रसिद्ध है। उसे इसीलिए 'कविराज' उपाधि से भी विभूषित किया गया था। भोज ने भी कोंकण तथा गोदावरी पर्यन्त ही अपना राज्य-विस्तार नहीं किया बल्कि विविध अन्य प्रदेशों पर भी अपना अधिकार कर लिया था।[394] भोज ने विदर्भ को भी अपने अधिकार में कर विदर्भराज की उपाधि धारण की।

चम्पूरामायण की अनेक हस्तलिखित प्रतियों की पुष्पिकाओं में विदर्भराज भोज को धाराधीश से अभिन्न कहा गया है। भाण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, पूना में संगृहीत एक प्रति[395] की पुष्पिकाएं इस प्रकार है—

बालकाण्ड—इति विदर्भराजविरचिते...........।

अयोध्याकाण्ड—इति श्रीविदर्भाधिपतिश्रीभोजराजविरचिते...........।

अरण्यकाण्ड—इतिश्रीधाराधीश भोजराजविरचिते...........।

किष्किन्धाकाण्ड—इतिश्रीविदर्भाधिपतिना श्रीभोजेन विरचिते...........।

सुन्दरकाण्ड—इतिश्रीभोजराजविरचिते चम्पूरामायण...........।

इन पुष्पिकाओं से स्पष्ट है कि विदर्भाधिपति अथवा विदर्भराज, भोजराज की उपाधि है। यही भोजराज धाराधीश भी है।

सिन्धिया ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, उज्जैन में सुरक्षित चम्पूरामायण की एक प्रति[396] की पुष्पिकाओं से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

बालकाण्ड—इतिश्रीविदर्भराजविरचिते चम्पूरामायणें...........।

अयोध्याकाण्ड—इति भोजराजविरचिते...........।

अरण्यकाण्ड —इति श्री विदर्भराजविरचिते..........।

किष्किन्धाकाण्ड—इति श्रीविदर्भराजविरचिते..........।

सुन्दरकाण्ड—इति श्रीभोजराजविरचिते..........।

अन्त में—भोजेन कथितं चम्पूरामायणमिदं शुभम् ।

अन्तिम पुष्पिका—श्रीमद्धाराधीशभोजराजविरचिते चम्पूरामायणे लक्ष्मण-
विरचितो षष्ठो युद्धकाण्डः समाप्तः ।

इसी प्रबन्ध के नौवें उच्छ्‌वास में यह स्पष्ट किया गया है कि भोजराज के ८४ अथवा 104 विरुद थे । असम्भव नहीं यदि विदर्भराज भी उन विरुदों में से एक हो । राजमार्तण्डयोगसूत्र-वृत्ति के अन्तिम श्लोक में भोज स्वयं को भोजपति कहता है—

स श्री भोजपतिः फणाधिपतिकृत्सूत्रेषु वृत्तिं व्यधात ।

भोजपति से तात्पर्य भोज जाति तथा उनकी वासभूमि के स्वामित्व से है । भोजजाति की वासभूमि भोजदेश, विदर्भ से अभिन्न है ।[396] रघुवंश की टीका में मल्लिनाथ ने भोजदेश के स्वामी को भोज-पति कहा है[397]—

भोजपतेः भोजदेशाधीश्वरः ।

प्रबन्धचिन्तामणि में धाराधीश भोज को भोजमार्तण्ड भी कहा गया है[398]—

सत्यं त्वं भोजमार्तण्ड ! पूर्वस्यां दिशि राजसे ।

स्पष्ट है स्वयं भोज के अनुसार वह भोजपति अथवा विदर्भ का स्वामी था । स्वभावतः विदर्भराज उनका विरुद रहा ।

आदरणीय डॉ० वासुदेव विष्णु मिराशी ने मेरे जिज्ञासा-पत्र का उत्तर देते हुए 6 अगस्त 1970 के एक पत्र में मुझे सूचित किया कि चम्पूरामायण का रचयिता धार का सुप्रसिद्ध भोज नहीं था । वह विदर्भ का राजा था, जिसकी राजधानी चाहण्ड (आधुनिक चांदा) थी । वह यादव राजा सिंघण द्वितीय (1200–1246 ई०) का समकालीन था जिसे सिंघण के सेनापति खोलेश्वर ने पराजित किया था ।[399]

यह भोज स्थानीय परमार शासक था । इसकी सारस्वत उपलब्धियों के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं हो पाया है । परन्तु इससे यह तो सिद्ध ही हो जाता है कि तेरहवीं सदी तक विदर्भ पर परमारों का शासन था । डॉ० ओ० पी० वर्मा का अभिमत है कि विदर्भ मालवा के परमारों के राज्य के अन्तर्गत था । तथा जगद्देव की मृत्यु के बहुत काल बाद तक उन्हीं के अधिकार में बना रहा ।[400] जगद्देव ने बरार के यवतमाल जिले का एक गांव, डोंगरगांव श्रीनिवास ब्राह्मण को दान में दिया था ।[401] नरवर्मन् की एक प्रशस्ति विदर्भ के नागपुर से ही प्राप्त हुई है ।

भोज ने गौड़ एवं दक्षिणापथ तक विजय प्राप्त की थी ।[402] उसने कैलास से मलय तथा अस्ताचल से उदयाद्रि तक विस्तृत पृथ्वी को भोगा ।[403] उसने विभिन्न राजाओं को पराजित कर अनेक राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था । [404] चेदि, उड़ीसा, गुजरात, लाट, कर्णाटक, कोंकण, चोल, आन्ध्र आदि के नृपों को भी उसने पराजित किया था ।[405] स्वभावतः उसके राज्यक्षेत्र में विदर्भ भी सम्मिलित था । इसी भोज ने अपने वंश के किसी परिवार को विदर्भ

का शासन सौंप दिया। और इस प्रकार परमार-परिवार की एक शाखा विदर्भ में बसकर शासन करने लगी। चांदा से 16 मील उत्तरपश्चिम में भण्डक से प्राप्त प्राचीन मराठी के एक शिलालेख में एक स्थानीय राणा पवार (परमार) शासक के द्वारा निर्मित नागनारायण के मन्दिर का उल्लेख है।[406]

विदर्भ का भी शासक होने से धाराधीश भोज विदर्भराज कहलाता था। अन्य राज्य पर विजय प्राप्त करने पर अपनी कीर्ति बढ़ाने के लिए प्रायः राजा विजित देश के विजयसूचक अथवा स्वामित्वसूचक विरुद धारण करते थे। गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह ने मालवा जीत कर अवन्तिनाथ उपाधि धारण की[107] तथा चेदिराज कर्ण त्रिकलिंगाधिपति[108] कहलाता था।[409] विदर्भ तथा मध्यप्रान्त के अनेक स्थानों से मालवाधीश भोज के वंशज परमारों के शिलालेख प्राप्त हुए हैं।[410]

चम्पूरामायण के टीकाकार रामचन्द्र ने भोज को निखिल विद्या का वेत्ता सर्वज्ञ, सार्वभौम तथा सरस कविता का प्रणेता बताया हैं जिसका उल्लेख पहिले किया जा चुका है। ये सारी विशेषताएँ धाराधीश भोज में ही प्राप्त होती हैं। धनपाल की तिलकमंजरी, बिल्हण के विक्रमांक-देवचरित, कल्हण की राजतरंगिणी, स्वयं भोज की शृंगारमंजरीकथा आदि समकालीन तथा किंचित् परवर्ती स्रोतों से भी इसकी पुष्टि होती है। विविध भोजप्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणि, प्रभाव-कचरित, रासमाला आदि परवर्ती प्रबन्ध-ग्रन्थों से इसी तथ्य की पुष्टि होती है।[411]

इस प्रकार उपलब्ध तथ्यों से यही प्रकट होता है कि चम्पूरामायण धाराधीश परमार राजा भोज प्रथम (999–1054 ई०) की कृति है।

चम्पूरामायण के पूरक अंश के निर्माता

सुन्दरकाण्डपर्यन्त ही विरचित, अपूर्ण भोज चम्पू को पूर्ण करने के लिए विभिन्न युगीन विद्वज्जगत् के कई रसिकों में स्पर्धा ने स्थान पा लिया। फलतः इस ग्रन्थ के कई पूरक अंशों का आविर्भाव हो गया। कई विद्वानों ने युद्धकाण्ड रचकर इसे पूर्ण किया तथा कई विद्वान् इससे भी असन्तुष्ट रहकर उत्तरकाण्ड की रचना में लग गए। इन पूरक काण्डों के रचयिता पण्डितों ने भोज की भाषा तथा शैली की रक्षा करने का पूर्ण प्रयत्न किया है। इनके रचे हुए काण्डों की शैली से यह प्रतीति करना कठिन हो जाता है कि यह कृति भोज की नहीं है। काण्डों के प्रारम्भ तथा अन्त के परिचय-सूचक श्लोक तथा पुष्पिका से ही ज्ञात हो पाता है कि इस कृति का रचयिता कोई भोजेतर कवि है। अन्य की शैली का यथावत् अनुकरण कर पाने वाला कवि ही ऐसे पूरक अंशों की पूर्ति के लिए तत्पर होने का साहस करता रहा।

युद्धकाण्ड—

सुन्दरकाण्डपर्यन्त विरचित भोजकृति से यह काण्ड सीधा सम्बन्ध रखता है। युद्धकाण्ड अनेक विद्वानों ने रचे हैं। लक्ष्मणकवि, राजचूड़ामणिदीक्षित, गरलपुटीशास्त्री, घनश्यामकवि, मुकीश्वरदीक्षित, एकाग्रनाथ (एकामरनाथ ?) तथा एक किसी अज्ञात रचयिता के अलग-अलग युद्धकाण्ड प्राप्त होते हैं।

लक्ष्मणकवि—

गंगाधर के पुत्र लक्ष्मण कवि द्वारा विरचित युद्धकाण्ड सर्वप्रचलित है। भोज की चम्पू-

रामायण की प्रायः हस्तलिखित प्रतियों के साथ इस कवि का युद्धकाण्ड भी सम्पृक्त प्राप्त होता है तथा प्रायः सभी टीकाकारों ने भोजकृत चम्पू के साथ लक्ष्मणकवि के युद्धकाण्ड की भी टीका रची हैं। लक्ष्मण का युद्धकाण्ड अपनी शैली तथा मोहकता से अन्य युद्धकाण्ड–रचयिताओं के लिए आदर्श बन गया था यही कारण है कि तंजोर के घनश्याम पण्डित (1700–1750 ई०) ने स्वयं युद्धकाण्ड भी रचा[412] तथा भोजचम्पू की संजीवनी[413] टीका का निर्माण भी किया। परन्तु टीका रचते समय उसने लक्ष्मणकवि के युद्धकाण्ड की भी व्याख्या की। स्पष्ट है, वह भी इस कृति को भोजचम्पू से सम्पृक्त मानता था। युद्धकाण्ड के अन्तिम श्लोक—

> साहित्यादिकलावता शनगरग्रामावतंसायित-
> श्रीगंगाधरधीरसिन्धुविधुना गङ्गाम्बिकासूनुना।
> प्राग्भोजोदितपञ्चकाण्डविहितानन्दे प्रबन्धे पुनः
> काण्डो लक्ष्मणसूरिणा विरचितः षष्ठोपि जीयाच्चिरम् ॥११०

से ज्ञात होता है कि लक्ष्मणसूरि ने छठा काण्ड लिखकर भोज के पांच काण्डों वाले अपूर्ण ग्रन्थ को पूर्ण किया। ये साहित्यादि विभिन्न कलाओं के मर्मज्ञ तथा 'शनगर' नामक गांव के निवासी थे। ये श्री गङ्गाधर तथा गङ्गा के पुत्र थे। गंगाधर ने मद्रकन्यापरिणयचम्पू तथा इनके दादा दत्तात्रेय ने दत्तात्रेयचम्पू लिखा।[414]

इसी लक्ष्मणकवि ने 'भारतचम्पू–तिलक'[415] भी रचा तथा सम्भवतः कृष्णविलासचम्पू भी।[416] ये दोनों ग्रन्थ अप्रकाशित हैं।

सभी प्रकाशित भोजचम्पू में लक्ष्मणकवि का युद्धकाण्ड सम्पृक्त है। वस्तुतः भोजचम्पू को लक्ष्मणकवि के भोजचम्पू से ही पूर्णता प्राप्त हुई। 1700 ई० के लगभग घनश्याम ने इस ग्रन्थ पर टीका रची तथा 1600 ई० के लगभग हुए राजचूड़ामणि से भी यह प्राचीन था। 1650 ई० में वेंकटाध्वरी ने भोज तथा लक्ष्मणकवि की कृति को उत्तरकाण्ड रचकर पूर्ण किया। छविनाथ त्रिपाठी के अनुसार लक्ष्मण का समय अनुमानतः सोलहवीं सदी का मध्य काल है।[417] जिस प्रकार भोज ने वाल्मीकि के प्रति अपनी विनम्र भावना व्यक्त की तथैव लक्ष्मणकवि ने भोज की उदार कृति को पूर्ण करने में शालीनता व्यक्त की—

> भोजेन तेन रचितामपि पूरयिष्य-
> न्नल्पीयसापि वचसा कृतिमत्युदाराम्।
> न व्रीडितोहमधुना नवरत्नहार-
> सङ्गेन किन्न हृदि धार्यत एव तन्तुः ॥२

लक्ष्मणकवि की गद्य तथा पद्य में गति एवं कथानक को बढ़ाने की त्वरा तथा कला भोज से किसी प्रकार भिन्न नहीं है। शैली के अनुकरण में उसने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

राजचूड़ामणि दीक्षित—

राजचूड़ामणि दीक्षित श्रीकृष्णभट्ट के प्रपौत्र, लक्ष्मीभवस्वामिभट्ट के पौत्र, रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित एवं कामाक्षी के पुत्र थे। 1620 ई० के लगभग वह तंजौर के राजा रघुनाथ का आश्रित कवि था। उसने विविध विषयक कई ग्रन्थों की रचना की जिनमें से कतिपय ये हैं—

१. 'रुक्मिणी-कल्याण' १० सर्गात्मक काव्य है ।
२. 'राघवयादवपाण्डवीय' त्र्यर्थी काव्य[418]
३. आनन्दराघव नाटक,
४. कमलिनीकलहंस नाटक तथा
५. शृंगार (सर्वस्व । तिलक) भाण हैं ।
६. भारतचम्पू
७. काव्यदर्पण तथा
८. इस पर स्वयं की अलंकार-चूड़ामणि टीका ।
९. चित्रमंजरी
१०. मीमांसाग्रन्थ-शास्त्रदीपिका पर कर्पूरवार्तिका टीका
११. युद्धकाण्ड चम्पू आदि ।

आफ्रेक्ट के अनुसार[419] अलंकारशिरोमणि, आनन्दराघव, कंसवध, कमलिनिकलहंस, चम्पूरामायण-युद्धकाण्ड, चित्रमंजरी, न्यायचूड़ामणि, न्यायमुक्तावली, प्रायश्चित्तप्रदीपिका, भारतचम्पू, ऋजुभाषिणी, मणिदर्पण, रुक्मिण्युद्वाह (रुक्मण्युद्वाह ?), वृत्तरत्नावली, शंकराभ्युदय-ग्रन्थ उसके काव्य-दर्पण में उल्लिखित हैं ।

'युद्धकाण्ड चम्पू' को दीक्षित ने एक दिन में पूर्ण किया था—

(१) **भोजेन रामचरितं ग्रथितं निशयैकया ।**
एकेन पूरयत्यह्ना श्री चूडामणिदीक्षितः ॥

(२) **एकदिवससंब्धो युद्धकाण्डचम्पूः संपूर्णा ।**
इस घटना का उल्लेख रचियिता ने अपनी अपर कृति काव्यदर्पण में भी किया है—

(३) **यश्चैकाह्नाभोजचम्पोर्युद्धकाण्डमपूरयत् ।**

यह ग्रन्थ प्रकाशित है। श्री टी० आर० चिन्तामणि ने इसकी भूमिका में रचयिता के जीवन के विषय में संकेत दिया है ।[410]

भाषा में प्रौढ़ता तथा भावों में सरसता एवं कथानक में गति उपलब्ध होती है। दीक्षित-विरचित युद्धकाण्डचम्पू अपेक्षाकृत लघु है । इसमें गद्य के अतिरिक्त ३९ श्लोक हैं जबकि लक्ष्मण के युद्धकाण्ड में 110 श्लोक हैं । एक दिन में पूर्ण करने की त्वरा ने उन्हें संक्षिप्त में प्रस्तुत करने को प्रेरित किया होगा ।

गरलपुटीशास्त्री—

इनका रामायणचम्पूयुद्धकाण्ड मैसूर से प्रकाशित है ।[411]

घनश्याम कवि—

चौण्डाजी वाला के पौत्र तथा महादेव एवं काशी के पुत्र घनश्याम (1700–1750 ई०) उनतीस वर्ष की अवस्था में तंजौर के राजा तुक्कोजि प्रथम (1729–35 ई०) के मन्त्री नियुक्त हुए। घनश्याम ने 64 ग्रन्थ संस्कृत में, 20 प्राकृत में तथा 25 देशी भाषा में रचे ।[422] इनका रचा हुआ कुमारविजय नाटक भी है।[423] इन्होंने लक्ष्मणकवि के युद्धकाण्ड सहित भोजचम्पू पर टीका

की रचना की तथा इसी अपूर्ण भोजचम्पू का पूरक अभिनव युद्धकाण्ड अठारह वर्ष की अवस्था में रचा—

यस्येशोग्रभवः पिता खलु महादेवः स काशीप्रसूः
साधु श्रेयसि सुन्दरी प्रियतमा शाकम्भरी च स्वसा ।
तेनाष्टादशवत्सरेण कविना चौण्डाजिपन्तेन च
श्रीमानारचितश्चिराय जयतु श्रीयुद्धकाण्डो मुदा ॥

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है ।

एकाग्रनाथ—

इनके युद्धकाण्ड की हस्तलिखित प्रति मद्रास में है।[425] यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। कृष्णमाचारियर[126] का एकामरनाथ सम्भवतः इस एकाग्रनाथ से अभिन्न है।

मुक्तीश्वर दीक्षित—

इनके रचे हुए युद्धकाण्ड का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[427] इन्होंने वीरभद्रचम्पू की भी रचना की है।[428]

अज्ञातकवि—

अज्ञातनामाकवि का युद्धकाण्ड सरस्वतीमहल पुस्तकालय, तञ्जौर में सुरक्षित है।[430] देवनागरी में लिखित 20 पत्रात्मक यह ग्रन्थ अपूर्ण है। घनश्याम पण्डित के समान इस काण्ड के रचयिता को भी लक्ष्मणविरचित युद्धकाण्ड का ज्ञान था।

श्रीभोजलक्ष्मणसुधीन्द्रकृते प्रबन्धे
लग्नं सदल्पमपि मे लपितं स्वदेत ।
कल्याणरत्नकलशद्वयसम्भृतेन
क्षीरेण वारिसंहितं महितं किल स्यात् ॥

सम्भव है, इसी प्रकार अन्य कवि भी युद्धकाण्डादि भोजचम्पू के पूरक अंशों को रचने में लगे होंगे, उनकी रचनाएं भी होंगी परन्तु अभी वे ज्ञात नहीं हो पायी हैं।

उत्तरकाण्ड—

रामायणचम्पू को पूर्ण करने के लिए न केवल युद्धकाण्ड अपितु उत्तरकाण्ड भी रचे गये। इस क्षेत्र में भी कई कवियों ने प्रयास किये।

वेङ्कटाध्वरी—

इस प्रकार का प्रथम श्लाघनीय प्रयास 1650 ई० के लगभग कांचीनिवासी रघुनाथसूरि के पुत्र श्री वेंकटाध्वरी ने किया। ये कवि तथा दार्शनिक थे। इन्होंने यादवराघवीयविलोमकाव्य, लक्ष्मीसहस्रस्तोत्र, सुभाषितकौस्तुभ, वरदाभ्युदयचम्पू (हस्तगिरिचम्पू), श्रीनिवासचम्पू, विश्वगुणादर्शचम्पू, उत्तरचम्पू इत्यादि काव्य रचे। उत्तरचम्पू भोज तथा लक्ष्मणकवि के सम्मिलित प्रयास को पूर्ण करने के लक्ष्य से रचा गया।

यः काण्डान्निवबन्ध चम्पूविषयान् पंचापि भोजःकवि
र्यो वा षष्ठमचष्ट लक्ष्मणकविस्ताभ्यामुभाभ्यामपि ।
कारुण्यादविशेषितं कलिमलक्षेपाय रामायणे
काण्डं सप्तममुद्गृणातु रसना चम्पूप्रबन्धात्मना ॥८

यह ग्रन्थ प्रकाशित है ।[431] इसमें उत्तरकाण्ड के कथानक के नाम पर रावण, वालि तथा हनुमान् का चरित्र एवं महत्त्व अंकित है । कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है वह उसे यथेच्छ प्रयोग करने में कुशल है । भोज तथा लक्ष्मण ने वाल्मीकिरामायण के कथापथ का यथावत् अनुसरण किया परन्तु वेंकटाध्वरी स्वतन्त्रता का अवलम्बन लेकर अनुकरण के भार से मुक्त हो गये ।

राघवाचार्य—

तिरुदेल्लोर (जिला चेंगलट) के निवासी राघवाचार्यविरचित रामायण का उत्तरकाण्ड अप्रकाशित है ।[432]

भगवन्त[433] –

रामायण के उत्तरकाण्ड पर आधारित 'उत्तरचम्पू' अप्रकाशित है । रचना साधारण है । भगवन्त एकोजि (1686 ई० से 1711 ई०) के मुख्य सचिव गंगाधरामात्य के पुत्र तथा नरसिंह के शिष्य थे ।

रामानुजदास,[434] यतिराज, शंकराचार्य, हरिहरानन्द, गरलपुटीशास्त्री, राघवाचार्य, ब्रह्मपण्डित, इत्यादि[435] ने उत्तरकाण्ड रचे जो अप्रकाशित हैं । यतिराज सम्भवतः रामानुजदास की ही उपाधि है ।[436]

————

सन्दर्भ

1. (क) चम्पू शब्द की व्युत्पत्ति तथा चम्पूकाव्य की विशेषता दशम परिच्छेद में वर्णित है।
   (ख) निर्णयसागर बम्बई से 1956 में प्रकाशित चम्पूरामायण के अनुसार इस प्रबन्ध में सन्दर्भ है।
2. (क) केवलोपि स्फुरन् बाणःकरोति विमदान् कवीन्।
   किं पुनः क्लृप्तसन्धानः पुलिन्ध्रकृतसन्निधिः॥
   —धनपाल, तिलकमंजरी,
   (ख) याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं
   विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
   दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य
   प्रारब्ध एष च मया न कवित्वदर्पात्॥
   —कादम्बरी उत्तरार्द्ध,
3. मद्राससूची, खण्ड 4, भाग 1 सी, पृष्ठ 5458, क्रमांक 3687.
4. सरस्वतीमहल तंजौर का विवरणात्मक सूचीपत्र, क्रमांक 4115,
5. चमत्कारितया गद्यपद्यात्मकं काव्यं करोमीति तात्पर्यम्।
   —रामायणचम्पू 1/3 की टीका
6. चम्पूरामायण, बालकाण्ड 3.
7. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, 30, 1950 ई० पृष्ठ 1
8. धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च
   करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्॥
   —काव्यालंकार 1/2,
9. काव्यं सद्दृष्टादृष्टार्थ-प्रीति-कीर्ति-हेतुत्वात्।
   — काव्यालंकारसूत्राणि 1/1/5
10. सरस्वतीकण्ठाभरण 1/2
11. 17वीं सदी के अन्त तथा 18वीं सदी के प्रारम्भ में अप्पय्यदीक्षित ने अपने गौरीमाहात्म्य-चम्पू में भोज को महान् चम्पूकार घोषित किया है—
    भोजादिभिः कृतपदं कविभिर्महद्भि-
    श्चम्पूकिसौधमधिरोढुमहं यतिष्ये।
    निश्शंकमम्बरतलं पततः पतत्रि-
    राजस्य मार्गमनुसर्तुमिवाण्डजोन्यः॥ 1/5
    यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।—तंजौर सूची, क्रमांक 4035
12. द्रष्टव्य परिशिष्ट—चम्पूरामायण के पूरक अंशों के निर्माता.

13. द्रष्टव्य–द्वितीय उच्छ्वास का सम्बद्ध अंश,
14. आनन्दवर्धनाचार्य, ध्वन्यालोक 3/14 की वृत्ति,
15. चम्पूरामायण–बालकाण्ड, 78 से 82,
16. वही, अरण्यकाण्ड, 13 के पश्चात्
17. वही, किष्किन्धा 23 से 31 वर्षा वर्णन तथा
18. वही, सुन्दरकाण्ड, पृष्ठ 295
    एवं वर्षान्त वर्णन 31 के पश्चात् तथा 34 से पूर्व तक।
19. वही, पृष्ठ 302–303,
20. चम्पूरामायण, सुन्दर. 43–46
21. वही, सुन्दर, 57 से 66
22. वही, अयोध्याकाण्ड–14, 15, 21, 22
23. वही, अयोध्याकाण्ड –32, 38, 41, 44, 46 आदि
24. वही, किष्किन्धा, 14 से 19
25. वही, सुन्दरकाण्ड, 60
26. वही, बालकाण्ड 6 तथा रामायण बालकाण्ड 2/15
27. रामायण, सुन्दरकाण्ड 53/27 तथा चम्पूरामायण, सुन्दर० पृष्ठ 345,
28. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, 16/27–29
29. च० रा० बालकाण्ड, 23
30. रघुवंश, 10/54 से 56,
31. रघुवंश, 10/56 की संजीवनी टीका
32. चम्पूरामायण, बालकाण्ड 23 की साहित्य-मंजूषा टीका।
33. वही, अयोध्याकाण्ड, 5
34. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 6
35. रामायण अरण्य० 17/25, 27
36. च० रा०, आरण्यकाण्ड, 18,
37. च० रा०, अरण्यकाण्ड, 27.
38. रामायण 1/35/15 तथा कुमारसम्भव 1/18, 5/5 आदि
39. चम्पूरामायण 1/15
40. वही, पृष्ठ 29
41. वही, पृष्ठ 20
42. वही, बालकाण्ड, 28
43. वही, बालकाण्ड, 30
44. रघुवंश, 13/1

45. रघुवंश, बालकाण्ड, 35
46. वनाय गतो वनात जगतामवनाय च । अयोध्याकाण्ड, 27
47. वही, अयोध्याकाण्ड, 39
48. वही, अरण्यकाण्ड 6
49. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, 3/14 की वृत्ति
50. जम्बू रामायण, बालकाण्ड, 4.
51. ज० रा० बालकाण्ड, 11
52. ज० रा० बालकाण्ड, 12
53. वही, बालकाण्ड, 9
54. वही, बालकाण्ड, पृष्ठ 13
55. वही, अयोध्याकाण्ड, पृष्ठ 116
56. वही, अरण्यकाण्ड, पृष्ठ 243
57. ज० रा० पृष्ठ 55
58. वही, अरण्यकाण्ड, 41
59. ज० रा० अयोध्याकाण्ड, 73
60. वही, सुन्दरकाण्ड, 65
61. ज० रा० अरण्यकाण्ड, पृष्ठ 243
62. वही, अरण्यकाण्ड, 41
63. ज० रा० बालकाण्ड, 5
64. वही, पृष्ठ 55
65. रामायण, बालकाण्ड, 23/3, 6, 7
66. वही, अयोध्याकाण्ड, 11
67. ज० रा०, पृष्ठ 120
68. वही, पृष्ठ 150
69. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 16
70. वही, 16 की टीका
71. ज० रा०, पृष्ठ 317
72. वही, पृष्ठ 325
73. द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम् ।
    मम त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ॥
    वा० रा०, सुन्दरकाण्ड, 22/9
74. सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/3/2
75. ज० रा० अयोध्याकाण्ड, पृ० 175, 176
76. वही, पृ० 202, 203
77. वही, अरण्यकाण्ड पृ० 216
78. वही, पृ० 243

79. वही, सुन्दरकाण्ड, पृ० 295
80. वही, पृ० 302, 303
81 च० रा०, पृ० 309
82 वही, सुन्दरकाण्ड, पृ० 295
83. वही, अरण्यकाण्ड, पृ० 215
84. च० रा०, पृ० 254
85. वही, पृ० 271
86. वही, पृ० 226
87. वही, पृ० 239
88. च० रा०, पृ० 129
89. वही, पृ० 189
90. वही, पृ० 255
91. वही, पृ० 157
92. च० रा०, 245
93. वही, पृ० 20 से 31
94. वही, पृ० 202–203 तथा अरण्यकाण्ड श्लोक 14
95. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 38
96. वही, बालकाण्ड 54 से 88
97. वही, सुन्दरकाण्ड 18
98. वही, बालकाण्ड, 9
99. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 32
100. सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/4/2
101. शृंगारप्रकाश, पृ० 485
102. स० क०, पृ० 208
103. वही, 2/4/4
104. शृं० प्र०, 486
105. दशरूपक, 2/53
106. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 3
107. वही, बालकाण्ड, 115
108. च० रा०, किष्किन्धा, 16
109. वही, सुन्दरकाण्ड, 70
110. वही, सुन्दरकाण्ड, 56
111. च० रा०, बालकाण्ड, 114
112. वही, सुन्दरकाण्ड, 5
113. वही, सुन्दरकाण्ड, 37

114. च० रा०, किष्किन्धाकाण्ड, 9

115.
अयं कालः कालप्रमथनगलाभैरभिनवै-
रहं यूनां यूनामपहरति धैर्यं जलधरैः ।
स्मराधारा धारा परिचितजडा वान्ति सहसा
नभस्वन्तः स्वन्तः कथमिव वियोगः परिणमेत् ॥

116.
नैवाभवस्त्वमिह शीलवतीषु गण्या
नैवाभवत्पितृमतां गणनां स रामः ।
नैवापमात्मजसुखान्यहमप्यनार्ये
नैवापमम्बु भरतेन न मे प्रदेयम् ॥

117. शृं० प्र०, पृ० 389

118. चम्पूरामायण टीका, पृ० 4

119. वही, पृ० 246

120. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 61

121. ध्वन्यालोक, 3/9

122. ध्वन्यालोक, पृ० 190

123. शृं० प्र०, पृष्ठ 461

124. दोष-विवरण इसी उच्छ्वास में दिया गया है ।

125. महाकवीनामप्युत्तमदेवताविषयप्रसिद्धसम्भोगशृंगारनिबन्धनाद्यनौचित्यं................यथा कुमारसम्भवे देवीसम्भोगवर्णनम् ।

—ध्वन्यालोक 3/6 पर वृत्ति ।

तथा

पित्रोः सम्भोगवर्णनमिव सुतरामसभ्यम् ।

—ध्वन्यालोक 3/14 पर वृत्ति ।

तुलसीदास ने भी सम्भवतः इसी तथ्य को ध्यान में रखकर यह कहा होगा—

जगत मातुपितु संभु भवानी ।
तेहिं सिंगार न कहउं बखानी ॥

—रामचरितमानस, बालकाण्ड

126. स० क०, 1/73 तथा उस पर रत्नदर्पण टीका ।

127. शृं० प्र०, 1/5

128.
अविवक्षितवाच्यो यस्तत्र वाच्यं भवेद् ध्वनी ।
× × ×
विवक्षितं चान्यपरं वाच्यं यत्रापरस्तु सः ।
कोप्यलक्ष्यक्रमव्यंग्योलक्ष्यव्यंग्यक्रमः परः ॥

रसभावतदाभास भावशान्त्यादिरक्रमः ।

भिन्नो रसाद्यलंकारादलंकार्यतया स्थितः ॥

—*मम्मट, काव्यप्रकाश*, 4, 24–26

129. काव्यप्रकाश, 4/37–41
130. वही, 5/45–46
131. रामायण, बालकाण्ड, 2/18 तथा 40
132. रघुवंश, 14/70
133. उत्तररामचरित, 3/47 तथा 1/28
134. ध्वन्यालोक, 4/5 की वृत्ति
135. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 15
136. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 22
137. वही, अयोध्याकाण्ड, 31
138. वही, अयोध्याकाण्ड, 32
139. वही, अयोध्याकाण्ड, 60
140. च० रा०, किष्किन्धाकाण्ड, 14
141. च० रा०, किष्किन्धाकाण्ड, 15
142. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 16
143. 'वत्साभिधाने जनपदे कृतपदश्चललक्ष्यवेधनचतुरश्चतुरो मृगान्निहत्य'

—च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 154

144. च० रा०, अरण्यकाण्ड, 25
145. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 18, 19
146. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 18
147. लज्जावशादविशदस्मरविक्रियाभि-

स्ताभिर्वधूभिरतिवेलमवाप्तसौख्यान् ।

इक्ष्वाकुनाथ-तनयान्प्रथमो रसानां

तारुण्ययोगचतुरश्चतुरः सिषेवे ॥

—च० रा०, बालकाण्ड, 116

148. अभिनेयार्थेनभिनेयार्थे वा काव्ये यदुत्तमप्रकृते राजादेरुत्तमप्रकृतिभिर्नायिकाभिः सह ग्राम्यसम्भोगवर्णनं तत् पित्रोः सम्भोगवर्णनमिव सुतरामसभ्यम् । तथैवोत्तमदेवताविषयम् । —आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, 3/14 की वृत्ति ।
149. च० रा०, पृ० *208* से *214*
150. वही, सुन्दरकाण्ड, 10

151. शृं० प्र०, प्रथमप्रकाश, क्रमशः श्लोक 5 एवं 6

152. इक्ष्वाकुनाथतनयान्प्रथमो रसानां
तारुण्ययोगचतुरश्चतुरः सिषेवे ।
—चम्पूरामायण, बालकाण्ड, 116

153. च० रा० अरण्यकाण्ड, 35 से 41

154. वही, 36

155. वही, 38

156. च० रा० अरण्यकाण्ड, 40

157. वही, 41

158. वही, बालकाण्ड, 48

159. च० रा०, अरण्यकाण्ड, 29

160. वही, अरण्यकाण्ड, 31

161. ऊंचाई सागर तल से ही नापी जाती है, इसका ज्ञान भोज को भी था, ऐसा प्रतीत होता है।

162. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 7

163. वही, सुन्दरकाण्ड, 8

164. च० रा०, अरण्यकाण्ड, पृ० 195 से 200

165. वही, 12

166. रसभावादिविषयविवक्षाविरहे सति ।
अलङ्कारनिबन्धो यः स कविभ्यो न रोचते ॥
रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोलङ्कारः प्रकल्प्यते ॥
—शृं० प्र०, पृ० 457

167. च० रा०, बालकाण्ड, 114 तथा उस पर साहित्यमंजूषा व्याख्या ।

168. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 22

169. वही, अयोध्याकाण्ड, 22 की टीका

170. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 2

171. वही, अयोध्याकाण्ड, 2 पर रामचन्द्र की टीका

172. वही, अरण्यकाण्ड, 38 तथा उस पर टीका

173. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 42 तथा उस पर टीका

174. वही, अयोध्याकाण्ड, 54 तथा उस पर टीका

175. वही, अयोध्याकाण्ड, 84 तथा उस पर टीका

176. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 26 तथा उस पर टीका

177. वही, अयोध्याकाण्ड, 56 तथा उस पर टीका
178. च० रा०, पृ० 39
179. कादम्बरी, पृ० 10–11
180. च० रा०, अरण्यकाण्ड, पृ० 198
181. वही, बालकाण्ड, 9
182. वही, अयोध्याकाण्ड, 77
183. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 43 से 46
184. वही, बालकाण्ड, 13 तथा 14
185. वही, 19 से 21
186. च० रा०, किष्किन्धाकाण्ड, पृष्ठ 267
187. वही, बालकाण्ड, 11
188. वही, 18
189. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, पृ० 173
190. वही, अरण्यकाण्ड, पृ० 198
191. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 12
192. वही, 52
193. वही, 34
194. वही, 52
195. च० रा०, अरण्यकाण्ड, 28
196. वही, सुन्दरकाण्ड, 17
197. च० रा०, अरण्यकाण्ड, 34
198. शृं० प्र०, पृ० 472
199. च० रा०, बालकाण्ड, 9 तथा सुन्दरकाण्ड 68
200. वही, अयोध्याकाण्ड, 23 तथा 49
201. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 25
202. वही, 43
203. गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते । —दण्डी, काव्यादर्श, 1/3
204. च० रा०, बालकाण्ड; 5, 11; अयोध्याकाण्ड; 1; अरण्यकाण्ड; 1; किष्किन्धाकाण्ड, 1; सुन्दरकाण्ड, 1
205. वही, बालकाण्ड, 1,2,16
206. वही, बालकाण्ड, 8,12–15, 19,20
207. वही, बालकाण्ड, 50–52; अरण्यकाण्ड, 20,30,31 अयोध्याकाण्ड, 77; सुन्दरकाण्ड, 44–46 इत्यादि

208. वही, बालकाण्ड, 48; सुन्दरकाण्ड, 41,70
209. वही, अयोध्याकाण्ड, 15, 22, 31; अरण्यकाण्ड 29, 36–40
210. वही, अयोध्याकाण्ड 14–19 32;
किष्किन्धा· 14–19; सुन्दरकाण्ड, 60
211. वही, बालकाण्ड, 78 से 82; किष्किन्धाकाण्ड, 20–31
212. वही, बालकाण्ड, 55–88; सुन्दरकाण्ड, 2,3,59–65,70 इत्यादि
213. धनपाल, तिलकमंजरी, श्लोक 15
214. वामन काव्यालंकारसूत्राणि, 1/3/21 की वृत्ति में उद्धृत
215. स० क०, 2–20
216. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, 8/9, तथा वाग्भट्ट, काव्यालंकार, प्रथम अध्याय
217. छविनाथ त्रिपाठी, चम्पू का ऐतिहासिक तथा साहित्यिक अध्ययन, पृ० 30 से 38
218. गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्ति-
हृद्या ही वाद्यकलया कलितेव गीतिः ।
तस्माद्दधातु कविमार्गजुषां सुखाय
चम्पूप्रबन्धरसनां रचना मदीया ॥
—च० रा०, बालकाण्ड, 3
219. धनपाल, तिलकमंजरी, 17
220. अयमेव (वृत्यनुप्रास एव) अलंकारः प्रायशो भोजराजोक्तिष्वनुसन्धेयः ।
—च० रा०, बालकाण्ड, 1 की टीका
221. वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङ्मयम् ।
—स० क०, 5–8
222. च० रा०, बालकाण्ड, 116
223. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 41
224. वही, अरण्यकाण्ड, 34
225. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 27
226. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 34
227. वही, अयोध्याकाण्ड, 59
228. वही, अयोध्याकाण्ड, 59 की टीका
229. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ० 452
230. रघुवंश, 12–1
231. च० रा०, पृ० 317
232. च० रा०, पृ० 325

233. द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम् ।
ममत्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ॥
—वा० रा०, सुन्दरकाण्ड, 22/9

234. च० रा०, पृ० 129
235. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 37
236. च० रा०, किष्किन्धाकाण्ड, 23
237. च० रा०, बालकाण्ड, 3
238. अभिज्ञानशाकुन्तल, 1/2
239. रामचरितमानस, बालकाण्ड
240. सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/1/124 तथा वृत्ति
241. डॉ० सी० आर० देशपाण्डे-डिरायवेशन आफ द वर्ड चम्पू, ओरिएण्टल थाट, ग्रन्थ 6, भाग 3, पृ० 9/12, अक्टोबर, 1962
242. अखण्डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात् ।
व्याघ्रादिव समाघ्रातो गद्याद् व्यावर्तते जनाः ॥
—धनपाल, तिलकमंजरी, 15

243. शृं० प्र०, पृ० 120
244. गद्यपद्यव्यायोगो मिश्रम् । शृं० प्र०, पृ० 122
245. शृं० प्र०. पृ० 122
246. वही, पृ० 480
247. दण्डी, काव्यादर्श, 1/31
248. शृं० प्र०, पृ० 470
249. डॉ० राघवन् । भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 816
250. काव्यानुशासन 8/9
251. च० रा०, बालकाण्ड, 4
252. च० रा०, पृ० 39
253. शृं० प्र०, पृ० 461
254. वही, पृ० 470
255. च० रा०, बालकाण्ड, 8
256. शृं० प्र०, पृ० 470
257. च० रा०, बालकाण्ड, 47
258. शृं० प्र०, 466
259. शृं० क०, पृ० 13

260. अस्माकं प्रीत्यै व्युत्पत्तये च कामप्यपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु स्वामी।

—शृं० क०, पृ० 1

261. त्रिविक्रमभट्ट, नलचम्पू, श्लोक 22
262. शृं० प्र०, पृ० 470
263. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 12
264. वही, 52
265. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 33
266. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 40
267. वही, बालकाण्ड, 30
268. वही, बालकाण्ड, 13
269. वही, अयोध्याकाण्ड, 60
270. वही, बालकाण्ड, 116
271. स० क०, 5/1–3
272. वा० रा०, बालकाण्ड, 4/9
273. शृं० प्र०, 1/6
274. च० रा०, बालकाण्ड, पृ० 39 तथा टीका
275. वही, अयोध्याकाण्ड, 75
276. वही, सुन्दरकाण्ड, 8
277. च० रा०, पृ० 259
278. भरत–नाट्यशास्त्र, 17/95–97
279. विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'दी विक्रम' का 'कालिदास विशेषांक', दशम ग्रन्थ, 1967 पृ० 49 से 54
280. रामायण, बालकाण्ड, 3/7
281. रघुवंश, 10/67
282. वही, 13वें सर्ग की टीका के प्रारम्भ में स्तुति-श्लोक
283. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, 2
284. च० रा०, पृ० 40
285. वही, बालकाण्ड, 9
286. रघुवंश, 14/76
287. च० रा०, बालकाण्ड, 5
288. वही, पृ० 55 तथा वाल्मीकिरामायण, बालकाण्ड, 23/6
289. च० रा०, बालकाण्ड, 47 12 तथा रामायणचम्पू, बालकाण्ड, 89

290. वही, पृ० 198
291. वही, अरण्यकाण्ड, 41
292. वही, बालकाण्ड, 37
293. रघुवंश, 13/41
294. रामायणचम्पू, पृ० 195
295. वही, अरण्यकाण्ड, 7
296. च० रा०, अरण्यकाण्ड, पृ० 241
297. वही, सुन्दरकाण्ड, 35
298. वही, अयोध्याकाण्ड, 43
299. च० रा०, अरण्यकाण्ड, 21
300. यामेवाहुर्निशिचरकुलोन्मूलने मूलहेतुं, च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 9
301. च० रा०, किष्किन्धाकाण्ड, 6
302. वही, अरण्यकाण्ड, 22
303. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 9
304. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 40
305. वही, सुन्दरकाण्ड, 42
306. वही, सुन्दरकाण्ड, 52
307. च० रा०, अरण्यकाण्ड, पृ० 223
308. सुमुखि मम सुमित्रा सत्यमम्बा यदासी–
स्तदमजमवितर्कं मातृसम्पर्कसौख्यम् ।
अहह विधिविपाकाद्व्याहरन्ती दुरुक्ति
त्वमसि विपिनमध्ये मध्यमाम्बा हि जाता ।।
—च० रा०, अरण्यकाण्ड, 27
309. च० रा०, अरण्यकाण्ड, 42
310. वही, अरण्यकाण्ड, पृ० 240
311. च० रा०, किष्किन्धाकाण्ड, 15
312. चम्पूरामायण में ऐसा कोई प्रसंग नहीं जहाँ राम ने ऐसा कहा हो ।
'यान्ति राजर्षयश्चात्र मृगयां धर्मकोविदः ।'
सम्भवतः वाल्मीकि की वाणी है । —च० रा०, किष्किन्धा, 16 की टीका में
313. च० रा०, किष्किन्धाकाण्ड, 16
314. वही, अयोध्याकाण्ड, 154

315. च० रा०, किष्किन्धा, 22

316. वही, अरण्यकाण्ड, पृ० 221

317. च० रा०, युद्धकाण्ड, 2

318. निर्णयसागर प्रेस तथा वेंकटेश्वर प्रेस से यह टीका प्रकाशित है।

319. नित्यं संभ्रमजृम्भिता नटति यज्जिह्वाङ्गणे भारती
जायन्ते कविपुंगवास्तनुभृतो यद्वक्त्रनिर्वर्णनात्।
भोजक्षोणिभुजामुना विरचितश्चम्पूप्रबन्धोधुना
व्याख्यां तस्य करोमि मञ्जुलतरां साहित्यमञ्जूषिकाम् ॥

320. च० रा०, टीका, पृ० 2

321. भोजराजेन विरचित पञ्चकाण्डसम्बद्धं चम्पूरामायणप्रबन्धं
परिपूरयितुकामेन लक्ष्मणनाम्ना पण्डितवर्येणावशिष्टो
युद्धकाण्डो निजवाग्वैभवानुसारेण रचितः। —च० रा० युद्धकाण्ड,

322. अयमेव (वृत्यप्रास) अलंकारः प्रायशो भोजराजोक्तिष्वनुसंधेयः।
—च० रा०, बालकाण्ड, 1 की टीका

323. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 38

324. भर्तृहरि, शृंगारशतक, 99 की टीका

325. आफ्रेक्ट, केटेलागस केटेलागारम, भाग 3, पृ० 58

326. अल्फाबेटिकल इण्डेक्स आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन द अडियार लायब्रेरी, 1944, पृ० 42 तथा
सरस्वतीमहल हस्तलिखित पुस्तकालय की विवरणात्मक सूची, भाग 7, क्रमांक 4145

327. काव्यं प्राकृतसंस्कृताख्यमतुलं यस्यैव यस्या मुखं
नेत्रे षण्मणिविद्धसालविवृतिग्राहं चरित्रं मनः
पञ्चाशत् कृतयश्च सट्टय (क ?) मुखाभाः कालिदासाधिक—
स्यास्यैतस्य महाकवेर्मम घनश्यामस्य वाचे नमः ॥
—सरस्वतीमहल हस्तलिखित पुस्तकालय की विवरणात्मक सूची,
भाग 7, क्रमांक 4145 के अनुसार

328. श्वासा यस्य निबन्धनान्यनुपमः कण्ठीरवोऽयं कविः
क्रीड़ाचन्द्रति बाणति प्रवलति क्षेमेन्द्रति प्रौढति।
श्रीकण्ठत्यपि भर्तृमीढति पुनः श्रीसार्वभौमत्यहो
नैको वा नवखण्डभूमिषु गुणं गृह्णान् विभुर्भोजति ॥
—वही, पूर्ववत्

329. अडियार पुस्तकालय की विवरणात्मक सूची, भाग 5, पृ० 290,
क्रमांक 689

330. नरसवकाख्यवध्वाश्च श्रीनागेश्वरयज्वनः ।
नारायणेन पुत्रेण कोलाचलान्वयेन्दुना ।।
—वही, पूर्ववत्

331. चम्पूरामायणाख्यस्य प्रबन्धास्यावहारिणः ।
विवृतिः क्रियते प्रेम्णा यथामति समासतः ।।
—वही, पूर्ववत् ।

332. अडियार पुस्तकालय की वर्णानुक्रमिक सूची, 1944 ई०, पृ० 41

333. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, भाग 21, क्र० 8504

334. वही, भाग 4, खण्ड 1, सी० पृष्ठ 5458 तथा त्रिवेन्द्रम सूची, खण्ड 4, भाग 1,
क्रमांक 3687

335. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, भाग 2 खण्ड 1, सी, पृ० 2372, 2374 तथा
वही, वर्णानुक्रमसूची, भाग 1,76205

336. षष्ठं श्रीलक्ष्मणीयं विषमललितशब्दाभिरामं च काण्डम् ।
व्याकुर्तुं यत्नकर्तुर्निखिलबुधगणः क्षम्यतां साहसं मे ।।

337. तस्य श्रीसूनुकामेश्वरकविरचिते योजने भोजचम्प्वाः
विद्वत्कौतूहलाख्ये समभवदमलो युद्धकाण्डः समाप्तः ।।

338. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, भाग 3, खण्ड 1, ए० पृ० 1539-40 तथा
वर्णानुक्रमसूची, मद्रास, भाग 1, क्र० 66197

339. आफ्रेक्ट, केटेलागस केटेलागारम्, भाग 3, पृ० 97

340. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, .र्णानुक्रम सूची भाग 3, क्र० 26517

341. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 59

342. च० रा०, युद्धकाण्ड, 110

343. वही, वालकाण्ड, 4

344. च० रा०, युद्धकाण्ड, 2

345. वही, युद्धकाण्ड, 3

346. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, भाग 6 अंक 4 में प्रकाशित

147. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास भाग 22, पृ० 8616

348. मेरुतुंग, प्र० चि०, 127

349. च० रा०, वालकाण्ड, 5

350. वही, वालकाण्ड 7 के पश्चात्

351. च० रा०, बालकाण्ड, 23/3, 6, 7
352. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 11
353. च० रा०, पृ० 120
354. वही, पृ० 150
355. वही, अरण्यकाण्ड, 41
356. च० रा०, किष्किन्धाकाण्ड, 16
357. प्र० चि०, पृ० 50–51
358. ए डिस्क्रिप्टिव केटेलाग आफ द संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन द तंजौर, सरस्वतीमहल लायब्रेरी, तंजौर. व्हाल्यूम 7, पृ० 3118, क्रमांक 4107 एवं वर्नल का तंजौर केटेलाग पृ० 161 पर क्रमांक 4693
359. ए डिस्क्रिप्टिव केटेलाग आफ द संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन द तंजौर, सरस्वतीमहल लायब्रेरी, तंजौर हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 4159 तथा डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, 12318
360. रामस्तवराज, श्लोक 53, श्रीवर्धन प्रेस, बम्बई, शक सं० 1783
361. हर्षचरित, 1
362. थियोडोर आफ्रेक्ट, केटेलागस केटेलागारम्, भाग 1, पृ० 183
363. सिन्धिया ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, उज्जैन. हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 3904
364. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, ग्रन्थ 4, भाग 1, पृ० 5458, क्रमांक 3687
365. एम० कृष्णमाचारियर, हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर–तिरुमलाइ—तिरुपति देवस्थानम् प्रेस, मद्रास, 1937, पृ० 503
366. लुइस एच० ग्रे०, द नेरेटिव आफ भोज (भोजप्रवन्ध) इन्ट्रोडक्शन, पृ० 6–7 अमरिकन ओरियण्टल सोसायटी, न्यू हेवन, कनेक्टीकट, 1950 ई०, एम० कृष्णमाचारियर, हिस्ट्री संस्कृत लिटरेचर
367. डिस्क्रिप्टिव केटेलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट, सरस्वतीमहल, तंजौर, भाग 7 क्रमांक 3120
368. वही, क्रमांक 4115
369. कृष्णमाचारियर, हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० 503–4
370. सरस्वतीमहल पुस्तकालय, तन्जौर, भाग 7, क्र० 4145
371. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली, ग्रन्थ 6, भाग 4, श्लोक 3
372. युद्धकाण्ड, श्लोक 2 तथा 110
373. सरस्वतीमहल पुस्तकालय, तंजौरी, भाग 7, क्र० 4140
374. वेंकटाध्वरि, उत्तरचम्पू श्लोक 8, ग्रन्थरत्नमाला, भाग 3, 1890 ई० (बम्बई)

375. डि० के० सं० मे० अडियार, भाग 5, पृ० 290, क्र० 689

376. राजचूड़ामणि दीक्षित, काव्यदर्पण, वाणी-विलास प्रेस, श्रीरङ्गम्

377. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, भाग 2, खण्ड 1 सी०, पृ० 2372, 2374

378. सरस्वतीमहल, तंजौर, भाग 7, क्र० 4145

379. अप्पा दीक्षित, गौरीमयूरमाहात्म्यचम्पू, 1/5,
जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास, वाल्यूम, 3

380. छबिनाथ त्रिपाठी, चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ० 203

381. केटलाग आफ विश्वेश्वरानन्द शोधसंस्थान, होशियारपुर,
मेन्युस्क्रिप्ट कलेक्शन, 2015 संवत्, क्रमांक 4399

382. वही, क्रमांक 6266 तथा 6462

383. इ० डी० कुलकर्णी, शालिहोत्र आफ भोज, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 17–18,
डकन कालेज, पूना, 1953;
आर० मित्र, जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, ग्रन्थ 32, पृ० 93,
कृष्णमाचारियर, हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर, पृ० 104 तथा लेखक का शोधपत्र 'भोज-परम्परा'—हिन्दुस्तानी (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद) भाग 34, अंक 1, पृ० 117 सं० 124

384. डा० पी० के० गोडे, क्रोनोलाजी आफ धर्मप्रदीप एण्ड भोजव्याकरण कम्पोज्ड अण्डर द पेट्रोनेज आफ राव भोजराज आफ कच्छ–ए० डी० 1631–45

385. धार स्टेट गजेटियर, पृ० 169–70 स्टडीज इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री, भाग 3

386. 'धारादेवी तथा भोज'— मध्यप्रदेश सन्देश, 4 अप्रेल, 1970, पृ० 13

387. नयचन्द्रसूरि, हम्मीरमहाकाव्य, 9/18, जोधपुर शोध संस्थान, 1968

388. 'द क्लासिकल एज', पृ० 190 तथा 'कालिदास तथा भोज', लेखक का 'द विक्रम' के 1972 के कालिदास विशेषांक के लिए स्वीकृत शोधपत्र।

389. ए० इ०, भाग 2, पृ० 246

390. वही, भाग 20 पृ० 72

391. रघुवंश, 5/39 तथा 7/29

392. दशकुमारचरित, पृ० 190, निर्णयसागर, 1898 ई०

393. एडवर्ड सी० सचाउ, अलबरुनीज इण्डिया, भाग 1, पृ० 301
एस० चन्द एण्ड कं०, दिल्ली, 1964 ई०

394. ए० इ०, भाग 4, पृ० 243–54, श्लोक 12

395. द क्लासिकल एज, पृ० 182–83

396. द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का नवम उच्छ्वास

397. भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 5(2 (1891–95)

398. सिन्धिया ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, उज्जैन, हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 982

399. भगवतशरण उपाध्याय, कालिदास का भारत, प्रथम भाग (तृतीय संस्करण, 1963) पृ० 116 तथा क्लासिकल एज, पृ० 182–183

400. तत्रार्चितो भोजपतेः पुरोधा........। रघुवंश, 7/20 की टीका

401. प्र० चि०, पृ० 31, श्लोक 46, पादटिप्पणी

402. जी० एच० खरे, सोर्सेस आफ द मिडिवल हिस्ट्री आफ दकन, भाग 1, पृ० 55 अम्बे जोगाई अभिलेख, वही, पृ० 76–78
एन्युअल रिपोर्ट आफ एपिग्राफी, 1952–53, नम्बर 112
ओ० पी० वर्मा, द यादवाज एण्ड देअर टाइम्स, पृ० 106 विदर्भ संशोधनमण्डल नागपुर, 1970

403. वही, पृ० 106–107

404. डा० दशरथ शर्मा, पंवारवंश-दर्पण, पृ० 95–96

405. भोजराजेन भोक्तव्यं सगौडो दक्षिणापथः। प्र० चि०, श्लोक 34, पृ० 32

406. आकैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयादा–
भुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन।
ए० इ०, भाग 1, उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक 17

407. विशेष द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का नवम उच्छ्वास

408. वही, तथा क० मा० मुन्शी, इम्पिरियल गुर्जरस्, पृ० 131–46

409. ओ० पी० वर्मा, द यादवाज एण्ड देअर टाइम्स, पृ० 106–107

410. जर्नल आफ बाम्बे ब्रांच आफ द रायल एशियाटिक सोसायटी, भाग 25, पृ० 324 तथा
के० एम० मुन्शी, द ग्लोरी देट वाज गुर्जरदेश, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1944, पृ० 160

411. आर० सी० मजुमदार, द स्ट्रगल फार द इम्पायर, पृ० 63
भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1957

412. काशीनाथ कृष्ण लेले तथा शिवराम काशीनाथ ओक,
भोजदेव की साहित्यसेवा, पृ० 10–11, इतिहास आफिस धार, 1934

413. काशीनाथ कृष्ण लेले तथा शिवराम काशीनाथ ओक,
भोजदेव की साहित्यसेवा, पृ० 11

414. द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का नवम उच्छ्वास

415. डि० के० सं० मे०, सरस्वतीमहल लायब्रेरी, तंजौर, भाग 7, क० 4143

416. अल्फावेटिकल इण्डेक्स आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन द अडियार लायब्रेरी, 1944 पृ० 42
417. छबिनाथ त्रिपाठी, पूर्ववत्, पृ० 215 तथा कृष्णमाचारियर, पूर्ववत्, पृ० 517
418. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, क्र० 12332
419. वही, क्र० 12228
420. छबिनाथ त्रिपाठी, पूर्ववत्, पृ० 215
421. बलदेव उपाध्याय, सं० सा० इ०, 1968, पृ० 175
422. थिओडर आफ्रेक्ट, केटेलोगस केटेलोगारम् भाग 2, फ्रेंक स्टेनर वलेग् गम्भ विल्सबडेन, 1962
423. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, भाग 6, अंक 4, पृ० 629–38
424. छबिनाथ त्रिपाठी, चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ० 249
425. बलदेव उपाध्याय, सं० सा० इ०, आठवां संस्करण, पृ० 628
426. केटेलागस केटेलोगारम, भाग 3 पृ० 38
427. डि० के० सं० मे०, सरस्वतीमहल लायब्रेरी, तंजौर, भाग 7, क्रमांक 4143
428. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, खण्ड 4, भाग 1, पृ० 4935, क्रमांक 3312
429. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर, पृ० 518
430. छबिनाथ त्रिपाठी, पूर्ववत्, पृ० 245
431. आफ्रेक्ट, पूर्ववत्, भाग 1, पृ० 460
432. डि० के० सं० मे,० सरस्वतीमहल लायब्रेरी, तंजौर, भाग 7, क्रमांक 4140
433. वेंकटाध्वरी, उत्तरचम्पू, ग्रन्थरत्नमाला भाग 3, 1890 ई० गोपालनारायण एण्ड कं०, बम्बई
434. छबिनाथ त्रिपाठी, पूर्ववत्, पृ० 199
435. डि० के० सं० मे०, सरस्वतीमहल लायब्रेरी, तंजौर, भाग 6, क्र० 4028
436. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, खण्ड 4, भाग 1, पृ० 5130, क्रमांक 3437
437. कृष्णमाचारियर, पूर्ववत्, पृ० 505
छबिनाथ त्रिपाठी, पूर्ववत्, पृ० 252
438. केटेलोगस केटेलोगोरम, भाग 1, पृ० 471

चतुर्थ उच्छ्वास

उपदेशात्मक साहित्य

भूमिका —

अनुभव के आधार पर सिद्ध तथ्यों से सम्बद्ध सूक्तियां, नीति तथा उपदेशात्मक स्वरूप में प्राप्त होती है। सदाचार तथा सत्पथ की अभिव्यक्ति इस साहित्य का लक्ष्य है। उपदेशात्मक साहित्य (1) नीति तथा (2) नीतीतर प्रकार का होता है। भोज-साहित्य में नीति का ही विशेष महत्त्व है। नीतिविषयक तथा उपदेशात्मक साहित्य में पूर्ण रूप से भेद करना असम्भव है। काव्य की ये दोनों धाराएँ सम्पृक्त रूप से प्राप्त होती हैं।

साहित्य की यह विधा भारत में अत्यन्त प्राचीनकाल से विकीर्ण रूप से प्राप्त होती है। ऋग्वेद में ऐसी अनेक सूक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। 'अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व' आदि ऋग्वेदीय ऐसी ही सूक्ति है।[1] ऐतरेय ब्राह्मण भी इन उपदेशात्मक उक्तियों से रिक्त नहीं है। उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण आदि विभिन्न प्राचीन पौराणिक तथा धार्मिक एवं दार्शनिक साहित्य इन उपदेशात्मक अभिव्यक्तियों से पूर्ण हैं। 'इस प्रकार के काव्य के विकास में धर्म और दर्शनों का प्रभाव बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।'[2] इस साहित्य का विकास स्वतन्त्र सूक्तियों के रूप में तथा ग्रन्थ के रूप में हुआ है। इन सूक्तियों के निर्माता अज्ञात हैं। परम्परागत इन सूक्तियों को परवर्ती संकलन-कर्त्ताओं ने एकत्र कर स्वतन्त्र संग्रह-ग्रन्थ का स्वरूप प्रदान कर दिया। ऐसे ग्रन्थों में संकलन-कर्त्ता का परिश्रम संकलन-क्रिया में ही परिलक्षित होता है। वह परम्परागत श्लोकों, प्राचीन पौराणिक कृतियों, स्मृतियों तथा काव्यों से उपदेशात्मक अथवा नीतिगत श्लोकों को एकत्र कर देता है। कभी-कभी इन संकलनों में वह स्वरचित सूक्तियाँ भी जोड़ देता है जिन्हें अलग से पहिचान पाना कठिन है। इस प्रकार की प्राचीन तथा सर्वप्रथित कृति 'चाणक्यनीति' है।' चन्द्रगुप्त के मन्त्री चाणक्य ने उसकी रचना की थी, यह कहना उपहासास्पद है; यह पूर्णतया स्पष्ट है कि उसको चाणक्य के नाम पर इसीलिए प्रचलित किया गया, क्योंकि वह एक प्रसिद्ध व्यक्ति था।[3] भोज का चाणक्यराजनीतिशास्त्र इसी प्रकार का ग्रन्थ है।

नीति तथा उपदेश की सूक्तियों को संगृहीत करने की इस परम्परा के साथ ही इन विषयों से सम्बद्ध एक ही रचयिता की रची हुई सम्पूर्ण कृति भी प्राप्त होती है। भर्तृहरि के शतकत्रय ऐसी कृतियों के आदर्श हैं। इन शतकों में नीतिशतक, इस दृष्टि से, अधिक महत्त्पूर्ण है। क्षेमेन्द्र का 'चारुचर्या' शतक भी इसी प्रकार का ग्रन्थ है। उनके चतुर्वर्गसंग्रह, सेव्यसेवकोपदेश आदि ग्रन्थ भी इसी उद्देश्य की पूर्ति करते है। भोज की चारुचर्या कृति ऐसे ही नीतिगत ग्रन्थों की परम्परा में परिगणित की जा सकती है। क्योंकि यह ग्रन्थ संकलित नहीं, स्वयं भोज विरचित है। चारुचर्या की कतिपय प्रतियों में कुछ श्लोक पूर्व ग्रन्थों से संगृहीत भी हैं। चारुचर्या पूर्णतया नीतिग्रन्थ तो नहीं है, परन्तु नीतिगत श्लोकों का भी इसमें समावेश है।

इस प्रकार प्राचीन उपदेशात्मक तथा नीतिगत श्लोकों के संग्रह के रूप में भोज का चाणक्यराजनीतिशास्त्र है तथा स्वविरचित नीतिगत श्लोकों का संग्रह—चारुचर्या है।

उपदेशात्मक साहित्य की इन दो विधाओं पर पृथक्-पृथक् विरचित भोज की इन दो कृतियों का इस परिच्छेद में अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा।

चाणक्यराजनीतिशास्त्र

ग्रन्थ का आकार––

भोज का चाणक्यराजनीतिशास्त्र आठ अध्यायों में विभक्त है।[4] चाणक्यनीतिदर्पण में 17 अध्याय तथा 336 श्लोक हैं। वृद्धचाणक्य में छोटे-छोटे आठ अध्याय तथा 124 श्लोक हैं। चाणक्यनीतिशास्त्र में 108 श्लोक, चाणक्यसारसंग्रह में तीन शतक अर्थात् 300 श्लोक एवं लघु-चाणक्य में आठ अध्याय तथा 99 श्लोक हैं। लुडविक स्टेर्नबेक द्वारा सम्पादित भोजकृत चाणक्य-राजनीतिशास्त्र में आठ अध्याय तथा 512 श्लोक है। जो क्रमशः 49, 62, 61, 31, 43, 53, 79 तथा 135 श्लोकों से आठ अध्यायों में विभक्त हैं। भाण्डारकर ओरियण्टल इंस्टिट्यूट, पूना में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 74 (1883–84) पर 'चाणक्यनीति' नामक भोज की कृति उपलब्ध है जिसका इसमें उपयोग नहीं किया गया है। इसमें कुछ 477 श्लोक हैं जो आठ अध्यायों में क्रमशः 53, 52, 60, 40, 48, 59, 67 एवं 98 श्लोकों से विभक्त हैं। लुडविक स्टेर्नबेक द्वारा सम्पादित भोज की इस कृति से इसके प्रमुख पाठभेद इसी प्रबन्ध के अन्त में संलग्न है।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य––

भोज के नाम से उपलब्ध इस चाणक्यराजनीतिशास्त्र का प्रतिपाद्य उपर्युक्त चाणक्यनीति के विभिन्न संग्रहों से कई स्थलों पर एकरूप है। अन्य चाणक्यनीतिग्रन्थों का प्रारम्भ इस श्लोक से होता है –

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम्।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम्॥

परन्तु भोजकृत चाणक्यराजनीतिशास्त्र में इस श्लोक से पूर्व गणेशवन्दना है—

एकदन्तं त्रिनयनं ज्वालानलसमप्रभम्।
गणाध्यक्षं गजमुखं प्रणमामि विनायकम्॥

चाणक्यनीतिशास्त्र,[5] चाणक्यसारसंग्रह[6] तथा लघुचाणक्य[7] की भाँति चाणक्यराजनीति-शास्त्र[8] में भी कहा गया है कि चाणक्य के द्वारा व्यक्त वाणी ही मूलतः इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की गयी है––

मूलसूत्रं प्रवक्ष्यामि चाणक्येन यथोदितम्।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते॥

चाणक्यराजनीति के अन्य संस्करणों की भाँति भोज के चाणक्यराजनीतिशास्त्र में भी राजनीति की अपेक्षा अन्य व्यावहारिक तत्त्वों पर ही अधिक प्रकाश डाला गया है। केवल चतुर्थ तथा पंचम अध्याय ही राजनीति से सम्बद्ध हैं, जहाँ पुनः यह प्रतिज्ञा की गयी है[9]—

पार्थिवस्य प्रवक्ष्यामि भृत्यानां चैव लक्षणम्।
यथाभिज्ञो महीपालः सम्यग् भृत्यान् प्रपालयेत् ।।

चतुर्थ अध्याय में राजा तथा उसके वर्ताव का विवरण दिया गया है तथा पाँचवें अध्याय में राजा के मन्त्री तथा अन्य शासकीय अधिकारियों के लक्षण दिये गये हैं। राजा को ज्ञातव्य तथ्य आदि का विवरण भी इन अध्यायों में प्राप्त होता है। इन दो अध्यायों के अतिरिक्त अध्यायों का विषयानुरूप विभाजन कर पाना असम्भव है। सदाचार के नियम इन अपर अध्यायों में प्रस्तुत किये गये हैं। प्रथम अध्याय में प्रायः स्त्री, पत्नी, वेश्या आदि के गुण-दोष व्यक्त करने वाले श्लोक हैं। द्वितीय अध्याय में जीवन-रक्षा, मैत्री, सदाचार, वित्त, स्त्री, धर्म आदि से सम्बद्ध श्लोक हैं। तृतीय अध्याय में सामान्य व्यवहार, छठे से आठवें अध्याय तक आत्मनियन्त्रण, अतिवर्जन, असत्य, पुत्र, परिवार, लोभ, सद्गुण, ब्राह्मण, बुद्धिमत्ता, पत्नी, ज्ञान, अध्ययन आदि से सम्बद्ध सुभाषित है।[10]

ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्द—

चाणक्यराजनीतिशास्त्र में प्रायः अनुष्टुभ् का प्रयोग हुआ है परन्तु अन्य छन्दों के भी यत्र तत्र दर्शन होते हैं। आर्या, इन्द्रवज्रा, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, द्रुतविलम्बित, पुष्पिताग्रा, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, रथोद्धता, वंशस्थ, वसन्ततिलका, वियोगिनी, शार्दूलविक्रीडित, शालिनी, शिखरिणी, स्रग्धरा, हरिणी आदि 17 प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

चाणक्यनीति के अन्य संग्रहों की अपेक्षा भोजकृत संग्रह में नूतन छन्दों का आधिक्य है। स्पष्ट ही यह संग्रह इन प्रचलित संस्करणों से कुछ अपवाद के अतिरिक्त कथ्य तथा तथ्य में अधिक निकट नहीं है।[11]

ग्रन्थ के स्रोत तथा उसका संकलनकालः—

भोजकृत चाणक्यराजनीतिशास्त्र के 534 श्लोकों में से 218 श्लोक विभिन्न साहित्य कृतियों में भी सुलभ हैं। पंचतन्त्र, हितोपदेश, महाभारत, भर्तृहरिशतक, विक्रमचरित, वेतालपंचविंशतिका, शुकसप्तति, रामायण, मानवधर्मशास्त्र, बृहस्पति-नारद-याज्ञवल्क्यादि स्मृतियाँ तथा निवन्ध, पद्मपुराण, माधवानलकथा, शान्तिशतक, नारदपंचरात्र, पंचरत्न, प्रवन्धचिन्तामणि, षड्रत्न, अमरुशतक अष्टरत्न, बिल्हणकाव्य, ब्रह्मवैवर्तपुराण, चातकाष्टक, चौरपंचाशिका, हलायुध का धर्मविवेक, घटकर्परनीतिसार, भवभूति का गुणरत्न, बाण की कादम्बरी, महानाटक, नवरत्न, स्कन्दपुराण, यशस्तिलकचम्पू, नलचम्पू, योगरत्नाकर इत्यादि कृतियों से चाणक्यराजनीतिशास्त्र में श्लोक संगृहीत किये गये हैं।[12]

परवर्ती अधिकतर सुभाषित संग्रहों ने चाणक्य के सुभाषित इसी ग्रन्थ से संगृहीत किये हैं।[13]

गरुड़पुराण के 108 से 115 में अध्याय तक के आठ अध्याय नीति श्लोकों से युक्त हैं। चाणक्यराजनीतिशास्त्र बृहस्पतिसंहिता से बहुत कुछ समान है।[14] बृहस्पतिसंहिता में भी चाणक्य-राजनीतिशास्त्र के समान आठ अध्याय हैं, जिसके अन्तिम दो अध्याय अपेक्षाकृत अधिक विशाल हैं।

चाणक्यराजनीतिशास्त्र की विभिन्न प्रतियों में भिन्न-भिन्न श्लोकसंख्या प्राप्त होती है। प्रत्येक प्रति में उपलब्ध अतिरिक्त श्लोक हित इस ग्रन्थ की कुल श्लोक-संख्या 809 होती है।

लुडविकस्टेर्नबेक ने उनमें से 534 श्लोक प्रामाणिक माने हैं जो इस प्रकार हैं।—अध्याय 1 में 49, अध्याय 2 में 62, अध्याय 3 में 61, अध्याय 4 में 31, अध्याय 5 में 43, अध्याय 6 में 52, अध्याय 7 में 79, तथा अध्याय 8 में 135 इस प्रकार कुल 512 श्लोक है। तथा 22 श्लोक सन्देहास्पद को भी मिलाकर कुल श्लोक 534 संगृहीत हैं।

गरुड़पुराण तथा चाणक्यराजनीतिशास्त्र में अध्यायगत श्लोकों की समता लुडविकस्टेर्नबेक के अनुसार इस प्रकार है—

गरुड़पुराण		चाणक्यराजनीतिशास्त्र		
अध्याय	श्लोक	अध्याय	श्लोक	
108	28	1	25	से अभिन्न हैं।
109	54	2	50	,, ,,
110	30	3	28	,, ,,
111	33	4	28	,, ,,
112	25	5	25	,, ,,
113	62	5	10	,, ,,
		6	43	,, ,,
114	75	7	63	,, ,,
115	83	8	64	,, ,
	390		336	

इस प्रकार गरुड़पुराण के 336 श्लोक चाणक्यराजनीतिशास्त्र में सुलभ श्लोकों से अभिन्न हैं। 11 श्लोक चाणक्य के द्वारा प्रणीत अन्य नीति-ग्रन्थों में सुलभ है तथा 5 श्लोक अन्य विभिन्न संस्कृत-ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार गरुड़पुराण में 38 श्लोक ही ऐसे है जो अन्यत्र सुलभ नहीं होते।[16]

सुनीतिकुमार पाठक ने तिब्बत के तंजूर से प्राप्त प्रति के आधार पर तिब्वती में प्राप्त चाणक्यराजनीतिशास्त्र का संस्कृत रूपान्तर प्रस्तुत किया है।[16] इसमें अन्तिम श्लोक नही है जो उसे भोजकृत सिद्ध करता है। इसमें 25 श्लोक हैं जो आठ अध्यायों में क्रमशः 23, 30, 31, 17, 26, 23, 31 तथा 72 श्लोकों से विभक्त है। वृहस्पति संहिता के 390 श्लोकों में से 190 श्लोक इस तिब्बती प्रति में प्राप्त होते हैं। अर्थात् वृहस्पतिसंहिता से इसमें 63 श्लोक भिन्न हैं। वृहस्पतिसंहिता (गरुड़पुराण) के 108 से 115 वें अध्याय में तिव्वती प्रति में क्रमशः प्रथमादि अध्यायों के 16, 29, 25, 15, 20, 22, 27, 39, श्लोक प्राप्त होते हैं।[17] इनमें से 33 श्लोक गरुड़पुराण में ही विकीर्ण रूप से प्राप्त हो जाते हैं।[18]

चाणक्यराजनीतिशास्त्र की विभिन्न प्रतियों की अपेक्षा यह तिव्वती प्रति वृहस्पतिसंहिता के अधिक निकट है।[19] डॉ० पाठक ने भूमिका में व्यक्त किया है कि इस अबौद्ध कृति को बौद्ध कृति

बनाने के लिए अनुवादन ने कई श्लोक इस प्रकार परिवर्तित कर दिये हैं कि उनमें से विष्णु, ब्राह्मण, आदि शब्दों के स्थान पर बौद्ध शब्द का सन्निवेश हो जाय इस प्रकार के परिवर्तन क्रमशः अध्यायानुसार निम्नांकित श्लोकों में हैं—

अध्याय 1 में 1, 6, 7; अध्याय 2 में 11; अध्याय 2 में 5; अध्याय 4 में 17; अध्याय 5 से 26; अध्याय 7 में 19, 29, 31; अध्याय 8 में 12, 28, 66 तथा 67

चाणक्यराजनीतिशास्त्र का तिब्बती भाषा में अनुवाद भारतीय पण्डित प्रभाकरश्रीमित्र (प्रभाश्रीमित्र) तथा तिब्बती भिक्षु रिन्-चेन्-ब्ज़ पो (रत्नभद्र) ने किया था। तिब्बती पण्डित का जन्म 955 ई० में हुआ था।[20] गरुड़पुराण का संकलन सम्भवतः 850 ई० से 1000 ई० के मध्य हुआ।[21] लुडविक स्टेर्नवेक गरुड़पुराण की बृहस्पतिसंहिता तथा इसके तिब्बती अनुवाद का स्रोत चाणक्यराजनीतिशास्त्र को मानते हैं और इस आधार पर उसका संकलन-काल सातवीं से दसवीं सदी के मध्य स्वीकार करते हैं।[22] इसका कारण वे यह भी देते हैं कि परवर्ती सुभाषित-ग्रन्थों ने भी चाणक्य के श्रेष्ठ सुभाषित इसी ग्रन्थ से गृहीत किये हैं। परन्तु इस तथ्य पर वे स्वयं पूर्ण विश्वस्त नहीं हो पाते हैं और आगे चलकर वे यह भी सन्देह करते हैं कि गरुड़पुराण ने अवश्य ही अपने श्लोक अन्यत्र से गृहीत किये हैं, चाहे वे चाणक्यराजनीतिशास्त्र से लिये हों अथवा ऐसे अन्य स्रोत से जो उन दोनों ही ग्रन्थों का स्रोत रहा हो, जो अब अप्राप्त हैं।[23] क्योंकि गरुड़पुराण का कलेवर प्रायः अन्य ग्रन्थों से संगृहीत श्लोकों से निर्मित है। केवल याज्ञवल्क्यस्मृति से ही इस पुराण ने लगभग 500 श्लोक स्वीकार किये हैं।

ग्रन्थ का संग्रहकर्त्ताः—

डिनायल एच० एच० इङ्गल्स अपने एक लेख के द्वारा स्पष्ट करते हैं[4] कि चाणक्यराजनीतिशास्त्र का मूल बंगाल के पालशासकों के राज्यकाल में कभी तैयार हुआ। पालशासक विद्या के संरक्षक थे। बंगाल तिब्बत के निकट है। बंगाल तथा तिब्बत में इस प्रकार का ज्ञानक्षेत्र में आपसी आदान-प्रदान अधिक सम्भव है। उसी मूल चाणक्यराजनीतिशास्त्र का परिवर्धन धारा के भोज की सभा में हुआ।

लुडविक स्टेर्नवेक के अनुसार चाणक्यराजनीतिशास्त्र के अन्त में प्राप्त यह श्लोक—

चाणक्यमाणिक्यमिदं कण्ठे बिभ्रति ये बुधाः।
ग्रथितं भोजराजेन भुवि तैः किं न प्राप्यते ॥

राजा भोज को प्रसन्न करने के लिए उसके आश्रित किसी पण्डित ने, पहिले से प्राप्त चाणक्यराजनीतिशास्त्र में जोड दिया है।[25] इस कृति को भोजविरचित सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त एक श्लोक ही प्रमाण है। इसकी पुष्पिका भी रचयिता का कहीं निर्देश नहीं करती। इ० ल्यूमान[26] उपर्युक्त श्लोक के आधार पर इसे धारा के राजा भोज प्रथम (999 ई० से 1054 ई०)[27] के द्वारा ही विरचित स्वीकार करते हैं। नरेन्द्रनाथ ला[28] तथा जान वान मानेन[29] का भी यही अभिमत है।

चाणक्यराजनीतिशास्त्र का तिब्बती अनुवाद तथा गरुड़पुराणान्तर्गत बृहस्पतिसंहिता अपने कलेवर एवं स्वरूप में अधिक निकट हैं। असम्भव नहीं, यदि बृहस्पतिसंहिता, तिब्बती अनुवाद तथा उपलब्ध चाणक्यराजनीतिशास्त्र का स्रोत ग्रन्थ एक प्राचीन ग्रन्थ रहा हो, जो अब अज्ञात है। तथा जिसका विभिन्न काल में विभिन्न प्रकार से उपयोग किया गया हो एवं उसी के आधार पर, उतने

ही अध्यायों में अन्यान्य ग्रन्थों में उपलब्ध श्रेष्ठ नीति श्लोकों का भी निवेश कर भोज ने नूतन संस्करण प्रस्तुत कर दिया हो जिससे यह पूर्वोक्त अन्य समान नीति ग्रन्थों से अध्याय-संख्या में समान होते हुए भी श्लोक-संख्या की दृष्टि से अपेक्षाकृत वृहत्काय हो गया हो। इस प्रकार विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध श्लोकों के ग्रथनकर्ता के रूप में भोज को इस ग्रन्थ के संग्रहकर्त्ता के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। असम्भव नहीं, यदि इन सभी विभिन्न संस्करणों का मूल, चाणक्य द्वारा छः सहस्र श्लोकों में संक्षिप्तीकृत दण्डनीति अथवा उसका भी कोई संक्षिप्त संस्करण रहा हो। दण्डी ने इसका उल्लेख किया है[30]—

अधीष्व तावद्दण्डनीतिम्। इयमिदानीमाचार्य-
विष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता।

भोज ने उसका, चाणक्य के मूल श्लोक अथवा सूत्रों[31] के परिप्रेक्ष में ही, समान उद्देश्य की सिद्धि करने वाले अन्य श्लोकों का भी समावेश कर ग्रन्थ का यत्किंचित् परिवर्तन कर दिया हो।

संक्षिप्तीकरण की यह प्रवृत्ति भोजकाल में विशेष बलवती थी। इसी काल वृहत्कथा के कई संक्षिप्त संस्करण प्रस्तुत हुए। रामायण पर क्षेमेन्द्र की रामायणमंजरी तथा भोज की रामायण-चम्पू भी प्रसिद्ध ही है। नाट्यशास्त्र का संक्षेप दशरूपक भी इसी काल प्रस्तुत में हुआ। इसी प्रकार चाणक्यनीति का भी संक्षिप्त संस्करण, परिनिष्ठित रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास भोज ने किया हो, तो असम्भव नहीं। इसमें भोज के काल पर्यन्त विभिन्न अन्य ग्रन्थों के भी सुभाषित संगृहीत होने से, परवर्ती सुभाषितकारों ने अपने ग्रन्थों के लिए भोज की इस कृति से विशेष श्लोक संगृहीत कर लिए हों, तो भी आश्चर्य नहीं।

प्रभावकचरित में भोजकृत ग्रन्थों की वृहत्सूची में 'राजसिद्धान्त' का भी उल्लेख है।[32] भोज का युक्तिकल्पतरु इसी प्रकार का ग्रन्थ है। नीति-निबन्धन अथवा नीतिभजन में भी राज्य तथा उसके अंग-प्रत्यंगों का विवरण है।[33] शृंगारप्रकाश के 19 वें प्रकाश में अर्थशृंगार का विवरण देते समय इसी प्रकार के श्लोक संगृहीत कर उद्धृत किये गये हैं। चाणक्यराजनीतिशास्त्र भी इसी क्रम में नीति तथा उपदेशात्मक श्लोकों का संग्रह है।

शृंगारमंजरी कथा में भोज की विशेषताओं का उद्घाटन करते समय उसे 'निधानं नीतेः' कहा गया है।[34] वहीं पर उसे प्राज्ञों में चाणक्य से भी बढ़कर बताया गया है[35]—

'अयते न प्राज्ञगणनां चाणक्यः।'

असम्भव नहीं, यदि इसमें भोजकृत नीति-ग्रन्थ तथा ऐसे नीति-ग्रन्थ का, जो चाणक्यविनिर्मित नीति-ग्रन्थ से भी अधिक हृदयग्राह्य हो, के निर्माता के रूप में स्मरण किया गया हो। चाणक्यराजनीति-शास्त्र की गणना ऐसे ग्रन्थों में सम्भव है क्योंकि उसमें चाणक्यनीति के साथ ही अन्य कवियों के ग्रन्थों से भी श्लोक संगृहीत हैं। शृंगारमंजरी की माता विषमशीला का परिचय देते समय भी कहा गया है[36]—

कुटिलमतिकौटिल्यप्रभृतीन् वटूनिवापटून् गणयति।

उसी का परिचय देते समय[37] 'चाणक्यनीति' शब्द का भी प्रयोग किया गया है—

चाणक्यनीतिरिव यो येनोपायेन ग्राह्यस्तं तेनोपायेन गृह्णन्ती ।

भाण्डारकर प्राच्य अनुसन्धान शाला में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 74 (1883–84) पर उपलब्ध भोज के चाणक्यराजनीतिशास्त्र की एक प्रति का अभिधान 'चाणक्यनीति' ही प्राप्त होता है। यद्यपि अन्तिम पुष्पिका में 'इति चाणिक्ये राजनीतिशास्त्रे अष्टमोध्यायः' ही प्राप्त होता है।

चाणक्यराजनीतिशास्त्र के कतिपय श्लोक भोजकृत शृंगारप्रकाश में प्राप्त किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ—चाणक्यराजनीतिशास्त्र का यह श्लोक[38]—

नदीनां नखिनां चैव शृंगिणां शास्त्रिणां द्विषाम् ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेष्वपि ॥

शृंगारप्रकाश के 338वें पृष्ठ पर प्राप्त होता है।

भोज के राजनैतिक व्यक्तित्व के साथ ही उसका कविप्रिय तथा काव्यप्रिय व्यक्तित्व भी सुविख्यात है। राजनीतिशास्त्र के साथ ही काव्यात्मक गुणों से सम्पन्न श्लोकों का सन्निवेश उसके व्यक्तित्व के दोनों पक्षों का समन्वय करता है जिसका आदर परवर्ती सुभाषितकारों ने इसमें संगृहीत श्लोकों को स्वीकार कर व्यक्त किया है।

ग्रन्थ के अन्त में कृति तथा कर्ता का उल्लेख भोज प्रायः सीधे सादे शब्दों में करता है। चाणक्यराजनीतिशास्त्र के अन्त में यह श्लोक है—

चाणक्यमाणिक्यमिदं कण्ठे बिभ्रति ये बुधाः ।
ग्रथितं भोजराजेन भुवि तैः किं न प्राप्यते ॥

चारुचर्या के अन्त में भी ग्रन्थकार लगभग ऐसे ही शब्दों का उपयोग करता है—

चारुचर्या इयं श्रेष्ठा रचिता भोजभूभुजा ।

तथा यही वैशिष्ट्य शृंगारमंजरीकथा के अन्तिम श्लोक का भी है—

कृतेयं भोजराजेन कथा (शृंगारमंजरी) ।

इस प्रकार चाणक्यराजनीतिशास्त्र के संकलनकर्ता के रूप में धार के परमार राजा भोज प्रथम को स्वीकार किया जा सकता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही चाणक्यनीति के अन्य प्रथित संस्करणों की भाँति, इसके प्रारम्भ में ही कहा गया है कि यह ग्रन्थ मौलिक नहीं है। अनेक शास्त्रों के वचनों का संकलन है[39]—

नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम् ।

जो आगे कहे जाने वाले श्लोक[40]—

मूलसूत्रं प्रवक्ष्यामि चाणक्येन यथोदितम् ।

के सीमित क्षेत्र का विस्तार कर देता है। इस कृति में केवल पूर्व व्यक्त तथ्य का ही आद्योपान्त पालन किया गया है।

ग्रन्थ का प्रयोजनः—

अन्य चाणक्यराजनीति के संकलनों के समान यह कृति भी लोकप्रज्ञा के संवर्धन, सत्य

तथा शुचिता में निरतता एवं हिंसा-क्रोध के बहिष्कार, अर्थ तथा कीर्ति की प्राप्ति के साधनों के ज्ञान के निमित्त संकलित हुई है। यह धर्मोपदेश का निर्देश भी करती है।[41]

येन सम्यगधीतेन प्रज्ञा संवर्द्धते नृणाम् ।
सत्यशौचरतो नित्यं हिंसाक्रोधविवर्जितः ॥
तदहं संप्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा पुरुषोचिरात् ।
लभते विपुलां कीर्तिं न चार्थेन वियुज्यते ॥
पठित्वेव शुभं शास्त्रं इदं ज्ञास्यति तत्त्वतः ।
धर्मोपदेशं व्याख्यातं कार्याकार्ये शुभाशुभे ॥

सर्वज्ञता के लिए इस कृति की रचना हुई है[42]—

येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥

राजकर्तव्य से परिचय करवाना भी इस ग्रन्थ का लक्ष्य रहा[43]—

पार्थिवस्य प्रवक्ष्यामि भृत्यानां चैव लक्षणम् ।
यथाभिज्ञो महीपालः सम्यग् भृत्यान् प्रपालयेत् ॥

इस प्रकार यह कृति तीन पुरुषार्थों, धर्म, अर्थ तथा काम का सम्पादन करती है। मानव जीवन को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करना ही इसका लक्ष्य है जिससे वह जीवन में उपर्युक्त पुरुषार्थों की प्राप्ति कर लोकजीवन में सफलता प्राप्त कर सके। ग्रन्थकार के अनुसार[44] इस कृति के ज्ञान से मानव पृथ्वी के निखिल ज्ञानों को प्राप्त कर जीवन को अनेक सिद्धियों से सम्पन्न कर सकता है—

चाणक्यमाणिक्यमिदं कण्ठे बिभ्रति ये बुधाः ।
ग्रथितं भोजराजेन भुवि तैः किं न प्राप्यते ॥

ग्रन्थ के रचयिता के अनुसार तथा पूर्वोक्त अन्तः साक्ष्यों से ही सिद्ध है कि प्रस्तुत कृति संकलन है। स्वयं ग्रन्थकार भी इसकी मौलिकता का दावा नहीं करता। अतः इस कृति में उपलब्ध काव्य-सौन्दर्य का सर्जक भोज नहीं माना जा सकता है। स्वभावतः भोज की स्वरचित कृति न होने से इसके काव्य-सौन्दर्य के परीक्षण में प्रवृत्त होना प्रस्तुत सन्दर्भ में अनपेक्षित है।

चारुचर्या—

भोजकृत चारुचर्या की विभिन्न प्रतियाँ विभिन्न आकार की प्राप्त होती हैं। मद्रास में क्रमांक डी. 13269 पर उपलब्ध प्रति के आधार पर 1949 ई. में प्रकाशित प्रति में 136 श्लोक हैं तथा 1956 ई. में वहीं की क्रमांक डी. 13268 के आधार पर प्रकाशित प्रति में 404 श्लोक हैं। वहीं की डी. 13267 क्रमांक पर प्राप्त अप्रकाशित प्रति में 375 श्लोक हैं। बम्बई विश्वविद्यालय में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 193 पर प्राप्त प्रति में 330 श्लोक हैं, तथा मैसूर के ओरिण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट में क्रमांक एस. ए. 71 पर प्राप्त प्रति 854 खण्डों में वृहत्काय रूप में प्राप्त होती है। सरस्वतीभवन पुस्तकालय, वाराणसी में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 45087 पर प्राप्त प्रति में 217 श्लोक हैं[45] तथा इससे आकार एवं प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से उज्जैन के सिन्धिया ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 7495 पर प्राप्त प्रति एवं उज्जैन

निवासी पद्मभूषण डा० सूर्यनारायण व्यास के पास व्यक्तिगत प्रति एवं इण्डिया आफिस में प्राप्त प्रति तथा बर्नेल के तंजोर केटेलाग से ज्ञात प्रति में अन्तर नहीं है। इण्डिया आफिस पुस्तकालय के सूची-पत्र में प्राप्त विवरण, श्लोक तथा चारुचर्या की काया से ऐसा प्रतीत होता है कि वह प्रति उज्जैन से उपलब्ध दोनों प्रति तथा वाराणसी से प्राप्त प्रति से अधिक भिन्न नहीं है।

इनमें से मैसूर की प्रति सर्व वृहत्काय है जिसकी काया परवर्तीकाल में परिवर्धित होती गयी।

चारुचर्या की सभी प्रतियों का प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

सुनीतिशास्त्रसद्वैद्यधर्मशास्त्रानुसारतः ।
विरच्यते चारुचर्या भोजभूपेन धीमता ॥

मैसूर की प्रति में इस श्लोक से प्रारम्भ होने वाला अंश अन्त में है जिसके अन्तर्गत 136 श्लोक हैं, जो मद्रास की उपर्युक्त तेलुगु में प्रकाशित प्रति से अभिन्न है। इससे पूर्व के वृहद् भाग में जलवर्ग, क्षीरवर्ग, अनुलेपनक्रम, पुष्पप्रकरण, देवतापूजाप्रकरण, अन्नप्रकरण, ताम्बूलप्रकरण, भूषण-प्रकरण, आस्थानमण्डपप्रवेशनप्रकरण, स्त्रीसम्भोगप्रकरण, आशीर्वाद-क्रिया, उषःपानकल्प, अपथ्य आदि विषय प्रतिपादित हैं।

अन्त में प्राप्त चारुचर्या स्वयं में पूर्ण है। चारुचर्या की अन्य प्रतियों में से विभिन्न मतों के उद्धरण भिन्न करने पर जो मूल बच रहता है वह इस आकार से वृहद् नहीं होता है। उपर्युक्त प्रकरणों में से अनुलेप, पुष्प, अन्न, ताम्बूल, भूषण, स्त्रीसम्भोग, आदि प्रकरण संक्षेप में, अपने मूलरूप में पुनः स्थान पा सके है। इसके अतिरिक्त शौचविधि, दन्तधावन, स्नानविधि, तथा नीतिकाव्य भी इसमें प्राप्त होते हैं।

अन्य प्रतियों के समान ही इस अन्तिम अंश का प्रारम्भ उस उक्ति से होता है जो मूल ग्रन्थ के प्रारम्भ में होती है—

सुनीतिशास्त्रसद्वैद्यधर्मशास्त्रानुसारतः ।
विरच्यते चारुचर्या भोजभूपेन धीमता ॥

तथा अन्त भी उसी प्रकार होता है—

हिताय राजपुत्राणां सज्जनानां विशेषतः ।
चारुचर्या प्रिया श्रेष्ठा रचिता भोजभूभुजा ॥

मैसूर की इस प्रति के वृहद् भाग में अन्य प्रतियों में उपलब्ध कई श्लोक प्राप्त होते हैं जो उत्तर भाग के लघु खण्ड में नही है। इससे यही प्रतीति होती है कि वे विभिन्न प्रतियाँ भी प्रक्षिप्त अंशों से परिवर्धित है। मूलतः चारुचर्या 136 श्लोकों की ही रही होगी। इस मूल चारुचर्या के कई श्लोक मैसूर के वृहद् भाग में प्राप्त होते है। एक ही ग्रन्थ में उन श्लोकों की पुनरावृत्ति में कोई तथ्य नहीं है। उदाहरणार्थ—

आदित्ये पद्मरागं च सोमे मुक्ताफलं तथा ।
मंगले विद्रुमं चैव बुधे मरकतं तथा ॥

गुरौ तु पुष्परागं च भार्गवे वज्रमुत्तमम् ।
मन्दे तु नीलमित्युक्तं राहोर्गोमेधकं तथा ॥
केतोर्वैदूर्यमित्युक्तं क्रमाद्रत्नस्य लक्षणम् ॥
तथा
एकशायी द्विभोजी च षण्मूत्री त्रिपुरीषकः ।
स्वल्पसङ्गमकारी च शतवर्षाणि जीवति ॥

पूर्व के वृहद् भाग तथा उत्तर के भोजकृत चारुचर्या भाग में पुनरावृत्त हुए है ।

पूर्वभाग के 848 में खण्ड में चारुचर्या में वर्णित विषयों की विषयसूची दी गयी है—

प्रातःकाल-विधिश्चासौ दन्तधावनमज्जनम् ।
नश्यगन्धोषधूमादि स्नानवस्त्रानुलेपनम् ॥
पुष्पाणि देवताभ्यर्चा भुक्त्वा ताम्बूलचर्वणम् ।
आस्थानं मन्दिरस्त्रीणां भोगप्रकरणं विदुः ॥

इनमें से अधिकतर पूर्वखण्ड में नहीं, उत्तरखण्ड में, भोजकृत चारुचर्या में है । परन्तु इससे आगे गिनाये गये ये विषय—

तोयं क्षीरं दधितक्रनवनीतं घृतेक्षुजम् ।
गुडक्षौद्रं तैलमद्ये मूत्रं गोमयशूकजे ॥
तृणधान्यं शिम्बिपेयं कृतान्नं सूपमूषकम् ।
फलभक्ष्याणि वटकं पिष्टवर्गहरीतकम् ॥
मृगान् विहगमत्स्यांश्च शाकपल्लवकौसुमम् ।
फलं द्वौ द्वौ नालकं च सूतादिविविधौषधैः ॥
चारुचर्यादिकांश्चैवमेतेषां गुणमुच्यते ॥

पूर्वार्द्ध में ही प्राप्त होते हैं तथा चारुचर्या की अन्य प्रतियों में प्राप्त नहीं होते ।

इसी मैसूर की प्रति के पूर्वभाग के भोजराज विरचित होने का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है । ग्रन्थ के प्रारम्भ तथा मध्य, कहीं भी तद्विषयक उल्लेख नहीं है ।

रामचन्द्र वुधेन्द्र की टीका में चारुचर्या के उल्लेख

ग्रन्थ के पूर्व भाग से ही रामचन्द्र ने भोजकृत चम्पूरामायण की टीका में[46] दो श्लोकांश उद्धृत किये हैं—

शीतं नैव वितीर्यते प्रियतमैरालिङ्गनं कम्बलम् ।

इति चारुचर्यावचनादिति भावः । तथा

काश्मीरपङ्केनकृतप्रलेपो हैमन्तकानाशु निहन्ति दोषान् ।300

भर्तृहरि के शृंगारशतक[47] के 99वें श्लोक की टीका में भी उपर्युक्त आधा श्लोक प्राप्त होता है—

कस्तूर्यागरुकुंकुमैरतिधृतं पानं तटाकास्थितं ।
शीतं नैव वितीर्यते प्रियतमैरालिगनं कम्बलम् ॥

वहीं पर—तदुक्तं चारुचर्यायामृतुचर्याप्रस्तावे सर्वज्ञभोजराजेन—

त्रिषु च दधि निषेव्यं ग्रीष्मकाले वसंते
शरदि च परिवर्ज्य वांछता दीर्घमायुः ।
यदि खलु परिवांछा सेव्यतां सर्वकालं
सह गुडमधुपात्रे शर्करामुद्रयूषैः ॥

चारुचर्या में यह श्लोक प्राप्त नहीं होता ।

तदुक्तं चारुचर्यायाम् –

मनसो हर्षणं श्रेष्ठं रतिदं मदकारणम् ।
मुखरोगहरं हृद्यं दीपनं वस्तिशोधनं ॥
मुखशुद्धिकृमिहरं ताम्बूलं श्रीकरं परम् ॥

वहीं पर 98वें श्लोक की टीका में—

मध्ये नक्तमुदाहृतं शरदि च प्रत्यूषकाले हिमम् ।

उदाहृत है । यह श्लोकांश चारुचर्या में प्राप्त नहीं होता ।

त्यजेदन्त्यकुलोद्भूतां वृद्धस्त्रीं कन्यकां त्यजेत् ।

शृंगारशतक के 27वें श्लोक की टीका में है, चारुचर्या में भी प्राप्त है परन्तु—

आलिङ्गनं लम्बपयोधराणां स्त्रीणां च दुःखं त्रयमेव भूमौ ।

वहाँ अप्राप्य है। इससे प्रतीति होती है कि रामचन्द्र को प्राप्त चारुचर्या की प्रति आज अप्राप्य है ।

इससे यह प्रतीति भी होती है कि 17वीं सदी तक दक्षिण भारत में चारुचर्या का परिवर्द्धित संस्करण भी प्रचार पा चुका था ।

नारिकेल के जल के विषय में विस्तृत विवरण,[48] पनस-पत्र में भोजनगुण,[49] उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण के कावेरी, द्रविड़, आन्ध्र-देश आदि के ताम्बूलों के वर्णन,[50] दधि का विशिष्ट विवरण आदि से प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ का पूर्व भाग दक्षिण भारत में ही निर्मित हुआ ।

भोजयुग से परवर्तीकाल के उद्धरणः—

चारुचर्या की मैसूर-प्रति का पूर्व भाग भोजयुग से पर्याप्त परवर्ती है—

(1) प्रारम्भ के गुणपाठ का एक श्लोक—

शरणं करवाणि शर्मदं ते
चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम् ।

करुणामसृणैः कटाक्षपातैः
कुरु मामम्ब कृतार्थसार्थवाहम् ।।

मल्लिनाथ विरचित हैं,[51] जो 14 वीं सदी का है ।

(2) योगार्णव से एक श्लोक इस प्रति के 667 वें खण्डन में उद्धृत किया गया है --

ताम्बूलं कटुतिक्तमुष्णमधुरं क्षारं कषायान्वितं
वातघ्नं क्रिमिनाशनं कफहरं कायाग्निसन्दीपनम् ।
स्त्रीसम्भाषणभूषणं रुचिकरं शोकस्य विच्छेदनम् ।
ताम्बूले कथितास्त्रयोदशगुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः ।।

योगार्णव तेरहवी सदी का सिंहली ग्रन्थ है ।[52] यही श्लोक भोज के चाणक्यराजनीतिशास्त्र में भी उद्धृत है ।[53] जल्हण की सूक्तिमुक्तावली में रचयिता का नाम निर्देश न करते हुए यह श्लोक उद्धृत हुआ है ।[54]

(3) 'रसादिभोजनवस्तुजीर्णकाल' प्रकरण में **लघुभोज** का मत उद्धृत किया गया है—

घटीषट्चैव धारोष्णं ताम्बूलं धटिकात्रयम् ।
लवणं फलमज्जायाः पुष्पाणां पञ्चविंशतिः ।
यामद्वयं च मत्स्यानां लघुभोजेन कथ्यते ।।495

लघुभोज गुजरात के मन्त्री वस्तुपाल की उपाधि थी । इसका समय संवत् 1277 (1220 ई०) के आसपास है । मेरुतुंग की प्रबन्धचिन्तामणि से तद्विषयक ज्ञान होता है[55]—

अथ संवत् 1277 वर्षे सरस्वतीकण्ठाभरण–लघुभोजराज–
महाकवि–महामात्य–श्रीवस्तुपालेन महायात्रा प्रारेभे ।

राजशेखर सूरि के प्रबन्धकोश के हरिहर–प्रबन्ध में भी वस्तुपाल को इन्हीं उपाधियों से सम्बद्ध किया गया है ।

(4) उज्जैन की दोनों प्रतियाँ, बम्बई विश्वविद्यालय की प्रति, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की प्रति में 16वी सदी[56] के भावमिश्र द्वारा प्रणीत भावप्रकाश के ये श्लोक उद्धृत है—

बालेति गीयते नारी यावत् वर्षाणि षोडशः ।
ततस्तु तरुणी ज्ञेया द्वात्रिंशत्वत्सरावधिः ।।
तदूर्ध्वमधिरूढा स्यात् पञ्चाशत्वत्सरावधिः ।
वृद्धा तत्परतो ज्ञेया सुरतोत्सववर्जिता ।।
निदाघशरदौ बाला हि ता विषयिणो मता ।
तरुणी शीतसमये प्रौढा वर्षावसन्तयोः ।।
नित्यं बाला सेव्यमाना नित्यं वर्धयते बलम् ।
तरुणी ह्रासयेच्छक्ति प्रौढा भावयते जराम् ।।
दिवास्वापं न कुर्वीत मिथ्यावादं न कारयेत् ।
दिवास्त्रीगमनं नृणामायुः क्षयमुदीरितम् ।।

दिवासन्ध्यां वर्जयित्वा तथा पर्वदिनेषु च ।
रात्रौ व्यवायं कुर्वन्ति योषितं यौवनं स्त्रियम् ॥

(5) बारहवीं सदी में विरचित 'रतिरहस्य' से भी ग्रन्थ-नामोल्लेखपूर्वक छः श्लोक (218 से 223) बम्बई विश्वविद्यालय की प्रति में उद्धृत हैं।

(6) बम्बई, वाराणसी तथा उज्जैन की दोनों प्रतियों में कैयदेव निघण्टु से चार श्लोक (106 से 109) उद्धृत हैं। इसका काल अज्ञात है।

भोज से पूर्वयुग के उद्धरण—

(1) मैसूर की वृहत्प्रति (829 वें खण्ड) में नाम-निर्देशसहित भय का अभिमत उपलब्ध होता है।

(2) बम्बई की प्रति में यह श्लोक उपलब्ध होता है....

नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमोस्तुते ।
नमोस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः ॥

विष्णुपुराण के कतिपय संस्करणों में यह श्लोक उपलब्ध होता है।[57] थ ही 214 से 217 तक के श्लोक भी पौराणिक ही प्रतीत होते हैं।

(3) बम्बई की प्रति में कर्णामृत (98 वाँ श्लोक) प्रथमशतक (?) (99 वां श्लोक) तथा मात्स्य अथवा मत्स्यपुराण (224 वाँ श्लोक) से भी नाम-निर्देशपूर्वक श्लोक उद्धृत हैं।

(4) मैसूर की प्रति में वाहट का नाम-निर्देशपूर्वक अनेक वार उल्लेख हुआ है। क्षीर-सामान्य के गुण-निर्देश में वाहट का अभिमत दिया गया है—

स्वादु पाकरसं स्निग्धं श्रोजस्यं धातुवर्धनम् ।
वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरुबृंहणम् ॥ 126

गोक्षीर के गुणवर्णन में भी वाहट का अभिमत उद्धृत हुआ है—

प्रायः पयोत्र गव्यं तु जीवनीयं रसायनम् ।
क्षतक्षीणहितं मेध्यं बल्यं स्तन्यरसं रसम् ॥
दाहभ्रममदालक्ष्मीश्वासादितृट्क्षुधः ।
जीर्णज्वरं मूत्रकृच्छ्रं रक्तपित्तं च नाशयेत् ॥127

तथा 'अजाक्षीरगुण' में भी वाहट का मत उद्धृत किया गया है—

अल्पाम्बुपान–व्यायामकटुतिक्ताशनैर्लघु ।
आजं शोषज्वरश्वासरक्तपित्तातिसारजित् ॥
आजं पयः पथ्यतमं क्षयातिसारनाशनम् ।
कटुतिक्ताशनादल्पतोयपानादयो यथा ॥144

'उष्णोदकगुण' में भी वाहट का अभिमत उद्धृत है—

दीपनं पाचनं कण्ठ्यं लघूष्णं वस्तिशोधनम् ।
हिड्माड्माध्मनिलश्लेष्मसद्यश्शुद्धिनवज्वरे ॥

वाग्भट का ही अपर अभिधान वाहट है। प्रबन्धचिन्तामणि[58] के अनुसार धारा के स्वामी मालवमण्डन भोज की राजसभा में आयुर्वेद का वेत्ता वाग्भट था, जिसने अपने अनुभव के आधार पर वाग्भट नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। यह वाग्भट वृहद् वाहड तथा उसका जामाता लघु वाहड था।[59] अष्टांगसंग्रह के रचयिता वृद्ध वाग्भट से अष्टांगहृदय के रचयिता वाग्भट को भिन्न माना जाता है।[60] असम्भव नहीं, यदि वृहद्-वाग्भट (वाहड) ही वृद्धवाग्भट हो, जिसने अष्टांगसंग्रह की रचना की तथा प्रबन्धचिन्तामणि का लघुवाहड ही अष्टांगहृदय का रचयिता वाग्भट हो।[61] वाहट के नाम से अष्टांगहृदयसंहिता प्रकाशित है।[62]

आफ्रेक्ट ने वाहट की एक आयुर्वैदिक कृति 'शतश्लोकी' का उल्लेख किया है।[63] वाग्भट के अष्टांगहृदय से चारुचर्या के भोजकृत भाग में भी श्लोक उद्धृत हैं।[64]

इससे प्रतीत होता है कि विभिन्न ग्रन्थों से श्लोक संगृहीत कर चारुचर्या को वृहदाकार देने का क्रम परवर्ती विद्वानों अथवा लिपिकारों द्वारा अपनाया गया। परवर्तीकाल में स्वभावतः इसका आकार क्रमशः बढ़ता गया हो।

प्रतिपाद्य :-

ग्रन्थ का विषय तो वस्तुतः उसके अभिधान से ही स्पष्ट है। ऋतु के अनुरूप दैनिक जीवनचर्या को चारुतर बनाने के साधनों का इसमें संकलन किया गया है। चारुचर्या में प्रातः क्रिया, स्नान, वस्त्र, आभूषण, पुष्प, लेप, अन्न, पात्र, ताम्बूल, स्त्रीसेवन आदि की आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्रानुसार कालानुरूप उपयोगिता को प्रस्तुत किया गया है। अन्त में नीति सम्बद्ध भी कतिपय श्लोक प्राप्त होते हैं।

विविध ऋतुओं के अनुरूप वस्त्रों के वर्णों की उपयोगिता, विभिन्न पुष्पों की स्वास्थ्य दृष्ट्या परीक्षा, विविध आभरणों की धर्म तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगिता, अनेक लेपनों की छानबीन, विभिन्न धातु तथा पत्र के पात्रों में भोजन करने के लाभ, ताम्बूल-सेवन से लाभ-हानि एवं स्त्री-सम्भोग के विशेष विवेचन के साथ ही अन्त में कुछ सुभाषित; ग्रन्थ के सीमित आकार में भी ग्रन्थकार की बहुज्ञता दर्शा देते हैं। विषय विवरण से स्पष्ट है कि ग्रन्थ मूलतः स्वास्थ्य की दृष्टि से रचा गया है। धर्म के अविरोध में स्वास्थ्य की रक्षा करना सज्जनों तथा राजपुत्रों के लिए विशेष रूप से आवश्यक है जिससे वे स्वस्थ एवं प्रजा में आकर्षक बन सकें।

वस्तुतः भोज समन्वयकारी प्रवृत्ति के पोषक हैं। चारुचर्या में नीति, वैद्यक तथा धर्मशास्त्र का ऐसा सामंजस्य प्राप्त होता है कि विषयदृष्ट्या ग्रन्थ इन तीनों में से किसी में भी स्थान नहीं पा सकता। चारुचर्या बहुव्रीहि के समान है जो प्रस्तुत निर्दिष्ट पदार्थों का आश्रय लेते हुए भी अन्य पद-प्रधान हो गयी।

परन्तु स्वास्थ्य-सम्बद्ध तथ्यों की बहुलता होने से ही प्रायः सभी हस्तलिखित ग्रन्थ के सूची-निर्माताओं ने इसे आयुर्वेद का ग्रन्थ स्वीकार किया है। वैसे स्वयं ग्रन्थकार के अनुसार इसमें स्पष्ट ही नीति, वैद्यक तथा धर्मशास्त्र का सन्निवेश है। ग्रन्थ का प्रारम्भ वस्तुनिर्देश से हो होता है—

सुनीतिशास्त्रसद्वैद्यधर्मशास्त्रानुसारतः।
विरच्यते चारुचर्या भोजभूपेन धीमता ॥1

प्रयोजन—

भोज के अनुसार नीति, आयुर्वेद एवं धर्म स्वस्थ जीवन के तीन घटक हैं, जिनके सम्यक् समाहार से ही जीवन में चारुचर्या सम्भव है। जीवन की चारुचर्या से सम्यक् शरीर-साधना के साथ ही धर्म-साधना भी हो जाती है।

अधिकारी—

ग्रन्थ के अन्त में प्रणेता ने स्पष्ट व्यक्त कर दिया है कि इस ग्रन्थ की रचना सज्जनों के, साथ ही विशेषकर राजपुत्रों के हित में हुई है—

हिताय राजपुत्राणां सज्जनानां तथैव च।
चारुचर्या इयं श्रेष्ठा रचिता भोजभूभुजा॥

चारुचर्या सीमित तथा विशिष्ट वर्ग के लिये रची गयी है। ऋतु के अनुसार बहुमूल्य वस्त्र, आभरण, लेप आदि का उपयोग करना जनसामान्य की अर्थशक्ति से परे की बात है। अर्थगत विषमता राजकुलों में भी सम्भव है, इसलिए भोज ने अर्थशक्ति के अनुसार आभूषणों से अंगों को सजाने का निर्देश दिया है—

भूषणैर्भूषयेदंगं यथाविभवसारतः।

सदाचारी सज्जनों के लिए चारुचर्या के अनुरूप जीवन-यापन करना सुखद है। स्थान-स्थान पर विशिष्ट वर्ग के लिए निर्देश भी दिये गये है। यथा, भोजन की परीक्षा के लिए चकोर, कालाबन्दर, शुक-सारिका आदि का पालना अमात्य तथा राजपुत्रों के लिए ही आवश्यक है, अन्य को नहीं।

चकोर मर्कटं कृष्णं शारिकां च शुकं तथा।
अमात्यराजपुत्राणां गृहेष्वेतानि वर्धयेत्॥

इस प्रकार यह ग्रन्थ प्रायः सभी सज्जनों के लिए हितकारी, अतः उपयोगी है।

ग्रन्थ-कर्तृत्व—

परवर्ती काल में चाहे चारुचर्या का परिवर्धन होता रहा हो, परन्तु मूल चारुचर्या का रचयिता भोज ही था। यह भोज धाराधीश के अतिरिक्त नहीं हो सकता। इस तथ्य के पोषक कतिपय प्रमाण प्रस्तुत हैं—

(1) चारुचर्या की प्रायः सभी प्रतियों में ग्रन्थकार का तीन स्थानों पर उल्लेख उपलब्ध होता है—

(क) प्रारम्भ—विरच्यते चारुचर्या भोजभूपेन धीमता।

(ख) अन्त—चारुचर्या इयं श्रेष्ठा रचिता भोजभूभुजा।

(ग) पुष्पिका—इति श्रीमहाराजाधिराजभोजदेवविरचिता चारुचर्या समाप्ता।

इन सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का प्रणेता राजा भोज है, जिसकी उपाधि 'महाराजाधिराज' रही। ग्रन्थकार के रूप में धाराधीश परमार राजा भोज प्रथम (999 से 1045 ई०) विशेष प्रसिद्ध है। 'महाराजाधिराज' उपाधि इनके अन्य—शृंगारमंजरीकथा, शृंगारप्रकाश, सरस्वतीकण्ठाभरण, अवनिकूर्मशतम्, राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति आदि ग्रन्थों की पुष्पिका एवं ताम्रपत्रों में भी प्राप्त होती है।

(2) अप्पन मन्त्री ने भोज-काल में ही इस ग्रन्थ का तेलुगु पद्यानुवाद कर दिया था। यह ग्रन्थ 13वीं सदी से आन्ध्र में प्रचलित है।[65]

(3) इस ग्रन्थ के प्रारम्भ की प्रतिज्ञा—

सुनीतिशास्त्रसद्वैद्यधर्मशास्त्रानुसारतः।

विरच्यते चारुचर्या भोजभूपेन धीमता॥

के अनुसार तथा अन्तःसाक्ष्यों से भी स्पष्ट है कि इस कृति में नीति, वैद्यक तथा धर्मशास्त्र का समाहार है। इन विषयों पर भोज के स्वतन्त्र ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं। भोज का चाणक्यराजनीतिशास्त्र अथवा नीतिनिबन्धन, राजमृगाङ्क, व्यवहारसमुच्चय आदि ग्रन्थ भी क्रमशः नीति, वैद्यक तथा धर्मशास्त्र सम्बद्ध हैं।

(4) पातंजल योगसूत्रवृत्ति के प्रारम्भ मे भोज ने स्वयं को शब्दानुशासन, तथा वैद्यक 'राजमृगांक' का रचयिता भी बताया है—

'वृत्ति राजमृगांकसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके'

शृंगारमंजरीकथा[66] में यन्त्रपुत्रक के द्वारा उन्मीलित भोज के व्यक्तित्व में उसे नीति का निधान (निधानं नीतेः) तथा धर्म का प्रभव (प्रभवो धर्मस्य) कहा गया है। वहीं पर उसे विविध विद्या की उद्गम भूमि (प्रमदोद्यानं विद्यालतानाम्) भी कहा गया है। चारुचर्या में स्नान, वस्त्र, लेपन, भोजन, ताम्बूल, स्त्रीसेवन, रत्नाभूषण, पुष्पादि की विविध उपयोगिताओं का विवरण प्राप्त होता है। रत्नपरीक्षा का विवरण युक्तिकल्पतरु में तथा पुष्प-विवृत्ति भोज की 'प्रयोग-पद्धति-रत्नावली'[67] मे प्राप्त होती है जिसे वेदान्तदेशिक ने 1350 ई०[68] के लगभग उद्धृत किया है। इस प्रकार चारुचर्या में उपलब्ध विविध तथ्यों को भोज-साहित्य में विकीर्ण रूप से पाया जा सकता है। इन सबका सम्यक् समाहार कर सुव्यवस्थित जीवन-निर्वाह के लिए भोज ने चारुचर्या की रचना की।

(5) शृंगारमंजरीकथा[69] में ही भोज को क्षत्राचार की भूमि (क्षेत्रं क्षत्राचारस्य) कहा गया है। राजनीति तथा धर्मशास्त्र-सम्बद्ध विविध ग्रन्थों के अतिरिक्त भोज ने कोदण्डकाव्य, खड्गशतक आदि की रचना कर अथवा रचना करवाकर का मार्ग-निर्देश किया है। चारुचर्या का प्रणयन भी राजपुत्रों के हित में ही हुआ है—

हिताय राजत्राणां सज्जनानां तथैव च॥

चारुचर्या इयं श्रेष्ठा रचिता भोजभूभुजा॥

(6) प्रबन्धचिन्तामणि में भोज-निर्मित 104 प्रासाद, प्रबन्धगीत तथा उसके विरुदों का उल्लेख हैं।[70] सरस्वतीकण्ठाभरण की टीका मे अजड़ ने भोज के 84 ग्रन्थों तथा उपाधियों के अभिधानों में अभेद बताया है।[71] सरस्वतीकण्ठाभरण तथा राजमार्तण्ड उसके ग्रन्थों के भी अभिधान है तथा उपाधियाँ भी हैं।[72] चारुचर्या की एक प्रति के अन्त मे उसे 'चारुचर्यम्' कहा गया है[73]—

चारुचर्यमदं श्रेष्ठं रचितं भोजभूभुजा।

राजमार्तण्ड, सरस्वतीकण्ठाभरण आदि के समान, 'चारुचर्या' भोज की उपाधि अथवा विरुद भी था तथा यही ग्रन्थाभिधान भी। पुष्पिका में भी '....चारुचर्यं समाप्तम्।' कहा गया है। इस प्रकार प्रकट ही यह ग्रन्थ धाराधीश भोज की कृति है।

(7) भोजकृत शृंगारमंजरीकथा[74]—

'रविकिरणकुञ्चिकोद्घाट्यमानदलकवाटेषु........पंकजेषु'

में प्राप्त कल्पना चारुचर्या में भी प्राप्त होती है—

कान्तानां हृदयारविन्दलने सूर्यांशुतुल्यप्रभम् ।

जिसका मूल, कालिदास के कुमारसम्भव[75] में है—

'सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम् ।'

इन आधारों पर कहा जा सकता है कि चारुचर्या का रचयिता धाराधीश भोज ही था।

अभिव्यक्ति की रमणीयता—

चारुचर्या मूलतः शास्त्रीय कृति है। उसमें प्रायः विषय प्रतिपादक सरल अनुष्टुभ् का व्यवहार हुआ है। परन्तु भोज मूलतः कवि है। अपने अभीष्ट को वह कहीं-कहीं सरस शैली में भी प्रस्तुत कर पाठकों को आह्लादित करता चलता है। केतकी के कुसुम का वर्णन एक शार्दूलविक्रीडित में किया गया है—

केतक्याः कुसुमं निहन्ति पवनं श्लेष्माणमुन्मीलयेत्
उष्णत्वाद्वितनोति कोपमधिकं पित्तस्य संसेवनात् ।
कान्तानां हृदयारविन्ददलने सूर्यांशुतुल्यप्रभं
कन्दर्पोत्सवमूलकंदममलं भूपैः सदा भुज्यते ॥

आर्थी पूर्णोपमा तथा रूपक के साथ ही 'कन्द' शब्द की आवृत्ति से वृत्त्यनुप्रास एवं प्रसादमयी वैदर्भी रीति के चारुदर्शन यहाँ सुलभ हैं। चम्पूरामायण के प्रसंग में कहा जा चुका है कि भोज को वृत्त्यनुप्रास विशेष प्रिय हैं। सूर्यांशु से कमल विकसित करने की कल्पना भोज ने कालिदास से से प्राप्त की होगी—

सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम् ।

इसी कल्पना का, उत्प्रेक्षा के रूप में, भोज ने अपनी शृंगारमंजरीकथा में उपयोग किया है[76]—

रविकिरणकुञ्चिकोद्घाट्यमानदलकवाटेषु........पंकजेषु ।

लुप्तोपमा के दर्शन इस पंक्ति में हो सकते हैं—

सुवर्णवर्णं यत्पुष्पं केतक्यास्सुमनोहरम् ।

तथा रूपक इसमें प्राप्य है—

व्यालिप्ताखिलदिग्वधूमुखतनुस्तोमं सुराणां प्रियम् ।

भोज अनुप्रासप्रिय कवि है। अनुप्रास की ललित छटा प्रायः सर्वत्र पायी जा सकती है—

कर्णाभरणमत्यन्तं कामिनीजनरञ्जनम् ।
दोषहारि मनोहारि मनोभवनिकेतनम् ॥

भाषा में रमणीयता लाने के लिए कहीं-कहीं शब्दावृत्ति भी की गयी है—

नवरत्नसमुत्कीर्णं नवग्रहनिवारणम् ।

कविहृदय भोज की सहज शृंगारिक प्रवृत्ति ललनाओं के ललित लास्यों की स्मृति भी कर ही लेती है—

कुन्दस्य प्रसवं तु शंखधवलं कान्तामनोरंजनं।
चाक्षुष्यं शिरसो हितं वितनुते लावण्यमत्युत्कटम्।

अथवा

मनस्विनीमानविमोहदक्षं सुगन्धि कान्तिं वितनोत्यवश्यम्।

कुमारसम्भव के 'मनस्विनीमानविघातदक्षं' से अन्यच्छायायोनित्व यहाँ सुलभ है।[77]

जीवन को सुखमय बनाने में ही सारे उपकरणों की उपयोगिता है। कवि की दृष्टि में ग्राह्य वही है जो आँखों को लुभाने लगे, शरीर को शोभित करे। माधवी-प्रसून की माला आँखों को आनन्द देती है एवं कुन्द-कुसुम से न केवल कान्ताओं का मनोरंजन होता है अपितु लावण्य भी खिल उठता है। सुमनों के उपयोगी वर्णों का वैशिष्ट्य कहीं-कहीं हृदयावर्जक उत्प्रेक्षा के द्वारा आकर्षक बना दिया गया है—

रञ्जनद्रुमपुष्पाणां सौरभेनाति विस्मृतः।
तिष्ठन्ति मानवा लोके क्षणं चित्रार्पिता इव॥

कालिदास को ऐसी कल्पना प्रायः प्रिय रही है।[78]

कवि की कल्पना ने चारुचर्या की रूखी राह में पुष्पाधिकार पाकर मानो केलि-उपवन पा लिया जहाँ उसे संयम में भी सौन्दर्य बिखेर पाने का अवसर मिल सका।

छन्द—

चारुचर्या में अनुष्टुभ् का ही बाहुल्य है। परन्तु यत्र-तत्र आर्या, इन्द्रवज्रा, उपजाति, स्वागता, रथोद्धता, वसन्ततिलका, मालिनी, शार्दूलविक्रीडित आदि वृत्तों का भी उपयोग किया गया है।

नीतिवचन—

भोजकृत चारुचर्या के अन्त में नीति-श्लोक भी है। इनकी संख्या विभिन्न प्रतियों में एकसी नहीं है। मैसूर की प्रति के अन्त में पाँच श्लोक नीतिगत हैं—

परद्रव्यं परस्त्रीं च परनिन्दां तथैव च।
अमित्रभाषणं शाठ्यं स्त्रियालापं च वर्जयेत्॥
वर्जनं चाप्यगम्याया भक्ष्यायाश्च भक्षणम्।
असूयावर्जनं शाठ्यं पतितैस्सह संगमः॥
क्रौर्यस्य वर्जनं चैव आत्मस्तुति-विवर्जनम्।
दानं मनोरमं कार्यं दृष्टापूर्वस्य वर्धनम्॥
अशेषदेवताभक्तिः गोषु विप्रेषु तर्पणम्।
शुश्रूषणं गुरुस्त्रीणां तपस्तीर्थेषु मज्जनम्॥
विद्यायास्सेवनं चैव सततं साधुसंगमः।

दीनान्धतकृपणानां च भ्रातृणां चैव पोषणम् ।
कारयेत्सततं भक्त्या कीर्तिलक्ष्मीविवृद्धये ॥

अन्य प्रतियों में ये अथवा इनसे कुछ भिन्न श्लोक हैं—

अनृतं न वदेद् धीमान् प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
धर्मनाशो भवेत्तस्य प्रयाति नरकं ध्रुवम् ॥
अमृतं सत्यमित्याहुरसत्यं विषमुच्यते ।
धर्मशास्त्राणि सततं पुराणश्रवणं तथा ॥
कारयेद्विविना सम्यगात्माभ्यासं तु नित्यशः ॥

तथा—

विचार्य देशं दोषं च पयः सत्त्वं यथाबलम् ।
जलपानमुषःकाले पीत्वा वर्षशतं जयेत् ॥

बम्बई की प्रति में 253 से 330 तक अतिरिक्त नीतिश्लोक है जो अन्य प्रतियों में प्राप्त नहीं होते । ये चारुचर्या के अन्त में हैं । इन श्लोकों में से अधिकतर शाङ्र्गधर-पद्धति में उपलब्ध होते हैं । चारुचर्या का 266वां श्लोक[79]—

शुचिर्भूमिगतं तोयं शुचिर्नारी पतिव्रता ।
शुचिः क्षेमकरो राजा संतुष्टो ब्राह्मणः शुचिः ॥

शाङ्र्गधरपद्धति में उपलब्ध होता है । तथैव चारुचर्या का 308वां श्लोक[80] मनुस्मृति में प्राप्त होता है—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासने विशेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

मांस-भक्षण की प्रचलित परम्परा को स्वीकृति देते हुए कहा गया है—

आत्मार्थे योप हन्यात्सोवश्यं नरकं व्रजेत् ।
देवान् पितृन् समभ्यर्च्य खादन्मान्सं न दोषभाक् ॥287

स्त्रियों के पातिव्रत्य से सम्बन्धित श्लोक पुराणों से संगृहीत हैं ।

चारुचर्या का 307वां श्लोक वल्लभदेव की सुभाषितावली में प्राप्त होता है[81]

परदारा न गन्तव्या सर्ववर्णेषु कर्हिचित् ।
न हीदृशमनायुष्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥

शाङ्र्गधरपद्धति का 647वां श्लोक—

न कश्चिदपि जानाति किं कस्य श्वो भविष्यति ।
अतः श्वकरणीयानि कुर्यादद्यैव बुद्धिमान् ॥

चारुचर्या में 301 क्रमांक पर प्राप्त होता है । इसी का भाव कबीर के इस प्रसिद्ध दोहे में उपलब्ध होता है—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब ।
पल में परलय होयगा, बहुरि करेगा कब्ब ॥

यही भाव एक प्राकृत-गाथा में प्राप्त होता है ।[82]—

जं कल्ले कायव्वं अज्जं चिय तं करेह तुरमाणा ।
बहुविग्धा य मुहुत्तो मा अवरण्हं पडिक्खेह ॥

शतपथ ब्राह्मण में भी इस तथ्य का उपदेश दिया गया है[83]—

न श्वः श्वमुपासीत । को हि मनुष्यस्य श्वो वेद ।
अद्धा हि तद् यदद्य । अनद्धा हि तद् यच्छ्वः ।

चारुचर्या का 311वां श्लोक चाणक्यनीति[84] तथा भोज के चाणक्यराजनीतिशास्त्र[85] में भी प्राप्त होता है । इसी प्रकार मैसूर की प्रति में 587 तथा 588वें भाग में उपलब्ध श्लोक तथा मद्रास की डी० 13268 प्रति में उपलब्ध 372 तथा 373वें श्लोक भोज के चाणक्यराजनीतिशास्त्र में उपलब्ध होते हैं,[86] जो क्रमशः शार्ङ्गधरपद्धति तथा चाणक्यनीति में भी प्राप्त होते हैं ।[87]

इस प्रकार बम्बई विश्वविद्यालय की प्रति के अन्त में संलग्न श्लोक पाण्डुलिपि-लेखक ने निविष्ट किये प्रतीत होते हैं । ये श्लोक मूलतः भोज के द्वारा संकलित नहीं हैं । चारुचर्या के नीतिगत श्लोक अनुष्टुभ् छन्द में ही हैं । वे सभी श्लोक भोज-विरचित नहीं है । कतिपय श्लोक भोज-विरचित हो सकते हैं । चाणक्यनीति आदि कृतियों के समान ही इस कृतियों भी नीतिगत श्लोक हैं जिनमें उस काव्यगत वैशिष्ट्य का अभाव है जो चारुचर्या के नीतिभिन्न विषय-प्रतिपादन में दृष्टिगत होता है । सरल तथा अनलंकृत भाषा का प्रयोग किया गया है । प्रतीत होता है, ऐसे विषय-प्रतिपादन में भोज का मन रम नहीं पाया है ।

भोज तथा क्षेमेन्द्र की चारुचर्या—

मालव का भोज (999–1054 ई०) तथा काश्मीर का क्षेमेन्द्र 1025–1066 ई०), दोनों एक ही युग की विभूतियाँ हैं । भोज के समान क्षेमेन्द्र की प्रतिभा ने भी वाङ्मय के विविध आयामों को आत्मसात् किया । भोज तथा क्षेमेन्द्र की कृतियों के विषय ही नहीं, अभिधानों में भी प्रायः एकरूपता पायी जा सकती है—

	क्षेमेन्द्र	भोजराज
1.	नीतिकल्पतरु	युक्तिकल्पतरु
2.	कविकण्ठाभरण	सरस्वतीकण्ठाभरण
3.	रामायणमंजरी	रामायणचम्पू
4.	चारुचर्या	चारुचर्या

1050 ई० में विरचित समयमातृका[88] में क्षेमेन्द्र ने काश्मीर के प्रवरपुर की गणिका, कंकाली के मुख से दक्षिण-देशाधिपति (काश्मीर के लिए मालव दक्षिण देश ही है) भोज का स्मरण करवाया है[89]—

लङ्घिततरुणसमुद्रा कलावती यत्पटाञ्चले लग्ना ।
यामर्थयते दूतैर्दक्षिणदिग्वल्लभो भोजः ॥

इस कृति के पश्चात् क्षेमेन्द्र ने सेव्यसेवकोपदेश, दशावतारचरित तथा चारुचर्या की रचना की। भोज 1054 ई० तक जीवित रहा। अधिक सम्भावना यही है कि भोज की चारुचर्या क्षेमेन्द्र की चारुचर्या से पहले रची गयी थी। यह भी सम्भव है कि ये दोनों कवि एक दूसरे की कृति से अनभिज्ञ रहे हों तथा अनजाने ही, अनायास दोनों की कृतियों का एक ही अभिधान हो गया हो। क्षेमेन्द्र की चारुचर्या शतक है। उसकी रचना अलंकृत वैदर्भी रीति में हुई है। इसमें प्रायः श्लोक के पूर्वार्द्ध में प्रतिपादित सिद्धान्त को उत्तरार्द्ध के पौराणिक दृष्टान्त से पुष्ट किया गया है। जीवन की चारुचर्या को विधि अथवा निषेधात्मक दृष्टान्तों से प्रस्तुत किया गया है। क्षेमेन्द्र की चारुचर्या ऐसा सुभाषित-ग्रन्थ है जिसमें नीति का भी सामंजस्य है। भोज की चारुचर्या सामान्यतया विषयप्रतिपादन में लीन है। वह दैनिक जीवन को क्रमबद्ध प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। क्षेमेन्द्र की चारुचर्या का भी प्रारम्भ में यही प्रयास रहा है। परन्तु प्रस्तुतीकरण में दोनों रचयिताओं में महान् अन्तर है। भोज की चारुचर्या का द्वितीय श्लोक है[90]—

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः॥

यही भाव क्षेमेन्द्र की चारुचर्या के द्वितीय श्लोक में भी है—

ब्राह्मे मुहूर्ते पुरुषस्त्यजेन्निद्रामतन्द्रितः।
प्रातः प्रबुद्धं कमलमाश्रयेच्छ्रीर्गुणाश्रया॥

स्नानविधि में भोजराज का अभिमत आयुर्वैदिक है—

पुण्यनिर्मलतोयेन उष्णतोयेन वाग्यतः।
मलापकर्षणार्थाय स्नानं कुर्यात्प्रयत्नतः॥

परन्तु क्षेमेन्द्र का दृष्टिकोण धार्मिक तथा उससे बढ़कर अभिव्यक्ति के प्रकार में है—

पुण्यपूतशरीरः स्यात्सततं स्नाननिर्मलः।
तत्याज वृत्रहा स्नानात्पापं वृत्रवधाश्रितम्॥

भोज ने देवनमस्कार विधि में—

कुलाचारं ततः कुर्यात् स्वदेशेऽपि समानतः।
सूर्योपासित ततः कुर्यात् सर्वरोपमनत्तये॥

जिस भाव को व्यक्त किया, क्षेमेन्द्र ने देवार्चना को इस प्रकार प्रस्तुत किया—

न कुर्वीत क्रियां काञ्चिदनभ्यर्च्य महेश्वरम्।
ईशार्चनरतं श्वेतं नाक्रामेतु यमः क्षमः॥

इस प्रकार भोज का दृष्टिकोण आयुर्वैदिक मुख्य रहा, धर्म उससे सम्पृक्त हो गया है। नीति को गौण स्थान प्राप्त हुआ है। क्षेमेन्द्र की चारुचर्या में नीति तथा धर्म को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। भोज की चारुचर्या में साहित्यिक छटा सर्वत्र सुलभ नहीं है। वह आयुर्वैदिक कृति पहले है, साहित्य उसमें गौण स्थान पा सका है। क्षेमेन्द्र की चारुचर्या मूलतः साहित्यिक नीतिग्रन्थ का

सुन्दर उदाहरण है। भोज की चारुचर्या में अनुष्टुभ् के अतिरिक्त अन्य छन्दों का उपयोग भी हुआ है। क्षेमेन्द्र की चारुचर्या में केवल सुगठित अनुष्टुभ् हैं।

शास्त्रीय ग्रन्थ के समान भोज अन्य पूर्ववर्ती रचयिताओं के अभिमत भी देता है तथा नीति खण्ड में नामनिर्देश न करते हुए कई श्लोक पूर्ववर्ती नीतिग्रन्थों से भी संगृहीत कर लेता है। यह प्रवृत्ति बम्बई से उपलब्ध चारुचर्या की प्रति में विशेष पाई जाती है। क्षेमेन्द्र की चारुचर्या उसकी स्वयं की रचना है। वह किसी के श्लोक को उद्धृत नहीं करता है।

विषय की दृष्टि से भोज तथा क्षेमेन्द्र की चारुचर्या के प्रारम्भिक श्लोक ही समान लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होते हैं। बाद में क्षेमेन्द्र तो जीवन के अनुभवों के आधार पर, विविध व्यावहारिक पक्षों पर नीतिगत प्रकाश डालता रहता है परन्तु भोज प्रमुखतः आयुर्वेदिक दृष्टि से दैनिक जीवन को सुचारु बनाने के, विविध ऋतुगत साधनों की कहीं सूची तथा कहीं सामान्य विवरण देने में प्रवृत्त होता है। इस प्रकार स्नान, वस्त्र, पुष्प, लेपन, आभरण, भोजन, ताम्बूल, स्त्रीसेवन आदि विषयों पर वह प्रकाश डालता है। इस प्रकार का विवरण देने में क्षेमेन्द्र की कोई अभिरुचि नहीं है। दोनों के उद्देश्यों में भेद है। क्षेमेन्द्र की चारुचर्या सम्पूर्ण जीवन का सूत्रात्मक रूप से पथ-प्रदर्शन करती है परन्तु भोज की चारुचर्या दैनिक जीवन का। इस प्रकार क्षेमेन्द्र की चारुचर्या समष्टिगत विषय-प्रतिपादन में लीन है तथा भोज की चारुचर्या व्यष्टिगत।

दोनों की कृतियों में अभिधान की ही समानता है, प्रवृत्ति तथा प्रकृति में इन दोनों ग्रन्थों की दिशायें भिन्न हैं।

चाणक्यराजनीतिशास्त्र तथा चारुचर्या के यथार्थ अभिधानों की सम्भावना:—

मेरुतुङ्ग ने अपनी प्रबन्धचिन्तामणि में[91] व्यक्त किया है कि भोज की नगरी में भोजविनिर्मित 104 प्रासाद, इतने ही गीतप्रबन्ध तथा उसके इतने ही विरुद थे। सरस्वतीकण्ठाभरण के टीकाकार अजड़[92] के अनुसार भोज के 84 ग्रन्थों के अभिधान तथा उनके विरुदों में अभेद था।[93]

इन दोनों सन्दर्भों से यह तो स्पष्ट है कि भोज के ग्रन्थों तथा विरुदों के अभिधान एक ही थे। संख्याविषयक निर्णय भी तब स्पष्ट हो जाता है जब हमें प्रभावकचरित की उस अभिव्यक्ति का ज्ञान हो जाता है जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया है कि धारा में भोजविनिर्मित 84 प्रासाद तथा इतने ही चौराहे रहे।[94] अर्जुनवर्मा के राजगुरु मदनकवि की पारिजातमंजरी अथवा विजयश्री नाटिका[95] के अनुसार धारा में 84 चौराहे तथा उन पर इतने ही देवालय थे।

प्रबन्धचिन्तामणि के अतिरिक्त साधनों से स्पष्ट है कि भोज की निर्मितियाँ 84 संख्या से विशेष सम्बद्ध है। प्रासाद, देवालय, चौराहे, विरुद, ग्रन्थ आदि में से प्रत्येक की संख्या 84 रही, जो विभिन्न युगीन विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होने से प्रबन्धचिन्तामणि की अपेक्षा विशेष विश्वसनीय प्रतीत होती है। भोजकृत शृंगारमंजरीकथा में भी स्वयं भोज ने उरगपुर के राजा समरसिंह को 84 सामन्तों का स्वामी बताया है।[96] स्पष्ट है, भोज का 84 संख्या के प्रति विशेष लगाव था। 84 संख्या पर प्राचीन भारतीय विशेषकर पौराणिक विश्वास भी विशेष है।[97] असम्भव नहीं यदि यही संख्या भोज ने अपनी विविध क्षेत्रीय विभिन्न कृतियों के लिए अपनायी हो।

विभिन्न कृतियों को एक ही अभिधान देने की प्रवृत्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण भोज का सरस्वतीकण्ठाभरण है। सरस्वतीकण्ठाभरण भोज की उपाधि थी।[98] एक सरस्वतीकण्ठाभरण प्रासाद धारा में था[99] तथा एक उज्जयिनी में।[100] भोजविरचित एक काव्यशास्त्रीय कृति तथा एक

याकरण ग्रन्थ का अभिधान भी सरस्वतीकण्टाभरण ही है। सरस्वतीकण्ठाभरण व्याकरण का स्मरण प्रबन्धचिन्तामणि में भी किया गया है[101]--

कः कण्ठाभरणादिभिर्बठरयत्यात्मानमन्यैरपि ।

इस नाम के एक नाटक का उल्लेख कवीन्द्राचार्य के सूचीपत्र (क्रमांक 1963) में भी है।

भोज के कोदण्डकाव्य में[102] भोज की उपाधि 'राजमार्तण्ड' कही गयी है। इस नाम के भोजकृत ज्योतिष, धर्मशास्त्र, योग, वेदान्त आदि विषयक ग्रन्थ है।[103]

इससे सिद्ध होता है कि भोज की निर्मितियों के अभिधान उसकी उपाधियाँ भी थीं।[104]

गुजरात का मन्त्री वस्तुपाल स्वयं को, विद्या का वेत्ता तथा विज्ञों का आश्रयदाता होने से, भोजराज कहता था--

विद्वद्भिः कृतभोजराजविरुदः श्रीवस्तुपालः कविः ।[105]

उसने भोज की अनेक उपाधियों को यथावत् ग्रहण किया[106]--

अथ सं० 1277 वर्षे सरस्वतीकण्ठाभरण. लघुभोजराज,
महाकवि, महामात्य श्रीवस्तुपालेन महायात्रा प्रारेभे ।

उसने भोज की न केवल सरस्वतीकण्ठाभरण अपितु समरांगण-प्रणयी,[107] कोदण्डगुण,[108] वाग्देवीवदनारविन्दतिलक[109] आदि उपाधियाँ भी ग्रहण कीं। उसे राजमार्तण्ड भी कहा जाता था।[110]

प्रतापो राजमार्तण्ड ! पूर्वस्यामेव राजते ।

भोज के ही व्यक्तित्व तथा कृतित्व से प्रभावित प्रबन्धचिन्तामणि का सम्पूर्ण परिवेश भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में उसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से स्मरण करता रहता है। भोज द्वारा कल्पित एवं प्रयुक्त शब्दों का उसमें प्रचुर प्रयोग प्राप्त होता है। विद्याविनोद भोज के एक सभापण्डित[111] तथा भोज के काव्य का अभिधान रहा। 'वादविद्याविनोद'[112] के व्याज से उसी शब्द की पुनरावृत्ति की गयी है। उसी प्रकार[113]--

'तदनु तच्चरणपरमपरमाणुर्बुद्धिवैभवावगणितचाणक्यः
पण्डितमाणिक्यः............... ।'

मे भी चाणक्यमाणिक्य तथा पण्डितमाणिक्य उपाधियों की सम्भावना प्रतीत होती है। भोज की उपाधि तथा ग्रन्थ का अभिधान एक ही होता था, यह स्पष्ट है। भोजकृत चाणक्यराजनीतिशास्त्र के अन्तिम श्लोक[114]--

चाणक्यमाणिक्यमिदं कण्ठे बिभ्रति ये बुधाः ।
ग्रथितं भोजराजेन भुवि तैः किं न प्राप्यते ॥

में कृति को चाणक्यमाणिक्य कहा गया है जो चाणक्यराजनीतिशास्त्र से अधिक सभी चीन प्रतीत होता है। चाणक्य की सूक्तियों की मणियों से ग्रथित यह मणिमाला अथवा चाणक्य के भावों की महार्घता जिसमें एकीभूत हो गयी है ऐसे माणिक्य-लाल--को कण्ठ में धारण करने से, सज्जन सारी जागतिक सिद्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं। 'चाणक्यमाणिक्य' भोज की उपाधि भी हो सकती है।

शृंगारमंजरी कथा में भोज को न केवल 'नीति का निधान'[115] अपितु प्राज्ञों में चाणक्य से भी बढ़कर बताया गया है[116]—

यस्य चातिप्रज्ञाप्रकर्ष..........श्रयते न प्राज्ञगणनां चाणक्यः ।

चारुचर्या की एक प्रति[117] के अन्त में ग्रन्थ का अभिधान 'चारुचर्यम्' प्राप्त होता है—

हिताय राजपुत्राणां सज्जनानां तथैव च ।
चारुचर्यमिदं श्रेष्ठं रचिता भोजभूभुजा ।।
इतिश्रीमहाराजाधिराजभोजदेवविरचितं चारुचर्यं समाप्तम् ।

'चारुचर्य' भी भोज की उपाधि हो सकती है ।[118] असम्भव नहीं यदि उपर्युक्त सन्दर्भ में चारुचर्या का भी यथार्थ अभिधान 'चारुचर्यः' ही हो । जिससे ग्रन्थ-अभिधान तथा भोज के निरुद्ध में समानता की प्रतीति होती है ।

उपदेशात्मक काव्य के परिप्रेक्ष में भोज की कृतियाँ —

भारतीय साहित्य में उपदेशात्मक साहित्य की सुदीर्घ परम्परा रही है । वैदिक संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, महाभाष्य, दृश्यकाव्य, श्रव्यकाव्य के विविध आयामों तथा बौद्ध एवं जैन साहित्य में विकीर्ण रूप से अमित उपदेशात्मक साहित्य प्राप्त होता है ।[119] इस साहित्य में नीति तथा उपदेश का समन्वय हो गया है । कहाँ से उपदेश की सीमा समाप्त होगी तथा कहाँ से नीति प्रारम्भ हो जायेगी, निर्णय करना कठिन है ।[120] 'पालिपिटक से सम्बन्धित धम्मपद में हम सदाचार सम्बन्धी वचनों का भारत में सर्वश्रेष्ठ संग्रह पाते हैं ।'[121]

इस प्रकार का साहित्य अज्ञात काल से लोक-परम्परा में पल्लवित होता रहा जिसे परवर्ती विद्वानों ने संगृहीत कर लिया । संग्रहकर्ता स्वयं भी अपनी सूक्तियाँ रचकर उसमें संलग्न करते रहे । 'ऐसा होना स्वाभाविक भी था; ऐसे व्यक्ति को निश्चयरूप से असाधारण मूर्ख ही समझना चाहिए जो लोकतः प्राप्त नीतिवचनों के नमूने पर नये वचन निर्माण नहीं कर सकता था अथवा उनको नया रूप नहीं दे सकता था ।'[122] इस प्रकार के काव्य का सर्वप्रथम संग्रह चाणक्यनीति है । यह स्पष्ट नहीं है कि अर्थशास्त्र का रचयिता चाणक्य ही इसका भी लेखक है ।[123] 17 अध्यायों में विभक्त यह ग्रन्थ अधिक लोकप्रिय है । परन्तु भोजकृत चाणक्यमाणिक्य अथवा चाणक्यराजनीतिशास्त्र आठ अध्यायों में विभक्त है । इन दोनों की प्रवृत्ति समान है परन्तु प्रकृति भिन्न है । भोज की इस कृति की समानता वाले कुछ अन्य संस्करण भी प्राप्त होते हैं । गरुड़पुराण के 108 से 115 तक अध्याय तथा 10वीं सदी में आठ अध्यायों वाले चाणक्यराजनीतिशास्त्र का तिब्बती अनुवाद, जिनका विवरण पहले दिया जा चुका है, भोज के चाणक्यराजनीतिशास्त्र से बहुत समानता रखते हैं, सम्भवतः एक ही स्रोत से इन तीनों संस्करणों का निर्माण हुआ । यह स्रोत भी, असम्भव नहीं, यदि दण्डीनिर्दिष्ट छः सहस्र श्लोकों वाली चाणक्य की दण्डनीति हो ।[124] परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन तीनों संस्करणों में भोजकृत 'चाणक्यमाणिक्य' हृदयाकर्षक है । इसलिये भी कि संकलन-कर्त्ता की इसमें केवल नीति ही नहीं, काव्य-दृष्टि भी रही है । उसने मूल स्रोत को आधार बनाकर सम्पूर्ण साहित्य में, रामायण से त्रिविक्रमभट्ट तक के काल की विस्तृत अवधि में, विविध सहृदयों तथा कवियों की मेधा से उत्पन्न कतिपय विशिष्ट सूक्तियों का संकलन कर लिया । इस प्रयास के परिणाम में भाव, विचार, शैली, भाषा, छन्द आदि सभी दृष्टि से इस कृति में पुरुरूपता आ गयी जो अन्य संस्करणों में दुर्लभ है । स्वभावतः यह कृति इस प्रकार की संकलन-कृतियों में विशिष्ट

तथा अधिक हृदयाकर्षक है। इसमें धर्म, अर्थ, काम आदि पुरुषार्थों से सम्बद्ध सामग्री संकलित है। वररुचि के नीतिरत्न, घटकर्पर के नीतिसार तथा वेतालभट्ट के नीतिप्रदीप में भी कतिपय उत्कृष्ट पद्य प्राप्त होते हैं जिनका संकलन भोज ने कर लिया है। भल्लट[125] (883–902 ई०) का शतक भी पूर्णतया मौलिक नहीं है। एक ही व्यक्ति द्वारा रचित इस प्रकार की कृतियों में शान्तिदेव का बोधिचर्यावतार, शंकराचार्य की शतश्लोकी तथा मोहमुद्गर, भर्तृहरि के शतकत्रय, दामोदर गुप्त (779–813 ई०) का कुट्टनीमत[126] आदि महत्त्वपूर्ण हैं। भोज के ही युग में क्षेमेन्द्र ने चतुर्वर्ग-संग्रह, सेव्यसेवकोपदेश, समयमातृका, कलाविलास, दर्पदलन, चारुचर्या आदि ग्रन्थ रचे। भोज की चारुचर्या इसी श्रेणी की कृति है। परवर्ती काल में उसमें अन्य ग्रन्थों के श्लोक सम्मिलित कर दिये गये, परन्तु मूलतः चारुचर्या भोज की कृति है, जो उपर्युक्त परम्परा से हटकर है। उसमें भोज का उद्देश्य राजपुत्रों तथा सज्जनों को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करना है। दैनिक जीवनचर्या यदि चारुतर हो तो भविष्य स्वभावतः उज्ज्वल हो जाता है, मानव अनायास अरुग्ण रहता है। ऋतु के अनुरूप परिधान, पुष्पधारण, लेपन, भोज आदि का उपयोग किया जाय, ताम्बूल तथा स्त्रीसेवन में संयम रखा जाय तो मानव सहज ही[127]--

भूयश्च शरदः शतात्।

सौ शरद से अधिक जीवित रहने की कामना क्यों न करे? कालिदास के[128]—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'।

उद्घोष का भोज ने चारुचर्या में संयम से विकास किया। भोज ने चारुचर्या में ऐसे जीवन को ही आदर्श माना जिसके दैनिक जीवन के कार्यकलापों में नीति, धर्म तथा आरोग्य की भावना निहित हो। इस दृष्टि से भोज की चारुचर्या पूर्ववर्ती, इस प्रकार के सम्पूर्ण वाङ्मय से विशिष्ट है।

भोज की चारुचर्या तथा चाणक्यराजनीतिशास्त्र सर्वथा निर्दोष भी नहीं कहे जा सकते। चाणक्यराजनीतिशास्त्र अपने कलेवर को क्रमबद्धता नहीं दे पाया। विशृंखलित रूप से श्लोक एकत्र कर दिये गये है। केवल चौथे तथा पाँचवे अध्याय में राजनीति का एकत्र विवेचन है परन्तु पाँचवें अध्याय में सेनाध्यक्ष, भाण्डाध्यक्ष, प्रतीहार, लेखक, दूत, गंजाध्यक्ष, सूपकार, भिषक्, आचार्य, पुरोहित, कालज्ञ आदि के पश्चात् मन्त्री की विशेषता व्यक्त की गयी है। वस्तुतः मन्त्री का विवरण राजा के पश्चात् ही होना था।

एक ओर तो ग्रन्थ के आरम्भ में यह प्रतिज्ञा की जाती है—

नाना-शास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम्।

एवं दूसरी ओर आगे चलकर पुनः अन्य प्रतिज्ञा की जाती है—

मूलसूत्रं प्रवक्ष्यामि चाणक्येन यथोदितम्।

जिसका पालन सम्भवतः अधिक नहीं किया गया।

चारुचर्या की प्रतिपादन-शैली अधिक विशिष्ट नहीं बन पायी है। भोज जैसा सहृदय, जिसने समरांगणसूत्रधार जैसे शास्त्रीय विषय को भी सरस रूप में प्रस्तुत किया, इस कृति में न अलंकारगत तथा न कल्पनागत कोई विशिष्ट नवीनता दे सका।

इस प्रकार भोज की इन कृतियों का जहाँ अपना व्यक्तित्व है, वहीं पर ये सर्वथा दोषरहित भी नहीं हैं।

संदर्भ

1. ऋग्वेद, 10. 34. 13
2. वे० वरदाचार्य, सं० सा० इ०, (हिन्दी) पृ० 154.
3. ए० बी० कीथ, सं० सा० इ० (हिन्दी), 1967 ई०, पृ० 283.
4. लुडविक स्टेर्नबैक के द्वारा सम्पादित यह कृति होशियारपुर के विश्वेश्वरानन्द-ग्रन्थमाला क्रमांक 28 में, 1964 ई० में प्रकाशित हुई है। प्रस्तुत उच्छ्वास में इसी संस्करण का उपयोग किया गया है।
5. चाणक्यनीतिशास्त्र, 1/2.
6. चाणक्यसारसंग्रह, 1/3
7. लघुचाणक्य, 1/2.
8. चा० रा०, 1/15.
9. वही, 4/1.
10. इन अध्यायों में ये बातें पुनःपुनः आयी हैं, अतः उन्हें पृथक् मे विभाजित नहीं किया जा सकता।
11. चाणक्यराजनीतिशास्त्र, विश्वेश्वरानन्द-भारती-ग्रन्थमाला, 28. भूमिका, पृ० 127
12. चा० रा०, भूमिका, पृ० 127
13. ,, वही, पृ० 37
14. एनल्स आफ भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, ग्रन्थ 37, भाग 1 से 4, पृ०58–110
15. पुराणम्, वाराणसी, खण्ड 6, भाग 1 जनवरी, 1964, पृ० 113–146.
16. विश्वभारती एनल्स, भाग 8, शान्तिनिकेतन, 1958, पृ० 10 से 78.
17. चा० रा० भूमिका, पृ० 51
18. डेनायल एच०एच० इङ्गेल्स् जर्नल आफ द अमेरिकन ओरियण्टल सोसायटी, खण्ड 86, भाग 1, मार्च, 1966, पृ० 6.
19. चा० रा० भूमिका, पृ० 53.
20. ,, वही, पृ० 37
21. आर० सी० हाजरा, स्टडीज इन द पौराणिक रेकार्ड्स् आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स्, द यूनिवरसिटी आफ ढाका, 1940.
22. चा० रा०, भूमिका, पृ० 37
23. वही, पृ० 57
24. जर्नल आफ द अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, खण्ड 86, भाग 1, मार्च 1966, पृ० 1 से 19.
25. चा० रा०, भूमिका, पृ० 60.
26. चा० रा० भूमिका पृ० 37
27. वी० सी० छाबरा, इण्ट्रोडक्शन, भोजचरित्र आफ राजवल्लभ, पृ० 22
28. कलकत्ता ओरियण्टल सीरीज से 1919 में प्रकाशित चाणक्यराजनीतिशास्त्र, प्रथम संस्करण की भूमिका.
29. वही, द्वितीय संस्करण (1926 ई०) की भूमिका.
30. दशकुमारचरित, अष्टमोच्छ्वास, पृ० 194, निर्णयसागर, 1898 ई०

31. मूलसूत्रं प्रवक्ष्यामि चाणक्येन यथोदितम् । चा० रा०, 1/15.
32. प्रभाचन्द्राचार्य, प्रभावकचरित, 22/74–78.
33. राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा संपादित संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचना में क्रमांक 576 पर निर्दिष्ट.
34. शृं० क०, पृ० 8,
35. वही, पृ० 9.
36. शृं० क० पृ० 17.
37. वही, पृ० 15.
38. चा० रा०, 2/21.
39. चा० रा०, 1/2
40. वही, 1/15.
41. चा० रा०, 1/3–5.
42. वही, 1/15.
43. वही, 4/1.
44. वही 8/135
45. इनमें से मद्रास पुस्तकालय की डी० 13267 तथा सरस्वती भवन पुस्तकालय, वाराणसी की 45087 एवं मैसूर की एस० ए० 71 क्रमांक की प्रतिलिपियाँ विक्रम विश्वविद्यालय ने मेरे अनुसन्धान के लिये सुलभ करवायीं, जो वहाँ के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। बम्बई की 193 क्रमांक की प्रतिलिपि मैंने स्वयं ने वहीं की थी।
46. चा० रा०, पृ० क्रमश. 204 तथा 205.
47. वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई.
48. चारुचर्या की मैसूर प्रति, खण्ड 35 से 41.
49. वही, 454 वाँ खण्ड.
50. वही, खण्ड 614, 617, 619.
51. रघुवंश आदि कालिदासीय कृतियों की संजीवनी टीका का मंगल श्लोक।
52. डा० जूलियस जोलि, इण्डियन मेडिसिन, (सी० जी० काशिकर द्वारा अंग्रेजी में अनूदित) सदाशिवपेठ, पूना 2 सन 1951 ई०, पृ० 26.
53. चा० रा०, 7/35
54. जल्हण, सूक्तिमुक्तावली, पृ० 402., श्लोक 135.
55. प्र० चि०, पृ० 100.
56. भावमिश्र, भावप्रकाश की भूमिका, पृ० 4 –चौखम्बा, सं० 2006 तथा डा० जूलियस जोलि, इण्डियन मेडिसिन, अंग्रेजी अनुवाद, 1951, पृ० 3
57. विष्णुपुराण, 4/3/12–13, नमोस्तुते के स्थान पर नमो निशि पाठ है।
58. प्र० चि०, पृ० 121–122
59. तेन निजानुभूतो वाग्भटनामा प्रसिद्धो ग्रन्थों विदधे।
तस्य जामाता लघुवाहडः श्वशुरेण वृहद्वाहडेन सह राजमन्दिरे प्रयातः।

–प्र० चि०, 121.

60. वाचस्पति गैरोला, सं० सा० इ०, पृ० 730, पादटिप्पणी आचार्य प्रियव्रत शर्मा, वाग्भट-विवेचन पृ० 302–303, चौखम्बा 1968.
61. डा० जूलियस जोलि, इण्डियन मेडिसिन, पृ० 13.
जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, 1901.
62. वैद्यसारथि प्रेस, कोट्टायम (1967).
63. आफ्रेक्ट, केटेलागस केटेलोगोरम, भाग 1,
(आपर्ट, भाग दो, 6128)
64. वेट्टुरिवेंकट शास्त्री, चारुचर्या, 1956, भूमिका.
65. चारुचर्या, 1956 की भूमिका में वेट्टुरिवेंकट शास्त्री का वक्तव्य है।
66. शृं० क०, पृ० 8.
67. वेदान्तदेशिक, पंचरात्ररक्षा, पृ० 5,51 तथा 130 से 134
(अडियार, द्वितीय संस्करण, 1967)
68. वाचस्पति गैरोला, सं० सा० इ०, पृ० 505
69. शृं० क०, पृ० 8.
70. मेरुतुंग, प्रबन्धचिन्तामणि, पृ. 50
71. चतुरशीतिविरुदप्रकाशितस्वकृतग्रन्थसमाजः श्रीभोजराजः। शृं. प्र., भाग 2, फोर्वर्ड.
72. श्रीसरस्वतीकण्ठाभरणेन श्रीभोजेनाभिदधे। - प्र. चि., पृ. 32 तथा कोदण्डकाव्य, 534
73, डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, डी० 13267.
74. शृं० क०, पृ० 60
75. कुमारसम्भव, 1/32.
76. शृं० क०, पृ० 60.
77. कुमारसम्भव, 3/32.
78. उदाहरणार्थ, — चित्रार्भितारम्भ इवावतस्थे। रघुवंश, 2/31 तथा कुमारसम्भव, 3/42.
79. शाङ्र्गधरपद्धति, पिटर्सन द्वारा सम्पादित, श्लोक 611.
80. मनुस्मृति, 2/215., चौखम्बा, वाराणसी, 1952 ई०
81. वल्लभदेव, सुभाषितावली, श्लोक 29.
82, नाइलगच्छिय, जम्बूचरिय.
83. शतपथ-ब्राह्मण, नवनीत (हिन्दी डाइजेस्ट) दिसम्बर 1970 पृ० 72
341, ताडदेव, बम्बई - 34.
84. चाणक्यनीति, 15/4
85. चा० रा०, 7/29
86. चा० रा०, 7/23-24
87. शाङ्र्गधरपद्धति, श्लोक 54 तथा चाणक्यनीति, 6/5
88. संवत्सरे पञ्चविंशे पौषशुक्लादिवासरे।
श्रीमतां भूतिरक्षायै रचितोयं स्मितोत्सवः॥
— क्षेमेन्द्र, समयमातृका, अन्तिम श्लोक.
89. क्षेमेन्द्र समयमातृका, 8/22.
90. भवदीयनगर्यां भवत्कारिताश्चतुरुत्तरं शतं प्रासादाः, एतावन्त एव गीतप्रबन्धा भवदीयाः

एतावन्ति च विरुदानि । प्र० चि०, पृ० 50

91. चतुरशीतिविरुदप्रकाशितस्वकृतग्रन्थसमाज. श्रीभोजराजः । – शृं० प्र०, भाग 2, भूमिका.

92. चतुर्भिरधिकाशीतिः प्रासादानामिह स्थिता ॥
चतुष्पथानि तत्संख्यानि च प्रत्येकमस्ति च ।
– प्रभाचन्द्राचार्य, प्रभावकचरित, 18/133-34

93. चतुरशीतिचतुष्पथसुरसदनप्रधाने धारापुरी .... । - परमार इन्स्क्रिप्शन्स्, पृ० 46.

94. स चतुरशीतेः सामन्तानां .... आधिपत्यमकरोत् । - शृं० क०, पृ० 66

95. प्र० चि०, पृ० 66.

96. श्रीसरस्वतीकण्ठाभरणेन श्रीभोजेनाभिदधे । - प्र० चि०, पृ० 32

97. नरेश्वरः सरस्वतीकण्ठाभरणप्रासादे व्रजन् । - प्र० चि०, पृ० 39

98. मालवीयैरुज्जयिनीं गतैरस्माभिः सरस्वतीकण्ठाभरणप्रासादगर्भगृहे .... ।
- राजशेखरसूरि, प्रवन्धकोश, पृ० 59.

99. प्र० चि०, श्लोक 139.

100. तुह इयपाया रायमत्तंड । - परमार इन्स्क्रिप्शन्स् , पृ० 77, छन्द 534.

101. भोजकृत ग्रन्थों की सूची के लिए द्रष्टव्य - इसी प्रबन्ध का नवम उच्छ्वास ।

102. विशेप द्रष्टव्य - प्रो० वि० वेंकटाचलम्, - फ्रेश इण्ट्रेस्टिंग लाइट आन द पर्सनल टायटल्स् आफ किंग भोज, हिज लिटरेरी वर्क्स, एण्ड हिज पैलेसेज । — आल इण्डिया ओरिएन्टल कान्फ्रेन्स के 22 वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोधपत्र ।

103. प्र० चि०, श्लोक 237.

104. वही, पृ० 100 तथा प्रबन्धकोश, पृ० 59

105. वही, पृ० 102

106. वही, पृ० 102, श्लोक 168

107. वही, पृ० 103, श्लोक 224.

108. प्र० चि०, पृ० 97, श्लोक 212.

109. भोजप्रबन्ध, पृ० 14.

110. प्र० चि० पृ० 66.

111. वही, पृ० 67.

112. चा० रा०, 8/135.

113. शृं० क०, पृ० 8.

114. वही, पृ० 9.

115. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, डी० 13267, अन्तिम श्लोक तथा पुष्पिका.

116. भोज की एक अल्पज्ञात कृति–चारुचर्या, –– आल इंण्डिया ओरिएन्टल कान्फ्रेन्स के 24 वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोधपत्र.

117. वाचस्पति गैरोला, सं० सा० इ०, प्रथम संस्करण, पृ०
ए० बी० कीथ–सं० सा० इ०, (हिन्दी) द्वितीय संस्करण, पृ० 282.

118. वही, पृ० 293.

119. वही, पृ० 282.

120. कीथ, सं० सा० इ०, (हिन्दी) द्वितीय संस्करण, पृ० 282–283.
121. वे० वरदाचारी, सं० सा० इ० (हिन्दी), पृ० 156.
122. दण्डी, दशकुमारचरित, अष्टमोच्छ्वास, पृ० 194, निर्णयसागर, 1898 ई०
123. काव्यमाला, 4, पृ० 140
124. वही, 3, पृ० 32
125. शुक्ल यजुर्वेद, माध्यन्दिनसंहिता, 36/24
126. कुमारसम्भव, 5/33

पंचम उच्छ्वास

शृङ्गारमंजरीकथा

कथा-संक्षेप—

एक बार जब वसन्त का अवसान तथा ग्रीष्म का प्रारम्भ हो रहा था, प्रमदवन के मध्य धारागृह की चन्द्रमणि से निर्मित मध्य भूमि पर विराजे कतिपय आप्त विद्वानों तथा स्नेहियों एवं अधीनस्थ राजाओं ने भोजदेव से प्रार्थना की कि उनकी प्रीति तथा व्युत्पत्ति के लिए वह किसी अपूर्व कथा को सरजे तथा सुनावे। राजा ने आपत्ति प्रस्तुत की कि कथा के प्रारम्भ में नगर आदि के वर्णन से उसकी सुन्दरता बढ़ जाती है। इस धारा नगरी के अतिरिक्त अन्य कोई विलक्षण नगरी न होने से पहले इसी का वर्णन करना होगा। और इसका अधिष्ठाता होने से मेरा अपना भी वर्णन करना होगा, जो हम जैसे लोगों के आचार के अनुकूल नहीं है। यदि वस्तुतः गुण हों तो उन्हें प्रकट करने में कोई दोष नहीं है। वाल्मीकि, पराशर, व्यास आदि मुनियों ने तथा गुणाढ्य, भास, भवभूति, बाण आदि कवियों ने भी अपने गुणों का वर्णन स्वयं किया है। दोष तब होता है जब असत्य, जो वस्तुतः न हों ऐसे गुणों को भी व्यक्त कर दिया जाय। नयी कथा सुनने को व्यग्र अपने साथियों के इस स्पष्टीकरण पर भोज कहना प्रारम्भ करता है।

अमृत-रस की धारा के समान धारा नगरी अपने नूतन तथा विचित्र विधान के कारण सारे पुराने पत्तनों का उपहास करती है। बहुमूल्य रत्नों, मणियों तथा धातुओं से उसके भवनों को सजाया गया है। वहाँ के ऊँचे भवनों में संगीत की कर्णमधुर ध्वनि सुनी जा सकती है, तो हवन-धूप की सुगन्ध, इतिहास, पुराण, श्रुति, स्मृति आदि की ध्वनि का सतत श्रवण भी वहाँ सम्भव है। समुन्नत श्वेत प्राकार, गहन परिखा, घाट तथा कमलों से आकर्षक तालाब, एवं अनुपम उद्यानों से वह सुरक्षित तथा शोभित पत्तन—पथिकों के आकर्षण का केन्द्र बन गया।

यहाँ के स्वामी, महाराजाधिराज भोजदेव का परिचय यन्त्रपुत्रक देता है। तथा आदर्श पुरुष के सारे गुणों से उसे सम्पन्न बताता है। उसे धर्म, सत्य, कला, क्षत्राचार, विविध विद्या, नीति, शौर्य, विलास, करुणा, विदग्धता, आदि गुणों में अप्रतिम बताया जाता है।

पुनः भोज कथा की नायिका—शृंगारमंजरी का सौन्दर्यवर्णन करता है, जो इसी धारा की गणिका थी एवं जिसका सौन्दर्य अनुपम था। उसके नख-शिख का विशद वर्णन कर उसकी वृद्धा माता विषमशीला की कुरूपता तथा कुटिलता एवं विदग्धता को व्यक्त किया जाता है।

एक बार माता विषमशीला ने शृंगारमंजरी को वेशोपदेश देते हुए बताया कि पुरुष विविध चित्तवृत्ति के होते हैं। उनकी चित्तवृत्ति को ठीक तरह से समझकर तदनुरूप उनसे व्यवहार करना चाहिए। राग करना नहीं चाहिए, परन्तु राग प्रकट करना चाहिए। यह राग बारह प्रकार का होता है—नीली, रीति, अक्षीव, मंजिष्ठा, कषाय, सकल, कुसुम्भ, लाक्षा, कर्दम, हरिद्रा, रोचना

तथा काम्पिल्य राग। इन्हें क्रमशः चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) नीली, रीति, तथा अक्षीब।

(2) मंजिष्ठा, कषाय, तथा सकल।

(3) कुसुम्भ, लाक्षा, तथा कर्दम।

(4) हरिद्रा, रोचना तथा काम्पिल्य।

इनमें नीली, मंजिष्ठा, कुसुम्भ तथा हरिद्रा राग प्रधान हैं। यह वेशिकोपनिषद् का रहस्य है कि व्याघ्र के समान प्रेम से सावधानीपूर्वक सदा स्वयं की रक्षा करना चाहिए। राग के चंगुल में फँसे अनेक लम्पट वेश्याओं के द्वारा छले गये हैं, जिनके विषय मे तुमसे कहती हूँ, सुनो।

रविदत्तकथानिका—

कुण्डिनपुर में महाधनी श्रोत्रिय सोमदत्त ने बुढ़ापे में रविदत्त नामक पुत्र पाया। सोलहवर्ष की अवस्था में वह सर्वशास्त्रज्ञ हो गया। उसे सारी कला से परिचय था। एकान्त में पिता ने शिक्षा दी कि यौवन के मद से स्वयं को बचाना चाहिए। पिता के उपरत होने पर एक बार वसन्त के अवसर पर विटपुत्र इसे मकरध्वज के यात्रा-उत्सव में भाग लेने के लिए मकरकेतु के स्फटिकनिर्मित मन्दिर ले गये, जहां उसने उपमानों का अवमान करने वाली सुन्दरी देखी। सुन्दरी भी इस रमणीय आकृति के युवक की ओर आकृष्ट हो गयी। इस रमणी विनयवती ने अपनी सखी संगमिका के साथ निशा-निमन्त्रण पहुँचाया। रविदत्त का क्रमशः उसके पास आना-जाना बढ़ता गया। वह इतना लिप्त हो गया कि अब उसके बिना उसका रहना असम्भव सा होने लगा उसने लज्जा छोड़कर बहुमूल्य आभरण, वस्त्र तथा सहस्रों स्वर्ण-मुद्राएँ प्रतिदिन देना प्रारम्भ कर दिया। जब विनयवती ने यह समझ लिया कि इसके पास अब कुछ भी नहीं है तब संगमिका के हाथ समाचार पहुँचा दिया कि आज सुवर्णद्वीप से एक परिचित वणिक्पुत्र वसुदत्त अमित धन कमाकर आया है। उसकी इच्छा है कि यदि विनयवती एक रात भी आमन्त्रण दे तो उस पर सर्वस्व न्योछावर कर दूँ। अतः आप दो-तीन दिन ठहरिए। अवधि समाप्त होने के बाद जब वह फिर पहुँचा तो किसी ने उस ओर ध्यान नही दिया। दूसरे दिन भी यही स्थिति देख संगमिका के घर गया, जहाँ उसके प्रति अपरिचित-सा व्यवहार हुआ तथा उसे पागल सज्ञा दी गयी। फिर भी वह दो-तीन दिन उसके आस पास शृंगार-चेष्टाएँ करता हुआ चक्कर लगाता रहा। सेवकों के उपहास पर उसने ध्यान नहीं दिया। उसने उसके दर्शन से ही जीवन को सफल माना और इसी प्रकार सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर दिया।

अतः जिस प्रकार नीलवर्ण के वसन्त से कितने ही प्रयास करने पर भी नील वर्ण विलग नहीं होता, उसी प्रकार नीलीराग म रजित पुरुष भी अपनी उस राग की गहरायी को नहीं छोड़ पाता, चाहे उसके टुकड़े ही क्यों न कर डाले जायँ।

विक्रमसिंहकथानिका—

शृंगारमंजरी के मंजिष्ठाराग के विषय मे पूछे जाने पर पुनः उसकी माता बोली—

राजा प्रतापमुकुट के शासनकाल में ताम्रलिप्ति मे राजकुमार विक्रमसिंह रहता था जो धनी, त्यागी, उदात्त, वीर एवं विलासरसिक था। वेश में भ्रमण करते हुए एक बार उसने एकदंष्ट्रा नामक कुट्टिनी की पुत्री मालतिका को देखा और आकर्षित होकर अपने अनुचर प्रियंवदक को उसके पास भेजा, जिसने राजकुमार की ओर से प्रणय-याचना की। मालतिका ने कहा कि वह भी उसके प्रथमदर्शन-काल से कामपीड़ित है परन्तु वणिक्पुत्र वसुदत्त के घर जाने की बात मैंने

स्वीकार कर रखी है। वचन का उल्लघन लज्जास्पद तथा अनुचित होता है। कुछ ही दिनों में ऐसा प्रयास करूंगी, जिससे संगम हो सके। अवधि समाप्तप्राय है। प्रियंवदक ने राजकुमार से यह बात जा सुनायी। वर्षाकाल उपस्थित होने पर वह व्यग्र हो उठा। वर्षा के पश्चात् मालतिका ने अपनी दूती मधुकरिका के साथ राजकुमार के पास आमन्त्रण भेजा। राजकुमार ने मालतिका के साथ कई रातें व्यतीत कीं। क्रमशः मालतिका उससे विमुख हो गयी। उसने राजकुमार को उसकी दी हुई अंगूठी लौटा दी। राजकुमार ने भी उसे स्वच्छन्द मानकर उसके घर जाना तथा उसे उपहार देना बन्द कर दिया। अनुराग भी कम होने लगा परन्तु वियोग की छाया उसके साथ रही। धीरे-धीरे वह भी न्यून होती गयी। अतः मंजिष्ठराग में मानव क्रमशः कान्तिरहित होता जाता है। जिस प्रकार मंजीठा वसन घुलता है, कान्तिरहित होता जाता है।

माधवकथानिका :—

कुसुम्भराग के विषय में शृंगारमंजरी की जिज्ञासा होने पर उसकी माता ने कहा—

विदिशा नगरी में भुजंगवागुरा नाम की कुट्टिनी की पुत्री कुवलयावली थी। सिंहल द्वीप से एक स्वाव्यायी नायक माधव विपुल धन अर्जित कर उस नगरी में आया। कुवलयावली की ख्याति सुनकर दाम के बदले उसके साथ एक रात व्यतीत की। यह क्रम क्रमशः बढ़ता गया। एक बार उसने द्यूत का आयोजन किया तथा माधव से धन लगवाना प्रारम्भ किया। बहुत दिनों तक इसी प्रकार धन लगाने से माधव का सारा धन चूक गया। माधव ने सोचा कि यह निर्धन समझकर मुझे निकाल देगी। इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे छायानाश (अथवा प्रतिष्ठा का क्षय) न हो। उसके इस विचार को प्रोत्साहन देने के लिए वर्षा बीती और शरत् का अवतार हुआ। यात्रा के लिए समुचित समय जान धनार्जन के लिए मलय देश की ओर जाने की इच्छा से माधव ने कुट्टिनी से कहा—हमारा यही धर्म है कि विपुल धन का अर्जन किया जाय तथा उसे भोगा जाय। इसीलिए मलय देश की ओर जाता हूँ। यह सुन कुवलयावली रोने लगी और बोली—तुम्हारे बिना मैं क्षणभर भी नहीं रह सकती। माधव ने कहा—भयंकर जंगल में तुम्हें ले जाना ठीक नहीं। कुछ ही दिनों में लौट आऊँगा। और कुवयावली के बार-बार रोकने पर भी माधव रुका नहीं। जाते समय उसने बहुमूल्य उत्तरीय भेंट किया। कुछ दूर तक माँ-बेटी उसे पहुँचाने गयीं। कुछ दूर जाकर कुट्टिनी ने कहा—आपके बिना यह कैसे रहेगी? कुछ यादगार तो देते जाइए। माधव ने कहा कि उसके पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है। कुट्टिनी ने उससे एक मात्र पहना परिधान ही माँग लिया, जिन्हें हृदय से लगाकर किसी तरह वह दिन बिता लेगी। माधव ने कहा—बीच मार्ग में यह वसन देते हुए मुझे लाज आती है, सो पथ से हटकर देता हूँ। कुछ दूर निर्जन स्थान पर कुट्टिनी को धरती पर गिरा कर इधर-उधर लुढ़काकर—"माँ-माँ- दौड़ो- दौड़ो।" पुकारती हुई के जल्दी से कान-नाक काट, "वस्त्र शाश्वत अभिज्ञान नहीं होते, अतः ऐसी निशानी दे रहा हूँ जिससे तुम्हारी स्मृति मुझे कभी त्याग न सके।" कह कर वह चला गया।

इस प्रकार कुसुम्भराग में विराग होने पर अनर्थ हो जाता है। इस अवस्था में पीड़ा न देते हुए राग को बनाये रखना चाहिए। जिस प्रकार कुसुम्भ वर्ण का वसन गर्मी तथा प्रक्षालन नहीं सह पाता, उसी प्रकार कुसुम्भ राग भी। शृंगारमंजरी ने कहा—माँ। मेरा कुतूहल बढ़ रहा है, सो सारी बातें बता दो। विषमशीला फिर बोली—

सूरधर्मकथानिका :—

बेटी ! अपनी प्रतिभा से वित्तज्ञान तथा हरिद्राराग से उसे हथियाने का उपाय सुनो —

गंगा के तट पर हस्तिग्राम नामक ब्राह्मणों का अग्रहार है। वहाँ पितृ–पितामह के काल से ही दरिद्र सूरवर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। पिता की मृत्यु पर वह युवक हुआ। तब वह अपने नगर तथा अन्यत्र के लोगों का धन देखकर अत्यन्त दुःखी हो सोचता—किस उपाय से मेरे पास भी इतना धन हो जाय ? निश्चय हुआ कि अर्थ से अर्थ बढ़ता है और वह मेरे पास नहीं है। सो राजसेवा करूँ, पर उसका उपाय नहीं जानता। तब क्या करूँ ? भगवान् रत्नाकर की ही आराधना करूँ। यह निश्चय कर भिक्षा माँगता हुआ सागर-तट जा पहुँचा। चमड़े का उरुक (जाँघिया) पहनकर हाथ में डंडा लिये प्रातः जल्दी उठकर वह भगवान् पाथोनिधि को पुष्पांजलि अर्पित कर दण्डवत् करता तथा किनारे-किनारे चल देता। सारा दिन इसी प्रकार व्यतीत कर सन्ध्या पुनः सागर को प्रणाम कर भिक्षावृत्ति से निर्वाह करते हुए अनेक वर्ष बिता दिये।

एक बार कृपा कर सागर ने वटुवेष धारण कर उससे इस तरह रहने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने उसे टाल दिया। पर सागर के आग्रह करने पर उसने अभीष्ट बता दिया। वटु ने अपना रहस्य बताकर उसे एक अमूल्य महारत्न दिया। ब्राह्मण कृतकृत्य हो अपने घर की ओर लौट चला। रत्न को अपनी जंघा चीरकर उसमें रख, घाव को भर दिया। उन्मत्त वेष में 'अव्वा जाणइ' (माँ जाने) शब्दों का ही उच्चारण करता वह उज्जयिनी जा पहुँचा, जहाँ विक्रमादित्य का राज्य था। वहीं देवदत्ता नाम की वैभव सम्पन्न दारिका थी। जो सदा अभिगम्य तथा महाधनी के अन्वेषण में देवयात्रा किया करती थी। इस उन्मत्त की आकृति देखकर उसने सोचा कि यह धूर्त है, इसके पास अपूर्व रत्न होना चाहिए। परन्तु वह 'अव्वा जाणइ' के अतिरिक्त कुछ नहीं बोलता था। वह उसे अपने साथ ले गयी तथा उसका अत्यन्त सत्कार किया। उसके साथ रतिसुख का भी अनुभव किया। इसी प्रकार छः माह बीतने पर भी वह भूलकर भी अन्य कोई शब्द नहीं बोला। उसने गणिका के चंगुल से निकलने के लिए स्वदेश जाने की संकेत से आज्ञा चाही। देवदत्त ने उसे रोकना चाहा, पर वह रुका नहीं। उसने अपनी पटुता व्यर्थ पायी। परन्तु दो सेविकाओं को कुछ सीख देकर भेजा, जो विभिन्न दिशाओं से आकर उसके साथ चलती हुई बात करने लगीं। पहली के पूछने पर दूसरी ने बताया कि उज्जयिनी में देवदत्ता किसी पागल के चक्कर में फँस गयी थी, जो उसे छोड़कर चला गया। वियोग में उसने तत्काल प्राण त्याग दिये। जिसकी चिता की तैयारियाँ भी हो रही हैं। सूरवर्मा ने चकित होकर पूछा - तुम दोनों क्या कह रही हो ? विवरण सुनने पर वह लौटा तो मकरदंष्ट्रा ने उसे कोसा कि उनका कुटुम्ब अब किसके आश्रित रहेगा। उसने तत्काल अपनी जंघा चीर वह रत्न देकर उन्हें धीरज बँधाया। माँ के आवाज देने पर अंगड़ाई लेती हुई देवदत्ता उठ बैठी। माँ से गले लगी। जामाता को भी स्नान करवाकर उसका दुगुना सत्कार किया। दो-तीन दिन बाद आधी रात प्रेम-गोष्ठी में पूर्व संस्कारवश उसके 'अव्वा जानाति' कहने पर देवदत्ता ने कहा—अरे तेरी अव्वा जानती है या मैं ? ब्राह्मण ने कहा—तुम्हीं जानती हो। 'यदि मैं जानती तो निकल, निकल'। कहती देवदत्ता ने धक्का देकर उसे निकाल दिया। निकलते हुए उसके सम्बल माँगने पर दो सुवर्णपल देकर उसे भगा दिया।

सो अपने वित्तक्षय की परवाह न करते हुए हरिद्राराग से देवदत्ता ने सब कुछ लेकर ब्राह्मण को निकाल दिया। अतः हरिद्राराग में कठोरता का व्यवहार न करते हुए, उपायों से

छलना चाहिए। जैसे सूर्यताप से हरिद्राराग क्षीण होता जाता है तथैव तर्जन आदि से पुरुष में राग कम हो जाता है इसलिए इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

देवदत्ताकथानिका :—

बेटी ! दूसरों का आशय समझ, घुलमिलकर उसका रंजन करना चाहिए—

उज्जैन के राजा विक्रमादित्य की गणिका देवदत्ता थी। ज्योत्स्ना का आनन्द लेते एक रात विक्रमादित्य ने देवदत्ता से पूछा कि गणिकाएँ पराया धन सफलता से किस प्रकार हथिया लेती हैं। गणिका ने पहिले तो आनाकानी की परन्तु फिर कहा कि एक दिन पहले हो जब वह मुख्य द्वार से जा रही थी तभी एक विचित्र अश्व तथा आकर्षक सवार देखा। सवार के संकेत पर वह अश्व पर बैठ गयी और अश्व आकाश में उड़ चला। लम्बी यात्रा के पश्चात् घोड़ा एक स्थान पर उतरा, जहाँ एक सुन्दरी रो रही थी, जो विरहिणी थी। देवदत्ता को कहा गया कि वह उसके पति से मिलाने के लिए दूतीकर्म करे, उसे इसीलिए लाया गया है। देवदत्ता ने क्रोधित होकर कहा कि क्या मैं स्त्री नहीं जो तुम्हारी दासी या दूती बनूँ। पुरुष ने यह सुन उसे बेंत से पीटा। वेदना से आकुलित होकर देवदत्ता ने कहा कि त्रिभुवन के विजयी विक्रमादित्य के चरण ही मेरे शरण हैं। तब देवदत्ता ने देखा कि वे दोनों भाग गये हैं तथा उसने स्वयं को प्रासादभूमि पर पाया। राजा ने बार-बार इसकी सचाई पूछी और देवदत्ता ने स्वीकृति दी। और राजा ने महामात्र को आदेश दिया कि प्रधान हाथी को छोड़ द्वितीय हाथी देवदत्ता को दिया जाय तथा चार करोड़ स्वर्णमुद्राएँ, अमूल्य आभरण तथा वस्त्र दिये जायें। देवदत्ता ने कहा—वह यह सब कुछ बाद में लेगी। अभी तो वह प्रकार बताया जिससे हमारी जाति पराया धन लेती है। विक्रमादित्य यह सुन प्रसन्न हुआ और पुरस्कार की राशि को दुगुना कर दिया।

इसलिए बेटी ! यथाप्रवृत्ति पुरुष से आचरण करने पर निश्चय ही अर्थसिद्धि होती है। अपना प्रभाव बताने को वह महानुभाव सब कुछ दे देता है।

लावण्यसुन्दरी कथानिका :—

पुत्रि ! साहसी तथा शक्तिशाली को भी वश में कर आत्मत्याग से भी स्वार्थसिद्धि असम्भव नहीं।

अहिच्छत्र में वज्रमुकुट नामक राजा ने एक बार घूमते हुए वहाँ के धनी तेली घुड़ की रूपवती पत्नी लावण्यसुन्दरी को देख उसे पाने को ललचाया। तेल में मिलावट का अभियोग लगाकर घुड को फँसा दिया। लाखों रुपये देने पर भी उसे नहीं छोड़ा तो लावण्यसुन्दरी ताड़ गयी और तेली को समझाकर राजा से पुछवाया कि वह क्या दण्ड (जुर्माना) चाहता है ? राजा ने 100 हाथी का प्रस्ताव रखा और तेली ने छः माह की अवधि चाही। लावण्यवती अपने साथ 50 घोड़े, अलंकार, परिजन लेकर उज्जैन पहुँच, क्षिप्रातट पर जा बसी। तथा इस बात का प्रचार करवा दिया। कई सामन्त आदि उसके द्वार पर आये पर किसी को ग्राहक नहीं बनाया। एक बार विक्रमादित्य आखेट के व्याज से उसके सदन के निकट होकर निकला तथा लौटा भी उधर से ही। लावण्यसुन्दरी ने स्वयं को उसे दिखाया। सन्ध्या हुई, चन्द्रोदय हुआ और राजा ने सुखरक के साथ लावण्यसुन्दरी को बुला, उसे भोगा। मातृगुप्त को राजा ने यह बात प्रातः बतायी और उसने बार-बार कहा—यह छल है, यह वेश्या है। लावण्यसुन्दरी ने यह सुन मातृगुप्त व विक्रम के समक्ष ही शयनकक्ष में जा राजा की छुरी से आत्मघात कर लिया। राजा के पूछने पर मातृगुप्त ने पुनः

कहा—यह भी वैशिक आचार है। राजा उसे देवी आशापुरा के मन्दिर ले गया तथा आत्मघात को उतारू हुआ। देवी ने प्रकट हो लावण्यसुन्दरी को, विक्रम के चाहने पर पुनः जीवित कर दिया। एक सन्ध्या, दन्तवलभिका पर वे दोनों बैठे थे कि उधर एक अनुपम गजराज दिखायी दिया। राजा प्रसन्न था। उसने लावण्यसुन्दरी से कुछ माँगने को कहा। उसने वैसे ही 100 हाथी चाहे, राजा ने सहर्ष दे दिये। और लावण्यवती के कहने पर इस बात का प्रचार भी करवा दिया। तब अंजलि बना लावण्यसुन्दरी ने कहा—अब मुझे अवकाश दीजिये। मैं वेश्या हूँ। राजा के पूछने पर उसने अपनी सारी पूर्वकथा सुनायी। और उसने अपना शेष जीवन घुड के साथ सानन्द व्यतीत किया।

कुट्टनीवंचनकथानिका :—

धूर्तों से अपनी विशेषतः रक्षा करना चाहिए। विदिशा के किसी ब्राह्मण ने वृद्धावस्था में दो पुत्र पाये। युवक होने पर वे अर्थोपार्जन के लिये विदेश यात्रा पर रवाना हुए। चलते हुए ग्रीष्मकाल में विन्ध्य आया जहाँ उन्हें बिना पाथेय के सात रातें व्यतीत करनी पड़ी। भूख-प्यास से पीड़ित होकर किसी प्रकार के एक तड़ाग के तट पर पहुँचे जहाँ वट वृक्ष था। रात में हिंस्क जीवों से रक्षार्थ एक भाई जागता रहा। तीसरे प्रहर थका-हारा सोमदत्त चहलकदमी करने लगा और इसी काल कपोतमिथुन का वार्तालाप भी सुना। कपोतिका कह रही थी—हमारे आश्रय में आये भूखे ब्राह्मणकुमार यदि कष्ट पाते रहे तो हमारे नश्वर जीवन से क्या लाभ? कपोत ने अपनी प्रिया को धन्यवाद देकर रहस्य प्रकट किया कि जो मुझे खा जायेगा वह राजा होगा तथा जो तेरा भक्षण करेगा वह प्रतिदिन पाँच सौ स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त करेगा। हमारे जन्मकाल में उत्तंकमुनि ने यही सूचना दी थी। यह कह वह दोनों वहाँ जलती आग में कूद पड़े। सोमदत्त ने उनकी बात सुनकर सविस्मय उन्हें आग से निकाला। बड़े भाई को जगाकर उसे कपोत खिलाया तथा स्वयं कपोतिका का भक्षण किया। प्रातः जगने पर सोमदत्त ने अपने पास पाँच सौ स्वर्णमुद्राएँ पड़ी पायीं और विश्वस्त होकर फिर आगे बढ़े। जल की खोज में दोनों भटक गये। बडा मगध पहुँचा तथा छोटा काँची, जहाँ मकरदंष्ट्रा कुट्टनी तथा उसकी बेटी कर्पूरिका रहती थीं। उसी के साथ रतिसुख पाता हुआ वह उसे नित्य असीम स्वर्णमुद्राएँ देता रहा। मकरदंष्ट्रा के निर्देश पर कर्पूरिका ने रहस्य पाकर कुट्टनी को बता दिया। भोजन में वमनद्रव्य देकर सोमदत्त के वमन को वह निगल गयी। उसे स्वर्णागम होने लगा। सोमदत्त को निकाल दिया। उसने पथ में सुना कि मगध म विदिशा का विष्णुदत्त राजा हो गया है। वह उस अपने भाई के पास पहुँच विशेष धन लेकर पुनः कांची आया और कर्पूरिका की पड़ौसिन के साथ रहने लगा। कुट्टनी पुनः पहुँची और धन का रहस्य पूछा। उसने बताया कि श्रीपर्वत पर उसने प्राणदान के अनुष्ठान से यह सिद्धि प्राप्त की है। स्वयं कर्पूरिका ने एक बार उसके साथ जाकर पीपल के नीचे उस वैभव को देखा। लोभ में आकर उसने कहा—मैं तुम्हारी प्रिया हूँ। यदि तुम्हारा मुझ पर प्रेम है तो इस विद्या का कपोतिका से विनिमय कर लें। सोमदत्त ने कुछ देर नकारते हुए इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। बदले में कर्पूरिका ने अपना सम्पूर्ण पूर्वार्जित धन भी सोमदत्त को दे दिया। वमनपदार्थ देकर कपोतिका उगलवाकर धो, सोमदत्त उसे पुनः निगल गया। सोमदत्त ने भी तीन बार उसके हाथ पर पानी डाल कहा—'श्रीपर्वत पर जो मैंने सिद्धि पायी वह सब ही तुम्हारी हो जाय।' धन अपने घर की ओर भेज दिया तथा राजपरिजनों को पाँच दिन तक संकेत-ग्रहण करवाकर अपने भाई के पास लौट आया। दूसरे दिन कुट्टनी के साथ जाकर कर्पूरिका ने मुर्गे की सी बाँग दी और

राजपरिवार ने उनकी सेवा की। पाँच दिन पूरे होने पर छठे दिन मुर्गे की बाँग सुनकर भी कोई नहीं आया। बार-बार वैसा करने का भी कोई परिणाम नहीं हुआ। तब कुट्टनी ने कहा—कपोतिका के गृहप्रवेश से यही होता है। और दासी ने कहा—एक के लोभ में दोनों गये। सभी अपना सा मुँह लिये लौट गयीं। सोमदत्त भी अपने भाई के पास, मगध लौट गया।

सो बेटी! धूर्तों को परेशान नहीं करना चाहिए। ऐसा करने पर वे संचित धन भी हड़प जाते हैं।

स्त्र्यनुरागकथानिका :—

यह जो कहा गया कि व्याघ्र के समान (भयंकर) प्रेम से स्वयं की सतत रक्षा करनी चाहिए, मैं उसका भी प्रतिपादन करती हूँ, सुनो।

पुण्ड्रवर्धन नामक समृद्ध नगर में एक धनी वणिक् रहता था जिसे अत्यन्त अर्चन-पूजा के पश्चात् रत्नदत्त नामक पुत्र बहुत काल बाद हुआ। इकलौता होने से पिता ने वसुभूति उपाध्याय को सौंप, उसे सर्वविद्याविशारद करवा दिया। निष्क्रिय हो पिता का धन व्यय करना लज्जास्पद होने से वह वसुदत्त के द्वारा बहुत समझाने पर भी केवल एक सहस्र स्वर्णमुद्राएँ लेकर अपने अनुचर सुबन्धु के साथ चल पड़ा। सुबन्धु के पूछने पर उसने बताया कि जो कला, विद्या तथा विज्ञान मैंने सीखे हैं, वे ही मेरे पाथेय हैं। द्यूत में कितवों का सारा धन मेरा है और नगरों में वेश्याओं का धन भी मेरा है, उनसे ही मेरा निर्वाह हो जाएगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है कि जो भी वेश्या मुझे देखेगी अवश्य बुलावेगी और छोड़ेगी नहीं। यदि ऐसा नहीं हुआ तो मैं तत्काल प्राण त्याग दूँगा।

कुछ दिन पश्चात् वह विदिशा पहुँचा जहाँ भाइलस्वामिपुर में देवालय की नर्तनपाली पूर्ण करने लावण्यसुन्दरी आयी और उसी काल देवदर्शन के लिए वह भी पहुँचा। वह देखते ही मूर्च्छित हो गयी। घर पहुँच उसने अपनी सखी बकुलिका को रत्नदत्त के अन्वेषण के लिए भेजा जिसे वह सूने देवालय से लिवा लायी। उसके साथ रात व्यतीत कर प्रातः चादर में पाँच सौ स्वर्णमुद्राएँ वहीं रख वह द्यूतशाला जाकर धनिकों के साथ पाँसे खेलने लगा। उसे ढूंढती हुई बकुलिका पुनः पहुँची तब तक रत्नदत्त पचास हजार द्रम्म (दाम) जीत चुका था जिसमें से उसने दस हजार वहीं छोड़े, चार सहस्र बकुलिका को तथा सोलह सहस्र लावण्यसुन्दरी को दिये। पुनः उसके चलने की बात सुनकर लावण्यसुन्दरी ने कहा—मेरा जितना धन है, वह सब आपका है। उसके समाप्त होने पर जाइयेगा। पर उसने कहा—आप लोगों के अंग ही भोगे जाते हैं, अर्थ नहीं। वह तो दिया जाता है। और वह चल दिया। वेश्या व उसकी माता भी साथ चल दी। कुछ दिनों पश्चात् पुण्यपथक पहुँच उद्यान में विश्राम कर रहे थे कि कुट्टनी ने वहाँ के राजा से मिल उसे उसकी कन्या को ठगने के आरोप में फँसवाना चाहा परन्तु राजा ने वैसा न कर रत्नदत्त से वहीं रहने की प्रार्थना की। परन्तु रत्नदत्त उनकी बात अस्वीकार कर अपने अभीष्ट, मान्यखेट पहुँचा, जहाँ वह वेशयुवती चित्रलेखा के घर ठहरा व दूसरे दिन जोत्रिका की खोज में समीपवर्ती गाँव गया।

इधर लावण्यसुन्दरी राजा की दृष्टि में आयी जिसने उसे बुला भेजा। लावण्यसुन्दरी ने इस शर्त पर चार दिन तक उसके साथ रहना स्वीकार किया कि वह जब चाहेगी राजा के पास से चली जाएगी। चौथे दिन, जब वह राजभवन में देशी नृत्य कर रही थी कि उसे अपनी अनुचरी दिखायी दी। बीच में ही नाच रोककर राजा से अनुमति लेकर वह चली गयी। राजा ने भी कुतूहल-वश उसके घर के पीछे की जाली से देखा कि जैसे ही रत्नदत्त आया, लावण्यसुन्दरी जलपात्र ले

चरणप्रक्षालन के लिये पहुँची। रत्नदत्त ने उसके नेपथ्य को देख सुबन्धु से कहा कि घर की बात पर पानी फिर गया। तथा लावण्यसुन्दरी से पैर धोने का यह कहकर निषेध कर दिया कि तुम तो मेरी माँ होती हो। इसलिए कि तुम मेरे स्वामी की पत्नी हो। राजा उस विवेकपूर्ण वार्ता से प्रसन्न हो जब अन्दर पहुँचा तब रत्नदत्त ने अवसरानुकूल कठोर शब्दों में उससे लौट जाने का आग्रह किया तथा यह भी स्पष्ट कर दिया कि वह उन्हीं से मिलने आया है। राजा ने उसके पौरुष से सन्तुष्ट हो राजकुल जाकर उसे लेने को हथिनी व प्रतिहार भेजा एवं उसका सम्मान किया। 'तुम क्या जानते हो ?' पूछने पर रत्नदत्त ने बताया कि वह सारी विद्याओं में पारंगत है। कौतुक देखना हो तो देखें—चार लोग एक साथ भिन्न-भिन्न कथा कहें, मैं सारी से खेलता हूँ। यदि दाय भूलूं अथवा पान लेना भूल जाऊं और चारों कथाओं में किसी प्रकार का विस्मरण हो जाय तो समझ लीजिये कि मैं कुछ भी नहीं जानता। और उसने वैसा ही करना प्रारम्भ कर दिया। और इस प्रकार वह राजा की कृपा प्राप्त कर सुख से दिन व्यतीत करने लगा।

सो बेटी ! इस प्रकार पुरुषों पर अत्यन्त अनुरक्त स्त्रियाँ अपना तथा अपने धन का समूल नाश कर लेती हैं।

उभयानुरागकथानिका :—

इस प्रकार एक का अनुराग ज्ञात हुआ अब उभयानुराग का स्वरूप बताती हूँ।

उरगपुर में समरसिंह की राजनर्तकी अशोकवती पर सारे सामन्त आदि आकर्षित थे परन्तु वह अपनी आय छड्डुलक को देती थी। वह छुरिकानृत्य मे अप्रतिम थी। एक बार शिशिर काल में राजा ने उसे इस नृत्य के लिए सन्देश दिया परन्तु छड्डुलक वहाँ न होने से वह नृत्यसौष्ठव से च्युत होने लगी। नृत्योपाध्याय ने राजा को वस्तुस्थिति बतायी। राजा ने उसे अपने राजप्रासाद में इस निर्लज्जता के लिए डाँटा भी सही। वहाँ से अशोकवती सीधी छड्डुलक के सदन की ओर गयी।

राजा इस प्रेमबन्धन को तोड़ना चाहता था। उसने सुन्दरक को बुलाया जिसके आकर्षण से लोभित हो अशोकवती ने सहवास किया। सुन्दरक ने पत्तनिका मे प्रतिबिम्ब लिए, जिन्हें दूसरे दिन राजा ने छड्डुलक को बताये। छड्डुलक को विश्वास नहीं हुआ परन्तु उसने परीक्षा लेने के लिए तिक्कपैक को पाशुपत के अनुयायी के वेष में उसके घर भेजा जिसने जाकर बताया कि कच्छ नरेश के विरुद्ध युद्ध करते छड्डुलक मारा गया जिसके वियोग मे वह साधु हो गया।

यह सुनते ही अशोकवती ने प्राण त्याग दिये। राजा व सुन्दरक के पास जब यह समाचार पहुँचा तब सुन्दरक ने भी स्वयं को पापी समझ चिता में जला दिया। छड्डुलक भी अशोकवती की मृत्यु का समाचार पाकर दुःख से पागल हो गया तथा चिता बनाकर स्वयं को उसमें भस्म कर दिया। यह विवरण पाकर, इन सबकी मृत्यु का कारण स्वयं को ही मानकर राजा आशापुरादेवी के पास जाकर आत्महत्या करने लगा। देवी ने प्रसन्न होकर सबको जीवित कर दिया। राजा ने अशोकवती छड्डुलक को सौंपी तथा सुन्दरक को चार हजार ग्राम दिये।

अतः पुत्री ! पुरुष के अनुराग में अनेक वारवनिताओं ने अपना तथा अपने धन का विनाश कर लिया। सो अपने आचार के अनुकूल बाघ के समान राग से दूर रहना चाहिए।

सर्पकथानिका :—

पुत्री ! अतिपीड़ित पुरुष क्रोधवश सब कुछ कर सकते हैं। सुनो—

कौशम्बी के धनाढ्य श्रुतधर ब्राह्मण का विनयधर पुत्र सारी विद्याओं में पारंगत होकर

जब सोलह वर्ष का हुआ तब वसन्तकाल में अपने मित्रों के साथ भगवान् कालप्रियदेव की यष्ठी-यात्रा देखने पहुँचा जहाँ उसने एक अपूर्व सुन्दरी देखी तथा उनकी दृष्टि में भी यह आया। परस्पर दर्शन से अनुराग परिवर्धित हुआ। उस रमणी के विषय में जानकारी लेने के लिए विदग्धक को नियुक्त किया जिसने उसकी सखी तरलिका से पूछकर विनयधर को सब कुछ बता दिया। और विनयधर अनगवती के साथ रहते हुए उसे प्राण से भी प्रिय लगने लगा। कुट्टनी ने उसे निर्धन देख निकाल दिया परन्तु अनंगवती उससे अपनी सखी के घर मिलने लगी। यह देख कुट्टनी न अनंगवती को भी तर्जना दी।

विनयधर को तत्काल मारा गया एक सर्प दिखायी दिया जिसे लेकर अनंगवती के घर पहुँचा एवं अपने मित्र से कुछ धन दिलवाकर रात रहा। कुट्टनी के सोने पर उसके शरीर पर वह मृत भुजंग फैलाकर उसने नासिका में नख चुभो दिये। कुट्टनी चिल्लाकर जागी तब विनयधर ने पहुँचकर लकड़ी के पांच-छः प्रहार से उस सर्प की ताड़ना की। दासी के दीपक जलाने पर भुजंग देख कुट्टनी ने अंगच्छेद की अनुमति दे दी तथा विनयधर ने ओठ सहित उसकी नासिका काट डाली।

पुत्रि ! पीड़ित होने पर धूर्त वैसा कुछ उपकार कर देते हैं कि कुछ कह पाना कठिन है।

मलयसुन्दरीकथानिका :—

हमारे अभिमत से किसी का भी अपमान नहीं करना चाहिये। अपमानित पुरुष सब कुछ कर सकते हैं—

पंचाल के कान्यकुब्ज नगर के महेन्द्रपाल राजा का महासामन्त प्रतापसिंह था। वह स्वभाव से नर्मशील, कुरूप तथा अतिरोम वाला था। ढोण्ढा कुट्टनी की कन्या मलयसुन्दरी के साथ रहा तथा प्रातः जगने पर देखा कि उसकी प्रेयसी एक बच्चे को लिये बैठी है। पूछने पर उसने अपनी बहिन के पुत्र को अपना ही बताया। सुनते ही व्याघ्र के समान उसने नखों से उसके अंगों तथा बालों को नोच डाला। दासी से सूचना पाकर कुट्टनी ने चिल्लाना प्रारम्भ किया। मलय-सुन्दरी भी स्वयं को चादर से आवृत कर बैठी रही। कुट्टनी ने लुंचित केशो को ले जाकर राजा से निवेदन किया। राजा ने दण्डपाशिक को उसे बंदी बनाने का आदेश दिया। तब प्रतापसिंह ने पहुँचकर बताया कि वही वहाँ पर सोया था। पर उसने अपना अपराध मलयसुन्दरी के समक्ष ही कहना चाहा। जब मलयसुन्दरी अपने अंगो को छिपाये वहाँ पहुँची तब उसने बताया कि वह उसे बहुत चाहता है पर जब उसने वह बच्चा अपना बताया तो उसे असह्य हो गया। राजा ने प्रसन्न होकर उसे पारितोषिक दिया तथा मलयसुन्दरी विडम्बना की पात्री बनी।

पमराककथानिका :—

धूर्तों से वृथा वैर नहीं करना चाहिए। हस्तिनापुर नगर में पमराक नामक राजा रहता था। मकरन्दिका से उसका प्रेम था। परन्तु प्रच्छन्नरूप से परीक्षण करने पर उसका आचरण पाखण्डपूर्ण निकला। राजा उसे भला-बुरा कह स्वदेश चला गया।

अतः पुत्रि ! विदग्ध से पाखण्ड नहीं करना चाहिए। यदि करे तो निभाना चाहिए। अन्यथा उपहास के भाजन बनते हैं।

(अत्यन्त खण्डित होने से कथाशृंखला पूर्णतया अज्ञात है।)

मूलदेवकथानिका :—

और बेटी ! राग की रक्षा करना चाहिए। वह तीन प्रकार का होता है—श्रुति राग, दृष्टिराग तथा सम्भोग से उत्पन्न। इन तीनों को दूर से ही नमस्कार करना चाहिए, क्योंकि इनसे कुलस्त्रियां भी छली गयी हैं दृष्टिराग तो दूर रहा, श्रुतिराग भी सर्प के विष-सा मोह लेता है, जिसका कौतुक-पूर्ण इतिवृत्त सुनो।

अवन्ति में उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के शासन में मूलदेव नामक धूर्त रहता था। स्त्रियों के चरित्र में आशंका होने से उसने विवाह नहीं किया। राजा के पूछने पर उसने स्त्रियों के दुर्गुण बताये। राजा ने कहा कि अधिक शंकालु नहीं होना चाहिए। मूलदेव ने विवाह कर लिया। कुछ काल बाद उसने पाया कि उसकी पत्नी किसी अन्य का साथ कर रही है तथा राजा की पत्नी चेल्लमहादेवी भी महावत के प्रेम में लीन है। एक रात रानी को देर से पहुँचने पर महावत ने उसे दण्डित भी किया। रानी ने किसी प्रकार उसे प्रसन्न कर भोजन करवाया तथा उसके साथ रात व्यतीत की।

दूसरे दिन मूलदेव ने रानी तथा अपनी पत्नी का अपराध राजा के समक्ष सिद्ध किया। राजा ने सबको दण्डित किया। रानी को नाक-कान काटकर कारागृह में बन्द कर दिया।

सो पुत्री ! वेश्या तो चरित्रहीन होती ही हे परन्तु कुलस्त्रियाँ भी दृष्टिराग से आकृष्ट होकर परपुरुषों में इस प्रकार अपना जीवन तथा धन अकारण लगा देती है। फिर स्वतन्त्र वेशवनिताओं का क्या कहना ? मैं इसीलिए कहती हूँ कि तीनों प्रकार के रागों से दूर रहना चाहिए।

इस प्रकार पुत्रि ! जगत् को संतप्त करने वाले सूर्य के समान हमारे कुल पर लोकवंचना कलंक कभी नहीं लगा। इसीलिए तुम्हें वैसा प्रयास करना चाहिए जिससे तुम्हें विट लूट न सकें, धूर्त नचा न सकें, सखियाँ उपहास न कर सकें, नीच बुरा न कह सकें, लम्पट भोग न सकें, पाषण्डी खण्डित न कर सकें, रागी अनुरक्त न कर सकें, कितव धिक्कार न सकें, बल्कि तुम विदग्धों को भी छल सको, श्रीमानों को भोग सको तथा पाषण्डियों को खण्डित कर सको।

भारती राजा भोज के मुख में मानों नृत्य करती है। इस कथा को धारापति (भोज) ने रचा जो प्रकृति-सुभग अलंकारों से अलंकृत है।

सौभाग्य तथा यश देने वाली देवी सरस्वती ने इस शृङ्गारमंजरी को आज पवित्र कर दिया।

विक्रमसंवत्''''———में भोजराज ने शृङ्गारमंजरी रची।

महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीभोजदेव की रची हुई शृङ्गारमंजरीकथा समाप्त हुई।

शृङ्गारमंजरीकथा की कथन-पद्धति :—

वाल्मीकि रामायण के समान ही भोज के चम्पूरामायण की कथा के रचयिता चाहे भोज रहे हों परन्तु मूलतः कथा में वक्ता कुशीलव कुशलव हैं। मूलतः कवि का वचन वहीं तक है जहाँ तक वह इन वक्ताओं को इसका अर्थ प्रस्तुत न कर दे। कालिदास के मेघदूत में भी यही स्थिति है। मेघ को सन्देश देने की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने के पश्चात् वक्ता कवि नहीं, यक्ष बन जाता है। यह मूलतः पौराणिक शैली है, जहाँ वक्ता स्वयं व्यास भूमिका प्रस्तुत करने का ही कार्य करते हैं। तदन्तर सूत अथवा अन्य पात्र के मुख से ही सारी कथाएँ एवं अन्तर्कथाएँ व्यक्त करवायी गयी हैं।

शृंगारमंजरी कथा में भी यही स्थिति है। इस कथा के रचयिता स्वयं भोज केवल भूमिका प्रस्तुत करने का कार्य करते हैं। वह परिस्थिति, जिसमें उन्हें कथा कहने में प्रवृत्त होना पड़ा तथा धारा-वर्णन करने के पश्चात् वे रुक जाते हैं तथा शालीनतावश धारा के अधिष्ठाता के रूप में स्वयं का वर्णन यन्त्रपुत्रक से करवाते हैं। पुनः स्वयं ही कथा की नायिका शृंगारमंजरी तथा उसकी माता विषमशीला का परिचय प्रस्तुत करते हैं। एक बार शृंगारमंजरी की माता उसे वेशजीवन के लिए समुचित शिक्षा देती हुई उसे व्यावहारिक रूप से अपने कर्म में सावधान रहने का उपदेश देती है। सावधानी के प्रसंग में कहे गये राग तथा वैशिकोपनिषद् के रहस्य—व्याघ्रवत् प्रेम से भी सावधानी-पूर्वक अपनी रक्षा करना चाहिए, को सोदाहरण समझाने के लिए वह विविध कथाएँ कहती है। अन्त में पुनः शृंगारमंजरी को सावधान कर चुप हो जाती है। तदनन्तर व्यक्त कथा की प्रशंसा में भोज एक मालिनी, एक शिखरिणी, चार प्राकृत गाथाएँ तथा अन्त में एक अनुष्टुप् प्रस्तुत करता है।

स्पष्ट ही यहाँ भोज ने कथा की भूमिका ही प्रस्तुत करने का कार्य किया है। कथा का मुख्य भाग उसने विषमशीला के मुख से ही व्यक्त करवाया है। द्वितीय तथा तृतीय कथानिका में शृंगारमंजरी के द्वारा आगे की राग-व्यंजक कथा सुनने की आकांक्षा व्यक्त की गयी है। वह द्वितीय कथानिका के प्रारम्भ में कहती है[1]—

अम्ब ! कथितो नीलीरागः। वर्द्धते च मम कौतुकम्। तत् कथ्यतामिदानीं मंजिष्ठारागः इति श्रुत्वा सा कथयितुमारेभे..........।

तृतीय कथानिका के प्रारम्भ में शृंगारमंजरी पुनः कहती है[2]—

अम्ब ! न खलु त्वत्कथाभिः कथाभिर्मे तृप्यति श्रोत्रेन्द्रियम्। अतः कथ्यतां कुसुम्भरागग्रहणोपाय-वृत्तान्त इत्यभिहिते विषमशीला कथयितुमारेभे।

एवं इसी कथानिका के अन्त में शृंगारमंजरी अपनी माता से पुनः कहती है[3]—

अम्ब ! वर्धते मम कुतूहलम्, तदखिलमप्युपक्षिप्तमावेदयतु भवती इत्यभिहिता सा पुनरप्यब्रवीत्।

इसके पश्चात् अन्त तक शृंगारमंजरी कहीं भी कुछ भी नहीं बोलती। वह श्रद्धावान् श्रोता की भाँति अपनी माता की उपदेशभरी कथानिकाएँ सुनती रही।

इन्हीं सन्दर्भों में रचयिता प्रत्यक्ष रूप से कथा को प्रवृत्त करता है—

1. **इत्यभिधाय विरतवचसि विषमशीलायामुपजातकुतूहला शृंगारमंजरी पुनरिदमवोचत्.......... इति श्रुत्वा सा कथयितुमारेभे।**[4]
2. **अथ शृंगारमञ्जर्या..............इत्यभिहिते विषमशीला कथयितुमारेभे।**[5]

   तथा
3. **इत्यभिधाय विरतवचसि विषमशीलायां शृंगारमञ्जरीपुनरप्यवोचत्..........इत्यभिहिता सा पुनरप्यब्रवीत्।**[6]

ये ही शब्द हैं जो भोज ने विषमशीला के द्वारा कही गयी कथानिकाओं के मध्य प्रत्यक्ष रूप से कहे। जिनका मुख्य उद्देश्य, कथा को आगे प्रवृत्त करना है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण कथा में भोज मौन है। वक्ता विषमशीला तथा श्रोता शृंगारमंजरी के मध्य, उपर्युक्त सन्दर्भों के अतिरिक्त कथा का रचयिता भोज कहीं भी प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत नहीं हुआ।

उपर्युक्त सन्दर्भो में भोज का प्रत्यक्ष रूप से कहना अनिवार्य भी हो गया था। परन्तु प्रतीत होता है, प्रत्येक कथा के सन्दर्भ में रचयिता का वक्ता-श्रोता के मध्य आ उपस्थित होना भोज को भी समुचित प्रतीत नहीं हुआ, तथा न नायिका के द्वारा बार-बार जिज्ञासा व्यक्त करवाना ही उचित लगा। यही कारण है कि नीलीराग सुनने के पश्चात् शृंगारमंजरी मंजिष्ठाराग के विषय में जानना चाहती है और उसके पश्चात् कुसुम्भराग भी। परन्तु अन्त में वह कह देती है[7]—

"अम्ब ! वर्धते मम कुतूहलम्। तदखिलमप्युपक्षिप्तमावेदयतु भवती।"

इसके पश्चात् शृंगारमंजरी को जिज्ञासा के शब्द कहने की आवश्यकता नहीं रही और न भोज को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत होने की। इसके पश्चात् अन्त तक विषमशीला ही कथा सुनाती चलती है। न शृंगारमंजरी उसे टोकती है और न रचयिता भोज बीच में प्रस्तुत होता है।

ग्रन्थ का स्वरूप--

ग्रन्थकार के अनुसार शृंगारमंजरी कथा गद्य का कथा-प्रकार है। प्रस्तावना के अंश (जिनमें कथापीठिका, धारानगरीवर्णन, भोजदेववर्णन, कथानायिका शृंगारमंजरीवर्णन, शृंगारमंजरी की माता विषमशीला का वर्णन तथा शृंगारमंजरी को माता की शिक्षा) के अतिरिक्त रह कथानिकाओं से इस कथा-ग्रन्थ का कलेवर निर्मित हुआ है। वर्णन तथा कथानिकाओं के इन विविध आयामों के समवेत रूप, इस सम्पूर्ण इकाई को भोज ने कथाग्रन्थ कहा है। इस तथ्य की पुष्टि उन्हीं के शब्दों से होती है—

1. अस्माकं प्रीत्यै व्युत्पत्तये च कामप्यपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु स्वामी इति विज्ञप्तः स्मितपूर्वमिदमभ्यधात् एवमेतद्, किन्तु कथा हि कीर्त्यमाना नगरादिवर्णनपुरःसरा सौन्दर्यमावहति।[8]
2. ....शृंगारमंजरी शृंगारमञ्जरीशिक्षा समाप्ता।[9]
3. प्रथम से द्वादश कथानिकाओं की पुष्पिकाओं से भी यही ज्ञात होता है—

   यथा—

   शृंगारमञ्जरीकथायां रविदत्तकथानिका प्रथमा।[10]

   और इसी प्रकार अन्य कथानिकाओं की पुष्पिकाएँ भी प्रवृत्त होती हैं।
4. अन्तिम पुष्पिका से भी यही ज्ञात होता है। यथा—

   ....शृंगारमञ्जरीकथा समाप्ता।[11]
5. अन्तिम श्लोकांश से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है[12]—

   कृतेयं भोजराजेन कथा (शृंगारमंजरी)।

6 कथा के अन्त में प्रशस्तिपरक इस खण्डित श्लोकांश से भी यही ज्ञान होता है[13]—

कथामुर्वीनाथः प्रणतः..........।

7. पर्वतवर्णन के प्रसग में भी भोज ने इस तथ्य की ओर निर्देश किया है[14]—

एतत्कथाकारमिव विरा जतपरमारावनीपवंशम्।

कथा का भोजकल्पित यह अपूर्व स्वरूप प्रतीत होता है। कथा की ऐसी काया न इससे पूर्व कभी कल्पित हुई और न इसके बाद। यहाँ तक कि काव्यशास्त्रों में भी कथा के इस स्वरूप का दर्शन नहीं होता, स्वयं भोज के काव्यशास्त्रों में भी नहीं। भोज के शृंगारप्रकाश में 'कथा' का स्वरूप इस प्रकार प्राप्त होता है--

या अनियमित गतिभाषादिव्यादिव्योभयेतिवृत्तवती ।
कादम्बरीव लीलावतीव वा सा कथा कथिता ॥[15]

यहाँ कथा में कथानिका के उपयोग का निर्देश नहीं है। वहाँ कथा, परिकथा, खण्डकथा, उपकथा तथा बृहत्कथा का विवरण प्राप्त होता है परन्तु कथानिका का नहीं।[16] कथानिका का उल्लेख केवल अग्निपुराण में हुआ है[17]—

आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा ।
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पञ्चधा ॥

यहाँ कथानिका को एक स्वतन्त्र गद्य रचना के रूप में स्वीकार किया गया है। भोज की शृंगार-मंजरीकथा में, एक ही कृति में तेरह कथानिकाओं का भी उपयोग किया गया है। इन सारी कथानिकाओं ने शृंगारमंजरीकथा के कलेवरनिर्माण में अपूर्व सहयोग दिया है। इस ग्रन्थ में इन कथानिकाओं का असामान्य उपयोग किया गया है। इस ग्रन्थ में व्यक्त तेरह कथानिकाओं में से प्रत्येक कथानिका अपने कथ्य तथा तथ्य की दृष्टि से एक दूसरे से पृथक् है। वस्तु तथा उद्देश्य की दृष्टि से स्वतन्त्र है। तदनुसार—

प्रथमा कथानिका नीलीराग के स्पष्टीकरण के लिए,
द्वितीया कथानिका मंजिष्ठाराग को स्पष्ट करने के लिए,
तृतीया कथानिका कुसुम्भराग के ज्ञान के लिए,
चतुर्थी कथानिका हरिद्राराग के प्रकटीकरण के लिए,
पंचमी कथानिका 'पराशय को समझ उसका रंजन करने की स्थिति' पर प्रकाश डालने के लिए,
षष्ठी कथानिका में 'आत्मत्याग से महान् से भी स्वार्थसिद्धि' व्यक्त करने के लिए,
सप्तमी कथानिका 'धूर्तों से आत्मरक्षण' के लिए,
अष्टमी कथानिका 'व्याघ्रवत् प्रेम से आत्मरक्षा' की स्थिति स्फुट करने के लिए,
नवमी कथानिका 'उभयानुराग' के स्वरूपज्ञानार्थ,
दशमी कथानिका अतिपीड़ित पुरुष के क्रोधजनित साहस को व्यक्त करने के लिए,
एकादशी कथानिका किसी के अपमान न करने की स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए,
द्वादशी कथानिका 'धूर्तों से वृथा वैर न करने' के उपदेशार्थ तथा त्रयोदशी कथानिका त्रिविधराग से दूर रहने की स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए रची गयी है।

ये कथानिकाएँ स्वयं में स्वतन्त्र तथा पूर्ण रचनाएँ हैं विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार से, अनेक प्रकार के प्रेमाचारों को व्यक्त करने के लिए कथा का ऐसा विधान आवश्यक भी था। इन स्वतन्त्र कथानिकाओं को एक ही वक्ता—विषमशीला तथा एक ही श्रोता—शृंगारमंजरी से सम्बद्ध कर भोज ने उन्हें एक सूत्र में आबद्ध कर दिया। प्रारम्भ की तीन कथानिकाओं तक शृंगारमंजरी के जिज्ञासा-वाक्यों का भी प्रयोग किया गया परन्तु पश्चात् की सारी कथानिकाओं के प्रारम्भ में कथानिका का उद्देश्य विषमशीला ही व्यक्त करती चलती है। यथा—

अन्यच्च पुत्रि ! यदेतदभिहितं पराशयं परिज्ञाय अनुप्रविश्य परो रञ्जनीयः, तत् श्रूयताम् ।[18]

तथा अन्त में उपदेश देती है । यथा—

तत् पुत्रि ! यो हि यदाशयस्तत् तेनानुप्रविश्य विश्वावयतां निश्चितैवार्थसिद्धिः ।
स हि महानुभावः प्रभावस्थापनया तन्नास्ति यन्न वितरतीति ।[19]

केवल ऐसे वाक्यों के निवेश ने ही इन कथानिकाओं को आपस में आबद्ध कर दिया है । और इस प्रकार सारा ग्रन्थ एक सूत्र में ग्रथित हो गया है । इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ अनेक परिस्थितियों पर स्वतन्त्र रूप से प्रकाश डालने से विभाजित व्यक्तित्व अथवा बिखराव की प्रतीति करवाता है परन्तु समग्र रूप से वैशिकोपनिषद् का रहस्य व्यक्त करने के साथ ही, आद्योपान्त एक ही वक्ता तथा एक ही श्रोता होने से वह एक ही अन्तःप्रवाह का वाहक है और इस दृष्टि से इसके बिखराव में भी सम्बन्ध है । इसकी व्यष्टि में भी समष्टि है । कथा के इस स्वरूप-निर्माण का भी दण्डी का दशकुमारचरित ही आदर्श प्रतीत होता है जहाँ सारे कथानक असम्बद्ध व स्वतन्त्र हैं परन्तु श्रोता के एकत्व में कथानक शृंखलाबद्ध हो गया है ।

सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश में कथानिका का उल्लेख उपलब्ध न होने पर भी शृंगारमंजरीकथा में गद्य के इस विशिष्ट स्वरूप का उपयोग आश्चर्यकारक हो सकता है । परन्तु इस सन्देह का तब निवारण हो जाता है जब यह तथ्य प्रकाश में आता है कि काव्यशास्त्रीय दृष्टि से शृंगारप्रकाश ने ऐसा कोई नया तथ्य नहीं दिया जिसकी स्थिति सूत्ररूपेण सरस्वतीकण्ठाभरण में न रही हो । इस दृष्टि से शृंगारप्रकाश सरस्वतीकण्ठाभरण का विस्तार या व्यास कहा जा सकता है ।[20] शृंगारप्रकाश में द्वादशरागों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है ।[21]

स च सात्विकादिनायकभेदात् स्थिरास्थिरत्वादितारतम्यात् प्रबन्धेन उपपाद्यमानो द्वादशप्रकार उत्पद्यते ।

शृंगारमंजरी कथा इन्ही रागदशाओं को उदाहरणों से पुष्ट करने के लिए रची गयी प्रतीत होती है । और इस दृष्टि से इन ग्रन्थों का रचनाक्रम - सरस्वतीकण्ठाभरण - शृंगारप्रकाश— शृंगारमंजरीकथा—प्रतीत होता है ।

पूर्व ग्रन्थों में जिस कथानिका का उल्लेख नहीं किया गया, परवर्ती कृति मे उसका उपयोग असम्भव नहीं है । कथानिकाओं के रचयिता भोज ने उनका उदाहरण तथा स्वरूप भी प्रस्तुत किया । और यह भी प्रकट कर दिया कि पूर्वोक्त उनकी काव्यशास्त्रीय दोनों कृतियों में इसका उल्लेख न होने पर भी, वे इसे गद्य के एक भेद के रूप में स्वीकार करते हैं, जो पूर्व ग्रन्थों मे व्यक्त कथा के स्वरूप–निर्माण में सहायिका भी बन सकती है । यह तथ्य उसी प्रकार सिद्ध है जिस प्रकार पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'भूतपूर्व' शब्द की सिद्धि का कोई विधान न होने पर भी उनकी कृति में इसका प्रयोग[22]—'भूतपूर्वे चरट्'—प्राप्त होने से वह पाणिनिसम्मत तथा प्रामाणिक है । ऐसा कथाग्रन्थ दुर्लभ ही कहा जा सकता है जिसमें कथानिकाओं का अपरिहेय महत्व हो ।

स्वयं ग्रन्थकार ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में कथा की कतिपय अन्य विशेषताओं पर प्रकाश डाला है ।

यथा[23]—

कामप्यपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु स्वामी इति विज्ञप्तः स्मितपूर्वमिदमभ्यधात्—एवमेतद् ।

किन्तु कथा हि कीर्त्यमाना नगरादिवर्णनपुरःसरा सौन्दर्यमावहति। न चैतस्याः पुरीतोऽन्या विलक्षणा काचिदप्यस्तीति प्रथममेषैव वर्णनीया भवति। अस्याश्चाधिष्ठातृत्वप्रसंगेनात्मापि भणनीयः। तच्चानुचितमिवास्मादृशाम्।

इससे ज्ञात होता है कि—

(1) कथा अपूर्व अथवा कल्पित होती है।

(2) कथा का उपयोग प्रीति तथा व्युत्पत्ति के लिए होता है।

(3) कथा के प्रारम्भ में नगरादि का वर्णन होना चाहिए तथा

(4) उसके अधिष्ठाता का भी वर्णन होना चाहिए।

कथा के प्रारम्भ में जिस नगरी का वर्णन किया जाय वह विलक्षण होना चाहिए। ऐसी नगरियों में धारा ही सर्वश्रेष्ठ नगरी दिखाई देती है। नगरी के स्वामी का वर्णन करना भी आवश्यक है और धारा नगरी का स्वामी आकस्मिक रूप से ग्रन्थ का रचयिता, राजा भोज ही है। ऐसी परिस्थिति में वह, 'अपने मुँह कर अपनी करनी.'[24] अपना वर्णन स्वयं कैसे कर सकता है? अभिजात की शालीनता उसे आत्मप्रशंसा की अनुमति नहीं देती है। यह आक्षेप भामह का है[25]–

अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते।

स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः॥

परिषद् के विद्वान् इसका उत्तर दण्डी के शब्दों में देते हैं[26]—

स्वगुणाविष्क्रियादोषो नात्र भूतार्थशंसिनः।

तथा स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत करते हैं[27]—

तथा हि मुनिभिरपि वाल्मीकिपराशरव्यासादिभिः कविभिरपि गुणाढ्यभासभवभूतिबाणप्रभृतिभिरात्मगुणाविष्करणमक्रियत। असद्गुणख्यापनं हि दोषाय। यथार्थगुणाख्यानं पुनरनवगीतमेव इति............।

यह स्पष्टीकरण स्वयं भोज का है, उस भोज का जिसने सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश में दण्डी के अभिमतों को विशेष रूप से स्वीकार किया[28] तथा अपनी स्थापनाएँ भी प्रस्तुत कीं एवं काव्यशास्त्रीय तथ्यों–रागों–के ही उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए जिसने शृंगारमंजरीकथा भी रची। तर्क की दृष्टि से वह उपर्युक्त दण्डी की बात स्वीकार कर लेता है परन्तु शालीनतावश वह वैसा आचरण नहीं कर पाता है। फलतः आत्मवर्णन के लिए यन्त्रपुत्रक को नियुक्त कर देता है[29]—

रे यन्त्रपुत्रक! यद्यप्यस्मत्परिषदः सम्मतं तथापि निजगुणाविष्करणमगीतमिव प्रतिभासते तद् राजवर्णनं भवानेव भणतु इति।

दण्डी भी इस आचरण को स्वीकार करता है। आख्यायिका के सन्दर्भ में दण्डी का अभिमत है कि नायक अपना चरित स्वयं कहे या अन्य से कहलावे[30]—

नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।

भोज ने शृंगारप्रकाश में इसे स्वीकार किया[31]—

कन्यापहारसंगरसमागमाभ्युदयभूषितं यस्याम् ।
नायकचरितं ब्रूते नायक एवास्य वानुचरः ।।
वक्त्रः परवक्त्रवती सोच्छ्वासा संस्कृतेन गद्येन ।
साख्यायिकेति कथिता माधविकाहर्षचरितादि ।।

भोज की शृंगारमंजरीकथा में नायक भोज अपना वर्णन अपने अनुचर--यन्त्रपुत्रक से करवाता है। यह विशेषता आख्यायिका की है। इसीलिए शृंगारमंजरीकथा की विदुषी सम्पादिका कुमारी कल्पलता मुन्शी ने इस ग्रन्थ को ऐसा कथाग्रन्थ कहा है जिसमें आख्यायिका की विशेषता भी सम्पृक्त हो गयी है।[32] वस्तुतः प्रस्तुत सन्दर्भ में नायक द्वारा आत्मचरित का अपने अनुचर यन्त्रपुत्रक से वर्णन करवाने से यह कृति आख्यायिका के गुणों से मण्डित नहीं हो गयी।

वस्तुस्थिति यह है कि कथा के प्रारम्भ में नगरादि का वर्णन रहने से उसका सौन्दय बढ़ जाता है। साथ ही उसके अधिष्ठाता का वर्णन भी करना चाहिए। वस्तुतः रचयिता आख्यायिका के समान यहाँ आत्मवर्णन नहीं कर रहा है अपितु धाराधीश का वर्णन कर रहा है। संयोगवश विलक्षण नगरी धारा का स्वामी इस कृति का रचयिता भी है। परन्तु इससे कृति के स्वरूप में अन्तर नहीं आता तथा न वह कथा होते हुए भी आख्यायिका के गुण से मण्डित हो जायेगी। इस परिस्थिति में आत्मवर्णन होने पर भी यह कृति कथा ही कही जानी चाहिए जैसा कि स्वयं रचयिता को भी अभीष्ट है।

कथा का लक्षण देते हुए भोज ने कहा है[33]--

या अनियमितगतिभाषादिव्यादिव्योभयेतिवृत्तवती ।
कादम्बरीव लीलावती सा कथा कथिता ।।

भोज के अनुसार कथा में 'गति'[34] का बन्धन नहीं है वह गद्य, पद्य तथा मिश्र किसी भी प्रकार से रची जा सकती है। कादम्बरी गद्य-कथा का, लीलावती पद्य-कथा का तथा दमयन्तीकथा मिश्र (चम्पू) कथा का उदाहरण है। कादम्बरी के प्रारम्भ में पद्यों के भी दर्शन होते हैं। शृंगारमंजरी के अन्त में पद्य प्राप्त होते हैं।

वहाँ भाषा अथवा जाति[35] का भी बन्धन नहीं है। कथा किसी भी भाषा में रची जा सकती है। वृहत्कथा प्राकृत में विरचित है तो कादम्बरी संस्कृत में। शृंगारमंजरीकथा संस्कृत-कथा ग्रन्थ है परन्तु बीच-बीच में कई स्थलों पर प्राकृत शब्दों अथवा वाक्यों का भी उपयोग किया गया है। अन्त में चार प्राकृतगाथाएँ भी रची गयी हैं। फलतः भाषागत अनियम का यहाँ पालन किया गया है।

कथा का इतिवृत्त दिव्य तथा अदिव्य किसी भी प्रकार का हो सकता है। कादम्बरी में ऐसा ही कथानक प्राप्त होता है। शृंगारमंजरीकथा में अदिव्य वस्तु की बहुलता होने पर भी देवदत्ता कथानिका, लावण्यसुन्दरी कथानिका तथा उभयानुराग कथानिका में दिव्यादिव्य का सम्मिश्रण हो गया है।

कथा-रचना में इतनी छूट देना स्वाभाविक भी है क्योंकि कथा में केवल शुष्क विवरण नहीं होता अपितु लोकरंजक मनोरमता का सन्निवेश होता है। आकर्षक प्रभावोत्पादन के लिए

नियमों की शिथिलता अनिवार्य है, जिससे रचयिता उन्मुक्त अभिव्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता हो भावों को तथा अपनी कल्पना के वैचित्र्य को किसी भी प्रकार से मूर्त रूप दे सके, काव्य तथा लोकरंजन के नूतन उदाहरण प्रस्तुत कर सके।

चम्पूरामायण में भोज ने कथा की कतिपय अन्य विशेषताओं तथा उसके प्रयोजन पर भी प्रकाश डाला है[36]—

इति विविधरसाभिः कौशिक-व्याहृताभिः
श्रुतिपथमधुराभिः पावनीभिः कथाभिः।
गलित-गहन-कृच्छ्रं गच्छतोर्दाशरथ्योः
समकुचदिव सद्यस्तादृशं मार्गदैर्घ्यम्॥

इससे ज्ञात होता है कि—

(1) कथा में विविध रस हो सकते हैं।
(2) ये सुनने में मधुर होती हैं।
(3) ये पवित्र वस्तु का भी वहन कर सकती हैं।
(4) इनमें वक्ता तथा श्रोता का सन्निवेश किया जा सकता है।
(5) थकान तथा कष्ट में मन बहलाने का यह सरस साधन है।
(6) काल तथा मार्ग की दीर्घता संकुचित सी लगने लगती है।

शृंगारमंजरी कथा में प्राप्त विविध कथानिका विविध रसों से पूर्ण हैं। इसमें भोज वक्ता तथा उनकी परिषत् श्रोता है। कथाएँ भाषा तथा वस्तु की दृष्टि से मधुर है। ये लोक-प्रीति तथा व्युत्पत्ति के लिए रची गयी हैं।

इस प्रकार भोज ने शृंगारमंजरीकथा के रूप में कथा-रचना का एक सुन्दर एवं अभिनव उदाहरण प्रस्तुत किया है। कथानिकाओं के स्वरूप के उदाहरण प्रस्तुत करने के साथ ही कथा-निर्माण में उनकी उपयोगिता भी प्रस्तुत कर दी गयी है। रागविवृत्ति में निरत कथाएँ सोद्देश्य होने से वे शृंगारमंजरी तथा भोज के सभासदों की व्युत्पत्ति के लिए तो हैं ही, परन्तु उनकी प्रीति के लिए भी उतनी ही उपकारक हैं। कौतुक की शान्ति तो इन कथाओं से होती ही है परन्तु ये कथाएँ भी स्वयं में पुरातन नहीं, नूतन हैं। नगर, ऋतु, पर्वत, प्रातः, सन्ध्या, तड़ाग आदि के वर्णन-वैचित्र्य से इस कथा में सरसता, मनोहारिता तथा विलक्षणता का सन्निवेश हो गया है जिससे यह अधिक हृदयावर्जक बन सका है।

शृंगारमंजरीकथा की रचना सहृदयों की प्रीति तथा व्युत्पत्ति के लिए हुई है। कमनीय कल्पना से पूर्ण ललित रचना होने से शृंगारमंजरीकथा सहृदयों के लिए हृदयावर्जक है। साथ ही वह विषमशीला की शिक्षा के माध्यम से वैशिकोपनिषद् प्रस्तुत कर देती है। वैशिकरहस्य की वात्स्यायन[37] तथा दत्तक[38] आदि के अनुसार विवृत्ति के साथ ही शृंगारप्रकाश में वर्णित द्वादश-रागों का भी प्रस्तुतीकरण इस ग्रन्थ में हुआ है, ये सभी तथ्य मानवी चित्तवृत्तियों की पुरुरूपता के सन्दर्भ में प्रस्तुत हुए हैं, जिन्हें व्यावहारिक रूप से यथावत् समझकर वेशवनिताओं को अपने आगन्तुकों से तदनुकूल आचरण करना चाहिए। इस रूप में शृंगारमंजरीकथा की रचना

वैशिकोपनिषद् अथवा वैशिक रहस्य के सन्दर्भ में हुई है, जो उसी की समुचित तथा हृदयावर्जक व्याख्या प्रस्तुत करती है। अतः शृंगारमंजरीकथा मूलतः गद्य-काव्यात्मक ग्रन्थ होने पर भी उसके उद्देश्य की परिणति कामशास्त्र के वैशिकसिद्धान्तों की व्याख्या प्रस्तुत करने में होती है। फलतः इसके काव्य में भी शास्त्र अन्तःसलिला की भाँति प्रवाहित है। ऐसे काव्य को भोज शृंगारप्रकाश में काव्यशास्त्र की संज्ञा देते हैं[40]—

> यत्रार्थशशास्त्राणां काव्ये विनिवेश्यते महाकविभिः।
> तद्भट्टिकाव्यमुद्राराक्षसवत्काव्यशास्त्रं स्यात्॥

भट्टिकाव्य तथा मुद्राराक्षस की भांति शृंगारमंजरीकथा भी विशेष शास्त्र की व्याख्या प्रस्तुत करती है। अतः वह कथा होते हुए भी काव्यशास्त्र है। अथवा शृंगारमंजरीकथा को काव्य-शास्त्र प्रकार का कथाग्रन्थ कहा जा सकता है।

ग्रन्थकर्तृत्व—

ग्रन्थ के अन्तः साक्ष्यों से स्फुट ही प्रतीत होता है कि यह कृति धाराधीश महाराजाधिराज भोजदेव के द्वारा रची गयी है। वे अन्तःसाक्ष्य निम्नानुसार हैं—

1. स्नेही नृपों तथा आप्त विद्वानों ने महाराजाधिराजपरमेश्वर श्री भोजदेव से विनय की कि वे उन्हें कोई अपूर्व कथा सुनाए[41]—

> ......महाराधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवः सविनयं प्रार्थ्यत, यथा.........कामप्यपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु स्वामी इति।

2. ग्रन्थ के रचयिता को आपत्ति है कि उसे धाराधीश होने से आत्मवर्णन करना पड़ेगा जो समुचित नहीं है[42]—

> न चैतस्याः पुरीतोऽन्या विलक्षणा काचिदप्यस्तीति प्रथममेवैव वर्णनीया भवति। अस्याश्चाधिष्ठातृत्व प्रसंगेनात्मापि भणनीयः। तच्चानुचितमिवास्मादृशाम्।

3. ग्रन्थ का रचयिता जिस नगरी का स्वामी है उस धारा का तथा यन्त्रपुत्रक के द्वारा धाराधीश भोज का भी वर्णन करवाया जाता है, जो ग्रन्थरचयिता से अभिन्न है।[43]

4. ग्रन्थ में उपलब्ध विभिन्न पुष्पिकाओं से भी यह कृति महाराजाधिराज भोज की कृति ही ज्ञात होती है, यथा[42]—

> इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचितायां शृंगाग्रमंजरीकथायां शृंगारमंजरीशिक्षा समाप्ता।

5. ग्रन्थ के प्रशस्तिपरक खण्डित श्लोकांश से भी इसकी पुष्टि होती है।[45]

> ....गानामीशोपर इव स एनामरचयत्। ...ुर्वीनाथः प्रणत....

6. ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक से भी इसका ज्ञान होता है।[46]

> कृतेयं भोजराजकथा (शृंगारमंजरी)।

7. पर्वतवर्णन के प्रसंग में भोज ने व्याज से इस तथ्य का उद्घाटन भी किया है।[47]

> एतत्कथाकारमिवविराजितपरमारावनीपवंशम्।

8. "महाराजाधिराजपरमेश्वर" भोज की उपाधि अथवा विरुद था। सरस्वतीकण्ठाभरण शृंगारप्रकाश, पांतजलयोगसूत्रवृत्ति, चारुचर्या आदि भोज की कृतियों में भोज को महाराजाधिराज

9. शृंगारप्रकाश भोज की कृति है। उसके 36 वे प्रकाश में द्वादशरागों का विवेचन है, जो भोज की तद्विषयक मौलिक देन है। उन्हीं रागों का विवरण इस कृति में भी है, जिनमें से प्रमुख चार (नीली, मंजिष्ठा, कुसुम्भ तथा हरिद्रा) राग के उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं।

10. भोज कथा सुनने तथा सुनाने का रसिक था। उसी के आग्रह पर धनपाल ने तिलकमंजरी कथा रची थी[48]—

> निः शेषवाङ्मयविदोपि जिनागमोक्ताः
>
> श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य।
>
> तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतोः
>
> राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ॥

तथा नृपों एवं (धनपाल जैसे) आप्त विद्वानों के आग्रह पर उसने शृंगारमंजरीकथा रची[49]—

> कतिपयैर्विद्वद्भिराप्तैः प्रणयिभिर्नृपतिभिश्चोपास्यमानचरणकमलो
> महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवः सविनयं प्रार्थ्यत; यथा
> देवोप्यखिलजनतासुबन्धुः श्रीभासो गुणाढ्यः प्रशस्तगीर्वाणः।
> तदतिनिबिडकौतुकाक्रान्तचेतसामस्माकं प्रीत्यै व्युत्पत्तये च
> कामप्यपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु स्वामी इति।

अतः यह कृति धाराधीश भोज की ही है।

11. अपनी कृति में किसी व्याज से उस कृति का वैशिष्ट्य व्यक्त करना भोज की प्रवृत्ति रही है। शृंगारप्रकाश में उसकी विशेषता पर प्रकाश डाला गया है[50]—

> एतस्मिन् शृंगारप्रकाशे सुप्रकाशमेवाशेषशास्त्रार्थसम्पदुपनिषदामखिल–
> कलाकाव्यौचित्यकल्पनारहस्यानां च सन्निवेशो दृश्यते।

तथैव शृंगारमंजरी कथा में भी उसके पदलालित्य को व्यक्त किया गया है[51]—

> शृंगारमंजरी गद्यप्रवृत्तिरिव सुललितपदा।

स्वभावतः यह कृति उसी भोज की रचना है जिसने शृंगाप्रकाश की रचना की तथा जो धारा का स्वामी भी रहा तथा जिसके काल में धारा अपने नूतन कलेवर से सारे पुरातन पत्तनों का उपहास कर रही थी[52]। धारा का पुनर्निर्माण ग्यारहवीं सदी के प्रथम दशक में अथवा इससे पूर्व ही सम्पन्न हो चुका था। फलतः यह कृति धारा के परमार राजा भोज प्रथम (999 ई० से 1054 ई०) की ही रचना है।

ग्रन्थ का रचना-काल :—

शृंगारमंजरीकथा के अन्तिम श्लोक में इस ग्रन्थ का रचनाकाल व्यक्त था परन्तु वह अंश खण्डित हो जाने से इसका कालनिर्णय भी एक समस्या के रूप में आ उपस्थित हुआ है।

शृंगारमंजरी कथा के अन्त में कालसूचक अंश इस प्रकार था[53]—

> ....वत्सराणां शकद्विषः।
>
> कृतेयं भोजराजेन कथा (शृंगारमंजरी) ॥

अब केवल बाह्य एवं आन्तरिक साधनों से ही तथ्य के निकट पहुँचने का प्रयास सम्भव है—

1. ग्रन्थ की ताडपत्रीय लिपि तथा ताड्पत्रों की स्थिति से ज्ञात होता है कि यह प्रति 12 वीं सदी से परवर्ती नहीं हो सकती[54]।

2. ग्रन्थनिर्मिति से पूर्व ही भोज की राजधानी धारा बन चुकी थी। ग्रन्थ मे धारा को सर्वविलक्षण तथा सारे पुरातन पत्तनों का उपहास करनेवाली नगरी बताया गया है[55]—

(क) न चैतस्याः पुरीतोन्याविलक्षणा काचिदप्यस्तीति।

(ख) या च.......त्रिभुवनेपि पुरातनान्याखिलनगरसंनिवेशस्थानानि।

परन्तु भोज के पिता सिन्धुराज के काल में परमारों की राजधानी उज्जयिनी ही थी[56]—

प्रशास्ति परितो विश्वमुज्जयिन्यां पुरि स्थितः।

धारा उनकी कुलराजधानी के रूप में द्वितीय राजधानी थी[57]। भोज ने उज्जयिनी का गौरव धारा को प्रदान किया[58]। अब कुलराजधानी धारा प्रमुख राजधानी हो गयी। 1034 ई० में निर्मित शारदासद्म की सरस्वतीमूर्ति के अधोभाग में उपलब्ध खण्डित श्लोक से प्रतीत होता है कि धारा नगरी भोज की राजधानी थी[59]—

श्रीमद्भोजनरेन्द्रचन्द्रनगरी विद्याधरी........
मर्ा नधिनमास.......स्म खलु सुखं (प्राप्या) नयाप्सरः।
वाग्देवीप्रतिमां विधाय जननीं यस्यार्जितानां त्रयीं
फलाधिकां धारां.......मूर्ति शुभां निर्ममे॥

1030 ई० में आगत अल्बरूनी ने भी राजधानी के रूप में धारा का वर्णन किया है।[60] सन् 1020 तथा 1021 के क्रमशः बेटमा तथा उज्जैन के ताम्रपत्र भोज ने धारा में रखते हुए ही दीये थे।[61] शक संवत् 923 (1001 ई०) में धारा में रखते हुए ही भोज ने अग्रहार रूप में ग्राम दान किये थे।[62] तथा इस काल तक सरस्वती कण्ठाभरण के रचयिता के रूप में भोज को कीर्ति प्राप्त हो चुकी थी।[63]

सरस्वतीकण्ठाभरण का व्यास अथवा विस्तार शृंगारप्रकाश है[64] तथा शृंगारप्रकाश में वर्णित द्वादशरागों की विवृत्ति शृंगारमंजरीकथा में प्राप्त होती है। 1001 ई० के पश्चात् शृंगारप्रकाश तथा तदनन्तर शृंगारमंजरी कथा की रचना की गयी।[65] भोज अतिशीघ्र ग्रन्थ निर्माण करने में सिद्धहस्त थे।[66] अतः सरस्वतीकण्ठाभरण के कुछ काल पश्चात्, सम्भवतः 1005 ई० तक शृंगारमंजरीकथा का निर्माण हो चुका होगा।

ग्रन्थ-रचना का प्रयोजन—

महाराज भोज कविप्रिय तथा काव्यप्रिय रसिक रहे हैं।

(1) भोज की अपनी विद्वत्परिषत् थी[67] जिसमें अनेक आप्त विद्वान् तथा रसिक नृपों की सदस्यता थी।[68] भोज इन विद्वानों से सुरुचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक ग्रन्थ रचवाता था। धनपाल की तिलकमंजरी ऐसी ही कृति है।[69]

निःशेषवाङ्मयविदोपि जिनागमोक्ताः श्रोतुं कथाः समुपजातकुतहलस्य।
तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतोः राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम्॥

तथा परिषत् की प्रार्थना पर वह स्वयं भी ग्रन्थ रचता था। शृंगारमंजरीकथा सभासदों की ऐसी ही प्रार्थना का परिणाम है[70]—

कतिपयैर्विद्वद्भिराप्तैः प्रणयिभिर्नृपतिभिश्चोपास्यमानचरणकमलो महाराजाधिराज परमेश्वरश्रीभोजदेवः सविनयं प्रार्थ्यत, यथा—देवोप्यखिलजनतासुबन्धुः श्रीभासो गुणाढ्यः प्रशस्तगीर्वाणः। तदतिनिविडकौतुकाक्रान्तचेतसामस्माकं प्रीत्यै व्युत्पत्तये च कामप्यपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु स्वामी इति।

2. श्रोता के विनोद अथवा कुतूहल की शान्ति के लिए भी इस कथा की रचान हुई है।

3. साथ ही उनकी प्रीति तथा व्युत्पत्ति के लिए भी शृंगारमंजरी कथा रची गयी है।

वामन ने अपने काव्यालंकार सूत्र में तथा भोज ने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण में कीर्ति तथा प्रीति को काव्य के प्रयोजन स्वीकार किये है।[71] रुद्रट ने व्युत्पत्ति को काव्य का प्रयोजन माना है।[72] अग्निपुराण इसे त्रिवर्गसाधन के रूप में स्वीकार करता है[73] तथा दण्डी चारों वर्गो के फल प्रदाता के रूप में।[74] भामह चतुर्वर्ग, कला आदि में कीर्ति तथा प्रीति के साधन के रूप में काव्य को स्वीकार करते हैं।[75]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ठ है कि भोज प्रीति कथा व्युत्पत्ति प्रयोजनों को प्रमुखता दे रहा है। यह भी स्पष्ट है कि भोज ने अपने अलंकारशास्त्र सरस्वतीकण्ठाभरण में भी इन्हीं प्रयोजनों का उल्लेख किया है। भोज ने अपनी चम्पूरामायण भी इन्हीं प्रयोजनों से रची—

तस्माद्दधातु कविमार्गजुषां सुखाय
चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया।[76]
तथा
वाल्मीकिगीतरघुपुंगवकीर्तिलेशै-
स्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्।[77]

शृंगारमंजरीकथा में सरस तथा मनोरम कथाएँ ललित शैली में रची जाने से वे आनन्दप्रद हैं। परन्तु साथ ही उसमें शृंगारप्रकाश[78] के 36वें प्रकाश में वर्णित द्वादश रागों की विवृत्ति भी है।[79] ये द्वादशराग चार वर्गो में विभाजित हैं।

यथा—

1, नीलीराग, रीतिराग तथा अक्षीबराग

2. मंजिष्ठाराग, कपायराग तथा सकलराग

3. कुसुम्भराग, लाक्षाराग तथा कर्दमराग

4. हरिद्राराग, रोचनाराग तथा काम्पिल्यराग।

यद्यपि में राग बारह हैं परन्तु अपने-अपने वर्ग के प्रथम राग में अन्य रागों का अन्तर्भाव होने से इन्हीं को स्फुट करने के लिए प्रथम चार कथानिकाएँ रची गयी हैं।

इसके अतिरिक्त विषमशीला की शिक्षा की परिधि मानव की अपरिमित चित्तवृत्तियों को भी अपने में परिमित कर लेती है। वह बतलाती है कि किस प्रकार विविधवृत्ति के जनों की मनोवृत्ति ताड़कर उसके चित्र तथा वित्त का तो अपहरण कर लेना चाहिए परन्तु अपने चित्त तथा वित्त की रक्षा में प्रमाद नहीं करना चाहिए।[80] पाँचवी तथा इसके पश्चात् की कथानिकाओं में इन्हीं विविध स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। यह विषमशीला की शिक्षा अपने आप में वैशिकोपनिषद् है[81]—

यस्यां च वैशिकोपनिषदि रहस्यमेतद् ।

इस शिक्षा में दत्तकप्रणीत वैशिकरहस्य का समुचित समाहार है[82]—

विशेषतो दत्तकादिप्रणीतवैशिकरहस्यानि च ज्ञापितः ।

तथा साथ ही वात्स्यायन के कामसूत्र का भी उल्लेख हुआ है[83]—

विचक्षणाकामसूत्रादिविचारेषु ।

साथ ही प्रस्तुत कृति में कामसूत्र के वैशिक अधिकरण के तथ्यों का भी समुचित उपयोग किया गया है ।[84]

इस प्रकार शृंगारमंजरीकथा में शृंगारप्रकाश के द्वादशरागों का उन्मीलन किया गया है । वात्स्यायन के कामसूत्र तथा दत्तक के वैशिक रहस्य अथवा वैशिकोपनिषद् के तथ्यों को सरस, ललित तथा हृदयग्राह्य शैली में प्रस्तुत किया गया है । अतः शृंगारमंजरीकथा व्युत्पत्ति की दृष्टि से, ज्ञानवर्धन की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय होने के साथ ही सरस होने से आनन्दप्रद भी है । शास्त्रीय तथ्यों को अत्यन्त ललित शैली में प्रस्तुत करने से वह कुतूहलवर्धक तो है ही ।

ग्रन्थ का अभिधान--

शृंगारमंजरीकथा की नायिका शृंगारमंजरी है । इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का केन्द्र वही है । धारा तथा भोज का वर्णन इसलिए किया गया कि शृंगारमंजरी उस धारा में निवास करती थी जिसका अधिपति भोज था । शृंगारमंजरी के भव्य एवं कमनीय आकर्षण के अनुरूप धारा तथा उसके अधिपति का भी वर्णन हुआ है । विषमशीला उसकी माता है, जिसमें विदग्धता तथा कुटिलता का अप्रतिम समाहार है । यही माता शृंगारमंजरी को उपदेश देती है तथा उसे उदाहरणों से पुष्ट करती है । स्वभावतः सम्पूर्ण वस्तु शृंगारमंजरी के लिए कल्पित है । शृंगारमंजरी का आद्योपान्त कोई काम नहीं है । परन्तु वस्तु एवं कथानिकाओं की कल्पना उसी के लिए हुई है । अतः शृंगारमंजरी के लिए जिसमें कथा की कल्पना की गयी, वह शृंगारमंजरीकथा हुई । अथवा जिस कथा की नायिका शृंगारमंजरी है वह शृंगारमंजरीकथा कहलायी । अतः दमयन्तीकथा के समान ही शृंगारमंजरीकथा का अभिधान भी नायिकाप्रधान है ।

परन्तु ग्रन्थाभिधान इसके अतिरिक्त अन्य भी प्रयोजन सिद्ध करता है ।

भोज शृंगार का प्रबल समर्थक रहा है । भोज ने चम्पूरामायण में अपनी इस कल्पना को सव्याज व्यक्त करते हुए शृंगार को रसों में प्रथम व्यक्त किया है[85] —

इक्ष्वाकुनाथतनयान्प्रथमो रसानां
तारुण्ययोगचतुरश्चतुरः सिषेवे ।

सरस्वतीकण्ठाभरण में भोज ने शृंगारविषयक अपनी इस भावना को स्फुट रूप में व्यक्त कर दिया था[86]—

रसोभिमानोऽहंकारः शृंगार इति गीयते ।
योर्थस्तस्यान्वयात्काव्यं कमनीयत्वमश्नुते ।।
विशिष्टादृष्टजन्मायं जन्मिनामन्तरात्मसु ।
आत्मासम्यग्गुणोद्भूतेरेको हेतुः प्रकाशते ।।

शृंगारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स एव चेदशृंगारी नीरसं सर्वमेव तत् ॥

जिसका शालीन पल्लवन शृंगारप्रकाश में हुआ और वहाँ कवि ने स्पष्ट ही उद्घोषणा कर दी[87]—

शृंगारवीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्य
बीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः।
आम्नासिषुर्दशरसान् सुधियो वयं तु
शृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः ॥

अथवा

तात्पर्यमेव वचसि ध्वनिरेव काव्ये
सौभाग्यमेव गुणसंपदि वल्लभस्य।
लावण्यमेव वपुषि स्वदतेऽङ्गनायाः
शृंगार एव हृदि मानवतो जनस्य ॥

सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश के अन्त में भोज ने अपनी इन कृतियों को 'अनङ्गसर्वस्व' कहा है—

'इति निगदितमङ्ग्याऽनङ्गसर्वस्वमेतद्'

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षानुरूप चतुर्वर्ग में विभाजन कर भोज ने शृंगार के जिस भव्य प्रासाद का सृजन किया वह आकाश के समान अटल तथा असीम है। शृंगारप्रकाश के छत्तीसवें प्रकाश में मानवी प्रवृत्तियों के अनुरूप राग की विस्तृत विवृत्ति है। इस ग्रन्थ में समग्र रूप से शृंगार का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। शृंगार मनोवृत्ति का परिणाम है जिसे सीमित नहीं किया जा सकता। उसकी प्रकृति रसन है, अतः बिना रसपूर्ण विवृत्ति के, केवल शास्त्रीय विवेचन से वह हृदयाग्राह्य नहीं बन सकता। इसी दृष्टि से, अपने अभीष्ट को, सांगोपांग तथा सम्पूर्ण रूप से जन-जन तक प्रेषित करने के लिए, लोकसुलभ बनाने के लिए भोज ने शृंगार से परिपूर्ण शृंगारमंजरीकथा सरजी—

शृंगाररसनिर्भरा निर्मिता।

जिसमें शृंगार को विविध रूप से साकार किया गया। जिसकी नायिका के अंग-अंग से लावण्य छलकता है[88]—

सर्वाङ्गेभ्यो लवणिमा रूमाकरैरगृह्यन्त।

अंगनाओं के अंगों में लावण्य का ही आस्वादन किया जाता है, भोज की यह बद्धमूल धारणा है[89]—

लावण्यमेव वपुषि स्वदतेऽङ्गनायाः।

भोज की कथा की नायिका शृंगारमंजरी है एवं कथानिका की नायिका भी शृंगार की एक मात्र भूमि (एकमायतनं शृंगारस्य), शृंगारविलास की नृत्याधिदेवता (नृत्याधिदेवता शृंगारविलसितानाम्) शृंगार की भी शृंगार (शृंगारस्यादि शृंगारः), शृंगारसागर को सतत लहराने

वाली (लडलहरी शृंगारसागरस्य) तथा शृंगारकल्पद्रुम की उत्पत्ति भूमि—नन्दन (उत्पत्तिनन्दनं शृंगारकल्पद्रुमस्य) हैं।[90]

कथा का नायक भोज भी लावण्यपीयूष का सलिल है[91]—

'लावण्यपीयूषसलिलः'

तथा अन्य नायक भी शृंगार के रूप अथवा अपर कामदेव के समान कमनीय हैं। तात्पर्य यह कि कृति आद्योपान्त शृंगार के विविध स्वरूप प्रस्तुत करने में निरत है। वह शृंगार तथा उसके व्यापार को विविध कोणों से देखती है तथा उनके विविध परिणामों की ओर संकेत भी करती है। शृंगार-मंजरीकथा में शृंगार के शास्त्रीय तथा व्यावहारिक पक्षों का अद्भुत सामंजस्य है।

सरस्वतीकण्ठाभरण में शृंगारविषयक चिन्तन का बीजवपन हुआ, शृंगारप्रकाश में वह पल्लवित होकर प्रकाशित तथा व्याप्त हुआ। शृंगारमंजरीकथा में शृंगार की उस पल्लवित लता में मंजरी आ गयी है। यहां शृंगार केवल शास्त्रीय ही नहीं, अनुभवगम्य भी है तथा यहाँ उसका विविध रूप से आस्वादन भी किया जा सकता है।

कथा की नायिका भोज-कल्पित शृंगारमूर्ति की कमनीय काया है जो अपने अभिधान में शृंगार का विकास तथा उसकी कमनीय अभिव्यक्ति का आभास देती है।

अतः शृंगारमंजरीकथा से तात्पर्य यह भी सम्भव है—वह ग्रन्थ जिसमें शृंगार के तथ्यों का कमनीय तथा हृदयाकर्षक प्रस्तुतीकरण हुआ है।

वीरभद्र ने अपने कन्दर्पचूड़ामणि ग्रन्थ में भोज को विविध विद्या से सम्बद्ध ग्रन्थ के रचयिता के साथ ही कामशास्त्र में भी 'सोद्योग' कहा है[92]—

भोज इवायं निरतो नानाविद्यानिबन्धनिर्माणे
समयोच्छिन्नप्राये सोद्योगः कामशास्त्रेपि ॥

भोज का कामशास्त्र में 'सोद्योग' होने का परिणाम सम्भवतः शृंगारप्रकाश तथा शृंगारमंजरीकथा ही है। प्रतापरुद्रदेव वीरभद्र (1295–1323 ई०) का आश्रित कवि प्रतापरुद्रयशोभूषण का रचयिता विद्यानाथ था।[93] इससे यह भी स्पष्ट है कि तेरहवीं सदी में भोज विविध विद्याओं से सम्बद्ध ग्रन्थकार के रूप में प्रसिद्ध था।

शृंगार के विविध पक्षों को प्रस्तुत करने के लिए वेश्या को ही नायिका बनाना सर्वाधिक समुचित है। क्योंकि शास्त्रीय दृष्टि से उसे इन सारे तथ्यों का ज्ञान आवश्यक है, वहीं पर व्यावहारिक दृष्टि से उनका नित्य नवीन मनोवृत्ति के शृंगारिक जनों से सम्पर्क होता है। जहाँ एक ही स्थान पर शृंगार सम्बद्ध सारे अनुभव सुलभ हो सकते हैं तथा उन्हें व्यक्त भी किया जा सकता है। कुलीन सदन तथा कुलीन वातावरण में शृंगार के विविध पक्ष, विविध स्थलों पर प्राप्य हैं परन्तु उस सन्दर्भ में उन्हें व्यक्त करना समुचित नहीं है।

अतः शृंगारमंजरी वेश्या भोज की शृंगारविषयक कल्पना को व्यक्त करने का माध्यम है। ग्रन्थाभिधान नायिका के अभिधान के साथ ही उस स्थिति का भी व्यंजक है।

चरित्र–चित्रण—

भोज की शृंगारमंजरीकथा में प्रमुखतः भोज, शृंगारमंजरी तथा विषमशीला का व्यक्तित्व प्रस्तुत किया गया है। पुरुषों के रूप, गुण, तथा विदग्धता का आदर्श भोज है। गणिकाओं के

लावण्य तथा मुग्धता का आदर्श शृंगारमंजरी है एवं कुट्टनियों की कुटिलता का आदर्श विषमशीला है।विविध कथानिकाओं में प्रायः नायक, गणिका तथा कुट्टनी को ही प्रमुखता प्राप्त हुई है। उनके व्यक्तित्वों ने उन गुणों से विशेष भेद नहीं है जिनका वर्णन ग्रन्थ के प्रारम्भ में उपर्युक्त पात्रों के सन्दर्भ में दिया गया है।

विभिन्न कथानिकाओं में अनेक चरित्र अवतीर्ण हुए हैं जिनमें राजा, राजकुमार, वणिक्, ब्राह्मण आदि प्रमुख हैं। शृंगारमंजरीकथा सम्पूर्ण रूप से किसी एक की जीवनगाथा नहीं है, अपितु इसमें क्रमशः विभिन्न प्रवृत्ति के विभिन्न चरित्र अवतीर्ण होते हैं जिनके जीवन की एक घटना का इसमें वर्णन रहता है। फलतः प्रस्तुत कथा में पात्रों की सुदीर्घ जीवन यात्रा में उपस्थित होने वाली विभिन्न परिस्थितियों तथा समस्याओं का अभाव है परन्तु विभिन्न व्यक्तियों का कुट्टनियों के तथा गणिकाओं से व्यवहारों की विभिन्नता का सम्यक् प्रस्तुतीकरण है। ग्रन्थकार मानवचित्तवृत्तियों का चतुर वेत्ता है। यही कारण है कि वह वेशवनिताओं के प्रवंचन जैसी एक ही घटना का विभिन्न कथानिकाओं में भिन्न-भिन्न पुरुषों की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया प्रस्तुत कर उन्हें एक दूसरे से स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करता चलता है। इन चित्तवृत्तियों का निर्देश ग्रन्थकार अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही कर देता है[94] —

यतो हि प्रतिप्राणिदुर्विज्ञेयाश्चित्तवृत्तयः। रुद्रादिवारणवदान्यमनस्काश्च बहुप्रकाराः-पुरुषा भवन्ति। यदि कश्चिद्भीरुरपि शौर्यं प्रकटयति। लुब्धोप्युदात्तायते। उदात्तोपि कदर्यवद् व्यवहरति। दुर्भगोपि सुभग इव चेष्टते। वणिगपि विटायते। विटोपि वणिज्यते। दरिद्रोपीश्वरायते। कश्चिद्धर्मरुचिः, कश्चिदर्थपरः, कश्चित् कामप्रधानः। तदेवं चित्तवृत्तीनां वैचित्र्ये सति प्रथममेव सम्यक् चित्तवृत्तिस्तं तथा कमपि प्रोत्साह्य, कमप्यनुप्रविश्य, कमपि निराकृत्य, कमपि भीषयित्वा, कमपि रंजयित्वा, स्वयनरज्यन्त्या सर्वस्वमपहृत्य निर्वासनीयः।

शृंगारमंजरीकथा की कथानिकाओं में विविध चित्तवृत्तियों के नायक प्रस्तुत होते हैं, जिन्हें मूर्ख बनाकर अपने मिथ्या प्रेम में फँसाकर वारवनिताएँ तथा कुट्टनियाँ, सर्वस्व प्राप्त कर उनसे मुख मोड़ लेती हैं अथवा कभी-कभी स्वयं भी ठगा जाती हैं। इसमें नगरवधुओं तथा कुट्टनियों के व्यक्तित्व में विशेष अन्तर नहीं आने पाता, बल्कि उनसे व्यवहार करने वाले व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया तथा व्यवहार होने से उनके व्यक्तित्व में भिन्नता आ जाती है।

पहली कथानिका का नायक ब्राह्मणकुमार रविदत्त सुरक्षित तथा धनाढ्य युवक रहता है। विटों के चंगुल में फँसकर वह वारवनिता तक पहुँच जाता है। परन्तु प्रेमाकर्षण में वह लज्जा का भी अनुभव करता है। एक बार लज्जा टूटने पर वह अपनी वृत्ति पर नियन्त्रण नहीं रख पाता है और अन्ततः अकिंचन होने पर, गणिका द्वारा निकाल दिये जाने पर भी पागल-सा उसके घर चक्कर काटते हुए सारा जीवन व्यतीत कर देता है।

दूसरी कथानिका का नायक राजकुमार विक्रमसिंह, धनी, उदार तथा सुखाभिलाषी एवं धीर तथा चतुर था। मालतिका से वह आकर्षित हुआ, परन्तु वह वसुदत्त से प्रतिबद्ध थी। उसके मोक्षपर्यन्त राजकुमार ने प्रतीक्षा की। पश्चात साथ रहते हुए राजकुमार ने उसे अमित उपहार

दिये परन्तु एक बार विमुख हुआ तो उसके घर जाना तथा उसे उपहार देना भी उसने छोड़ दिया।

तीसरी कथानिका का नायक मांधव अपेक्षाकृत चतुर था। जब उसे ज्ञात हुआ कि उसका सारा धन चुक गया है तो वह चल देता है। तब भी उसे ठगने की प्रवृत्ति से कुवलयावली तथा उसकी माता, उसका एकमात्र परिधान भी माँग लेती हैं तो वह कुट्टनी के नाक-कान काट कर सन्तुष्ट हो जाता है। दसवीं, सर्पकथानिका का नायक विनयधर भी इसी प्रकार कुट्टनी के नाक तथा ओंठ काट देता है परन्तु वह सर्पदंश आदि का छल करता है।

चौथी कथानिका का नायक सूरधर्मा वस्तुतः धूर्त ब्राह्मण था। अपना धन बचाने के लिए वह पागल-सा व्यवहार करता है परन्तु देवदत्ता ने अन्ततः कपट-मृत्यु से उसे छल ही लिया। वह धन लेकर उसे निकाल देती है।

सातवीं कथानिका का सोमदत्त अत्यन्त चतुर तथा युक्तिज्ञ था। कर्पूरिका के आकर्षण में वह कपोतिका का रहस्य प्रकट कर देता है। कुट्टनी के छल का वह तुरन्त बदला लेता है। वह न केवल कपोतिका प्राप्त कर लेता है बल्कि उससे पूर्व अर्जित सारा धन भी ले लेता है।

ग्यारहवीं कथानिका में कुरूप महासामन्त प्रतापसिंह मलयसुन्दरी को बाघ के समान नोच डालता है।

उज्जयिनी का राजा विक्रमादित्य पाँचवीं, छठी तथा तेरहवी तीन कथानिकाओं का नायक है। वह उदार, सरल तथा कर्तव्यपरायण है। वह देवदत्ता की आकाश-यात्रा की काल्पनिक कथा पर विश्वास कर लेता है। देवदत्ता के रहस्योद्घाटन करने पर वह पुरस्कार की राशि दुगुनी कर देता है। तैलिकदयिता लावण्यसुन्दरी से वह वस्तुतः प्रेम करने लगता है। लावण्यसुन्दरी की मृत्यु पर वह स्वयं प्राण त्यागने को सन्नद्ध हो जाता है। सत्य के उद्घाटन पर वह सहर्ष लावण्यसुन्दरी को उपहार–सहित उसके पति के सदन पहुँचा देता है। तेरहवीं कथानिका में राजा अपनी रानी चेल्लामहादेवी से ही छला जाता है परन्तु मूलदेव के रहस्योद्घाटन करने पर वह रानी को भी दण्डित करता है।

नौवीं कथानिका का छड्डलक प्रेम का सच्चा था। उसे ज्ञात था कि राजा उसे अशोक-वती से विलग करना चाहता है। वह अशोकवती की परीक्षा प्रेम के सन्देह में नहीं लेता, बल्कि वह नृप के सम्मुख अशोकवती के प्रेम की सात्त्विकता प्रकट करना चाहता था। अशोकवती की मृत्यु पर वह भी प्राण त्याग देता है। सुन्दरक भी इस कृत्य को जघन्य मानता है कि वह राजा को प्रसन्न करने के लिए दो प्रेमियों के बीच पड़ा। वह दुःखी होकर प्राण त्याग देता है।

आठवीं कथानिका का सर्वज्ञ वैश्य नायक रत्नदत्त इनमें सर्वाधिक श्रेष्ठ है। वह धनी तथा चतुर है। वह मान्यखेट के चक्रवर्ती की सेवा से धन अर्जित करना चाहता था। पूर्णपथक का राजा उसे अपना आधा राज्य देने को तैयार हो जाता है। परन्तु वह अस्वीकार कर देता है। मान्यखेट के राजा से भी वह दृढ़ता का बर्ताव करता है कि उसे उसकी व्यक्तिगत बातों में नहीं पड़ना चाहिए। वह प्रेम तथा आकर्षण जैसी मानवी दुर्बलताओं से ग्रस्त नहीं था। इसीलिए वह लावण्य-सुन्दरी को त्यागने में विलम्ब नहीं करता। लावण्यसुन्दरी जब उसे उसका धन लेने को कहती है तो उसका उत्तर चातुर्य-पूरित होता है[95]—

भवतीनामङ्गमेवोपयुज्यते न पुनरर्थः। स हि दीयत एव।

उसे अपने ज्ञान तथा सफलता पर आत्मविश्वास है[96]—

या कला याश्च विद्या यानि च विज्ञानानि मया शिक्षितानि तान्येव मे पाथेयम्।

तथा[97]

सर्वाणि शास्त्राणि, निखिलाः कलाः सर्वाणि विज्ञानानि च जानामि। सकृच्छ्रुतं च गृह्णामि। इदानीमेव किंचित् कौतुकं दृश्यताम्। चत्वारः कथकाः कथाः कथयन्तु, अहं सारिभिः क्रीडामि। यदि दायं विस्मरामि, यदि च ताम्बूलं न भवति, यदि कथानिकासु विस्मृतिर्भवति तदा मया किमपि न ज्ञातं भवति।

छटी कथानिका में अहिच्छत्र के राजा वज्रमुकुट की रूप ही नहीं कामलोलुपता इससे ही प्रकट हो जाती है कि वह तेली की पत्नी लावण्यसुन्दरी को पाने के लिए तैलिक पर तेल में मिश्रण का मिथ्या आरोप लगा देता है।

शृङ्गारमंजरीकथा में पुरुष पात्र की अपेक्षा नारीपात्र अधिक रूढ हैं। गणिका के अतिरिक्त पात्रियों में भी गणिकाओं की वृत्ति का आरोप कर देने से उनके व्यक्तित्व में भी अधिक वैशिष्ट्य नहीं आने पाया है। ये गणिकाएँ दो प्रकार की रहीं। प्रथम वे जो धन के लिए प्रेम करती हैं तथा दूसरी वे जो वस्तुतः प्रेम करती हैं। आठवीं कथानिका की लावण्यसुन्दरी का रत्नदत्त के प्रति तथा नौवीं कथानिका की अशोकवती का छड्डलक के प्रति एवं दसवीं कथानिका की अनंगवती का विनयधर के प्रति ऐसा ही प्रगाढ़ तथा मिथ्या-रहित प्रेम था।

उज्जयिनी की दारिका देवदत्ता वैशिकोपनिषद् में पारंगत थी। उसने कपटमृत्यु से चौथी कथानिका में न केवल धूर्त ब्राह्मण सूरवर्मा को ठग लिया अपितु पाँचवी कथानिका में राजा विक्रमादित्य को भी काल्पनिक कहानी से मोहित कर उनसे अमित धन का उपहार प्राप्त कर लिया।

उत्तराध्ययन टीका के अनुसार उज्जयिनी की गणिका देवदत्ता केवल मूलदेव से प्रेम करती थी।[98]

गणिकाओं की माताएँ, जैसे विषमशीला, भुजंगवागुरा, मकरदंष्ट्रा तथा एकदंष्ट्रा लोभ-मूलक कुप्रवृत्तियों से पूर्ण हैं। कुट्टनी विषमशीला के व्यक्तित्व का जैसा उन्मीलन शृङ्गारमंजरीकथा में हुआ है वैसा संस्कृत साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। वह वृद्धा, कुरूप, कुटिल तथा कठोरहृदया है। छल-कपट तथा विविध कला में वह निपुण है। कथानिकाओं में ये अपनी क्रूरता के कारण दण्डित भी हुई हैं। जैसे भुजंगवागुरा के माधव ने तथा विनयधर ने अनंगवती की माता के नाक, कान, अथवा ओठ काट लिये थे।

इस प्रकार भोज ने लघुकथाओं में भी एकसी विशेषता से सम्पन्न गणिका तथा उनकी माता एवं गणिकावत् प्रवृत्ति वाली कुलवती स्त्रियों के चरित्र पर सुन्दर प्रकाश डाला है वह मनोवृत्ति का कुशल चितेरा है। यही कारण है कि वह एकसी वृत्ति की महिलाओं तथा पुरुषों के चरित्र में भी भेद प्रस्तुत कर उन्हें स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान कर सका।

मनोभावों को सफलता से व्यक्त करने में भोज की लेखनी निरन्तर व्यापृत रही। रविदत्त की दुविधापूर्ण मनःस्थिति को कवि इन शब्दों में प्रकट करता है[99]—

रविदत्तोप्येतदाकर्ण्यैकतो लज्जयान्यतो मदनेन, एकतो विवेकेनान्यत उन्मथेन, एकतो गुरूपदेशस्मरणेनान्यतो यौवनकदनेनान्तः परिविलश्यमानः, किं करोमि इत्यनवस्थितचित्तवृत्तिः क्षणमतिष्ठत् ।

कहीं संवादों के माध्यम से भी मनोदशा व्यक्त की गयी है[100]—

लावण्यसुन्दरि ! पादौ मा स्प्राक्षीः । त्वं हि मम जननी भवसि ! सा तु साकूतमवादीत्-रत्नदत्त ! किमेतत् ?

इस सामान्य विवरण के अतिरिक्त भोज की दृष्टि जिन दो पात्रियों पर विशेष गयी, उनका कुछ विस्तार से यहाँ विवरण दिया जाता है—

कथानायिका शृंगारमंजरी—

शृङ्गारमंजरी कथा की नायिका शृङ्गारमंजरी को धारा के स्वामी भोजदेव के प्रासाद से सम्बन्धित वारविलासिनियों में सर्वाधिक प्रतिष्ठा-प्राप्त थी। रूप में वह मकरकेतु की कुलदेवी लगती थी।[101] उसने अपने सौन्दर्य से देवबालाओं के सौन्दर्य पर भी विजय प्राप्त कर ली थी।[102] उसके अंगप्रत्यंग से लावण्य की तरलता झलकती थी।[103] वह तरुणों की उपासनाभूमि थी।[104] उसके निर्माण में विधाता ने प्रसिद्ध उपमान रूप उपकरणों का उपयोग नहीं किया वरन् किन्हीं नूतन साधनों से ही उसकी काया सरजी।[105] वह लावण्य का सागर तथा शृंगाररस से पूरित रही।[106] उसके रूपनिर्माण का अभ्यास करने के लिए ही सम्भवतः प्रजापति ने लक्ष्मी, रति, अप्सरा आदि युवतियों का पहिले सृजन किया।[107]

उसका वेश कोमल था, वह सारी देशभाषा, गोष्ठी, दोनों प्रकार की चौसठ कलाएँ, कामसूत्र-विचार, प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका, वाकोवाक्य, लास्य, समस्या, प्रबन्धरचना, काव्यरचना, गाथा-रचना, क्रीड़ा आदि में विशेषज्ञा थी। गीत, वक्रोक्ति, काव्यार्थ का बोध, मुरज आदि वाद्य, त्याग, आदि में वह अग्रणी थी। पान, व्यसन आदि से वह पराङ्.मुखी थी।[108]

शृङ्गारमंजरी पर सभी आसक्त थे। सभी उससे ठगे गये। सबने उसे सब कुछ दिया। ब्राह्मण, राजा, राजपुत्र, वणिक्, कायस्थ, गृहस्थी आदि सभी उसके दास बने। उसका इतना आकर्षक व्यवहार था कि जो भी उसका साथ पाता, वह सोचने लगता कि शृङ्गारमंजरी का उसी पर अनुराग है। और इन रसिकों से उपहार रूप में वह हाथी, घोड़े, सुवर्ण, बहुमूल्य रत्न तथा वस्त्र प्राप्त करती थी। प्रतिदिन इसी प्रकार बढ़ता हुआ उसका धन चरमसीमा छूने लगा था। तथापि उसने अपनी वृत्ति नहीं छोड़ी थी। बन्धक के रूप में वह एक रात की पाँच सौ स्वर्णमुद्राएँ लेती थी तथापि किसी रात वह बिना बन्धक के न रही।[109]

उसे अपने इस कर्म में अधिक निपुणता प्राप्त करने की लालसा रही। यही कारण है कि उसने अपनी माता विषमशीला का वैशिकोपनिषद् की शिक्षा सावधान होकर सुनी।[110] यही नहीं वह राग के उदाहरण के रूप में कही गयी कथानिकाओं को सुनने की भी जिज्ञासा करती है।[111]

अम्ब ! कथितो नीलीरागः। वर्धते मम कौतुकम्। तत् कथ्यतामिदानीं मंजिष्ठारागः।

इस प्रकार शृंगारमंजरी वेशवनिताओं के आदर्श के रूप में प्रस्तुत की गयी है। वह व्यक्ति की अपेक्षा वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। विविध कथानिकाओं में प्रस्तुत पण्यांगनाएँ शृंगारमंजरी के लिए व्यक्त गुणों से ही प्रायः अनुरंजित हैं।

नायिका की माता विषमशीला—

शृंगारमंजरी की माता का नाम विषमशीला था। यह वृद्धा कुट्टनी थी। भोज ने इसकी जरा-जर्जरित मूर्ति का विशद विवरण प्रस्तुत किया है। अंग-प्रत्यंगों के विवरण के साथ ही उसके व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

वह दम्भ की साक्षात् मूर्ति थी। वह स्नेहरहित, लोभी, तथा ऐसी लोभी कि जिस किसी प्रकार वह धन पाने का ही प्रयास करती थी। वह कला, परचित्तज्ञान, पण्यांगनाव्यवहार, पर-वंचना, छल, वार्तालाप, विशीर्णप्रतिसन्धान आदि में चतुर थी।

वैशिक रहस्य की वह पण्डिता थी। अतः विट तथा धूर्तों से वह ठगी नहीं गयी बल्कि उन्हें ठग लिया। उसमें असत्य, दम्भ, माया, धूर्तता, मिथ्याविनय, कपटनाटक आदि विशेषताओं का वास था। वह दिखने में ऋजु परन्तु थी कुटिल। वह अधर्म, चाटुकारिता, छल, साहस, पातक आदि की आस्थान भूमि थी। वह त्रास की भी त्रासहेतु रही। वह कुटिलता का आश्रय भी थी। श्रीमानों को साररहित करने में, विदग्धों को मूर्ख बनाने में, पण्डितों को खण्डित करने में, धूर्तों को नचाने में, चतुरों को ठगने में चतुर थी। मधुपान में वह लम्पट थी। मुख से मधुर परन्तु मन से वह कुटिल थी। आँखों से प्रसन्न लगती थी परन्तु चेष्टा में दारुण थी। वार्तालाप में सरल थी। वह आकार में गुरु परन्तु स्वभाव से नीच, शरीर से स्थूल परन्तु कार्यदर्शन में सूक्ष्म थी। वह आगन्तुक को फँसाने के लिए रोती है। इसी हेतु वह कभी अकारण हँसती, कभी अपनी पुत्री को डाँटती, कभी प्रबोधन देती तथा कभी-कभी उसे घर से भी निकाल देती है तथा कभी उसे मनाती है।

वह पापाभिरुचि से सम्पन्न, अति कठोर तथा अनर्थदायिनी है। अर्थवाद को ही वह प्रधानता देती रही। मायावी मय, कुटिलमति कौटिल्य, उपनिषद् विद्या के वेत्ता उशना, धूर्तशिरो-मणि मूलदेव, शशी, सोमादित्य आदि को वह अपनी प्रतिभा के सामने सकरुण देखती है। धूर्त, विट आदि सभी उसका आदर करते हैं।[112]

विषमशीला अपनी सकलविद्याविशारदा पुत्री में भी पूर्णता नहीं पाती तथा उसे यह गुढ़ रहस्य बताती है कि प्राणियों की चित्तवृत्तियाँ दुर्विज्ञेय होती हैं। उनकी चित्तवृत्तियों को ठीक तरह से ताड़कर उनसे तदनुरूप व्यवहार करना चाहिए। स्वयं अनुरक्त न होते हुए पुरुष को अनु-रंजित करना चाहिए। राग बारह प्रकार के होते हैं। उन्हें समझकर ही व्यवहार करना चाहिए। व्याघ्र के समान भयंकर प्रेम से सदा बचकर रहना चाहिए।[113]

और अपने इन वैशिकरहस्यों को वह कथानिकाओं के माध्यम से प्रकट करती है। विविध चित्तवृत्तियों के पुरुषों, वेशवनिताओं तथा कुलीन महिलाओं के रागों को विविध रूप में प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार विषमशीला कुट्टनियों के वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करती है। उसमें अबाध कुटिलता उपलब्ध होती है। कथानिकाओं में प्रस्तुत अन्य कुट्टनियाँ भी विषमशीला के गुणों से ही अनुरंजित हैं।

शृंगारमंजरीकथा में ग्रन्थकार राजा भोज के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला गया है, जिसका विवरण नवम उच्छ्वास में प्रस्तुत किया गया है तथा साथ ही धारा नगरी का विस्तृत परिचय भी दिया गया है। इसका विवरण भी उसी उच्छ्वास में सुलभ हो सकेगा।

मानवीय सौन्दर्य–चित्रण—

शृंगारमंजरीकथा में भोज ने, सर्वप्रथम ग्रन्थकार ने स्वयं भोज के व्यक्तित्व के विभिन्न अंगों पर ही प्रकाश डाला है। उसमें एक आदर्श राजा, विद्वान् एवं विचक्षण पुरुष तथा उसकी आकर्षक मूर्ति के दर्शन करवाये गये हैं। गुण-कलापों से अलंकृत[114] तथा कनक-कांति से मिश्रित मरकत की प्रभा-सी अभिराम उसकी देह थी। वह सैकड़ों युद्धों का विजेता, भूमि का एकच्छत्र भर्ता तथा आकर्षक व्यक्तित्व से युक्त था। भोज के शारीरिक वर्णन की अपेक्षा उसके गुणों को ही विशेष प्रकाशित किया गया है।

शृंगारमंजरी का रूपचित्रण उसके नायिक पद के अनुरूप है—
उसका नखशिख-वर्णन विशद रूप से प्रस्तुत हुआ है। यथा[115]—

सततमुल्लसतो वदनचन्द्रमसः परिस्फुरत् कान्तिजालेन प्रतिहतप्रसरमग्रतस्तिमिरनिकरमिव पश्चान्निभृतनिलीनं केशपाशमुद्वहन्ती"........अन्तः सञ्चरत्तरलमधुकरेण विकसितसरोजयुगलेनेव नयनयुगलेन विराजमाना कलंकमपाकर्तुं द्विधाकृतेन शशिमण्डलेन कपोलफलकद्वयेन द्योतमाना.... ....मकरध्वजगन्धसिन्धुरस्य क्रीडामज्जनह्रदेनेव गम्भीरेण नाभि-मण्डलेन भूषितमध्यभागा........ रतिक्रीडापर्वतरत्नशिलामिव विशालां मदनकरिणो विहरणस्थलीमिव नितम्बस्थलीं कलयन्ती........ सुवृत्तयात्यर्थमुज्ज्वलया समस्तावयवालोकनार्थं कन्दर्पस्य दर्पणमालयेव नखश्रेण्यालंकृतचरणयुगला ....मदननरपतेः साम्राज्याभिषेकाय स्तनकलशपातिनीमत्यच्छविशदां सुधासलिलधारामिव स्वसौभाग्ययशः पताकामिव रतिनिधानस्तनकलशरक्षिणो मदनभुजगस्य निर्मोकपट्टिकामिव हारलतामुरसि कलयन्ती (शृंगारमंजरी)।

शृंगारमंजरी की माता विषमशीला का चरित्र उसके अभिधान के अनुरूप है। उसकी जराजर्जरित मूर्ति का भी नखशिख वर्णन किया गया है। कुट्टनी का विशद तथा सजीव वर्णन शृंगारमंजरीकथा में बेजोड़ है। नायिका के आकर्षक नखशिख वर्णन के तत्काल पश्चात् उसकी वृद्धा माता की कुरूपता का नखशिखवर्णन सुरूप तथा स्वरूप (सु+अरूप) की तुलना प्रस्तुत कर देता है।

यथा[116]—

जराप्रसरजर्जरितमूर्तिः, काशकुशकुसुमसंकाशकेशा, द्वित्रदिनविकसितशतपत्रजर्जरस्फारस्मारितपुरातनकान्त्यागन्तुकविटग्रासगृध्नुतयेव प्रतिदिन विवर्धमानमाननं दधाना,"...... जरन्महिषविषाणशकलप्रतिमं भ्रूयुगलं धारयन्ती, वयः परिणतिवशादीर्षन्निमग्नं रागान्धजननिपातान्धकूपयुगलमिव लोचनद्वयं बिभ्राणा........अतिप्रलम्बतया सकलभुजंगबन्धनपाशाविव श्रवणपाशौ कलयन्ती ....विषमविषधराशीप्रायोपलक्ष्यमाणद्वित्रदशना............तैलिकयन्त्रयष्टिप्रतिमेनोरुयुगलेन ... .विराजमाना...........अधोनिहितदृष्टिः...........कलिकालवृत्तिरिव पतितद्विजा............... (विषमशीला)।

भाइलस्वामिदेवपुर की वेश्या लावण्यसुन्दरी का रूपचित्रण संक्षिप्त परन्तु आकर्षक है।[117]

प्राकृतिक सौन्दर्य–चित्रण—

शृंगारमंजरीकथा के प्रारम्भ में ही कवि ने अपना अभिमत व्यक्त किया है कि कथा में नगर आदि का वर्णन होने से उसका आकर्षण बढ़ जाता है[118]—

कथा हि कीर्त्यमाना नगरादिवर्णनपुरःसराः सौन्दर्यमावहति ।

इस तथ्य की पुष्टि भोज के सरस्वतीकण्ठाभरण से भी होती है[119]—

ऋतुरात्रिदिवार्केन्दूदयास्तमयकीर्तनैः ।
कालः काव्येषु सम्पन्नो रसपुष्टिं नियच्छति ॥

कालिदास, सुबन्धु, बाण आदि के समान भोज की लेखनी भी विविध दृश्यों का चित्रांकन करने में स्थान-स्थान पर लीन हुई है। नगर,[120] उद्यान,[121] तालाब,[122] सागर,[123] प्रातः,[124] सन्ध्या,[125] चन्द्रोदय,[126] पर्वत[127] आदि के साथ ही वसन्त,[128] ग्रीष्म,[129] वर्षा,[130] शरत्,[131] शिशिर,[132] आदि ऋतुओं का भी विस्तृत तथा सूक्ष्म के साथ ही हृदयावर्जक वर्णन किया गया है। हेमन्तवर्णन शृंगारमंजरीकथा में नहीं है। चम्पूरामायण में हेमन्तवर्णन विस्तार से स्थान पा सका था।[133] सम्भवतः इसीलिये यहाँ उसे प्रस्तुत नहीं किया गया।

प्रातः सन्ध्या तथा चन्द्रोदय एवं ऋतुओं का वर्णन उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत हुआ है। वह विविध रूपात्मक है। ऋतुओं के परिवर्तन की स्थितियों का सूक्ष्म विवरण देना कवि की पैनी दृष्टि का परिणाम है। मानव तथा प्रकृति का निकट सम्बन्ध होने से इन ऋतुओं का मानव के मनोभावों पर गहरा प्रभाव होता है। प्रस्तुत कथा में प्रायः इसी उद्देश्य से इन विविध उद्दीपक अवस्थाओं को प्रस्तुत किया गया है।

बाण की कादम्बरी में विन्ध्य का संक्षिप्त विवरण है, परन्तु शृंगारमंजरीकथा में उससे लगभग पाँच बार अधिक विस्तृत विवरण दिया गया है। यद्यपि इन विवरणों की प्रकृति में अधिक अन्तर नहीं है। वन की सघनता तथा उसमें रहने वाले वन्यपशुओं का दोनों में विवरण प्राप्त होता है। शबर-सेनापति[134] की कल्पना के मूल में भी सम्भवतः कादम्बरी का शबर सेनापति रहा।

धनपाल की तिलकमंजरी के अयोध्यावर्णन में नगर की जिन मुख्य विशेषताओं को उभारा गया है, शृंगारमंजरीकथा के धारावर्णन में प्रायः उन्हें विस्तार दिया गया है। गिरिग्राम का भी संकेत प्राप्त होता है।[135]

महिष, मृग, बालमृग, वानर, वराह, पक्षी आदि[136] का स्वाभाविक वर्णन किया गया है। अभिज्ञानशाकुन्तल में रथ से डरे हुए हाथी का शब्दचित्र प्राप्त होता है।[137] शृंगारमंजरीकथा में दावानल से त्रस्त गजयूथ का दृश्य स्वाभाविक है। साथ ही उनकी जलकेलि के विविध चित्र भी स्वाभाविक तथा मनोरंजक हैं।[138]

गज[139] तथा अश्व[140] के अंग-प्रत्यंगों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इन वर्णनों से भोज की तद्विषयक विशेषज्ञता प्रतीत होती है। युक्तिकल्पतरु में गजपरीक्षा तथा गजों के गुण-दोषों का विवेचन किया गया है,[141] तथैव वहीं पर हय-विवरण भी प्राप्त होता है।[142] भोज-विरचित 'शालिहोत्र' में भी अश्व-चिकित्सा तथा अश्वों के गुणदोष बताये गये हैं।[143] इससे स्पष्ट है कि भोज हयशास्त्र का विशेषज्ञ था। मल्लिनाथ ने शिशुपालवध की टीका में अश्वगुणों से सम्बन्धित लगभग 15 श्लोक भोज के नाम से उद्धृत किये हैं जो उपर्युक्त भोजविरचित अश्वसम्बद्ध दोनों ही ग्रन्थों में सुलभ नहीं होते।[144] डूबकुण्ड शिलालेख में भी भोज का अश्वों के विशेषज्ञ के रूप में स्मरण किया गया है।[145] उसने तत्सम्बद्ध न केवल लक्षण-ग्रन्थ रचे अपितु उनका साहित्य में सौम्य तथा श्रेष्ठ स्वरूप भी प्रस्तुत किया। शृंगारमंजरी का अश्व-वर्णन बाण की कादम्बरी के इन्द्रायुध

के वर्णन के अधिक निकट है ।[146] परन्तु भोज ने अश्वशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में ही वर्ण्य अश्व को दिव्य-स्वरूप प्रदान किया है । यथा[147]—

दक्षिणावर्त रमणीयशंखें.......गभीरमाशये न तेजसि, मसृणं रोमसु न कशाभिघातविसहने । कृपाणमिव धारासु शुद्धं तीक्ष्णं च ।.......प्रथमं वीथीषु ।

आवर्त, तेज, धारा, वीथी आदि अश्वसम्बद्ध विशिष्ट शब्द है । दक्षिणावर्त अश्व श्रेष्ठ माना जाता है ।[148] कशाघात को न सहते हुए निसर्गतः धारा (चाल या गति) में प्रवृत्त होते हुए हर प्रकार की वीथि में जो अश्व पारंगत होता है वही अश्व श्रेष्ठ माना जाता है ।[149] अश्व का आभूषण गति मानी गयी है ।[150] हाथी की कुम्भसन्धि के लिए 'आरक्ष' शब्द का प्रयोग, पूँछ की जड़ के लिए 'पेचक' शब्द का उपयोग आदि[151] के साथ ही हाथी की समग्र विशेषताओं को व्यक्त करना, भोज की गजशास्त्र विशेषज्ञता को प्रकट करता है । 81 क्रमांक का पत्र नष्ट होने से हमें भोजविरचित गजवर्णन अपूर्ण ही प्राप्त है । अश्ववर्णन भी खण्डित ही सुलभ है ।

शृंगारमंजरी में स्वयं भोज को विजयकुंजर से उपमित किया गया है[152]—

मानिनीमानद्रुमोन्मूलनमकरध्वजैकविजयकुंजरः ।

इस ग्रन्थ में अन्यत्र 'जयकुंजर' का स्मरण किया गया है[153] —

छिद्यत इव जयकुंजरदशनकिरणविसरैः ।

कोदण्डकाव्य में भी जयकुंजर से सम्बन्ध एक गाथा प्राप्त होती है[154]—

असिकिरणरज्जुवद्धं जेणं जयकुंजरं तुमं धरसि ।
जयकुंजरस्स थंभोए अच्छंति सोक्खेण ।।

इस प्रकार शृंगारमंजरीकथा में वर्णित विविध दृश्य तथा पशुओं के वर्णन में स्वाभाविकता तथा विशेषज्ञता सुलभ होती है ।

दृश्यचित्रण तथा व्यक्तिचित्रण में भोज की विशेष आसक्ति रही है । शृंगारमंजरीकथा की स्थिति अन्य कथाओं से कुछ भिन्न है । इसमें प्रत्येक कथानिका दूसरी से भिन्न तथा स्वतन्त्र है । वह अपने लघु कलेवर में एक सम्पूर्ण उद्देश्य को प्रस्तुत करती है । कथानिकाओं के इस लघु अवकाश में भी भोज ने इन विविध चित्रणों का निवेश कर दिया है । ये उद्दीपक तो रहे हैं परन्तु कहीं कहीं ये ही प्रमुख जैसे प्रतीत होने लगते हैं ।

आठ पृष्ठों में रची गयी कुट्टनिका-कथानिका के विन्ध्याटवी वर्णन में ही पाँच पृष्ठ लग गये है । पाँच पृष्ठों की सर्पकथानिका में चार पृष्ठ वसन्तवर्णन में ही निरत हैं । मूल कथानक को बढ़ाने में केवल एक पृष्ठ का ही उपयोग हुआ है । ये वर्णन प्राचीन कथाओं की प्रवृत्ति के अनुरूप ही पद-पद पर कथानक को विश्राम देते चलते हैं । इन वर्णनों को वर्णों तथा शब्दों की झंकार से विशेष आकर्षक बनाया गया है ।

वर्णन-प्रक्रिया के कतिपय गौण अंग—

भोज ने इन वर्णनों को रुचिकर बनाने के लिए अलंकार, गुण आदि के साथ ही अन्य साधनों का भी उपयोग किया है । यद्यपि वे साधन कभी-कभी अलंकारों से भी सम्पृक्त हो जाते हैं परन्तु उनका स्वतन्त्र विवरण ही अधिक समीचीन है ।

(क) कविसमय—

कविसमय के अनुरूप हास, उपहास आदि के लिए पुण्डरीक तथा कुमुद आदि का उपयोग लिया गया है।

यथा—

1. क्वचिद्विकसितोद्दण्डपुण्डरीकखण्डतया हसन्तीव।[155]
2. विचित्रयन्त्रदर्शनोद्भ्रान्तचेतसो भित्तिघटितविकसितसितसरोजव्याजादुपहसदिवातिविचक्षणानपि प्रेक्षकान्।[156]
3. क्वचिद्विकचकुमुदकाननच्छलेन हसदिव।[157]

'हृदयं स्फुटित्वा अशोकवतीभूता' में 'हृदयस्फोट' कविसमय ही है।[158]

(ख) वीप्सा—

अभिव्यक्ति में शक्तिसंचार तथा अभीष्ट को स्फुट करने के लिए वीप्सा का भी स्थान-स्थान पर प्रयोग प्राप्त होता है।[159]

तथैव 'विरलदलतया विरलशाखतया' आदि[160] का भी उपयोग हुआ है।

(ग) पर्याय—

पर्याय शब्दों का कई स्थलों में एक साथ प्रयोग प्राप्त होता है। यथा[161]—

कुशला कला-कलापे, चतुरा पर-चित्तज्ञाने, निपुणा पण्यंगनाव्यवहारे, प्रवीणा परवंचनायां, दक्षा दुर्दमभुजंगदमने, विदग्धा विप्रलम्भे, पेशला वैशिकालापे, प्रगल्भा सगर्भोक्तिषु, अशीर्णबुद्धिविशीर्णप्रतिसन्धाने।

कादम्बरी के शुकनासोपदेश में भी इसी प्रकार का शब्द प्रयोग किया गया है।[162]

(घ) गुणबिम्ब—

कहीं-कहीं एक ही गुण दो-दो अंगों में देखे गये हैं। यथा[163]—

अतिमसृणं त्वचि विलोमे च............अतिमहान्तं वपुषि सत्त्वे च, अतिरक्तं तालुनि नेत्रान्तयोश्च।

अथवा[164]

प्रौढिमागच्छति..........गामिनीषु क्रीडाकमलदीर्घिकासु च.......प्रौढिमुद्वहति दिनकरमयूखजाले स्मरशरनिकरे च।

(ङ) विलोम—

विलोम शब्दों से विरोधीगुणों का एक साथ निर्देश किया गया है यथा[165]—

मधुरा मुखे, कुटिला मनसि, प्रसन्ना दृशि, दारुणा चेष्टिते, सरला सम्भाषणे, तरला भुजंगान् प्रति प्रतिपन्नपालने।

गुरुराकारे, लघु चेष्टिते, उच्चा प्रमाणे, नीचा स्वभावे। स्थूला वपुषि, सूक्ष्मा कार्यदर्शने।

(च) निर्वचन—

कहीं निर्वचनों के माध्यम से गुण या घटना को प्रकाशित किया गया है[166]—

(क) तस्य च रविणा दत्तत्वात् रविदत्त इति पिता नाम चक्रे ।

(ख) अति विदग्धं विदग्धनामानं नियुज्य ।

यहाँ विशेषण के माध्यम से विदग्ध शब्द की निरुक्ति की गयी है ।

(छ) वक्रोक्ति—

वक्रोक्ति से भी गुणों को प्रकाशित करने का कार्य लिया गया है । यथा[167]—

त्वमेवास्याः प्रियोसीति वैशिकोक्तिः । साप्यतिशयकमनीयेति प्रलापना । त्वमति सुभग इति प्रत्यक्षस्तुति..........।

प्राचीन प्रथित अभिधानों को विशेषण बनाकर पर गुणगान करने की प्रक्रिया अपनायी गयी है यथा[168]—

(क) देवोप्यखिलजनतासुबन्धुः श्रीभासो गुणाढ्यः प्रशस्तगीर्वाणः ।

(ख) मया तस्याः स्वकौटिल्येन ।

इसी प्रकार सर्वत्र प्रक्रिया अपनायी गयी है ।

अन्वेषण-प्रक्रिया के लिए प्रयुक्त वाक्य वस्तुस्थिति का प्रकाशक है[169]—

प्रतिविपणि, प्रतिचत्वरं, प्रतिराजपथं, प्रतिगृहं चान्विष्यन्नेव.......... ।

(ज) प्राकृत का प्रयोग—

अपनी अभिव्यक्ति को प्रेषणीय बनाने तथा अपने विचारों को उपयुक्त शब्दों में प्रेषित करने के लिए भोज ने कहीं प्राकृत शब्दों का, कहीं प्राकृत वाक्यों का तथा कहीं प्राकृत शब्दों का संस्कृत रूपान्तर कर उनका प्रयोग कर लिया है ।

ठक,[170] टिरिटिल्लितानि,[171] कडितल्ला,[172] तुडिताल,[173] रहवक्क,[174] अव्वा,[175] अक्का,[176] कडवक्क,[177] मूत्करोषि,[178] वण्ठ[179] आदि ऐसे ही शब्द हैं । इसी प्रकार अव्वा जाणइ[180] उरथ विअले,[181] वाई ए कुक्कुड्ड वासइ, एक्कु, लियंतह, दइजउ नासइ[182] आदि वाक्यों का प्रयोग भी ध्यातव्य हैं । पत्तनिका[183] जैसे अप्रचलित शब्दों के साथ ही अविद्या[184] जैसे दार्शनिक शब्दों का, ग्रहणक[185] तथा मटि[186] जैसे पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया गया है ।

(झ) संवाद—

वर्णन-बहुलता होने पर भी कथानिकाओं में संवादों का आयोजन किया गया है । संवादों में प्रयुक्त वाक्य छोटे-छोटे तथा स्फुट हैं । उनमें समास आदि का प्रायः उपयोग नहीं हुआ है । कथानक को आगे बढ़ाने तथा चरित्र को प्रकट करने में इन संवादों का विशेष उपयोग हुआ है । इन संवादों की भाषा बोलचाल की, परन्तु स्वाभाविक है । यथा[187]

ततो देवदत्तयाभिहितम्—अरे किं तव 'अव्वा जानाति' उताहम् ।
ततस्तेन कृतांजलिनाभ्यधायि— न किंचिद् अव्वा जानाति ।
भवत्येव सर्वं जानाति ।
ततो देवदत्तया प्रत्यवादि—यद्यहं जानामि तदा निर्गच्छ ।
निर्गच्छ ।। इत्यभिधाय पार्ष्णिप्रहारं दत्वा निर्घाटितः ।

इस प्रकार शृंगारमंजरीकथा में प्रस्तुतीकरण का प्रायः प्रत्येक पक्ष सशक्त बनाने का आयास हुआ है ।

शृंगारमंजरी-कथा की शैली—

शृंगारमंजरीकथा उस युग की कृति है जब साहित्य में अलंकरण की प्रवृत्ति ने स्पर्धा प्राप्त कर ली थी। सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी तथा धनपाल की प्रौढ़ गद्य-रचनाएँ अपने समृद्ध काव्य-वैभव, चमत्कार तथा सौष्ठव की आदर्श बन गयीं। भोज की शृंगारमंजरीकथा ने अपने उद्देश्य को अविस्मृत करते हुए गद्य के प्रचलित वैशिष्ट्यों को भी प्रस्तुत कर दिया। काव्य के इन विविध मानदण्डों के आधार पर इस पर दृष्टिपात कर लेना भी अवसर प्राप्त होने से यहाँ शृंगारमंजरी-कथा की कतिपय काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डाला जायेगा।

भोज इस तथ्य को स्वीकार करता है कि रीतियाँ वाङ्मय का प्राण है, तथा वृत्तियाँ उसका हृदय। अनुप्रास उसका जीवन है तथा रचना के तीन प्रकार उसका शरीर। उक्तियाँ उसकी दिव्य कान्ति हैं। प्रायः सारी वक्रोक्ति की कान्ति श्लेष से पुष्ट होती है। वाकोवाक्य से मन प्रसन्न होता है। वाग्वैदग्ध्य यमक तथा चित्र से ही सम्भव है।[188]

(क) गति—

औचित्यपूर्ण गद्य, पद्य तथा मिश्र रचना को भोज 'गति' शब्दालंकार कहता है[189]—

गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्ये यत्सा गतिः स्मृता।

अयैौचित्यादिभिः सापि वागलंकार इष्यते॥

भोज के अनुसार गद्य प्रमुखतया दो प्रकार का होता है[190]—

(1) उत्कलिकाप्राय तथा (2) पद्यगन्धि।

गद्यमुत्कलिकाप्रायं पद्यगन्धीति च द्विधा।

उत्कलिकाप्राय—

उत्कलिकाप्राय गद्य दीर्घ समासों से युक्त होता है। यह प्रायः वर्णन के लिए समुचित रहता है। शृंगारमंजरीकथा में इस प्रकार के गद्य का अधिक उपयोग हुआ है। उदाहरण के लिए यहाँ एक गद्यखण्ड दिया जाता है[191]—

उड्डीनशिखण्डिमण्डलीकलापकल्पिताखण्डलकोदण्डकाण्डमण्डितगगनमण्डलाम् अतिचटुल-चातकचंचुपुटाचम्यमानगिरिकुहरनिर्झराम्बुविप्रषम्..............।

पद्यगन्धि—

पद्यगन्धि या वृत्तगन्धि गद्य में पद्य के चरण अथवा उसके अंश आ जाने से गद्य में भी पद्य की ध्वनि का सन्निवेश हो जाता है। तात्पर्य यह है कि वृत्तगन्धि गद्य पद्यगर्भित होता है। शृंगारमंजरीकथा में ऐसे स्थल पद-पद पर पाये जा सकते हैं। यथा, रथोद्धता का चरण इस पंक्ति में प्राप्त किया जा सकता है[192]—

पच्यमानयवपिष्टवट्टिकासुरभितकुटीरप्रांगणैः।

उपेन्द्रवज्रा का क्रम इन वाक्यखण्डों में पाया जा सकता है[193]—

प्रवृत्तनृत्तामिव समीरणोल्लासिभिः किसलयसहस्रैः।

एवं[194]

मुहुर्मुहुर्निगममार्गमुद्ग्रीवम्।

मालिनी की गन्ध इन वाक्य-खण्डों में पायी जा सकती है—

चिरनिपतितजीर्णपर्णप्रकारसंकुलतया ।[195]

एवं

तरुणतपनतापक्लमोपजनित ।[196]

भोज ने गद्यशैली के अन्य भी प्रकार बताये हैं। यथा—ललित, निष्ठुर, चूर्ण तथा आविद्ध। परन्तु उनका क्रमशः कैशिकी, आरभटी, वैदर्भी तथा गौड़ी में समाहार कर दिया गया है।[197]

ललितन्निष्ठुरं चूर्णमाविद्धं चेति योपरः ।
विशेषः स तु गद्यस्य रीतिवृत्योर्भविष्यति ।।

तथा रत्नेश्वर मिश्र की इस पर रत्नदर्पणा टीका में इसका स्पष्टीकरण प्राप्त होता है—

ललितं कैशिक्यादौ, निष्ठुरमारभट्यादौ, चूर्णं वैदर्भ्यादौ, आविद्धं गौडीयाप्रभृतौ यथायथमन्तर्भवतीति नोक्तभेदाः परिसंख्याता इत्यर्थः ।

इनमें से चूर्णगद्य अत्यन्त स्फुट होता है, जिसका उदाहरण वैदर्भी रीति के उदाहरण से अभिन्न होगा। इन दोनों की प्रकृति प्रायः एक-सी है।

(ख) रीति—

भोज के अनुसार रीतियाँ छः होती हैं[198]—वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी, आवन्तिका, लाटी तथा मागधी।

वैदर्भी साथ पांचाली गौडीयावन्तिका तथा ।
लाटीया मागधी चेति षोढा रीतिर्निगद्यते ।।

वैदर्भीरीति—

समासरहित अश्लिष्ट शब्दगुम्फनामयी वाणी वैदर्भीरीति कहलाती है। यह सरल तथा सहज ग्राह्य भाषा से युक्त होती है[199]—

तत्रासमासा निश्शेषश्लेषादिगुणगुम्फिता ।
विपंचीस्वरसौभाग्या वैदर्भीरीतिरिष्यते ।।

भोज की शृंगारमंजरीकथा में वैदर्भी रीति पद-पद पर पायी जा सकती है—

यथा[200]—

साब्रवीत् भवतां सदृशाकारो मम भ्रातासीत् तमनुस्मृत्य ममाश्रु प्रवृत्तम् । तद् भवन्तोपि मम भ्रातरो भवन्ति ।

अथवा—

सुवृत्तयात्यर्थमुज्ज्वलतया समस्तावयवालोकनार्थं कन्दर्पस्य दर्पणमालयेव नखश्रेण्यालंकृत-चरणयुगला ।

गद्य का चूर्ण प्रकार भी ऐसा ही होता है।

पांचाली रीति --

ओज की कांति से रहित पाँच--छः पदों के समास वाली पांचाली मधुर तथा सुकुमार होती है[201]--

समस्तपंचषपदामोजः कान्तिविवर्जिताम् ।
मधुरां सुकुमारां च पांचालीं कवयो विदुः ।।

उदाहरण के लिए यह गद्यखण्ड -

मदनदहनस्थानसद्मनामिवाशोकपादपानां शालिकाभिरलंकृतानंगभवनप्रांगणोपान्तभूमि-भागम्..........।[202]

पांचाली रीति की विशेपताएँ लिए हुए हैं।

गौड़ीया--

ओज गुण की विशेपताओं से सम्पन्न समस्त उद्भट पदपंक्ति को गौडीरीति कहते हैं[203]--

समस्तात्युद्भटपदामोजः कान्ति-गुणोधिताम् ।
गौडीयेति विजानन्ति रीतिं रीतिविचक्षणाः ।।

विन्ध्याटवी के वर्णन में इसक उदाहरण प्राप्य हैं। यथा[204]--

क्वचिन्निबिडतरतरुगहनतिरोहितप्रान्तैर्दूरादपिटिटिट्भारटितसूच्यमानै..........।

अथवा

परिधानीकृतमयूरपिच्छप्राग्भारैर्गृहीतधान्वनधनुर्भिरात्तद्वित्रकाष्ठमयमार्गणैर्मृगया-प्रवृत्तैः...............।

आवन्तिका रीति--

इस रीति में दो-तीन अथवा तीन-चार पदों का समास रहता है। इसमें पांचाली तथा वैदर्भी की मध्यावस्था होती है[205]--

अन्तराले तु पांचालीवैदर्भ्योर्यविर्तिष्ठते ।
सावन्तिकासमस्तैः स्याद्द्वित्रैस्त्रिचतुरैः पदैः ।।

यथा[206]--

दक्षिणाशापथिकतां गतमात्मनः प्रमोदैकनिमित्तं
मित्रमवगम्य परिम्लानाम्बुजमुखेष्वतिशुचेव शीर्यमाणेषु
नलिनीवनेषु ।

शृंगारमंजरीकथा में यह रीति व्यापक रूप से प्राप्त होती है।

लाटीया रीति--

जहाँ सारी रीतियों का मिश्रण हो जाय, वह लाटी रीति हैं[207]--

समस्तरीतिव्यामिश्रा लाटीया रीतिरुच्यते ।

शृंगारमंजरीकथा से इसका यह उदाहरण दिया जा सकता है[208]--

विरलगन्धतैलाविलविरचितातिरमणीयवेणिकासु बहल-
तरुमधूच्छिष्टस्थगितबिम्बाधरासु मसृणमसृणेन कश्मीरजन्मना
पिंजरिततनुलतासु गृहीतनिबिडकूर्पासिकासु शिशिरसमयव्रतमिव
प्रतिपन्नासु विलासिनीषु ।

मागधी--

एक रीति प्रारम्भ कर जहाँ उसमें दूसरी रीति का सन्निवेश कर दिया जाय वहाँ मागधी रीति होती है। रीतिखण्डन भी रोचकता बढ़ाता है, अतः यह दोष नहीं माना जा सकता।[209]

पूर्वरीतिरनिर्वाहे खण्डरीतिस्तु मागधी।

तथा टीका—

रीतिखण्डनेपि हि सन्दर्भसौभाग्यसम्पत्तिः शक्तिमेवाविष्करोति।

यथा—

सकलभुवनतलवर्तिरमणीयोपादानपरम्परामादाय भगवता प्रजापतिना निर्मिता।

इस वाक्यखण्ड का प्रारम्भ पांचाली रीति से होता है परन्तु अन्त वैदर्भी से।

(ग) गुण--

भोज के अनुसार गुण तीन प्रकार के होते हैं—(1) बाह्य अर्थात् शब्दगुण, (2) अभ्यन्तर अर्थात् अर्थगुण तथा (3) वैशेषिक अर्थात् दोषगुण। इनमें से प्रत्येक गुण के 24 भेद होते हैं। यथा—श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, कान्ति, उदारता, उदात्तत्व, ओज, औजित्य, प्रेम, सुशब्दता, समाधि, सौक्ष्म्य, गाम्भीर्य, विस्तर, संक्षेप, संमितत्व, भाविकत्व, गति, रीति, उक्ति तथा प्रौढि।

गुणों का यह विभाजन भोज का अपना है। अग्निपुराण के गुण-विभाजन की इससे समता है। परन्तु अपर विद्वानों में गुणों का यह विभाजन प्रतिष्ठा नहीं पा सका। फलतः यहाँ ओज, माधुर्य, प्रसाद आदि सुप्रसिद्ध त्रिगुणों की दृष्टि से ही समीक्षा समुचित है।

ओज—

ओज गुण के उदाहरण के रूप में शृंगारमंजरीकथा का यह उद्धरण दिया जा सकता है[210]—

जरदजगरश्वाससन्धुक्षमाणज्वालावलीजटिलितेषु प्लुष्यमाणक्षुद्रकीटकुटुम्बकठिनत्वक्तडत्कारवाचालेषु भयचकितोड्डीयमानशकुनिकुलपक्षपालीपवनप्रेङ्खितशिखेषु............।

माधुर्य—

मदनदहनभवान्मन्दमन्दमान्दोलितविकासोन्मुखशेफालिका.......... ।[211]

अथवा

अभिनवाविर्भवलावण्यसंवर्गितकपोलतयापरपरिपाकालिंगितफलेव लवलीलता।[212]

प्रसाद —

ततः स एकतो मदनेनान्यतोनुरागेणापरतः पयोदसमयेनान्यतस्तद्विभ्रमस्मरणेन मुहुर्मुहुः कदर्थ्यमानः कष्टां दशामनुभवन् उत्कण्ठुलः कथं कथमपि प्रावृषमनैषीत्।[213]

भोज की शृंगारमंजरीकथा में गुणों का यथावसर सन्निवेश किया गया है। विन्ध्याटवी के वर्णन में ओज की बहुलता है। शृंगार, वसन्त आदि के वर्णन में माधुर्य की तथा अन्यत्र सर्वत्र प्रसाद की स्थिति है।

शृंगाररस से पूरित होने से समग्र रूप से देखा जाय तो इस कृति में माधुर्य तथा प्रसाद की ही बहुलता है। स्वयं ग्रन्थकार के अनुसार शृंगारमंजरीकथा का गद्य ललित पदों से आवर्जित है[214]—

शृंगारमंजरीगद्यप्रवृत्तिरिव सुललितपदा ।

(घ) वृत्ति—

भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में छः वृत्तियाँ गिनायी हैं[215]—कैशिकी, आरभटी, सात्त्वती, भारती, मध्यमारभटी तथा मध्यमकैशिकी। शृंगारप्रकाश में अन्तिम दोनों के स्थान पर विमिश्रा वृत्ति की कल्पना कर उनकी संख्या पाँच कर दी गयी है।[216] परन्तु रूपक प्रकरण में अन्तिम दो को छोड़कर सर्वप्रचलित चार रीतियाँ ही स्वीकार की गयी हैं[217]—

शृंगाररसनिर्भरा शृंगारमंजरीकथा सुललित पदों में विरचित है। स्वभावतः उसमें कैशिकी वृत्ति ही आद्योपान्त व्याप्त है। सरस्वतीकण्ठाभरण के अनुसार कैशिकी वृत्ति में सुकुमार अर्थ का निवेश होता है[218]—

सुकुमारार्थसन्दर्भा कैशिकी तासु कथ्यते ।

शृंगारप्रकाश में कैशिकी की विशेषताएँ इस प्रकार सुलभ होती हैं[219]—

या श्लक्ष्णनेपथ्यविशेषचित्रा
स्त्रीसंयुता या बहुनृत्तगीता ।
कामोपभोगप्रभवोपचारा
तां कैशिकीवृत्तिमुदाहरन्ति ॥

वेशवनिताएँ तथा उनकी एकमात्र कामवृत्ति के सन्दर्भ में विरचित शृंगारमंजरीकथा स्त्री–बहुला होने के साथ ही नृत्य, कामोपभोग आदि से भी पूर्ण है। कामानुरूप उसमें नेपथ्य का भी अभाव नहीं है। इन सारे तथ्यों की इस कृति में प्रचुरता ही है। स्वभावतः शृंगारमंजरीकथा कैशिकीवृत्ति से अनुरंजित है।

(ङ) कथा की भाषा—

शृंगारमंजरीकथा संस्कृत भाषा में विरचित है। वह कथागोष्ठी में सुनाने के लिए रची गयी है।

'कामय्यपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु स्वामी'

कहकर भोज की विदग्धमण्डली ने उनसे कथा सुनाने की प्रार्थना की और भोज ने यह कथा रची। भोज ने ऐसी कथागोष्ठी में सुनायी जाने वाली कथा के लिए मध्यम भाषा का विधान किया है। ऐसी कथा न तो अत्यन्त संस्कृत में तथा न अत्यन्त देशभाषा में होना चाहिये[220]—

नात्यन्तं संस्कृतेनैव नात्यन्तं देशभाषया ।
कथागोष्ठीषु कथयन्लोके बहुमतो भवेत् ॥

यही कारण है कि भोज ने इस कथा मे स्थान-स्थान पर लोकभाषा में प्रचलित शब्दों का भी निवेश कर दिया। टिरिटिल्लितानि, ठक, कडितल्ला, रहवक्क, खोंगलग, तुडिताल, शूरवण्ठ आदि ऐसे ही प्राकृत के अथवा देशी शब्द हैं।[221] ढोण्ढा, छड्डल, तिल्लपैक, वडरक, चिल्लमहादेवी आदि[222] तद्युगीन लोकप्रचलित अभिधानों को भी ग्रन्थ में स्थान दिया गया है। इन शब्दों को भोज की संस्कृत भाषा ने आत्मसात् कर लिया है। प्रचलित प्राकृत शब्दों से संस्कृत का शब्दकोष बढ़ाने की भोज की प्रवृत्ति रही है।

यही नही प्राकृत वाक्यों को भी कथाओं के मध्य स्थान प्राप्त हुआ है। यथा[223]—

(1) अव्वा जाणइ,

(2) उत्व विअले,

(3) वाई ए कुक्कुड्ड वासइ, एक्कु लियंतह दुइजउ नासइ।

ग्रन्थ के अन्त[224] में चार प्राकृत गाथाएँ भी रची गयी हैं। वे अब खण्डित अवस्था में प्राप्त हैं। गाथाएँ इस प्रकार हैं—

सिंगारमंजरिं पाविऊण देवी सरस्सई अज्ज।
मयरंदपाणम···· ···· ··· ॥
सिंगारमंजरिं पाविऊण देवीए उअह वाणीए।
सहग्ग–जस–पडाया···· ···· ···· ॥
·······ऊणं जस कहविहु सिंगारमंजरिं उअह।
णियसोह (ग्ग) वडाया···· ···· ····॥
(सिंगारमंजरिं पावि) ऊण वाणीए मणहारा ये वि।
कण्णावयंसतोहाभौ···· ···· ···· ॥

इसी प्रकार गाथाओं में विरचित भोज का शिलांकित अवनिकूर्मशतम् भी प्राप्त होता है। प्राकृत शब्द, वाक्य तथा गाथाएँ शृंगारमंजरीकथा में अधिक मात्रा में नहीं है। प्रायः परम्परागत अलंकृत संस्कृत भाषा का ही प्रयोग हुआ है। क्योंकि भोज की कथागोष्ठी मे ऐसे सामान्य जन नही थे जिनको मिश्रित भाषा की आवश्यकता पड़े। उनकी गोष्ठी में इस कथा के सुनने वाले कुछ ही लोग थे परन्तु वे भी उनके स्नेही नरेश तथा आप्त विद्वान् थे[225]—

कतिपयैर्द्विद्भिराप्तैः प्रणयिभिर्नृपतिभिश्चोपास्यमानचरणकमलो महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवः सविनयं प्रार्थ्यत··········· अस्माकं प्रीत्यै व्युत्पतये च कामप्यपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु स्वामी।

धनपाल[226] जैसे सुरुचिसम्पन्न तथा आप्त विद्वानों की उस सभा में यदि ऐसी अलंकृत तथा प्रौढ़ भाषा का प्रयोग किया जाय तो कोई दोष नहीं, क्योंकि श्रोता उसे ग्रहण करने में समर्थ थे।

साथ ही व्युत्पत्ति के लिए विरचित होने से उसमें शास्त्रीय पुट भी आ गया है। कामशास्त्रीय तथा वेशोपनिषद् की व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही द्वादश रागों तथा उनके परिप्रेक्ष में मानवचित्तवृत्तियों का अंकन होने से कृति में स्वाभाविक गम्भीरता आ जाती है। तथापि भोज ने इस कृति को यथासम्भव सरल, सरस तथा हृद्य बनाने का आयास किया है। कृति को लोकार्षक बनाने तथा उसमें स्वाभाविकता लाने के लिए भोज ने अपने युग में अधिक प्रचलित लोकभाषा के शब्द तथा लोकाभिधानों को भी इस रचना में स्वीकार कर लिया है।

अधिक लोभ के परिणाम में प्राप्त होने वाली हानि को 'माया मिली न राम' कहते हैं। भोज के युग में प्रचलित इसी मुहावरे का प्राकृत में आकर्षक प्रस्तुतीकरण हुआ है[227]—

वाई ए कुक्कुडु वासइ।
एक्कु लियंतह दुइजउ नासइ॥

यह 'वदनक' नामक प्राकृत छन्द में विरचित है। प्रथम पंक्ति इस दृष्टि से अपूर्ण है। इसमें 4+4+4+ भगण होता है।[223]

(च) सूक्तियाँ—

जो काव्य में सूक्ति-निर्माण करने में जितना अधिक सफल होता है, अपनी बात को साधारण बना सकने में जितना चतुर होता है। वह उतना ही श्रेष्ठ कवि होता है। कालिदास, भर्तृहरि तथा तुलसीदास ने इस दृष्टि से पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की। शृंगारमंजरीकथा में ऐसी सूक्तियों का अभाव नहीं है।

जैसे—गार्हस्थ्यं हि निखिलाश्रमजीवभूतम्।

तथा इसी प्रकार की इसमें 32 सूक्तियाँ प्राप्त होती है।[229]

(छ) अलंकार—

भाषा को रमणीय तथा भावों को प्रेषणीय बनाने में अलंकारों का विशिष्ट महत्व है। शृंगारमंजरीकथा में वक्रोक्ति, अन्योक्ति आदि अलंकार के नाम भी दिये गये हैं। शृंगारमंजरीकथा में विभिन्न अलंकारों के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं।

अनुप्रास —

भोज अनुप्रास को वाङ्मय का जीवित कहता है[230]—

अनुप्रासस्तु जीवितम्।

चम्पूरामायण के टीकाकार रामचन्द्र का भी कहना है कि चम्पूरामायण में वृत्यनुप्रास तो प्रायः सर्वत्र है[231]—

अयमेवालंकारः (वृत्यनुप्रासः) प्रायशो भोजराजोक्तिष्वनुसन्धेयः।

चम्पूरामायण में भोज ने जो कुछ भी कहा है, कम से कम वहाँ अनुप्रास तो है ही। शृंगारमंजरीकथा में भोज का अनुप्रास के प्रति इतना निविड़ आकर्षण नहीं है परन्तु उससे विमुख भी नहीं है। यथा[232]—

घर्म्ममर्म्मरितोन्मूलितक्षितिरुहच्छदनिकरकरम्बिताम्बरेषु।

अथवा[233]

मन्देष्वपि मदनदहनसन्धुक्षणं प्रत्यमन्देषु चन्दनतरुगहन-
सम्पर्कादतिशिशिरेषु मानिनीनां मूलतो मानमुन्मूलयत्सु
समुल्लसयत्सु च।

अथवा[234]

उड्डीनशिखण्डिमण्डलीकलापकल्पिता-
खण्डलकोदण्डाकाण्डमण्डितगगनमण्डलाम्।

यमक --

भोज का अभिमत है कि यमक तथा चित्रालंकारों के बिना वाग्विदग्धता ही क्या ?[235]

विना यमक-चित्राभ्यां कीदृशी वाग्विदग्धता।

शृंगारमंजरी में यमक के अनेक उदाहरण पाये जा सकते हैं।

यथा—

(1) प्रतिरजनि रजनिकरः।[236]
(2) अभीष्टार्थस्य प्रसवितारं सवितारमाराध्य।[237]
(3) सकलजनमनोदारिका देवदत्ता नाम दारिकासीत्।[238]
(4) घनतरघनसाररेणु······।[239]
(5) पर्णकुम्भेनेव कुम्भेन शोभमानम्।[240]

(6) निरुपमलावण्या लावण्यसुन्दरी ।[241]
(7) निजसौन्दर्यापहस्तितकन्दर्पदर्प लावण्यसुन्दरी ददर्श ।[242]
(8) दक्षिणेष्वदक्षिणेषु ।[243]

श्लेष —

श्लेष के उपयोग से प्रायः सारी वक्रोक्तियों की कान्ति बढ़ जाती है ।

श्लेषः पुष्णाति सर्वासु प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम् ।

शृंगारमंजरीकथा में श्लेष का उपयोग या तो श्लिष्टोपमा में हुआ है अथवा विरोधाभास में ।

शृंगारमंजरीकथा में ऐसे कई स्थल हैं जहाँ श्लेष के द्वारा अभिव्यक्ति में चमत्कार लाया गया है । परन्तु यहाँ श्लेष उपमा[244] तथा विरोधाभास[245] के सहायक के रूप में ही स्थान पा सका है । इन दोनों अलंकारों के पोषक के रूप में प्रयुक्त श्लेष के उदाहरण के रूप में यहाँ एक उद्धरण दिया जाता है[246]—

या च लावण्यमय्यप्यक्षारा, साधारण्यप्यसाधारणी,
स्फटिकमणिपुत्रिकेव सन्निहितोपाधिरागिणी, द्रौपदीव
नकुलप्रिया, प्रावृडिव दर्शिताचिररुचिः,.......।

सभंग श्लेष का यह सुन्दर उदाहरण है[247]—

कुरूपयुक्तापि न कृपान्विता ।

क्षेमेन्द्र के देशोपदेश में भी लगभग इसी प्रकार के इन शब्दों का प्रयोग हुआ है[248]—

भगदत्तप्रभावाढ्या कर्णशल्योत्कटस्वरा ।
सेनेव कुरुराजस्य कुट्टनी किन्तु निष्कृपा ॥

एक स्थान पर श्लेष का सुन्दर उदाहरण है[249]—

द्विधापिशतपत्राधिष्ठितानि, द्विधापि सवनानि,
द्विधापि कुवलयमनोहारीणि, द्विधापि विततानि ।

विरोधाभास—

शृंगारमंजरीकथा में विरोधाभास अलंकार का बहुलता से दर्शन हो सकता है ।[250] प्रायः उसका सहयोगी श्लेष रहता है । श्लेष के माध्यम से विरोधाभास अलंकारों के उदाहरण उपर्युक्त श्लेष के उदाहरण से समाहृत हो गये हैं । विरोधाभास को प्रायः 'अपि' के द्वारा प्रकट किया गया है ।

यथा[251]

सविषाण्यप्यमृतस्वादूनि, प्रवृद्धान्यपि समकरचिह्नानि,
सकमलान्यप्यकमलानि ।

अथवा[252]

चलितुमक्षमाप्यतिचला, अर्थमय्यप्यनर्थदायिनी, नर्मदापि
तापिनी, गम्भीरापि सम्भ्रमवती । जातरूपक्षयाप्या-
सादितरूमा ।

उपमा—

श्लिष्टोपमा का प्रयोग शृंगारमंजरीकथा में बहुलता से हुआ है ।[253] इसके कतिपय उदाहरण उपर्युक्त श्लेष अलंकार के विवरण में दिये गये हैं । मालोपमा भी प्रचुरमात्रा में प्राप्त होता है ।[254]

उपमानों का चयन विविध सामाजिक रीति-रिवाजों से, प्रकृति के विभिन्न उपादानों से, छन्द, व्याकरण तथा साहित्य के अंगों से एवं अमूर्त चित्तवृत्ति आदि से किया गया है। सम्पूर्ण रूप से भोज की उपमा में प्रयुक्त उपमान उसकी विशद अनुभवशीलता तथा अपरिमित ज्ञान के परिचायक हैं।

एक स्थान पर शृंगारमंजरीकथा के चरणों को शृंगारमंजरीकथा के ललित पदों से उपमित कर नायिका तथा कथा में समानता प्रस्तुत की गयी है।[256]

शृंगारमंजरीगद्यप्रवृत्तिरिव सुललितपदा।

एक स्थान पर इस कथा के रचयिता तथा परमारवंश में उत्पन्न स्वयं भोज को ही उपमान बनाया गया है[257]—

एतत्कथाकारमिव विराजितपरमारावनीपवंशम्।

व्याकरण का भी उपमान के रूप में उपयोग हुआ है[258]—

व्याकरणप्रक्रियेवोपसर्गवशात् परस्मैपदोत्पादनकुशला।

एवं[259]

छात्रमण्डलीव रूपसिद्धिनिपुणा।

अथवा[260]

शब्दशास्त्रमिव विविधधातुभिरुप...... ...रबहुवचनोपचितम्।

यह वाक्य खण्डित है। इसमें व्याकरण की अन्य भी कई विशेषताएँ व्यक्त की गयी होंगी जो नष्ट होने से असुलभ है।

छन्द का भी इसी रूप में उपयोग हुआ है[261]—

छन्दःस्थितिरिवोज्ज्वलतनुमध्या।

पुराण को उपमान बनाकर भोज ने पुराणों की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है[262]—

पुराणस्थितिरिव कमपि कथाभिः, कमप्याख्यानकैः, कमपि
कडवककैः, कमपि मणिकुल्याभिः, कमपि दृष्टान्तैः, कमपि
निदर्शनैः प्रतिबोधयन्ती।

विविध गृहों को उपमान बनाकर ज्योतिष का भी इस रूप में उपयोग किया गया है[263]—

अंगारक इव वसुधानन्दनः, बुधइवराज.........शुरप्रभवः
राहुरिवग्रस्ततेजस्विमण्डलः, केतुरिवाद्भुतोदयः,
नवग्रहम.........।

ग्रहपतिरिव बहुशो भुक्तमीनमेषा।[264]

सुकृतिनमिव विधुरविरहितोच्छ्रयम्।[265]

छहों ऋतुओं का भी उपमान रूप में उपयोग हुआ है।[266] छहों दर्शन,[267] लोकायत,[268] पंचरात्र,[269] अविद्या तथा माया,[270] संसारवृत्ति,[271] मुक्ति,[272] शाक्यशासन,[273] अक्षपाद, प्रभाकर

कुमारिल आदि के अभिमत[274] आदि का यहाँ उपमान रूप में उल्लेख है।

लोहार की भस्त्रा को भी उपमान बनाया गया है[275]—

लोहकारभस्त्रेवाध्मातमूर्तिः।

उसी प्रकार सर्वथा नूतन तथा यथार्थवादी उपमान इस पंक्ति में पाया जा सकता है[276]

तैलिकयन्त्रयष्टि—प्रतिमेनोरुयुगलेन........।

कतिपयस्थलों पर अमूर्त उपमान भी पाये जा सकते हैं। यथा[277]—

सज्जनमनांसीवातिस्वच्छानि
दुर्जनमनांसीव दुरवगाहानि।

अथवा[278]

महापुरुषचित्तवृत्तिरिव परार्थबद्धकक्षा।
यतिजनचित्तवृत्तिरिव मोक्षैकतत्परा।

इस प्रकार भोज के द्वारा प्रयुक्त उपमानों का क्षेत्र विस्तृत है.

भोज का सौन्दर्यदर्शन उपमानों से व्यक्त होता है। यथा[279]—

विरहिणीकपोलस्पर्धयेवापाण्डुपीततामुद्वहति
मधूकतरुकुसुमस्तबकनिवहे।

उपमा से विरहियों के मदनदहन के प्राकृतिक उपकरणों के प्रस्तुतीकरण में भोज ने एक सम्पूर्ण प्रसंग ही प्रस्तुत कर दिया है[280]—

निखिलानपि विप्रयोगिनो दग्धुमुद्यते मदनदहन इव सर्वतो विकासमागच्छति किंशुकवने, सांगार इव परितो विकच-विक्षिप्तस्तबकैः सज्वाल इवातिस्निग्धारुणविततपल्लव-प्रकरेण सधूमोद्गार इवोपरिभ्राम्यता मधुपपटलेन मूर्ते मदनहुतभुजीव विरहिणां सन्तापमुपजनयत्यशोकद्रुमगहने ....।

रूपक—

रूपक का एक सुन्दर उदाहरण यह है[281]—

तरलतरतडिल्लताप्रसरजिह्वस्य बलाकावलिविकटदशनपद्धते-र्दलितांजनपुंजमेचकस्य प्रबलझंझानिलसमुच्छलद्बहलधूलीधूसर-शरीरस्य जलदसमयरजनिचरस्याद्भुतं रटितमाकर्ण्य स्फुटित-हृदयानामिव पथिकानां विगलितैरसृग्बिन्दुभिरिवेन्द्र-गोपकैरुपचीयत निखिलमप्यवनितलम्।

सौन्दर्यवर्णन में रूपक का अनेक बार उपयोग किया गया है। यथा[282]—

ज्यावल्ली कामकामुकस्य, मूर्तस्थानं मनोभवस्य,
उत्पत्तिनन्दनं शृंगारकल्पद्रुमस्य...........।

एक स्थान पर वसन्तर्तु के चक्रवर्तीत्व को व्यक्त करने वाले विस्तृत सांग रूपक की कल्पना की गयी है।[283]

कामदेव को पुनः पुनः नरपति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उन्हें स्मरनृपति,[284] मदननरपति,[285] मकरध्वजक्षितिपति[286] आदि कहा गया है। तथैव एक स्थान पर ग्रीष्म को भी नरपति कहा गया है।[287] तथैव एकाधिक बार हाथियों के दशन को मुशल के रूप में स्मरण किया गया है।[288] मकरध्वज को व्याघ्र के रूप में[289] तथा दिशा को वधू रूप में[290] भी प्रस्तुत किया गया है।

इस रूपक में सुन्दर कल्पना उपलब्ध होती है[291]—

रविकिरणकुंचिकोद्घाट्यमानदलकवाटेषु

उत्प्रेक्षा—

प्रस्तुत उद्धरण में कल्पित उत्प्रेक्षा नूतन तथा मनोरम है[292]—

रविकिरणकुंचिकोद्घाट्यमानदलकवाटेषु प्रागन्तरुषि-
तैर्यामिकैरिव मधुकरैर्विमुच्यमानेष्वनेकैरपरैस्त्वापतद्भिः
प्रतिगृह्यमाणेषु प्रकटितद्वारेषु श्रियो विलासभवनेषु पंकजेषु।

हेतूत्प्रेक्षा का प्रस्तुत उद्धरण में सुन्दर प्रस्तुतीकरण हुआ है[293]—

मुकुलितकुमुदकोशकोटरान्तर्निलीनमधुकरतया दिवसकरभयात्
प्रतनुतां गतेनान्धकारेणेव, संश्रितानि (सरांसि)।

तडाग में उन्मत्त की चेष्टाओं के अनुकरण की उत्प्रेक्षा भी हृदयावर्जक है[294]—

क्वचिद्विकसितोद्दण्डपुण्डरीकखण्डतया हसन्तीव,
क्वचिन्मन्दमारुतान्दोलितोद्दण्डरक्तोत्पलतया नृत्यन्तीव,
क्वचिद्वीचिवलयान्तर्गतविकचेन्दीवरतया सभ्रूक्षेपम्
कटाक्षाक्षीषून् विक्षपन्तीव, क्वचिदनल्पलहरीसंघट्ट-
जर्ज्जरितसलिलोन्मृष्टसीकरासारतया धूलिमुत्सृजन्तीव,
क्वचिद्भ्रमयतो विवर्तमाननिविडमारुताभिघट्टिततरंगोद्भट-
ध्वनितेनारटन्तीव इत्थमुन्मत्तचेष्टितमिवानुकुर्वन्ति सरांसि।

श्रृंगारमंजरी के रूपनिर्माण का पूर्वाभ्यास करने के लिए ही मानो विधाता ने लक्ष्मी, रति, अप्सरा आदि की रचना की।[295]

मन्ये च यस्या रूपनिर्माणाभ्यासमिव कर्तुं प्रजापतिना
लक्ष्मीरत्यप्सरःप्रभृतयो युवतयः पूर्वमेव निर्मिताः।

अतिशयोक्ति —

कार्यकारण के विपर्यय के रूप में अतिशयोक्ति की यहाँ परम्परा ही प्रस्तुत करदी गयी है[296]—

.......आकुलयत्यहेतु भवनतलं मधुप्रथमावतारे प्रथममुत्कलिकाकुलं
भुवनमुपजनयति, अनन्तरं सहकारकाननानि। आदावेव
सततमनस्थोल्लसितरागं कामिनीनां हृदयमुपदर्शयति
परस्तादशोकतरुवीथिकाः प्रागेवानुरागवशाद्दयितं प्रति
कामिनीनां च नयनानि मुकुलयंति, तदनु कमलिनीवनानि।

प्रारम्भ एव विरहिणीहृदयानां भेदमातन्वाने, परतः
स्ववीरुद्गर्भग्रन्थीनाम् । प्रमुख एवान्धकारीकुर्वन्ति
कामिजनहृदयानि, पश्चान्मधुकरकुलैः कुसुमकाननानि ।

तथैव अभेद में भेद प्रस्तुत करते हुए शृंगारमंजरी के मुख को कुछ अपूर्व ही व्यक्त किया है[297]—

यस्याः कोप्यपूर्वा मुखेन्दुर्यस्य सर्वदा परिपूर्णाकृतेर्दिवाप्यु-
ल्लसितमहसः कलंकोज्झितस्य पंकजैर्मैत्री, कुमुदाकरेषु द्वेषः
निखिलरागकारिणी कान्तिः ।

स्वभावोक्ति—

भोज ने स्वभावोक्ति के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये है । चम्पूरामायण में आनन्दातिरेक से पूर्णवानरों का उल्लास स्वभावोक्ति के द्वारा व्यक्त हुआ है[298]—

आरुह्याद्रिमथावरुह्य विपिनान्यासाद्य नानाफला-
न्यास्वाद्य प्लुतमारचय्य वदनैरापाद्य वाद्यक्रमान् ।
आलिंग्य द्रुममक्रमं मदवशादाधूय पुच्छच्छटा-
मारादाविरभूदहंप्रथमिकापीनां कपीनां चमूः ॥

शाखा पर ऊंघते वानरों का स्वाभाविक चित्रण शृंगारमंजरीकथा में हुआ है[300]—

निजचापलभ्रमणखेदविधुरेष्ववनिरुहस्कन्धशाखान्तरनिलय-
ननिभृतेषु यथायथमुपविष्टेष्वासीनप्रचलायितेन मध्यन्दि-
नतापतन्द्रीं गमयत्स्वपरेषु च निद्रालस विवशतया शिथिलांगेषु
प्रपतत्सु पुनरुत्पत्यारोहत्सु कपिकुलेषु ।

दावानल में घिरे शाखामृग की आकुलता का विवरण स्वभावोक्ति का सुन्दर उदाहरण है[301]—

क्वचित्सर्वतः प्रज्ज्वलद्दावदहनज्वालावलीकवलितक्षितिरु-
हाखिलप्रान्तभागतया कुतोप्यात्मनः शरणमनवेक्ष्यमाणेन
भ्रमितकन्धरं चकितचकितमुभयतोप्यवक्रुश्यावक्रुष्याङ्गमतिदीर्नं
दिक्षु चक्षुर्विक्षिपता पश्चावनमितकर्णयुगलेनातिश्लथमुक्त-
पुच्छेन विषादात् क्षणमेकमर्तिनिश्चलेन मुहुर्मुहुर्निमेषोन्मेषान्
विदधता शुष्यत्तालुना विदीर्णवदनतया प्रकटितदशनपंक्तिना-
तिमात्रदीनाननेन प्रसृतधूमव्याकुलावमीलल्लोचनेन क्षण
एवात्मानं दग्धमिव मन्यमानेन झगिति चक्षुरुन्मील्य
प्रत्यङ्गमालोकयता निपतनभयाद् गाढतरगृहीतशाखेन
क्षोभवशविसंस्थुलीभवत्करग्रहतया किमपि भ्रष्टेन पुनरुत्पतता
भयातिशयात् सद्योवसीदद्वपुषा मुहुर्मुहुरनभिव्यक्तविहित-
चीत्कारेण उपर्युपरि प्रतिशाखामितस्ततः समारोहतैकाकिना
जरन्मर्कटेनारुह्यमाणजीर्णोत्तुङ्गतरुशिखरान् ।

महिर्षो की मशकताडन-व्यस्तता भी स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत हो सकी है[302]—

मुहुर्मुहुरीषदुत्फुल्लनासिकाविवरनिःसृतश्वासपवनै-
रनवरतमेकतः प्रेङ्खोलितविषाणकोटिकण्डूयितदंशोपसृष्ट-
कुक्षिभिर्मुहुर्मुहुर्मशककुलत्रासनार्थमुल्लसितलांगूललतिका-
च्छोटितपृष्ठभागैर्वनमहिषकुलैःकदर्थ्यमानक्षुद्रजलचरेषु ।

शृंगारमंजरी में हाथियों के विविध स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत हुए हैं। दावानल से भयाक्रान्त हाथियों के झुण्ड का विवरण अत्यन्त स्वाभाविकता से प्रस्तुत हुआ है।[303] वहीं पर प्रस्तुत सन्दर्भ भी कम स्वाभाविक नहीं है[304]—

अपरैश्च पीत्वा पयस्तट एव किंचिदवनमितजघनभागै-
रुत्फुल्लकुक्षिभिः स्तोकोत्तम्भितश्रवणपल्लवैरवनितल-
न्यस्तहस्तैरीषद्विधुतकन्धरैः श्रवणाभिमुखत्र्यश्रितैक-
नेत्रत्रिभागैः सावधानमाकर्णितमूत्रधाराध्वनिर्निर्भर्मूत्रीयमाणैः
(करिकुलैः)

इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न में सन्तप्त हरिण, बालहरिण, वराह, पक्षिसमूह आदि का वर्णन भी स्वभावोक्ति से परे नहीं है।[305]

भ्रान्ति—

परिखा के किनारे खड़े प्राकारों की मणिप्रभा से इन्दीवर भी भ्रान्त हो जाते हैं[306]—

प्राकारमरकतमणिप्रभाजालबहलान्धकारजनितरजनिभ्रमतया
सदैव विकसितनीलोत्पलवनया.......परिखयो परिक्षिप्ता ।

चन्द्रिकापूरित निशा में तडाग-तट पर बैठे चकवियों का समूह, जल में अपने प्रतिबिम्ब को भ्रान्ति से अपना प्रियतम समझ लेती है[307]—

प्रतिरजनि मदनालसचक्रवाककामिनीभिः प्रियतमभ्रान्त्या
सस्पृहमालोक्यमाननिजप्रतिबिम्बकानि.......सरांसि ।

सन्देहः—

प्रस्तुत पंक्ति में सन्देह अलंकार की स्थिति ज्ञात होती है।[308]

कामिनीचरणालक्तकपाटलितस्फटिककुट्टिमतया स्थलेपि
जलकमलशङ्कामुत्पादयन्ती ।

विभावना—

शृंगारमंजरी के निर्माण में विधाता ने रूप के सारे आदर्श उपकरणों का उपयोग न करते हुए भी उसकी आश्चर्यनिधान काया का सृजन कर लिया[309]—

न गृहीतश्चमरीबालभारो, न बर्हिणां बर्हकलापाः, न
मधुरकुलानि, न शशधरार्धम् न कनकपट्टशकलानि,
नानङ्गसारंटनि (?) द्वयम्, न विकचेन्दीवराणि, न
मधुकराक्रान्तैकदेशानि केतकीदलानि, न मृगीलोचनविलासाः,
न पाटलाप्रसूनानि, न मद (?) वीणाकोणरामणीयकम्,

न बिम्बीफलानि, न बन्धुजीवकुसुमानि, न विद्रुमग्रन्थयः, न परिपक्वदाडिमीबीजत्विषः, न कोकिलाध्वनयः, न वीणानिक्वणाः, न बन्धूककुसुमलावण्यम्, न विकचकनकचम्पकावदातता, न स्मरधनुर्ज्यापाशयुगलम्, न कन्दलानि, न कम्बवः, न मृणाल्यः, न श्यामालताः, न पल्लवितानि (?), न रक्तोत्पलानि, न चक्रवाकमिथुनानि, न करिकुम्भाः, न सरित्तरंगाः, न स्मरधनुर्ज्यालावण्यम्, न मदनरथचक्रनाभयः, न रत्नशिलातलानि, न कनकफलकानि, न रम्भास्तम्भाः, न द्विरदेन्द्रकराः, न कोकनदानि, न मुक्तामणयः, न शरत्तारकाः, न द्विरदेन्द्रगतयः, न राजहंसप्रचलितविच्छित्तिरियमुत्पादिता ।

परिसंख्या —

अश्ववर्णन में परिसंख्या का भी प्रयोग प्राप्त होता है[310]—

आरूढं पिण्डैर्न जडिम्नि, लघु श्रवणयोर्न प्रमाणे, निष्ठुरं खुरेषु न मुखे, गभीरमाशये न तेजसि, मसृणं रोमसु न कशाभिघातविसहने ।

उल्लेख—

उल्लेख अलंकार के कई उदाहरण उपलब्ध होते हैं । यथा[311]—

इन्दुलेखा जननयनकुवलयानाम्, कमलसरसीन्द्रियमधुकराणाम् , विहरणस्थली स्मरविजयवारणस्य (काचिदेका विलासिनी) ।

अथवा[312]

लासिका विलासानाम्, आयतनं विभ्रमाणाम्, रतिः, शृंगारस्य, संकेतस्थानं हृदयहारितायाः, निवासो रूपश्रियः, सदनमसादृश्यस्य.........।

विन्ध्याटवी का भी ऐसा ही विविध विशेषताएँ व्यक्त करने वाला वर्णन किया गया है[313]—

स्थानमनर्थानाम्, सदनं त्रासस्य, सनाभि भीतेः, आस्पदं विपदाम्, उद्भवक्षोणीं क्षोभस्य, कारणमुत्कम्पस्य, निदानं दवभूनाम्, आस्थानीं दौष्ट्यस्य, भूमिं मनोभ्रमस्य, खानिं खेदस्य, निषद्यां विषादस्य, निधानं निर्वेदस्य, सीमां सन्तापस्य, आकरभुवं दुष्कृतविपाकानाम्, पोषहेतुं शोषस्य, आलीमाकुलतायाः, सखीं दुःखानाम्, मातरं मोहस्य, अतिरमणीयभीषणां विन्ध्याटवीं प्रापतुः ।

दीपक —

दीपक अलंकार के लिए यह उदाहरण दिया जा सकता है[314]—

अतिमनोहारिणा रूपलावण्यातिशयेन तर्पयन्तमिवा-
पूरयन्तमिवाप्यायन्तमिवानन्दयन्तमिव रमयन्तमिव
चक्षुरिन्द्रियं रिपुदलनाभिधानं द्विरदराजमद्राक्षीत् ।

यहाँ पर 'द्विरदराज' कारक के साथ अनेक क्रियाएँ सम्पृक्त हैं ।

इस प्रकार शृंगारमंजरीकथा में पद-पद पर विविध अलंकारों, की छटा पायी जा सकती है ।

ग्रन्थ में निहित रस:—

अङ्गीरस—शृंगार --

शृंगारमंजरीकथा वेशजीवन के विविध चित्र प्रस्तुत करती है । वेशवनिताओं की ललित विलासचेष्टाओं तथा कृत्रिम परन्तु आकर्षक राग का प्रस्तुतीकरण भी स्वभावतः हुआ है । कुछ कुलीन महिलायें भी इस श्रेणी का आचार करने लगती है तो कुछ पण्यांगनाएँ भी कुलीन महिलाओं के समान व्यवहार करने लगती है । परन्तु ये अपवाद ही हैं । और शृंगारहाट में उपलब्ध होने वाले इन कतिपय अपवादों में ही प्रेम की सात्त्विकता तथा हृदय की पावनता की उपलब्धि सम्भव है ।

शृंगारमंजरीकथा में शृंगारमंजरी की वह कथा है जिसमें उसे शृंगारविषयक कई कथानिकाएँ सुनाई जाती हैं । इस कथा की तथा कथानिकाओं की नायिका शृंगारमंजरी एवं अन्य वनिताएँ लावण्य की प्रत्यक्ष मूर्ति हैं तथा शृंगारकल्पद्रुम की उद्‌भवभूमि हैं । उनके अंग-अंग में लावण्य की कान्ति दमकती सी लगती है ।

कथानिकाओं के नायक रसिक है । वे धनी, चतुर तथा शृंगार के आराधक हैं । 'शृंगारमंजरी' शब्द नायिका के अभिधान के साथ ही अन्य अर्थ का भी संकेत करता है ।

रसिकजनों के हृदय में शृंगारिक मनोभावों की अपेक्षा की जाती है तथा सुन्दरियों एवं विशेषकर वारवनिताओं में लावण्य की, ऐसे लावण्य की जिससे वह रसिक-मधुकरों को आकर्षित करने में रसपूर्ण मंजरी सी सार्थकता प्राप्त करले । शृंगारमंजरीकथा के नायक तथा नायिकाएँ इस दृष्टि से अधिक आकर्षक हैं । भोज-कल्पित भावभूमि का यहाँ अभाव नहीं है[315]—

शृंगारमेव हृदि मानवतो जनस्य
लावण्यमेव वपुषि स्वदतेऽङ्गनायाः ॥

स्वभावतः भोज की शृंगारमंजरीकथा में शृंगाररस होना चाहिए । परन्तु शृंगारमंजरीकथा की कथानिका की नायिकाएँ वारवनिताएँ हैं जिनकी रति अर्थायत्त होती है । वे राग करती नहीं, जताती हैं । उनका मूल उद्देश्य यह होता है[316]—

कमपि रंजयित्वा, स्वयमरज्यन्त्या सर्वस्वमपहृत्य निर्वासनीयः ।

नायक उनके राग में रँग जाता है, पर वे नहीं । स्वभावतः यह राग एकांकी होगा जिससे शृंगाररस की पुष्टि नहीं हो सकती ।

दूसरी कथानिका के विक्रमसिंह तथा मालतिका, तीसरी कथानिका के कुवलयावली तथा माधव, चौथी कथानिका के सूरधर्मा तथा देवदत्ता, सातवीं कथानिका के सोमदत्त तथा कर्पूरिका आदि में अर्थायत्त प्रेम था । स्वभावतः न नायक तथा न नायिका आपस में मोहित हुई । अतः यहाँ शृंगाराभास ही कहा जा सकेगा ।

प्रथम कथानिका का रविदत्त विनयवती से एवं ग्यारहवीं कथानिका का प्रतापसिंह मलय-सुन्दरी से प्रेम करता है। रविदत्त का प्रेम कामान्धता से पूर्ण था जो पागलपन की स्थिति तक पहुँच जाता है एवं प्रतापसिंह का प्रेम एकान्त था जो मलयसुन्दरी की गोद मे बच्चा देखना भी सह नहीं पाता है। परन्तु दोनों नायिकाएँ निरपेक्ष हैं। स्वभावतः यह भी शृंगाराभास ही कहा जा सकता है। तथैव छठी कथानिका को विक्रमादित्य को लावण्यसुन्दरी के प्रेम पर विश्वास था परन्तु लावण्यसुन्दरी का प्रेम प्रदर्शन सौ हाथी प्राप्त करने के लिए अथवा सोद्देश्य था। यह भी शृंगाराभास ही कहा जा सकेगा।

आठवीं कथानिका की नायिका लावण्यसुन्दरी वसुदत्त से वस्तुतः प्रेम करती है परन्तु नायक सर्वथा निरपेक्ष रहता है। अतः यहाँ भी एकांगी प्रेम होने से शृंगाराभास ही है।

दसवीं कथानिका की अनंगवती तथा विनयधर का प्रेम तो अर्थायत्त प्रारम्भ होता है परन्तु परिणति उसकी प्रगाढ़ता में होती है।

यद्यपि इसका नायक धूर्त है तथा नायिका से भी प्रेम का प्रारम्भ अर्थायत्त ही होता है, अतः इसे पूर्णतया शृंगार की कोटि में ले जाना शंकास्पद हो सकता है।

तेरहवीं कथानिका की चिल्लमहादेवी महाव्रत से प्रेम करती है। एक विवाहित स्त्री का अन्य से प्रेम तथा कुलीन स्त्री का सामान्य व्यक्ति, अपने ही सेवक से छद्म प्रेम अनुचित होने से वहाँ भी शृंगाराभास ही है।

नौवीं कथानिका की नायिका अशोकवती तथा छड्डलक के प्रेम प्रगाढ़ता रहती है। यहाँ तक कि वे दोनों ही एक दूसरे के लिये प्राण भी त्याग देते हैं। स्वभावतः इस कथानिका में हमें सही रूप से शृंगार के दर्शन हो सकते थे, यदि नायिका वेश्या न होती। वेश्या होने से उसे अपने आचार अनुरूप राजसभा में नृत्य भी करना पड़ता है। वहाँ भी वह छड्डलक की उपस्थिति चाहती है। उसके अभाव में वह नृत्य बन्द कर देती है। परन्तु सुन्दरक के रूप पर वह मोहित हो जाती है, इतनी कि सहवास के पश्चात् उसे अपने इस दुष्कर्म का प्रायश्चित्त होता है। पश्चात् छड्डलक की मृत्यु का मिथ्या समाचार सुन वह प्राण त्याग देती है और छड्डलक भी यह जानकर उन्मत्त होकर आग में कूद पड़ता है। देवी आशापुरा की कृपा से ये सभी पुनर्जीवन प्राप्त कर लेते हैं।

यहाँ अशोकवती वेशवृत्ति के अनुरूप सुन्दरक के रूप-व्यामोह में फँस जाती है। परन्तु तत्काल उसे प्रायश्चित्त भी होता है। दोनों एक दूसरे के लिये प्राण त्याग देते हैं तथा पुनर्जीवन भी प्राप्त करते हैं। स्वभावतः यहाँ प्रारम्भ में वियोग तथा अन्त में संयोग शृंगार की पुष्टि होती है।

इसके अतिरिक्त अन्यत्र सर्वत्र प्रेम में अनौचित्य है। या तो एकांगी प्रेम है, अथवा अर्थायत्त प्रेम है अथवा एकाधिक जनों से प्रेम है। ऐसी प्रेमाभिव्यक्ति अनुचित ही कही जायेगी। पुनः वेशवनिताओं, जो अर्थ के लिए एकाधिक के साथ सहवास करे, अथवा केवल रूप के लोभ में आसक्त होती रहे, के बनावटी प्रेम को शृंगारकोटि में कैसे ले जाया जा सकता है? यह प्रेम अनौचित्य से पूर्ण होता है। अथवा वैशिक प्रेम, प्रेम नहीं कहा जा सकता। स्वभावतः इन विभिन्न कथानिकाओं में शृंगार नहीं शृंगाराभास ही है[317]—

तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिताः ।

जिसकी व्याख्या में आचार्य विश्वेश्वर ने रसाभास की विभिन्न अवस्थाओं के विषय में लिखा है—

एक स्त्री का एक पुरुष के प्रति प्रेम उचित है, परन्तु यदि एक स्त्री का अनेक पुरुषों के प्रति प्रेम का वर्णन किया जाय तो वह अनुचित होने से रसाभास की कोटि में आयेगा, जैसा कि कहा भी है—

उपनायकसंस्थायां मुनिगुरुपत्निगतायां च ।
बहुनायकविषयायां रतौ तथानुभयनिष्ठायाम् ॥
आभासत्वं कथितं तथैव तिर्यगादिविषयायाम् ॥

इस दृष्टि से श्रृंगारमंजरीकथा की सभी कथानिकाओं में श्रृंगाराभास ही कहा जा सकता है। केवल 'उभयानुराग' कथानिका में ही श्रृंगार की स्थिति स्वीकार की जा सकती है।

वैसे तो भोज का यह बद्धमूल अभिमत रहा कि रस तो श्रृंगार ही है। वीर आदि के विषय में तो मिथ्या ही रसप्रवाद कर रखा है और गतानुगतिका से ही वे प्रसिद्धि पा रहे हैं[318]—

आम्नासिषुर्दश रसान् सुधियो वयं तु
श्रृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः ।
वीराद्भुतादिषु च येह रसप्रसिद्धिः
सिद्धा कुतोपि वटयक्षवदाविभाति ।
लोके गतानुगतिकत्ववशादुपेता-
मेतां निवर्तयितुमेष परिश्रमो नः ॥
रत्यादयो यदि रसाः स्युरतिप्रकर्षे
हर्षादिभिः किमपराद्धमतद्विभिन्नैः ।
अस्थायिनस्त इति चेद्भयहासशोक-
क्रोधादयो वद कियच्चिरमुल्लसन्ति ॥

इसी भाव को वे पुनः व्यक्त करते हैं[319]—

वीरादयो मिथ्यारसप्रवादाः ; श्रृंगार एवैकश्चतुर्वर्गैककारणं
रस इति ।

अङ्गभूत रस—

श्रृंगारमंजरीकथा का अङ्गीरस श्रृंगार ही है। स्वयं ग्रन्थकार ने अन्य व्याज से इस तथ्य की ओर अपनी इसी कृति में संकेत कर दिया है[320]—

'श्रृंगाररसनिर्भरा निर्मिता ।'

श्रृंगार के विविध रूपों को इसमें आलोकित किया गया है। परन्तु अङ्गरूप में अन्य रसों का उसमें अभाव नहीं है। ये इतर रस श्रृंगार के सहायक रूप में प्रस्तुत हुए हैं।

हास्यरस—

सर्पकथानिका में विनयधर रात के अन्धेरे में गाढ़ निद्रा में सुप्त कुट्टनी की नासिका के पास मृत सर्प का फण रख, नासिका पर नख चुभो देता है तथा उसके चिल्लाने पर उस मृत सर्प पर लाठी चलाता है। दीपक जलने पर सर्प देख उस दष्ट नासिका सहित ओठ को तत्काल काट देता है

और इस प्रकार वह प्रतिशोध तथा सहानुभूति दोनों एक साथ पा लेता है। इस घटना को भोज ने एक ही वाक्य में प्रस्तुत कर दिया है[321]—

> ततो दासीभिर्झगिति प्रबोधिते दीपे सर्पमवलोक्यच्छेदं
> प्रयच्छामीति तेनाभिहिते
> 'प्रयच्छ प्रयच्छ' इत्युक्ते क्व प्रयच्छामि इत्युक्ते
> 'अत्र' इत्यभिहितमात्रेपि सहोष्ठां नासिकां चिच्छेद।

इसी प्रकार 'कुट्टनीवंचन कथानिका' में विनयघर कुट्टनी को छलने के लिए यह व्यक्त करता है कि उसने श्रीपर्वत से सिद्धि प्राप्त की है जिससे वह नित्य ही अमित धन प्राप्त करता है। कुट्टनी उस सिद्धि का नित्य स्वर्णमुद्राएँ देने वाली कपोतिका तथा अपनी पूर्व अर्जित सम्पूर्ण सम्पत्ति से विनिमय कर लेती है। सोमदत्त भी अपनी सिद्धि सौंप देता है[322]—

> सोमदत्तेनापि तस्याः करे त्रिरुदकं प्रपात्योक्तं यथा—या
> चेयं मया श्रीपर्वते सिद्धिरासादिता सा त्रिसत्येन भवत्याः
> पर्यवस्यतु।...........
> अथान्येद्युः कर्पूरिका कुट्टन्या सहाश्वत्थस्य तले गत्वा
> कुक्कुटरटितमकरोत्। ततः स निखिलोपि राजपरिवारः
> पूर्ववत् सेवां चक्रे। ततः पूर्णे पंचरात्रेवसिते च मूल्ये
> कृतकुक्कुटरटितायाः अपि कर्पूरिकायाः समीपे न
> कश्चिदप्यागच्छत्। ततस्तदागमनाशयाश्वत्थस्येतस्ततो
> भ्रान्त्वा पुनः पुनः कुक्कुटरटितान्यकरोत्। न च
> कश्चिदपि तां दिशमालोकयांचक्रे।...........
> ततस्तद्दासीभिरभिहितम् —
> वाई ए कुक्कुडु वासइ,
> एक्कुलियंतह डुइजउ नासइ।

यह सम्पूर्ण प्रसंग हास्य का संचार करता है।

माधवकथानिका में माधव के पास एक मात्र अवशिष्ट अधोवस्त्र भी स्मृति के लिए कुट्टनी चाह लेती है। इस पर माधव कहता है, यह मार्ग बहुत चल रहा है। लोगों के सामने यह वस्त्र देते लज्जा आती है, जरा एकान्त में आओ।" और उसने पथ से कुछ दूर कुट्टनी को भूमि पर गिराकर नाक-कान काटकर उसे कह दिया कि दूसरी कोई वस्तु देता तो नष्ट हो जाती। यह शाश्वत यादगार है।[323]

करुण—

भोज की शृंगारमंजरीकथा में शोकावस्था के भी चित्र उपलब्ध होते हैं।

इनमें सर्वाधिक हृदयविदारक घटना स्त्र्यनुराग कथानिका की है जिसका नायक रत्नदत्त अनुरक्त नायिका लावण्यसुन्दरी से निरपेक्ष रहता है। नायिका अपना घर तथा धन छोड़कर रत्नदत्त के साथ मान्यखेट तक जाती है। वह उसे हृदय से चाहती है। मान्यखेट में रत्नदत्त तीन-चार दिनों

के लिए बाहर जाता है। इसी बीच वहाँ का राजा लावण्यसुन्दरी को राजभवन में प्रस्तुत होने को बाध्य करता है। लौटने पर रत्नदत्त लावण्यसुन्दरी का राजभवन में प्रस्तुत होने के अनुरूप नेपथ्य देखकर तत्काल वस्तुस्थिति को ताड़ जाता है और चरण-प्रक्षालन के लिए जल-पात्र लेकर प्रस्तुत नायिका को इस कार्य के लिए निषेध करते हुए उसे 'माता' कहता है क्योंकि अब वह उसके स्वामी तथा वहाँ के नरेश का मनोरंजन कर चुकी थी। लावण्यसुन्दरी अचानक स्तब्ध हो जाती है[324]—

रत्नदत्तस्तु तामन्यथारूपामालोक्य सुबन्धुना सहेदमभ्यधात्—
'भद्र सुबन्धो ! गृहवार्तायां पानीयं प्रविष्टम्।'
इत्यभिधाय पादप्रक्षालनप्रवृत्तां तामवोचत्-
'लावण्यसुन्दरि ! पादौ मास्प्राक्षीः। त्वं हि
मम जननी भवसि।'
सा तु साकूतमवादीत्–'रत्नदत्त !
किमेतत्।'
रत्नदत्तस्तां पुनरवादीत्—'किमन्यत् ?[325]
त्वं हि मम प्रभोर्दाराः, तद्भवतु, पूर्यते, उपविश्यताम्।'

यहाँ लावण्यसुन्दरी के—'रत्नदत्त ! किमेतत्'। वाक्य में उसके हृदय की सारी वेदना व्यक्त हो जाती है।

रत्नदत्त का कहना कि घर पर पानी फिर गया'

(गृहवार्तायां पानीयं प्रविष्टम्)[326]

वस्तुतः इस रूप में सार्थक हुआ कि लावण्यसुन्दरी की अभिलाषा तथा उसके त्याग पर भी राजा के कृत्यों ने पानी फेर दिया था।

छड्डलक के प्रेम में पगी अशोकवती अपने नृत्य तथा शृंगार की सार्थकता इसी में पाती है कि उसका प्रिय उसे देखे। राजभवन में नृत्य करती अशोकवती को जब उसका प्रिय नहीं दिखाई देता तो उसका मुँह उतर जाता है और निष्प्राण सी होकर गिर जाती है[327]—

ततस्तालं भंक्त्वा करणानि दत्वा चतसृष्वपि
दिक्षु चक्षुर्विक्षिप्य नृत्यन्तीच्छड्डलं तत्र नापश्यत्।
ततो झगित्योजसः पतितान्यमनस्का विच्छायवदना
जीवितेनेव परित्यक्ता बभूव।

सुन्दरक से सहवास के पश्चात् अशोकवती अनुशय करती हुई स्वयं को पापी भी कहती है[328]—

किं मयैतदकृत्यग्रास.........परया पापया विहितम्।
अहो दुर्लंध्या हतविधेर्विलसितानां गतिरनतिक्रमणीयान्यवश्यं
भाग्यान्यप्रतिविधेया नियतिर्यन्मदीय.......रनुरागस्यैवंविधा

परिणतिः, तन्नियतमनुल्लंघ्या भवितव्यता । तयार्थलुब्धया
पापकारिण्या नास्मि प्रतिबोधिता ।

और एक के पश्चात् एक अशोकवती, सुन्दरक तथा छड्डलक का आत्महत्या कर लेना, उस विपाद के वातावरण को और भी घनीभूत बना देता है ।

इस कथानिका में करुण का प्रस्तुतीकरण नाटकीय तथा हृदयस्पर्शी है ।

उपर्युक्त दोनों ही कथानिकाओं में करुण अवस्थाओं की प्रस्तुति प्रभावशाली है ।

अद्भुत रस–

पाँचवीं, देवदत्ता कथानिका में अद्भुत का आकर्षक प्रस्तुतीकरण हुआ है । विक्रमादित्य को प्रसन्न करने के लिए देवदत्ता उसका अपना ही आश्चर्यजनक परन्तु काल्पनिक अनुभव सुनाती है । तदनुसार उसने एक मनोरम अश्व पर आकर्षक युवक को देखा जिसने उसे अपने साथ घोड़े की पीठ पर बैठा लिया । अश्व आकाश में उड़ चला तथा अज्ञात स्थान में जा पहुँचा, जहाँ एक सुन्दर युवती के साथ एक पुरुष उसे आज्ञा मानने को विवश करने लगा । निषेध करने पर ताड़ना भी की । तब उसने वहाँ कहा कि उसका एक मात्र संरक्षक विक्रमादित्य है । विक्रमादित्य का नाम सुनते ही वे भाग खड़े हुए तथा देवदत्ता ने स्वयं को भूमि पर पाया । यह सम्पूर्ण विवरण अचरज का सर्जक होने से अद्भुत ही कहा जायेगा ।

तेरहवीं कथानिका में महाव्रतिक अपने इन्द्रजाल से एक सुन्दरी का सृजन कर उसके साथ सुख भोगता है । वहीं एक स्त्री अपने हृदय से अंगूठे के प्रमाण का दिव्यपुरुष उगलती है । कमण्डलु का जल छिटक कर वह उसे आकर्षक युवक बना देती है । उसके साथ रतिसुख भोगकर पुनः अंगुष्ठ प्रमाण का कर उसे निगल जाती है और महाव्रतिक ने आकर उस सुन्दरी को भी इसी प्रकार निगल लिया ।[329]

अथ तस्मिन् गते सापि विश्रम्भमुत्पाद्य पूर्वमेव तत्सकाशाद्
गृहीतविद्यामण्डलमावर्त्य तथैव स्वहृदयादंगुष्ठप्रमाणं
दिव्यपुरुषमेकमुज्जगाल । तं च कमण्डलुवारिणाभि-
षिच्यानुरूपलावण्ययौवनोपेतं विधायोत्पन्नशतगुणप्रीतिः
प्रीत्यनुरूपं तेन सह रतिसुखमनुबभूव । अनुभूय च तदागमन-
समयमाकलय्यानागतमेव तं पुरुषं लघूकृत्य निजगाल ।
महाव्रतिकस्त्वागत्य तां लघूकृत्य न्यगिलत् ।

इस अंश के पूर्व तथा पश्चात् का कथाभाग खण्डित उपलब्ध होने से इतना ही विवरण प्राप्त होता है परन्तु यह अंश भी अद्भुत का सृजन करने में सक्षम है ।

राजा विक्रमादित्य तथा राजा समरसिंह के समक्ष आशापुरा देवी का प्रकट होना तथा उससे वरदान प्राप्त करना सचमुच आश्चर्यकारी है । तथैव सातवीं कथानिका से कपोतिका को उगलना—निगलना तथा उसकी सन्निधि से पाँच सौ स्वर्णमुद्राएँ नित्य प्रातः प्राप्त होना आदि घटनाएँ भी स्वयं में अद्भुत ही हैं ।

भयानकरस—

विन्ध्याटवी का विवरण स्वयं में भीषणता को प्रकट करता है।[330] भीषण गर्मी से त्रस्त पर्वत के पशु तथा मानव, दावानल से त्रस्त वानर आदि की विकृति भयानक स्थिति को प्रस्तुत करती है। परन्तु उसकी भयानकता में भी रमणीयता व्याप्त है। जैसा कि स्वयं ग्रन्थकार कहता है[331]—

अतिरमणीयभीषणां विन्ध्याटवीं प्रापतुः।

'भीषणरमणीयाकृतेः' कहकर भोज अन्यत्र भी भीषणरमणीयता का स्मरण करता है।[332]

इसी प्रकार शृंगारमंजरी की माता विषमशीला का व्यक्तित्व भी अभीषण नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार शृंगारमंजरीकथा में शृंगार के अतिरिक्त अन्य रस भी अंग के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

शृंगारमंजरीकथा में उद्धृत ग्रन्थ तथा ग्रन्थकारः—

शृंगारमंजरीकथा में विविध प्राचीन ग्रन्थ, ग्रन्थकारों तथा उनके विचारों एवं विशिष्ट साहित्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख हुआ है।

खिल, निगम, पुराण, इतिहास, वेद, वेदांग, स्मृति आदि शास्त्र[333] के साथ ही व्याकरण[334], छन्द[335], तथा स्मृतियों के अभिमत, यथा 'स्मृतिशास्त्रेष्वपि श्रूयते यथा किलार्धमिदं शरीरस्य जायेति'[336] अथवा[337] 'भवदीयेष्वपि स्मृत्यादिशास्त्रेषु स्त्रीवधपातकमतिगरीयः पठ्यते' आदि उल्लेख प्राप्त होते हैं।

एक बार भारत[338] का तथा दो बार रामायण[339] का नामतः उल्लेख हुआ है। अर्जुन तथा सुभद्रा[340], द्रौपदी तथा नकुल[341], कुरु तथा कृप[342], बलराम द्वारा प्रलम्बविदलन[343], कौरव-पाण्डव की द्यूत-क्रीडा[344] का उल्लेख हुआ है। भार्गव के द्वारा क्षत्रियनिर्मूलन तथा धनुर्वेद का रहस्य प्रकट किये जाने का भी उल्लेख है।[345] मुनिकवियों में वाल्मीकि, पराशर तथा व्यास का उल्लेख हुआ है।[346] रावण तथा विभीषण,[347] राम-रावण का युद्ध,[348] लक्ष्मण,[349] सुग्रीव,[350] नील तथा नल,[351] विरोचन,[352] प्रहस्त तथा सुबन्धु[353] का भी उल्लेख हुआ है। कथा, आख्यान, कडवक्क, मणिकुल्या, दृष्टान्त, निदर्शन आदि की पुराण कथाओं में स्थिति का भी उल्लेख है।[354] कडवक्क के अतिरिक्त सभी उपर्युक्त प्रकारों को शृंगारप्रकाश में परिभाषित किया गया है।[355] कडवक्क को कल्पलता मुन्शी ने अपभ्रंश का कोई अज्ञात रचना-प्रकार माना है।[356] वामन, भार्गव, नृसिंह आदि[357] अवतारों का भी उल्लेख हुआ है। हरिश्चन्द्रकथा, समुद्रमन्थन तथा उर्वशी-पुरुरवा की कथा का भी संकेत किया गया है।[357]

अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ—

गुरु, भार्गव, उद्भव, चाणक्य, धर्मकीर्ति आदि के उल्लेख[358] के साथ ही चाणक्य के अपर अभिधान कौटिल्य[359] तथा उनकी नीति 'चाणक्यनीति' का भी प्रसंगतः उल्लेख किया गया है। गुरु से तात्पर्य वृहस्पति है जो अर्थशास्त्र के आचार्य थे।[360] भृगु के पुत्र भार्गव उशनस थे जिसका उल्लेख अर्थशास्त्र, महाभारत आदि करते हैं।[361] उद्धव, वातव्याधि अथवा पवन-व्याधि से अभिन्न है जिसका उल्लेख कौटिल्य तथा माघ ने किया है।[362] धर्मकीर्ति बौद्ध-न्यायविद् था।[36

दार्शनिक सम्प्रदाय--

शृंगारमंजरीकथा में दार्शनिक तथ्यों के प्रकाशक कई वाक्य प्रयुक्त हुए हैं। यथा[361]—

विश्वरूपमूर्तिरिव दुर्लक्ष्यस्वरूपा,
अविद्येवाविचारितरमणीया, संसारवृत्तिरिव
परमार्थशून्या, मुक्त्यपेक्षिणी संसारमिव
विदितसारमवगणयति, विश्वस्थितिरिव विचारविरसा,
मायेव नानाविधपाशपातितपशुः..........इत्यादि।

परन्तु साथ ही विविध दार्शनिक सम्प्रदायों का भी उल्लेख किया है—

सांख्यस्थितिरिवापरमार्थोपपदा नित्यपुरुषभोगा,
शाक्यशासनोक्तविश्वस्थितिरिव क्षणिका,
कणादमतिरिव द्रव्यतत्त्वैकप्रधाना, अक्षपादविद्येव सदैव
बहुमतेश्वरा, प्रभाकरप्रज्ञेव स्मृतिप्रमोषोत्पादननिपुणा,
कुमारिलमतिरिवार्थवाद प्रधाना..........।[366]
पंचरात्रस्थितिरिव मायावैभवोपपादितभोगस्थितिः..........
लोकायतस्थितिरिव नाशितपरलोका..........।[367]

भोज के अनुसार पाशुपतव्रत हीनसत्व अपनाते थे।[368]

यतिजन सदा मोक्ष साधने में निरत रहते थे।[369] मुनिजन आश्रम में तरुवरों का संवर्धन करते थे।[370]

साहित्य के रचयिता –

भोज ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही कई ग्रन्थकारों का स्मरण किया है[371]—

देवोप्यखिलजनतासुवन्धुःश्रीभासो गुणाढ्यःप्रशस्तगीर्वाणः।

तथा

कविभिरपि गुणाढ्य-भास भवभूति-बाणप्रभृतिभिरात्म-
गुणाविष्करणमक्रियत।

भास, गुणाढ्य, सुबन्धु, भवभूति, तथा बाण का उल्लेख हुआ है। भोज के अनुसार इनमें से सुबन्धु के अतिरिक्त सभी ने अपने ग्रन्थों में अपना परिचय दिया तथा अपने गुणों पर प्रकाश डाला है। कल्पलता मुन्शी के अनुसार ये सभी गद्य-लेखक हैं।[372] सुबन्धु तथा बाण के गद्य-रचयिता के विषय में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। गुणाढ्य ने भी वृहत्कथा की रचना गद्य में ही की थी।[373] वाल्मीकि, पराशर, व्यास आदि मुनियों के समान भवभूति की भी कोई गद्य-रचना नहीं है। उसने आत्मवर्णन अपने रूपकों की प्रस्तावना में दिया है। विदुषी लेखिका ने भास की गद्यकारविषयक सम्भावना इसलिए की कि गुणाढ्य तथा सुबन्धु जैसे गद्यकारों के साथ उसका नाम परिगणित किया गया है। वस्तुतः प्रथम पंक्ति में इन कवियों का नाम भोज के विशेषण बनकर प्रस्तुत हुए हैं। इसी प्रकार पद्मगुप्त परिमल ने भी अपने काव्य नवसाहसांक-चरित में अभिधान को विशेषण बनाया है—श्रुता गुणाढ्यस्य वृहत्कथा तव।[374] यह बात अलग है कि वे प्राचीन कवियों के अभि-

धान भी हैं। द्वितीय पंक्ति में उन ग्रन्थकारों नाम-परिगणन किया गया है जिन्होंने अपनी कृति में आत्मपरिचय दिया है। वहाँ भी ऐसा नहीं लगता कि भास गद्यकार था। तथा न इसका पोषक कोई प्रमाण ही सुलभ है। बल्कि यह अधिक समीचीन प्रतीत होता है कि भास ने अपने रूपकों की प्रस्तावना में अपना परिचय दिया होगा, जो आज असुलभ है। समुद्रगुप्त के नाम से प्रकाशित 'कृष्णचरित' के अंश से भी ज्ञात होता है कि भास ने बीस के लगभग रूपक रचे थे तथा एक महाकाव्य की भी रचना की थी।[375] सुभाषित-ग्रन्थों में भास के नाम से प्राप्त होने वाले कई श्लोक आज उनके सुलभ रूपकों में प्राप्त नहीं होते। असम्भव नहीं यदि भास ने मूलतः रूपकों की प्रस्तावना में, अथवा असुलभ रूपकों में अथवा अनुपलब्ध महाकाव्य में कहीं अपना परिचय दिया हो, जो आज असुलभ है।

एक अज्ञात कवयित्री विश्वम्भरा की हृदयाकर्षक वक्रोक्ति का भी उल्लेख हुआ है[76]—

विश्वम्भरेव वक्रोक्तिहृतहृदया'

नामनिर्देश न करते हुए दण्डी के काव्यादर्श से—

'स्वगुणाविष्क्रियादोषो नात्रभूतार्थशंसिनः।'

श्लोकार्ध उद्धृत किया गया है।[377]

कामशास्त्र के ग्रन्थ तथा उनके प्रणेता—

कामशास्त्र के प्रणेताओं में दत्तक का नामतः उल्लेख किया गया है[378]—

विशेषतो दत्तकादिप्रणीतवैशिकरहस्यानि च ज्ञापितः।

आदि से तात्पर्य सम्भवतः कामसूत्र के प्रणेता वात्स्यायन से है। क्योंकि कामसूत्र का भोज ने स्मरण किया है[379]—

विचक्षणा कामसूत्रादिविचारेषु।

साथ ही इसमें प्रतिपादित[380] चौंसठ कला तथा चौसठ साम्प्रयोगिक विद्या का भी शृंगारमंजरी के सन्दर्भ में उल्लेख हुआ है।[381]

प्रकृष्टोभयचतुःषष्टिज्ञाने।

इन विविध कलाओं में पारंगत होने का कई बार उल्लेख हुआ।[382]

'शृंगारमंजरी के स्रोत' के विवरण में दत्तक के विषय में विवरण दिया जाएगा।[383]

काव्यांग तथा सहायक चरित्र—

(क) काव्य के रूप—

शृंगारमंजरीकथा में काव्य के विविध रूपों तथा उनकी विशेषताओं का भी प्रसंगतः उल्लेख हुआ है। कथा अपूर्व कल्पित तथा व्युत्पत्ति के लिए होती है।[384] इसका गद्य सुललितपदों में विरचित होना चाहिए।

देशभाषा, गोष्ठी, प्रश्नोत्तरप्रहेलिका आदि के विभिन्न भेद, वाकोवाक्य, समस्या, प्रबन्ध निबन्धन, काव्यकरण, गाथाग्रथन, काव्यार्थभावना, दृष्टान्त, वक्रोक्ति आदि[385] के साथ ही आख्यानक, कडवक्क, मणिकुल्या, निदर्शन प्रभृति[386] काव्यभेदों का भी उल्लेख हुआ है।

विद्वानों की काव्यरचना तथा काव्यश्रवण की गोष्ठी होती रहती थी जिसमें संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश में विरचित रचनाएँ सुनाई जाती थीं। इसमें कई प्रकार के वाग्वैदग्ध्यों से आनन्द लूटा तथा लुटाया जाता था। स्वयं शृंगारमंजरीकथा भी ऐसी ही विद्धद्गोष्ठी को सुनाने के लिए रची गयी है।[387]

प्रश्नोत्तर— सरस्वतीकण्ठाभरण में इसे परिभापित करते हुए इसके छः भेद बताये हैं। यथा[388]—

यस्तु पर्यनुयोगस्य निर्भेदः क्रियते पदैः।
विदग्धगोष्ठ्यां वाक्यैर्वार्ता हि प्रश्नोत्तरं विदुः॥
अन्तःप्रश्नबहिःप्रश्नर्बाहरन्तःसमाह्वयैः।
जातिप्रश्नोत्तराभिख्यैः प्रश्नैस्तदपि षड्विधम्॥

प्रहेलिका—

यह भी क्रीड़ागोष्ठी में विद्वानों का विनोद-साधन था। इसे भोज ने इस प्रकार परिभाषित करते हुए इसके छः भेद बताये हैं[89]—

प्रहेलिका सकृत्प्रश्नः सापि षोढा च्युताक्षरा।
दत्ताक्षरोभयम्मुष्टिर्बिन्दुमत्यर्थवत्यपि॥

वाकोवाक्य—

उक्ति प्रत्युक्तिमद्वाक्यं वाकोवाक्यं विदुर्बुधाः।
द्वयोर्वक्त्रोस्तदिच्छन्ति बहूनामपि संगमे॥
ऋजूक्तिरथवक्रोक्तिर्वैयात्योक्तिस्तथैव च।
गूढं प्रश्नोत्तरोक्तिश्च चित्रोक्तिश्चेति तद्भिदः॥

यह उक्तिप्रत्युक्ति वाक्य से युक्त होती है इसके भी छः भेद होते है।[391]

वक्रोक्ति—

वाकोवाक्य का ही यह एक भेद है। यह निर्व्यूढा तथा अनिर्व्यूढा दो प्रकार की होती है।[392]

प्रबन्ध—

भोज ने प्रबन्ध को इस प्रकार परिभापित किया है[393]—

विधिर्निषेधावगतिर्महावाक्यं प्रबन्धः।
तत्त्रिधा-पद्यं गद्यं च मिश्रं च।

काव्यरचना—

काव्यरचना मुक्तक भी हो सकती है। परन्तु प्रबन्ध मुक्तक नहीं होता है।

गाथा—

गाथा संस्कृत में भी रची जाती है। परन्तु प्राकृत में इसका अधिक प्रचलन है। गाथा-सप्तशती इस प्रकार का प्रथितग्रन्थ है। भोज का अवनिकूर्मशतम् गाथा में विरचित है।

काव्यार्थ-भावना—

काव्य के वस्तुतत्त्व का आनन्द लेना काव्यार्थ-भावना है।

कडवक्क—

इसका तात्पर्य अज्ञात है। कल्पलता मुन्शी ने इसकी अपभ्रंश रचना के रूप में कल्पना की है।

आख्यान —

शृंगारप्रकाश में इसे इस प्रकार परिभाषित किया गया है[394]—

आख्यानकसंज्ञां तल्लभते यद्यभिनयन् पठन् गायन्।
ग्रन्थिकः एकः कथयति गोविन्दवदवहिते सदसि॥

मणिकुल्या[395]—

मणिकुल्यायां जलमिव न लक्ष्यते यत्र पूर्वतो वस्तु।
पश्चात्प्रकाशते सा मणिकुल्या मत्स्यहसितादि॥

निदर्शन[396]—

निश्चीयते तिरश्चामतिरश्चां वा यत्र चेष्टाभिः।
कार्यमकार्यं वा तन्निदर्शनं पंचतन्त्रादि॥
धूर्तविटकुट्टनीमतमयूरमार्जारिकादि यल्लोके।
कार्याकार्यनिरूपणरूपमिह निदर्शनं तदपि॥

कार्य तथा अकार्य का जिसमें निरूपण किया जाय, वह निदर्शन है। इस दृष्टि से शृंगारमंजरीकथा भी निदर्शन ही कही जाएगी। क्योंकि इसमें भी शृंगारमंजरी को उसकी माता विषमशीला उसे लोक के प्रति व्यवहार, कार्य तथा अकार्य का उपदेश देती है। सारी कथानिकाओं की रचना भी इसी प्रयोजन से हुई है।

दृष्टान्त—

एक अर्थालंकार है जिसे शृंगारप्रकाश में इस प्रकार परिभाषित किया गया है[397]—

उक्तार्थप्रसिद्धये प्रसिद्धतत्तुल्यार्थप्रदर्शनम् दृष्टान्तः।

अन्योक्ति—

अन्योक्त्यैव मानग्रहग्रन्थिमुद्ग्रन्थयन्तीषु..........।[398]

यह भी एक अलंकार ही है। भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण अथवा शृंगारप्रकाश में इसका उल्लेख नहीं किया है।

रूपक—

शृंगारमंजरीकथा में नाट्य,[399] नाटक अथवा कपटनाटक[400] का उल्लेख हुआ है। नाटक के पंचीकरण में आवश्यक रंगशाला[401] तथा उसकी सज्जा[402] का उल्लेख हुआ है। नटी के अभिनय का विवरण दिया है जिसमें वह हृदय में सुख अथवा दुःख न होने पर भी रोती है।[403] नृत्याधिदेवता,[404] नृत्योपाध्याय[405] आदि का उल्लेख हुआ है। नर्तनोपाध्याय की देखरेख में ही नृत्य होता था। विशेष-विशेष नर्तकियाँ विशेष अभिनयों में पारंगत होती थीं। लावण्यसुन्दरी 'देशी प्रेक्षणक' की विशेषज्ञा थी। अतः वह उसका ही नृत्य करती है।[406] प्रेक्षणक रूपकों का एक प्रकार है। भोज ने इसे परिभाषित किया है[407]—

रथ्यासमाजचत्वरसुखालयादौ प्रवर्त्यते बहुभिः ।
पात्रविशेषैर्यत्तत्प्रेक्षणकं कामदहनादि ॥

प्रेक्षणक में अनेक पात्र होते हैं परन्तु लावण्यसुन्दरी अकेली ही राजभवन में नृत्य करती है । सम्भवतः देशी प्रेक्षणक में एक पात्र से भी काम चल सकता होगा ।

क्षुरिका नाट्य -

भोज ने इसे जगद्विलक्षण कहा है[408]—

सा तु क्षुरिकानाट्यं जगद्विलक्षणं नर्तितुं जानाति ।

उभयानुरागकथानिका की अशोकवती इसकी विशेषज्ञा थी । इस नृत्त में अवधान की बहुत आवश्यकता रहती है । थोड़ी भूल भी खतरनाक हो सकती है । इसका नर्तक सौष्ठव से च्युत नहीं होना चाहिए । इसे साधने वाले विरले ही होते थे[409]—

सौष्ठवच्युतेयं राजलज्जया सामन्तादिमनुष्यलज्जया
च नृत्यति लग्ना, इदं तु नृत्तमतिविषयं सौष्ठवैकसाध्यम् ।
इयं तु लज्जया सौष्ठवमन्तरेण नृत्यन्त्यात्मानं शस्त्रिकाया
उपरि प्रक्षेप्स्यति, अतो लोकोत्तरं पात्रं विनश्यति लग्नमिति ।

नर्तनपाली—

नर्तकियों को देवालयों में प्रतिदिन क्रमशः नृत्य करने जाना पड़ता था । लावण्यसुन्दरी भी इसी लिए देवालय जाकर नृत्य करती है ।[410] महाकाल के मन्दिर में नृत्य करती वेश्या का मेघदूत मे भी उल्लेख है ।[411]

संगीतध्वनि तथा वलयझंकार से मिश्रित नृत्तताल आकर्षक होती थी ।[412] वनराजि के तथा भारती के नर्तन का भी उल्लेख हुआ है ।[413]

गीत,[414] काकलीगीत,[415] दोलाविलासगीति,[416] एवं मुरज,[417] पटह,[418] विपंची[119] (वीणा) आदि का स्मरण किया गया है ।

पट अथवा भित्ति पर चित्र बनाये जाते थे ।[420] पत्तनिका फोटो अथवा प्रभाव लेने का कोई विशेष साधन था जिससे दृश्य यथावत् लिए जा सकें । उसे मोड़ा जा सकता था ।[421]

(ख) सहायक चरित्र—

शृंगारमंजरीकथा में नायिका के दो स्वरूपों का नामतः उल्लेख प्राप्त होता है ।

अभिसारिका—

सर्पकथानिका की अनंगवती विनयधर से अभिसार करने अपनी सखी के घर जाती है ।[422] सरस्वतीकण्ठाभरण में इसे इस प्रकार परिभाषित किया है[423]—

पुष्पेषुपीडिता कान्तं याति या साभिसारिका ।

वासकसज्जा—

प्रिय के लिए जो अपना सदन सजाये वह वासकसज्जा कहलाती है[424]—

सा तु वासकसज्जा स्यात्सज्जिते वासवेश्मनि ।

तेरहवीं कथानिका में इसका उल्लेख हुआ है ।[425]

नायिका तथा नायक के सहायक चरित्रों का भी इस ग्रन्थ में अभाव नहीं है। शृंगारमंजरीकथा में उपलब्ध ऐसे सहायक चरित्रों का विवरण देना भी प्रसंगप्राप्त है।

महिला-सहायिका—

सखी—

छठी कथानिका में लावण्यसुन्दरी की सखी वकुलिका रहती है। वह लावण्यसुन्दरी की ओर से देवालय में नृत्य करती है तथा रत्नदत्त के अन्वेषण में भी जाती है। पहली कथानिका म संगमिका रविदत्त को विनयवती का प्रेम निवेदन करती है। नायक-नायिकाओं को मिलाने में इनका सहयोग रहता है।

प्रतिवेशिनी—

इसका भी नायक-नायिका को मिलाने में सहयोग रहता है।[426] सातवीं कथानिका का नायक सोमदत्त कर्पूरिका की प्रतिवेशिनी के घर ठहरता है। पमारक कथानिका में भी इसका उल्लेख हुआ है।

दूती—

प्रेमसन्देश पहुँचाने का कार्य करने वाली दूती का भी एकाधिक वार उल्लेख हुआ है।[427]

पुरुष सहायक—

शृंगारमंजरीकथा के अन्त में विट, धूर्त, वयस्या, कदय, भुजंग, पाषण्डी, रागी, कितव आदि का उल्लेख हुआ है।[428] विषमशीला इनके प्रति सावधान रहने की चेतावनी देती है।

शश अथवा शशी मूलदेव का सखा था।[429] ये दोनों धूर्त थे।[430] भरत[431] के अनुसार विट वेश्योपचारकुशल, मधुर, दक्षिण, कवि, ऊहापोहक्षम, वाग्मी तथा चतुर होता है।

वेश्योपचारकुशलो मधुरो दक्षिणः कविः।
ऊहापोहक्षमो वाग्मी चतुरश्च विटो भवेत्॥

भोज तथा वात्स्यायन भी इन गुणों से सहमत हैं। क्षेमेन्द्र इसमें दुर्गुण देखता है।[432]

डिण्डिक—

डिण्डिकपर्षदिव परग्रन्थिस्रावणजातनिवहा।[433]

चतुर्भाणी में डिण्डिकों को वानर तथा पिशाच से उपमित किया गया है।[434]

उपर्युक्त पंक्ति में इन्हें आज के जेबकतरे के समान बताया है। वही खल है।[435]

कदर्य—

जिसके पास स्वजनों के व्यय के लिए भी धन न हो। अपने धन के व्यय-भय से जो अतिथि की भी चाह नहीं करता।[436] वह कदर्य है।

भुजंग—

हलायुध ने इसे वेश्यापति कहा है।[437]

पाषण्ड—

तिक्कपैक पाशुपत पाषण्ड का रूप धर कर अशोकवती के सदन जाता है।[438]

आधुनिक उपन्यास-कहानी तथा शृंगारमंजरीकथा एवं उसकी कथानिकाएँ—

जिस प्रकार शुकसप्तति में एक वक्ता दूसरे श्रोता को विशेष कारण से एक के बाद एक अनेक कहानियाँ कहता जाता है तथैव शृंगारमंजरीकथा में भी एक वक्ता सारी कथानिकाएँ कहता

है। श्रोता भी एक ही है। कथानिकाएँ आपस में सर्वथा असम्बद्ध हैं। वक्ता-श्रोता की एकता, पूर्वपीठिका तथा अन्त का लघु उपदेश इन सबको एक सूत्र में बाँध देता है। और इस रूप में यह एक पूर्ण कथा के रूप में प्रस्तुत है। वस्तुतः इस कथा का स्वरूप कादम्बरी जैसा समरस नहीं है। यहाँ कुछ दशकुमारचरित के गुण प्राप्त होते हैं, जहाँ विविधता में भी सर्वत्र एकसूत्रता, व्यष्टि में भी समष्टि सुलभ होती है।

शृंगारमंजरीकथा अपने सम्पूर्ण रूप में एक उपन्यास के समान है परन्तु कथानिकाओं की पृथक्ता में वह कहानीसंग्रह के समान है। प्रत्येक कथानिका एक कहानी कही जा सकती है। वस्तुतः जो अन्तर उपन्यास तथा कहानी में है वही अन्तर कथा तथा कथानिका में है। असम्भव नहीं यदि कहानी शब्द का मूल कथानिका ही हो। कहानी का बहुवचन 'कहानियाँ' शब्द कथानिका के और भी अधिक निकट है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'साधारणतः रोमांस उन साहस और प्रेममूलक कथाओं को कहा जाता है जो भारतीय साहित्य के गद्यकाव्य की श्रेणी में आते हैं। यही कारण है कि अंग्रेज पण्डितों ने कादम्बरी, दशकुमारचरित आदि को भारतीय रोमांस कहा है। रोमांस में कल्पना का प्राबल्य होता है और उसमें एक ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाता है जो इस वास्तविक दुनिया की जटिलताओं से मुक्त रहता है। पर जहाँ मनुष्य के मनोरथ वैसे ही होते है जो इस दुनिया के होते हैं।

वस्तुतः रोमांस का वातावरण काव्यमय होता है और उसमें कल्पना और भावावेग का प्राधान्य होता है। यथार्थवाद के यह ठीक विरुद्ध दिशा में जाता है। आदर्शवाद के साथ यथार्थवाद का अन्तर उद्देश्यगत है, परन्तु रोमांस के साथ उसका विरोध प्रकृतिगत है। किसी पश्चिमी पण्डित ने रोमांस के मूल में जो सत्य है उसकी तुलना काव्यगत सत्य से की है। यथार्थवाद तथ्यजगत् के बाहर की चिन्ता नहीं करता। रोमांस मनुष्य के चित्त की उस वास्तविक मनोवांछा से उत्पन्न है जो चिरन्तन है और सत्य है। काव्यगत सत्य ही रोमांस का भी सत्य है। क्योंकि रोमांस वस्तुतः गद्यकाव्य है।'[439]

'कथा और आख्यायिका में कवि कल्पना के बल पर वास्तविक दुनियाँ से भिन्न एक नयी दुनियाँ बनाता है।'[440] डा० द्विवेदी के अनुसार 'यह गलत धारणा है कि उपन्यास और कहानियाँ संस्कृत की कथा—आख्यायिकाओं की सीधी सन्तान हैं..........शीघ्र ही यह भ्रम टूट गया कि शब्दों में झङ्कार देकर गद्यकाव्य लिखना और आधुनिक ढंग से उपन्यास लिखना एक ही बात है।'[441]

शृंगारमंजरीकथा को इस दृष्टि से देखने पर लगता है कि वह शब्दों में झङ्कार देकर रची गयी रोमांस-मूलक कृति है। आज की उपन्यास-कहानी से उसकी प्रकृति भिन्न है। प्रवृत्ति में भी वह आदर्शवादी होने से आज की गद्य-प्रवृत्ति से दूर है। इतना होने पर भी शृंगारमंजरी की कथानिकाओं को कई दृष्टि से आज की कहानी के निकट पाया जा सकता है। विपुल वर्णन-तत्त्व ही इनकी प्राचीन प्रवृत्ति का पोषक है। अन्यथा इनकी अन्य कई विशेषताएँ आज के कहानी-तत्त्वों से अधिक दूर नहीं रहतीं।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार[442] 'कहानी का अपना एक लक्ष्य होता है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कहानीलेखक कम से कम पात्रों और घटना की योजना करता है। वह लक्ष्य ही प्रधान होता है, घटना और पात्र निमित्त-पात्र।''''लेखक का व्यक्तिगत मत इसमें अधिक स्प !ट

होता है।' शृंगारमंजरीकथा में यह स्थिति तथ्य के अधिक निकट है। वहाँ प्रत्येक कथानिका सोद्देश्य रची गयी है। कम से कम पात्रों तथा घटनाओं से रचयिता ने अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वहाँ उद्देश्य प्रधान है, घटना तथा पात्र केवल निमित्त हैं। रचयिता का व्यक्तिगत मन वहाँ अधिक स्फुट भी है।

कहानी में छः बातें आवश्यक मानी गयी हैं—(1) पात्र, (2) कथावस्तु, (3) कथोपकथन, (4) देश-काल, (5) शैली और (6) उद्देश्य।

आज के कहानी उपन्यास में भी कभी-कभी इन तत्त्वों में से कतिपय प्रधान हो जाते हैं और इसी आधार पर उन्हें चरित्रप्रधान अथवा घटनाप्रधान अथवा अन्य अंगप्रधान होने पर उसी नाम से पुकारते हैं। घटना इन सबमें स्थूल वस्तु है तथा उद्देश्य सबसे सूक्ष्म। अलग-अलग सुन्दर निर्वाह के साथ ही इन सबका सामंजस्य कथा में मनोहरता तथा सरसता ला देता है।

घटनाओं में औचित्य होना चाहिए। आवश्यक घटनाओं का ही निवेश होना चाहिए। उसमें सीधापन तथा स्पष्टता भी आवश्यक है। शृंगारमंजरीकथा में सभी आवश्यक व स्पष्ट घटनाएँ हैं। देवदत्ता कथानिका उभयानुराग आदि में कुछ दिव्य तत्त्व का निवेश कर दिया गया है। परन्तु देवदत्ता कथानिका में दिव्य तत्त्व भी विक्रम को मूर्ख बनाने के लिए देवदत्ता मनगढ़न्त ही प्रस्तुत करती है जिसकी मिथ्या को अन्त में प्रकट भी कर दिया जाता है। वाक्चातुर्य में वेशवनिताएँ विदग्धों को भी कैसे फँसा लेती हैं, इसी के उदाहरण के रूप में यह कथानिका कही गयी है। अतः उसके इस दिव्यतत्त्व में भी औचित्य है। अन्यत्र आशापुरा देवी का प्रकट होकर वरदान देना आदि दिव्य तत्त्व हैं। वे लौकिक जीवन से परे के तथ्य हैं। स्वभावतः वहाँ औचित्य नहीं है। पर ऐसे स्थल दो-तीन ही हैं। अन्यत्र सर्वत्र घटना में क्रमबद्धता तथा स्पष्टता व औचित्य है।

कथानिकाओं के पात्र, वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। पुनः वे विशिष्ट उद्देश्य से कल्पित होने से स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास करवाने का विशेष अवसर नहीं पाते हैं। तथापि स्त्र्यनुराग कथानिका के रत्नदत्त तथा लावण्यसुन्दरी एवं उभयानुराग कथानिका के पात्रों का अपना विशिष्ट चरित्र है। पात्रों के स्वभाव व चरित्र में कहीं भी अननुरूपता नहीं आने पायी है। पात्रों में सजीवता है।

स्थान-स्थान पर सुन्दर, संक्षिप्त, सारगर्भित तथा कथा को आगे बढ़ाने वाले संवादों का भी आयोजन किया गया है। यथा सूरधर्म कथानिका का यह प्रसंग मनोरम है[443]—

उक्तं चैकया—प्रियङ्गके कुतो भवती ?

प्रियंङ्गिका—उज्जयिनीतः। लवङ्गके भवती पुनः कुतः ?

लवङ्गिका—इतो ग्रामात्। ममोज्जयिन्याः परित्यक्तायाः

कियन्ति दिनानि वर्तन्ते। तत्कथय तत्र राजा कथं वर्तते ?

कीदृशी राजस्थितिः ? का वा तस्यामपूर्वा वार्ता ?

शृंगारमंजरीकथा में देश तथा कालबोधक विवरण ने पर्याप्त विस्तार पाया है। कहीं-कहीं वह कथा का अवरोधक भी बन गया है। विन्ध्यवर्णन तथा दशमी कथानिका का वसन्तवर्णन ऐसा ही है। परन्तु प्रायः ऐसे वर्णन उद्दीपन में विशेष सहयोगी सिद्ध हुए हैं। चौथी कथानिका में गंगातट का सूरधर्मा समुद्रतट पर पहुँचना है तथा वहाँ से उज्जैन पहुँचता है। रचयिता ने सब स्थानों तथा अवसरों को समुचित रूप में प्रस्तुत किया है।

शृंगारमंजरीकथा पौराणिक शैली में रची गयी है। उसमें व्यक्त उपदेश सुहृद्-सम्मत हैं। परन्तु साहित्य की सरसता सर्वत्र व्याप्त है।

वेशोपनिषद् व्यक्त करने के लिए तथा देश-जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए विविध परिस्थितियों पर प्रकाश डालकर उपदेश देने के लिए ये कथानिकाएँ व सम्पूर्ण कथा रची गयी है। इन कथानिकाओं के वर्णन में प्राचीन परिपाटी का पालन किया गया परन्तु घटना का प्रस्तुतीकरण यथार्थ के अधिक निकट है। वेशजीवन की बुराइयाँ, उनके लोभमूलक तथा कुटिल व्यवहार, अनावृत रूप से प्रस्तुत कर दिये गये हैं। अर्थायत्त प्रीति के विविध रूप यहाँ प्राप्त होते हैं। विवेक तथा अविवेक एवं उनकी विविध श्रेणियाँ यहाँ प्राप्त होती है। मजबूरी में कुलवती को भी सावधि वेशजीवन व्यतीत करना पड़ता है तथा चित्तलमहादेवी जैसी महारानियाँ भी क्षुद्रजनों से प्रेम करती हैं। ये और इसी तरह की कई परिस्थितियों पर यहाँ प्रकाश डाला गया है।

इस दृष्टि से देखा जाय तो इन कथानिकाओं में आधुनिक कहानियों का पूर्वरूप पाया जा सकता है। कादम्बरी तथा दशकुमारचरित के विशद वर्णन तथा रोमांसिकता के साथ ही इन कथानिकाओं में आज की कहानियों की सोद्देश्यता, लघुता तथा छः तत्त्व सहज सुलभ हैं। उपदेश-गर्भित होने पर भी साहित्य के श्रेष्ठ गुणों का इनमें समाहार है। और इस दृष्टि से संस्कृत साहित्य में शैली तथा तथ्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ अपूर्व भी है।

संदर्भ

1. शृंगारमंजरीकथा, पृ० 26.
2. वही, पृ० 28.
3. वही, पृ० 30.
4. वही, पृ० 26.
5. शृं० क०, पृ० 28.
6. वही, पृ० 30.
7. वही, पृ० 30.
8. शृं० क०, पृ० 1.
9. वही, पृ० 19.
10. वही, पृ० 26.
11. वही, पृ० 89.
12. वही, पृ० 89.
13. वही, पृ० 89.
14. शृं० क०, पृ० 79.
15. शृं० प्र० 469.
16. वही, पृ० 469–70.
17. अग्निपुराण, 337/12.
18. शृं० क० पृ० 35.
19. वही, पृ० 40.
20. डा० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 67.
21. शृं० प्र०, 36वाँ प्रकाश
22. पाणिनि, अष्टाध्यायी, 5/3/53.
23. शृं० क०, पृ० 1.
24. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड.
25. भामह, काव्यालंकार, 1/29.
26. काव्यादर्श, 1/24.
27. शृं० क०, पृ० 1.
28. डा० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 67.
29. शृं० क०, पृ० 7.
30. काव्यादर्श, 1/24.
31. शृं० प्र०, पृ० 469.
32. शृं० क०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 29 तथा 31.
33. शृं० प्र०, पृ० 469.
34. पद्यं गद्यं च मिश्रं च काव्यं यत्सा गतिः स्मृता।
—स० क०, 2/18.

35. तत्र संस्कृतमित्यादिर्भारती जातिरिष्यते ।

—स० क०, 2/6.

36. च० रा०, वालकाण्ड, 47.
37. शृं० क०, पृ० 18–19 तथा
    कृष्णकान्त चतुर्वेदी, कामसूत्र का वैशिक अधिकरण एवं शृंगारमंजरी, विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा 1970 में आयोजित भोज सेमिनार में पठित शोधपत्र
38. शृं० प्र०, 36वाँ प्रकाश
39. शृं० क०, पृ० 19.
40. शृं० प्र०, पृ० 470.
41. शृं० क०, पृ० 1.
42. वही, पृ० 1.
43. वही, पृ० 2 तथा 7.
44. शृं० क०, पृ० 19.
45. वही, पृ० 89.
46. वही, पृ० 89.
47. वही, पृ० 79.
48. ए० इ०, भाग 18, पृ० 305 तथा
    वही, भाग 11, पृ० 182.
49. धनपाल, तिलकमंजरी, 50.
50. शृं० क०, पृ० 1.
51. शृं० प्र०, पृ० 470.
52. शृं० क०, पृ० 13.
53. शृं० क०, 2.
54. वही, पृ० 89.
55. वही, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 2.
56. वही, पृ० 1 तथा 2.
57. पद्मगुप्त परिमल, नवसाहसांकचरित 11 ‚9.
58. वही, 1/90 तथा 18/62.
59. प्र० चि०, पृ० 32.
60. प० इ०, पृ० 95.
61. इ० सी० सचाउ, अल्वरुनीज इण्डिया, भाग 1, पृ० 202 एवं
    डी० सी० गांगुली, हिस्ट्री आफ परमार डायनेस्टी, पृ० 88.
62. ए० इ०, 18, पृ० 305 तथा इ० ए०, भाग 4, पृ० 53.
63. शृं० प्र०, द्वितीय भाग, भूमिका.
64. सरस्वतीकण्ठभूषां सरसालंकृतिं द्रुतिम् ।
    प्रारणयत्कीर्तिकायस्य प्रायच्छत्स्वस्य नित्यताम् ॥

—शृं० प्र०, द्वि० भाग भूमिका.

65. डा० राघवन् भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 67.
66. शृं० क०, पृ० 18–19.
67. साक्षाद्वाचस्पतिरिव जवाद् छ्वनानाप्रबन्धः । 127
–प्र० चि०, पृ० 52
68. यद्यप्यस्मत्परिषदः सम्मतं……….। शृं० क०, पृ० 7
69. कतिपयैर्विद्वद्भिराप्तैः प्रणयिभिर्नृपतिभिश्चोपास्यमानचरणकमलः ।
–शृं० क०, पृ० 1
70. धनपाल, तिलकमंजरी, 50
71. शृं० क०, पृ० 1.
72. काव्यं सद्दृष्टादृष्टार्थं प्रीति कीर्तिहेतुत्वात् । काव्यालंकारसूत्राणि, 1/1/5 एवं कीर्ति प्रीतिं च विन्दति । स० क०, 1/2
73. छन्दो व्याकरणकला लोकस्थितिपदपदार्थविज्ञानात् ।
युक्तायुक्तविवेको व्युत्पत्तिरियं समासेन ॥ काव्यालंकार 1/18
74. त्रिवर्गसाधनं नाट्यम् । अग्निपुराण, 337/7
75. चतुर्वर्गफलायत्तम् । काव्यादर्श, 1/15
76. धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
करोति कीर्ति प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ॥
–भामह, काव्यालंकार, 1/2
77. च० रा०, बालकाण्ड, 3.
78. च० रा०, बालकाण्ड, 4.
79. शृं० क०, अपेण्डिक्स 1
80. वही, पृ० 18–19
81. वही, पृ० 18
82. वही, पृ० 19
83. वही, पृ० 19
84. शृं० क०, पृ० 12.
85. डा० कृष्णकान्त चतुर्वेदी, कामसूत्र का वैशिकअधिकरण एवं शृंगारमंजरी विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा 1970 मे आयोजित भोजसेमिनार में पठित शोधपत्र
86. च० रा०, बालकाण्ड, 116.
87. स० क०, 5/1-3
88. शृ० प०, 1/6 तथा 5
89. शृं० क०, पृ० 12.
90. शृं० प्र०, 1/5.
91. शृं० क०, पृ० 22–23.
92. वही, पृ० 8
93. वीरभद्र, कन्दर्पचूडामणि, 1/2
94. वाचस्पति गैरोला, सं० सा० इ०, पृ० 965.
95. शृं० क०, पृ० 18

96. शृं० क०, पृ० 62
97. वही, पृ० 57
98. वही, पृ० 66.
99. उत्तराध्ययनटीका 3/59–65
100. शृं० क०, पृ० 24
101. तस्याश्चनृपतिपरिवारवारविलासिनीजनस्य निखिलस्यापि माननीयामाः
—शृं० क०, पृ० 14
102. अधिदेवतायनमेकं मकरकेतोः।—शृं० क०, पृ० 10
103. शृं० क०, पृ० 10—(सौन्दर्यनिर्जितत्रिदशसुन्दरीसौन्दर्यसम्पत्तिः)
104. वही, पृ० 11
105. तरुणजनलोचनालिभिरनवरतमुपास्यमान—शृं० क०, पृ० 10
106. यस्याश्च रूपनिष्पादनार्थमिदमुपकरणकदम्बकमनाददानेनापरभिवोपकरण जातं किमप्यासादितं भगवता प्रजापतिना।–शृं० क०, पृ० 13
107. मदनकरिणो विहरणार्थे मयारेव (?) लावण्यसरसी, शृंगाररसनिर्भरा निर्म्मिता भगवता प्रजापतिना।—शृं० क०, पृ० 12
108. मन्ये च यस्या रूपनिर्माणाभ्यासमिव कर्तुं प्रजापतिना लक्ष्मीरत्यप्सर.प्रभृतयो युवतयः पूर्वमेव निर्मिताः।—शृं० क०, पृ० 14
109. शृं० क०, पृ० 12
110. शृं० क०, पृ० 14
111. वही, पृ० 18,19
112. वही, पृ० 26
113. शृं० क०, 14 से 18.
114. शृं० क०, पृ० 18–19
115. गुणकलादेन अलंकृतः।—शृं० क०, पृ० 9
116. शृं० क०, पृ० 10–11
117. वही, पृ० 14–15.
118. शृं० क०, पृ० 57–58
119. शृं० क०, पृ० 1
120. सरस्वतीकण्ठाभरण, 5/131
121. शृं० क०, पृ० 2 से 7
122. शृं० क०, पृ० 5 से 7
123. वही, पृ० 4
124. वही, पृ० 31
125. वही, पृ० 59–60
126. वही, पृ० 42–43
127. वही, पृ० 36,43,44
128. वही, पृ० 48 से 53 तथा 78–79

129. शृं० क०, 20 से 22, 73 से 76.
130. वही, 48 से 53 तथा 85–86
131. वही, पृ० 27
132. वही, पृ० 29
133. वही, पृ० 67–68
134. च० रा०, पृ० 202–203
135. शृं० क०, पृ० 52, कादम्बरी, पृ० 89 से 97
136. वही, पृ० 53.
137. शृं० क०, पृ० 49–50
138. अभिज्ञानशाकुन्तल, 1/33
139. शृं० क०, पृ० 51
140. वही, पृ० 46–47
141. वही, पृ० 36–38
142. ईश्वरचन्द्र शास्त्री द्वारा सम्पादित युक्तिकल्पतरु, पृ० 193 से 205
    सिद्धेश्वर मशीनयन्त्र, कलकत्ता, 1917 ई०.
143. वही, पृ० 181 से 193
144. शालिहोत्र, डा० एकनाथ दत्तात्रय द्वारा सम्पादित दकन कालेज पूना, 1953
145. ए० इ०, भाग 2, पृ० 233, 237 तथा 238.
146. शिशुपालवध 5/10 तथा 60 पर मल्लिनाथ विरचित टीका एवं द्रष्टव्य विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा 1970 की फरवरी में आयोजित भोजसेमिनार में प्रस्तुत शोधप्रबन्ध 'मल्लिनाथ में भोजसन्दर्भ'।
147. कादम्बरी, पृ० 238–243.
148. शृं० क०, पृ० 36–37
149. रोम्नांभ्रमिवदावृत्तिरावर्त इति गीयते ।
    षड्विधो दक्षणो वामो दक्षिणस्तु शुभावहः ॥
    —युक्तिकल्पतरु, अश्वयुक्ति, 61
150. धारासु योजितानां च निसर्गात्प्रेरणं विना ।
    अविच्छिन्नमिवाभाति तत्तेजः सततोत्थितम् ॥
    सर्ववीथिषु यो वाजी दृढशिक्षासमन्वितः ।
    तेन राजा रणे नित्यं मृगयायां मदं व्रजेत् ॥
    —शिशुपालवध, 5/10,60 की मल्लिनाथ विरचित टीका में उद्धृत भोज
151. जवो हि सप्तेः प्रथमं विभूषणं
    त्रपांगनायाः कृशता तपस्विनाम् ।
    श्रुतं द्विजानां धनिनामगर्वता
    पराक्रमः शस्त्रबलोपजीविनाम् ॥ —शालिहोत्र, 43
152. तुषमभारक्षेपु""। वंशपेचकपक्षकुक्षि""। शृं० क०, पृ० 47.

153. शृं० क०, पृ० 8
154. वही, पृ० 2
155. कोदण्डकाव्य, गाथा 309, परमार इन्स्क्रिप्शन्स्, पृ 74
156. शृं० क०, पृ० 4
157. वही, पृ० 7
158. वही, पृ० 6
159. वही, पृ० 72
160. स्तोक स्तोक, निलीय निलीय, शृं० क०, पृ० 49
चकितचकितमुभयतोवकृष्यावकृष्यांग—वही, पृ० 50
तिरस्कृत्य तिरस्कृत्य, (पृ० 77)
किमपि किमपि सुखान्यनुभूयानुभूय—अच्छाच्छेन (वही, पृ० 85) सरोपाच्छेच्छाच्छेद्य दम् ।
वही, पृ० 87
161. शृं० क०, पृ० 53
162. शृं० क०, पृ० 15–16
163. कादम्बरी, पृ० 320
164. शृं० क०, पृ० 47
165. शृं० क०, पृ० 73
166. वही, पृ० 16
167. शृं० क०, पृ० 19 तथा 77
168. वही, पृ० 83
169. वही, क्रमशः पृ० 1 तथा 72
170. वही, पृ० 87
171. शृं० क०, पृ० 62
172. शृं० क०, पृ० 25
173. शृं० क०, पृ० 63
174. वही, पृ० 70
175. वही, पृ० 74,83
176. वही, पृ० 32,33
177. वही, पृ० 61
178. वही, पृ० 17
179. वही, पृ० 56
180. वही, पृ० 65
181. वही, पृ० 32,33
182. वही, पृ० 34
183. वही, पृ० 53
184. वही, पृ० 70–71
185. वही, पृ० 16

186. वही, पृ० 28
187. वही, पृ० 64
188. वही, पृ० 34-35
189. रीतयोवाङ्मयप्राणा हृदयं तस्य वृत्तयः ।
रचनादिवयं मूर्तिरनुप्रासस्तु जीवितम् ॥
उक्तयो दैवतं छायामुद्रामणितयो वृक्ति ।
पठितिः श्रव्यतापेक्षाभिनयोध्ययनं धृति ॥
श्लेषः पुष्णाति सर्वासु प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम् ।
वाकोवाक्येन हृष्यन्ति मनांसि कृपतामपि ॥
विनयेन विना का श्रीः का निशा शशिना विना ।
विना यमकचित्राभ्यां कीदृशी वाग्विदग्धता ॥
गूढ गूढचतुर्थादिवादिनां दर्पशान्तये ।
प्रश्नोत्तरं तु नाम्नापि विदग्ध-मुखमण्डनम् ॥
क्रीडागोष्ठीविनोदेषु तज्जैराकीर्णमन्त्रणे ।
परव्यामोहने चापि सोपयोगाः प्रहेलिकाः ॥
यथामति यथामुक्ति यथोचित्यं यथारुचि ।
कवेः पात्रस्य चेतासां प्रयोग उपपद्यते ॥
— शृं० प्र०, पृ० 389-90
190. सरस्वतीकण्ठाभरण 2/2/1.
191. स० क०, 2/2/8
192. शृं० क०, पृ० 50
193. वही, पृ० 53
194. वही, पृ० 52
195. शृं० क०, 51
196. वही, पृ० 52
197. वही, पृ० 49
198. स० क०, 2/2/9
199. स० क०, 2/3/2
200. स० क०, 2/3/3
201. शृं० क०, पृ० 59 एवं 11
202. स० क०, 2/3/4
203. शृं० क०, 21
204. स० क०, 2/3/5
205. शृं० क०, पृ० 50 तथा 52
206. स० क०, 2/3/6.

207. शृं० क०, पृ० 67
208. स० क०, 2/3/7
209. शृं० क०, पृ० 67–68
210. स० क०, 2/3/7 तथा रत्नदर्पण टीका।
211. शृं० क०, पृ० 49.
212. शृं० क०, पृ० 45
213. शृं० क०, पृ० 57
214. शृं० क०, पृ० 27
215. वही, पृ० 13
216. वृत्तिस्सापि षड्विधा।
केशिक्यारभटी चैव सान्त्वती भारती तथा।
मध्यमारभटी चैव तथा मध्यमकैशिकी ॥
सं० क० 2/4/1–2
217. शृं० प्र०, पृ० 485
218. स० क०, अध्याय 5, पृ० 208
219. वही, 2/4/3
220. शृं० प्र०, पृ० 485.
221. शृं० प्र०, पृ० 390
222. शृं० क०, पृ० क्रमांक क्रमशः 25, 62, 63, 74 तथा 83, 80, 70, 65 इत्यादि.
223. वही, पृ० क्रमशः 62, 71, 88 आदि.
224. वही, पृ० क्रमशः 32, 34 तथा 53.
225. वही, पृ० 89.
226. शृं० क०, पृ० 1
227. धनपाल ने भी तिलकमंजरी भोज के विनोद के लिए ही रची थी—
निःशेषवाङ्मयविदोपिजिनागमोक्ताः
श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य।
तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो
राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ॥
—तिलकमंजरी, 50
228. शृं० क०, पृ० 56
229. वही, नोट्स पृ० 98
230. वही, अपेण्डिक्स 2
231. वही, ,, ,, सूक्तियाँ
232. शृं० प्र०, पृ० 389
233. चम्पूरामायण, साहित्यमंजूषा टीका, पृ० 2

234. शृं० क०, पृ० 49
235. वही, पृ० 74
236. शृं० क०, पृ० 50
237. शृं० प्र०, पृ० 389
238. शृं० क०, पृ० 3
239. वही, पृ० 19
240. वही, पृ० 32
241. वही, पृ० 44
242. वही, पृ० 46
243. वही, पृ० 58
244. वही, पृ० 58
245. शृं० प्र०, पृ० 389
246. शृं० क०, पृ० 3, 13 तथा 47
247. वही, पृ० 3,4,13,17,37,79,82–83
248. वही, पृ० 13
249. वही, पृ० 18
250. क्षेमेन्द्र, देशोपदेश, पृ० 11, श्लोक 5
251. शृं० क०, पृ० 4
252. वही, पृ० 4,13,17,37,79,82–83 इत्यादि।
253. वही, पृ० 4
254. वही, पृ० 17
255. श्लिष्टोपमा की विपुलता शृंगारमंजरीकथा के पृ० 3,13,37,47 पर द्रष्टव्य
256. शृं० क०, पृ० 3,5,43,79 इत्यादि
257. शृं० क०, पृ० 13
258. वही, पृ० 79
259. वही, पृ० 15
260. वही, पृ० 15
261. वही, पृ० 78
262. वही, पृ० 13
263. शृं० क०, पृ० 17
264. वही. पृ० 7
265. वही, पृ० 15
266. वही, पृ० 78
267. वही, पृ० 3 तथा 47
268. वही, पृ० 17
269. वही, पृ० 15
270. वही, पृ० 15

271. वही, पृ० 16 तथा 18
272. वही, पृ० 16
273. वही, पृ० 17
274. वही, पृ० 17
275. वही, पृ० 17
276. वही, पृ० 17
277. शृं० क०, 15
278. वही, पृ० 4
279. वही, पृ० 15
280. वही, पृ० 74
281. वही, पृ० 75
282. शृं० क०, पृ० 27
283. वही, पृ० 23
284. वही, पृ० 73
285. वही, पृ० 21,74,75
286. वही, पृ० 11,22,67,86
287. वही, पृ० 29
288. वही, पृ० 85
289. वही, पृ० 44,46,52
290. वही, पृ० 77
291. वही, पृ० 76
292. शृं० क०, पृ० 60
293. वही, पृ० 60
294. वही, पृ० 4
295. वही, पृ० 4
296. वही, पृ० 14
297. शृं० क०, पृ० 73
298. शृं० क०, 14
299. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 70
300. शृं० क०, पृ० 49
301. वही, पृ० 50
302. वही, पृ० 49
303. शृं० क०, पृ० 51
304. शृं० क०, पृ० 51
305. वही, पृ० 49–52
306. वही, पृ० 4
307. वही, पृ० 4
308. वही, पृ० 3

309. शृं० क०, पृ० 13
310. शृं० क०, पृ० 37
311. शृं० क०, पृ० 76
312. शृं० क०, पृ० 83
313. वही, पृ० 53
314. वही, पृ० 47
315. शृंगारप्रकाश, पृ० 1/5
316. वही, शृं० क०, पृ० 18
317. काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, 49 वाँ सूत्र।
—आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1960
318. शृं० प्र०, 1/6,7 तथा 11
319. वही, पृ० 2
320. शृं० क०, पृ० 12
321. शृं० क०, पृ० 77
322. वही, पृ० 55 तथा 56
323. शृं० क०, पृ० 55 तथा 56
324. शृं० क०, पृ० 65
325. वही, पृ० 65
326. वही, पृ० 68
327. शृं० क०, पृ० 70
328. शृं० क०, पृ० 88
329. शृं० क०, पृ० 53
330. वही, पृ० 75
331. वही, पृ० 14–15
332. वही, पृ० 3 मिलाकर पृ० 19
333. वही, पृ० 15,78
334. वही, पृ० 13
335. वही, पृ० 84
336. वही, पृ० 24
337. शृं० क०, पृ० 70
338. शृं० क०, पृ० 13 तथा 70
339. वही, पृ० 2

340. वही, पृ० 13
341. वही, पृ० 18
342. वही, पृ० 8
343. वही, पृ० 13
344. वही, पृ० 8
345. वही, पृ० 1
346. वही, पृ० 3
347. वही, पृ० 78
348. वही, पृ० 3
349. वही, पृ० 4,13
350. वही, पृ० 78
351. वही, पृ० 11
352. वही, पृ० 13
353. वही, पृ० 17
354. वही, शृं० प्र०, पृ० 469–70
355. वही, पृ० 96, नोट्स
356. वही, पृ० क्रमश: 15,8 तथा 17
357. शृं० क०, पृ० क्रमश: 13 तथा 20
358. शृं० क०, पृ० 9
359. वही, पृ० 17
360. वही, पृ० 15
361. पी० वी० काणे, हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग 1, पृ० 123
362. वही, पृ० 110
363. शृं० क०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 46
364. शृं० क०, पृ० 46
365. वही, पृ० 15,16,17,18
366. वही, पृ० 17
367. शृं० क०, पृ० 15
368. गृहीतपाशुपतव्रत:—हीनसत्त्व: पाषण्डमेतदंगीकृतवानस्मि । शृं० क०, पृ० 71
369. यतिजनचित्तवृत्तिरिव मोक्षैकतत्परा । शृं० क०, पृ० 15
370. मुनिजनसंवर्धिततरुपंक्तिरिवघटपानाप्तप्रीतिः । शृं० क०, पृ० 18
371. शृं० क०, पृ० 1
372. वही, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 16

373. डा० राघवन्, भोजाज श्रृंगारप्रकाश, पृ० 854–55
374. नवसाहसांकचरित, 7/64
375. भासमानमहाकाव्यः कृतविंशतिनाटकः ।
अनेकाङ्कविधाता च मुनिर्भामोऽभवत् कविः ।।
—समुद्रगुप्त, कृष्णचरित, रसशाला औषधालय, गोंडल, वि. सं. 1997
376. शृं० क०, पृ० 18
377. शृं० क०, पृ० 1 तथा काव्यादर्श 1/24
378. शृं० क०, पृ० 19
379. वही, पृ० 12
380. वात्स्यायन, कामसूत्र, 1/3/20–21 तथा 2/2/1
381. शृं० क०, पृ० 12
382. वही, पृ० 12, 15, 19, 57, 66, 76, 84
383. द्रष्टव्य, दशम उच्छ्वास
384. अस्माकं प्रीत्यै व्युत्पत्तये च
कामप्यपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु स्वामी ।
385. शृंगारमंजरीगद्यप्रवृत्तिरिव सुललितपदा । पृ० 13
386. अन्यपदेश्या देशभाषासु, अग्राम्या गोष्ठीषु, प्रगल्भा प्रश्नोत्तरप्रहेलिकादिप्रभेदेषु, कौतुकिनी वाकोवाक्ये, असमा समस्यासु, प्रवृद्धा प्रबन्धनिबन्धनेषु, भव्या काव्यकरणे, प्रथमा गाथाग्रथने, अन्तर्मुखीकाव्यार्थ भावनासु, अवक्रा वक्रोक्तिषु ।—शृं० क०, पृ० 12
387. कमपि कथाभिः, कमप्याख्यानकैः कमपि कडवक्ककैः
कमपि मणिकुल्याभिः, कमपि दृष्टान्तैः कमपि निदर्शनैः ।—शृं० क०, पृ० 17
388. पृ० 1 तथा अस्मत्परिषदः सम्मतं ।—पृ० 7
389. सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/21/1–2
390. शृं० क०, 2/19/1
391. वही, पृ० 2/18/1–2
392. वही, पृ० 2/18/3–4
393. शृं० प्र०, पृ० 120
394. शृं० प्र०, पृ० 469
395. वही, पृ० 469
396. शृं० प्र०, पृ० 469
397. शृं० प्र०, पृ० 398
398. शृं० क०, पृ० 75
399. सप्रपंचाविपंची नाट्येषु । शृं० क०, पृ० 12
400. एकप्रयोक्त्री कपटनाटकस्य । वही, 16
योग्यावनिः कपटनाटकस्य । वही, 18

401. रंगशाला वैदग्ध्यलासकस्य,
मनोभवरंगशाला निखिलजनरंजकत्वे । वही, पृ० 23
402. नाटकांगस्थितिरिव रम्भोद्भासिनी । वही, पृ० 13
403. नटीव समाजनप्रतापनाय हृदयशून्यं रोदिति । पृ० 17
404. नृत्याधिदेवता शृंगारविलसितानाम् । पृ० 18
405. शृंगारशैलूषनर्तनोपाध्यायः—मधुसमयः । वही, पृ० 20
नर्तनोपाध्यायः, पृ० 68
406. देशीप्रेक्षणकाभिज्ञेति— नर्तितुमारेभे ।
अथ प्रवृत्ते प्रेक्षणके यावत्तालं भंक्त्वा भंक्त्वा पृष्ठतोऽवलोकयति । वही, पृ० 65
407. शृं० प्र०, पृ० 468
408. शृं० क०, पृ० 66
409. वही, पृ० 68–69
410. शृं० क०, पृ० 58
411. कालिदास, मेघदूत, 35
412. शृं० क०, पृ० 3
413. वही, पृ० 76 तथा 89
414. वही, पृ० 5, 12, 52
415. वही, पृ० 52, 74, 76, 78
416. वही, पृ० 76
417. वही, पृ० 5, 12
418. वही, पृ० 27
419. वही, पृ० 12
420. वही, पृ० 60,12
421. वही, पृ० 70–71 तथा नोट्स, पृ० 99
422. शृं० क०, पृ० 77
423. स० क०, 5/119
424. वही, पृ० 5/117
425. प्रतिभवनमिवोपलक्ष्ययाणासु वासकसज्जासु । शृं० क०, पृ० 85
426. प्रतिवेश्या सखीदासीकुमारीकारुशिल्पिनी ।
धात्री पाषण्डिनी चैव दूत्यः स्त्रीक्षणिकास्तथा ॥
भरत, नाट्शास्त्र, 23/9
427. शृं० क०, पृ० 75
428. वही, पृ० 89
429. मूलदेव मूलहारं व्याहरति, शशिनं शशमिव भक्ष्यार्थमन्विष्यति ।
स एवास्मि मूलदेवसखः शशोहम् । शूद्रक, पद्मप्राभृतक भाण, 8/9, 8/15,
25/15, 37/22

430. अस्ति च तत्र मूलदेवो नाम धूर्तः । शृं० क०, पृ० 84, 88
431. नाट्यशास्त्र, 24/104
432. क्षीणाय गुणहीनाय सदोपाय कलाभृते ।
विटाय कृष्णपक्षेन्दुकुटिलाय नमो नमः ॥ देशोपदेश 1/1
433. शृं० क०, पृ० 18
434. पादताडितक, 4 इ, 62–4, 62–6, 117–3, 56–4,
435. देशोपदेश, पृ० 1,2
436. वही, पृ० 3
437. अभिधानरत्नमाला, 2/227
438. शृं० क०, पृ० 71
439. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : साहित्य–सहचर, पृ० 88–89
नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, 1968 ई०
440. वही, पृ० 101
441. वही, पृ० 101
442. वही, पृ० 78
443. शृं० क०, पृ० 33

षष्ठ उच्छ्वास

प्रकीर्ण साहित्य

वाग्देवी स्तुति—

वाणी के आराधक भोज ने वाणी की स्तुति न की होती तो अचरज होता ! पर सरस्वती-कण्ठाभरण के प्रारम्भ में वाग्देवी की स्तुति और श्रृंगारमंजरीकथा के अन्त में प्राप्त संस्कृत-प्राकृत में विरचित अपूर्ण स्तुति के सिवा ऐसा कोई प्रमाण नहीं था जिससे सिद्ध हो सके कि जिस राजा-भोज ने काव्यशास्त्र और व्याकरण के दो-दो सरस्वतीकण्ठाभरण रचे, जिसने धार में शारदासदन बनाया हो, जिसने अपना विरूद सरस्वतीकण्ठाभरण ही रख दिया हो, उस भोज ने सरस्वती की सरस स्तुति न की हो। पर पिछले दिनों वाग्देवी की भोज विरचित स्तुति उपलब्ध हो जाने से उस अभाव की पूर्ति हो गयी। 34 श्लोकात्मक इस सरस काव्य की एकमात्र हस्तलिखित प्रति महाराजा सवाईमानसिंह द्वितीय संग्रहालय जयपुर (ग्रंथ क्रमांक 1619) में विद्यमान है। यह स्तुति वाग्देवी-स्तुति के नाम से प्रो० वि० वेंकटाचलम्जी ने सम्पादित कर प्रकाशित की है।[1]

इस स्तुति का पाठ कई जगह असन्तोषजनक है। सम्पादक ने उसे यथासम्भव ठीक भी किया है।

ग्रन्थ के अन्त में कवि ने दो श्लोकों में कवि-परिचय और फलश्रुति भी दी है। श्लोक 33 से ज्ञात होता है। कि वाग्देवता की इस रुचिर स्तुति का निर्माता राजा भोज ही है। वही राजा भोज,जिसका धवल यश तीनों लोक में व्याप गया है।

सारस्वतं वपुरिवातिविशुद्धवर्णं
लोकत्रयीमपि विशच्च यशो यदीयम्।
चेतांसि मोदयति भोजनृपेण तेन
वाग्देवतास्तुतिरियं रुचिरा व्यधायि ॥33॥

राजा भोज ने धार में शारदासदन बनवाकर 1034 ई० में उसमें वाग्देवी की मनहर प्रतिमा स्थापित करवायी थी जो अब लन्दन के संग्रहालय मे सुशोभित है। उस प्रतिमा के पाद-पीठ के लेख से ज्ञात होता है कि उस शाम्भवी शक्ति से सम्पन्न वाग्देवी की प्रतिमा को महि के पुत्र मणथल ने संवत् 1091 में निर्मित किया था। उस प्रतिमा का पाठ जो भी प्राप्त होता है वह इस प्रकार है—

ओम्। श्रीमद्भोजनरेंद्रचन्द्रनगरी विद्याधरी (शा) म्भवी
यो यानान्प्रयामशणा (शी ?) ल (खलु ?) पुरस्य शशिना याप्सराः।

वाग्देवी प्रथम विधाय जननी यस्या जिता वामवी (यी ?)
यत्पाविधविद्यावररुचिरं चेदं ना नर्म म इति शुभं ॥
सूत्रधारमहिस्तुत मणयलेण घटितं । विधोविदा शिवदेवेन
लिखितमिति । संवत् 1091

उस वाग्देवी की स्तुति कवि ने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण के आरम्भ में भी की है जो ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य के रूप में क्रमशः चार चरणों में स्पष्ट होती जाती है।

ध्वनिर्वर्णाः पदे वाक्यमित्यास्पदचतुष्टयम् ।
यस्याः सूक्ष्मादिभेदेन वाग्देवीं तामुपास्महे ॥

भोज ने अपनी शृंगारमंजरीकथा के अन्त में भी सरस्वती की संस्कृत और प्राकृत में अर्चना की थी जो अब खण्डित रूप में ही प्राप्त होती है।

मधुरमसृणमुग्धस्निग्ध..........
प्रतिकलमतिहर्षाद्भारती नृत्यतीव ।

भारती मानो नर्तन कर रही है जो मधुर है, मसृण है, मोहक है, स्निग्ध है। देवी सरस्वती ने शृंगारमंजरी को पवित्र कर दिया था--

सिंगारमंजरि पाविऊण देवी सरस्सई अज्ज ।
मयरंदपाणम.................................॥

भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण प्रासाद धार और उज्जैन में बनवाये थे और स्वयं ने यह विरुद भी धारण किया था। स्पष्ट ही राजा भोज ने सतत यह प्रयास किया कि वह सरस्वती का सच्चा सेवक सिद्ध हो सके।

अपनी वाग्देवी की 32 श्लोकात्मक स्तुति के अन्त में जो फलश्रुति दी गयी है उसमें बताया गया है कि जो इस स्तुति का छः माह तक स्मरण या पाठ करे उसे कवित्व का स्फुरण हो जाता है। यही नहीं, पाठ न करे और केवल इस स्तुति का श्रवण ही करे तो भी वही फल मिलेगा।

अनुष्ठितेषु काव्येषु षण्मासं य इदं स्मरेत् ।
अनधीतश्रुतस्यापि कवित्वं तस्य जृम्भते ॥

यों तो परम्परानुसार हर ग्रन्थ के आरम्भ में भोज ने देवस्तुति की है। पर स्वतन्त्र स्तुति काव्य तो उनका यही उपलब्ध है। महाकालीविजय काव्य का नामोल्लेख मिलता है, काव्य नहीं। स्तुति-काव्य ही वह काव्य होता है जिसमें कवि पूर्ण समर्पण-भाव से स्वयं को प्रस्तुत कर देता है। वहाँ मोह तथा छल का परदा बिल्कुल नहीं रहता। सरस्वती के बाहरी और भीतरी स्वरूप के साथ ही उसकी महत्ता का कवि ने बार-बार स्मरण किया है। जीवन का सार वाणी है और वाणी के दो सार हैं—वक्तृत्व और कवित्व, जो सरस्वती की कृपा से ही संभव है।

जीवितस्येह वाक्सारो वाचः पुनरिदं द्वयम् ।
वक्तृत्वं च कवित्वं च तद्वाणि त्वत्प्रसादतः ॥

वाग्देवी का यह स्तोत्र सचमुच सारगर्भित और रमणीय है। कितना सार्थक रूपक प्रस्तुत हुआ है—

विश्व के रंगमंच पर अपने ललित पदों से तुम नर्तन करती हो, पर सारे संसार को तुम नचाती भी तो हो—भारती, आप हमारी रक्षा करें।

अखिलेऽपि जगद्रङ्गे नृत्यन्ती ललितैः पदैः।
नर्तयत्यखिलं विश्वं या नः सा पातु भारती ॥24

पूरा स्तोत्र अनुष्टुप् छन्द में विरचित है। केवल कवि का आत्मपरिचय वसन्ततिलका में है। वाणी के पद-पद का इस स्तोत्र में सार्थक उपयोग किया गया है। सारस्वत ज्योति की आराधना में कवि अनवरत लीन है। कवि ने उस ज्योति का छः बार उल्लेख किया है।

कवि हिमधवल सरस्वती की अर्चना करता है जिसकी कान्ति शंख, कुन्द और चन्द्र-सी है—

प्रालेयधवलां देवीं शङ्खकुन्देन्दुरोचिषम्।
स्तुमस्तामृग्यजुःसामामेक धाम सरस्वतीम् ॥

भोज द्वारा बनवायी गयी वाग्देवी की प्रतिमा भी तो श्वेत है।

अवनिकूर्मशतम्—

धारा की भोजशाला में सुरक्षित एक शिला पर, 83 पंक्तियों में उत्कीर्ण दो शतक हैं। प्रत्येक में 109 प्राकृत गाथा हैं। ये शतक एकाधिक बार प्रकाशित हुए हैं।[2]

ग्रन्थ का रचयिता—

प्रथम शतक की 107 वीं गाथा में इसे 'कूर्मशतम्' कहा गया है[3]—

कुम्मस्स वि वीसमो दिन्नो एक्केण भोअराएण।
हरिऊण वेरिआसं कुम्मसयं विरइअं तेण ॥

तथा भोजराजे को इसका रचयिता बताया गया है, जिसने अपने शत्रुओं की आशा पर तुषारापात कर दिया था।

प्रथम कूर्मशतम् के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचितं
अवनिकूर्मशतम् ॥ मगलं महाश्रीः ॥

अवनिकूर्मशतम् का रचयिता धारानरेश परमार राजा भोज ही है, यह तथ्य उपर्युक्त दोनों सन्दर्भों से प्रकट होता है। क्योंकि—

(1) 107 वीं गाथा तथा पुष्पिका से प्रकट है कि इस शतक का रचयिता भोज है।

(2) इस भोज की उपाधि महाराजाधिराजपरमेश्वर थी शृंगारमंजरीकथा, शृंगारप्रकाश, कोदण्डकाव्य, राजमार्तण्ड, योगसूत्रवृत्ति आदि भोजकृत ग्रन्थों की पुष्पिकाओं तथा भोज के ताम्रपत्रों में भी भोज की ये ही उपाधियाँ प्राप्त होती हैं।

(3) भोज न केवल शान्ति से शासन-संचालन करता हुआ साहित्य-सृजन में निरत रहता

था अपितु वह एक महान् विजेता भी था। उसने कई युद्धों में सफलता प्राप्त की थी।[4] उपर्युक्त 107 वीं गाथा से प्रकट होता है कि उसने, सम्भवतः किसी दुर्दान्ति वैरी को पराजित कर शान्ति की साँस ली तथा उसी विजय की स्मृति में, विजय के कारण भूभाग के विस्तृत होने पर उसका भी भार हेलया वहन करने में स्वयं की सक्षमता प्रकट करने के लिए, कूर्मशतम् की रचना की। इसी गाथा में भोज यह भी प्रकट करता है कि भूभार वहन करने में वह कूर्म के समान है। उसने स्वयं भार-वहन कर कूर्म को विश्राम दे दिया। प्रकट है, भोज की विजय, शासन-संचालन की कुशलता, विस्तृत राज्य-क्षेत्र को भी अनायास शासित करने की योग्यता आदि का स्पष्ट ही गाथा से आभास होता है। इससे भी यही प्रतीति होती है कि इस रचना का सम्बन्ध राजा भोज से ही है, जो इसका रचयिता भी है।

(4) शृंगारप्रकाश,[5] पातंजलयोगसूत्रवृत्ति,[6] भोज के ताम्रपत्र[7] आदि के प्रारम्भिक स्तुति-श्लोकों से प्रकट है कि भोज शैव था। कूर्म विष्णु का अवतार था जो सागरमन्थन के काल सागर में धँसते मन्दराचल का आधार बना। इस कूर्मशतम् में उस कूर्म से कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। कूर्म की प्रशस्ति में विरचित कूर्मशतम् का प्रारम्भ शिव की स्तुति से होता है—

ओं नमः शिवाय ॥

इच्छाए जस्स भुअणं धरिअं एक्काए असमसत्तीए।
उअणेउ सो सुहाइं तुम्हाणं पव्वईनाहो ॥[8]

यही नहीं पृथ्वी को धारण करने वाले कूर्म आदि को भी शिव का ही वशंवद बताया गया है[9]—

जस्स भणिएण भुअणं कुम्मप्पमुहा वि धारयन्ति इमं।
सो अकलिज्जसरूओ ससिचूडो देउ सोक्खाइं ॥

स्वयं भोज शिवभक्त था। कूर्मशतम् एक पकार से पृथ्वी-धारणकर्ता (राजा) की परोक्ष प्रशस्ति है। पृथ्वी धारण करने में सक्षम कूर्म को भी एकमात्र भोज ने विश्राम दिया[10]—

कुम्मस्स वि वीसामो दिन्नो एक्केण भोअराएण।

स्पष्ट ही यह कृति समग्र रूप से अन्योक्ति-मूलक है।

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि कूर्मशतम् का रचयिता धाराधीश भोज ही है।

ग्रन्थ का अभिधान—

चतुर्थ उच्छ्वास में कहा चुका है कि भोज के विरुद तथा उसके ग्रन्थों के अभिधानों में अभेद था। 107 वीं गाथा में भोज इस ग्रन्थ को कूर्मशतम् ही कहता है। परन्तु पुष्पिका में इसे अवनिकूर्मशतम् कहा गया है। ग्रन्थ का यह अभिधान अधिक समीचीन प्रतीत होता है। भोज ने उस कूर्म की प्रशंसा की, जो भुवन के भार को उठाता है, जिसने इस कर्म के लिए अपने सुख तथा भुवन-भार, दोनों को पीठ दी[11]—

जह निअसुहस्स पट्ठी तह दिण्ण भुअणभारस्स।

उसने परोपकार का पथ प्रशस्त किया।[12] अकेला कूर्म सारे भुवन का भार वहन करता है, उसे अन्य की अपेक्षा नहीं—

भुअणे वि जा न जाओ सरिसो ता किं करेउ सो वरओ ।
एक्को च्चिअ वहइ भर कुम्मो वीअं अपावन्तो ।।[13]

भुवन-भार को वहन करने में सक्षम इस अद्वितीय कूर्म को भी विश्राम दिया - एक मात्र भोज ने।[14] पहिले अवनि को धारण करने वाले कूर्म की प्रशस्ति की गयी, अतः 'अवनिकूर्मशतम्' अभिधान उचित है। पुनः 'अवनि को धारण करने में जो कूर्म है' इस अर्थ का वहन करने से भोज की 'अवनिकूर्म' उपाधि में भी औचित्य है। पूर्व वर्णित 'कूर्म' दिव्य कूर्म है तथा भोज 'अवनेः कूर्मः' 'अवनि का कूर्म'। इस स्थिति में यह उपाधि उसके लिए समुचित है। 'अवनिकूर्म' के द्वारा विरचित 'शतम्' 'अवनिकूर्मशतम्' कहलाया। यह इससे भी समुचित प्रतीत होता है कि शतक के प्रारम्भ में भुवन-भार का वहन करने वाले कूर्म को शिव के आदेश का वाहक कहा गया है जो शिवभक्त भोज के लिए विशेष अनुकूल है।[15] इसमें कूर्म-विषयक सौ गाथा होने से 'कूर्मशतम्' अभिधान भी समुचित है। इस प्रकार 'अवनिकूर्मशतम्' ही ग्रन्थाभिधान अधिक समुचित है क्योंकि इसमें भोज की उपाधि भी सम्पृक्त है।

विषय-विवरण—

ग्रन्थ का प्रारम्भ पार्वतीनाथ से सुख की कामना के साथ हुआ, जिसने अपनी अद्वितीय इच्छा-शक्ति से भुवन-भार को धारण किया। भुवन-भार के वाहक कूर्म की प्रार्थना के पश्चात् पुनः शशिचूड से सुख की कामना की गयी जिसके आदेश से कूर्म आदि भी भुवन को धारण करते हैं।

ग्रन्थ की वस्तु की रूपरेखा इस प्रकार है—

कूर्म की वह माता धन्य है जिसने ऐसे पुत्र को जन्म दिया, जो सतत अपनी पीठ पर, दुःख की अवज्ञा करते हुए भुवन-भार वहन करता रहा। इसकी माता को अपने इस अद्वितीय पुत्र पर गर्व है। जन्म तो दैवाधीन है परन्तु कूर्म का अध्यवसाय श्लाघनीय है। कूर्म का चरित अद्वितीय है। कूर्म जैसा न तो अन्य उत्पन्न हुआ, न वर्तमान में दिखाई देता है तथा न होगा। आत्मलाभ के लिए संघर्ष तो सभी करते है परन्तु कूर्म ने परोपकार के लिए चुपचाप तथा दृढ़ता से स्वयं को श्रम में जुटा दिया। अनुकूल भाग्य से ध्रुव पृथ्वी से ऊपर है परन्तु अपने सुख का उत्सर्ग कर कूर्म ने अपने सुकर्म से उसे भी नीचे रख दिया। शेषनाग, वराह, दिग्गज आदि ने पृथ्वी धारण करने का दिखावा किया परन्तु इनमें से कोई भी कूर्म की समता नहीं कर सकता। केवल कूर्म का जीवन ही योग्य तथा प्रशंसनीय है। कूर्म के समान जन्म लेकर साहसी बनने में ही उसकी सफलता है। ऐसे कूर्म को जन्म देने वाली माता ही, वस्तुतः माता है।

यह कमठ पिङ्गल-वर्ण है+(गाथा 2)। वह नीच जाति में उत्पन्न हुआ तथा रूप तो ऐसा कि कुछ कहा ही न जा सकता (गाथा 88)। विधाता ने दुर्मन से उसका निर्माण किया (गाथा 26)। वह बेचारा असहाय होता है। ठीक तरह से घूमफिर भी नहीं सकता (गाथा 24, 27), परन्तु अध्यवसाय में जाति तथा आचार नहीं देखा जाता (गाथा 30)। कछुओं के जीवन में आत्मभार भी भारी पड़ता है (गाथा 7), परन्तु अपूर्व अध्यवसायी है यह कूर्म, जिसने लोकोपकार का नूतन पथ-प्रशस्त (गाथा 38) कर वराह आदि अन्य धरा-वाहकों को भी पीछे रख दिया (गाथा 93, 94)। उसके लोकोपकार की सीमा तो वहाँ आ जाती है, जब मृत्यु के पश्चात् उसका कर्पर (गाथा 89) भी भुवन का वहन करता है। उसे पाकर धरा निःशंक हो गयी (गाथा 49), इसीलिए वह कमठों में श्रेष्ठ कमठपति (गाथा 58,59) है। इसलिए भी कि जो धरा को धारण करते हैं, उन सहित वह उसे उठाता है (गाथा 13)। भोज को कूर्म विष्णु के अवतार कमठ से निकट तब प्रतीत होने

लगता है जब यह कहा जाता कि पाताल में धँसती धरा को उसने कंधा दिया (गाथा 10) तथा इससे भी कि उसकी मृत्यु पर उसके कर्पर ने भुवन-भार का वहन किया। कूर्म वहीं कहीं धरा के नीचे रह गया जिसका कहीं कोई अवशेष नहीं, उल्लेख नहीं।

अवनिकूर्मशतक का भाषागत वैशिष्ट्य—

कूर्मशतक एक श्याम वर्ण की शिला पर उत्कीर्ण है। वह अब तक यथावत् सुरक्षित है। केवल 34 वीं पंक्ति की 87 वीं गाथा में पाँच मात्रा के वर्ण खण्डित हैं—

केणावि हु अ थाइ..........कुम्मोच्चिद्म पट्टो।

यह अवनिकूर्मशतम् महाराष्ट्री प्राकृत में विरचित है। 65 वीं गाथा को उत्कीर्ण करने में एक महत्त्वपूर्ण असावधानी हो गयी है। वहाँ पर 'चम्मक्कणमणमग्गो' उत्कीर्ण है जबकि 'चक्कम्मणमणमग्गे' होना चाहिए था। तथैव (95 वीं गाथा मे) 'किं थ' के स्थान पर किं त्थ' उत्कीर्ण हैं। प्राकृत के विशेषज्ञ आर० पिशेल ने इसके प्राकृत भाषागत कई महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला है।[16]

अनुस्वार तथा परसवर्ण, अनुस्वार तथा अनुनासिक, ए तथा ऐ, ओ तथा औ, वि तथा पि, खु तथा हु, न तथा ण के प्रयोग में अनियमितता उपलब्ध होती है। इस शिलालेख में अनुस्वार-पूर्वक लिखने पर सर्वत्र 'व' के स्थान पर 'म्व' उत्कीर्ण है। उदाहरणार्थ जाएहिम्वि (58 तथा 100 वीं गाथा) तथा अन्न हिम्वि (92 वीं गाथा) ऐसे ही प्रयोग हैं। 58 वीं गाथा में 'जं माइ' के स्थान पर 'जम्माइ' उत्कीर्ण है। यहाँ अनुस्वार के स्थान पर परसवर्ण कर दिया गया है। 13 वीं गाथा में 'उप्पण्णो' तथा 17 वीं गाथा में 'उप्पन्नो' उत्कीर्ण होने से न तथा ण के प्रयोग में अनियमितता प्राप्त होती है।

शौरसेनी प्राकृत की विशेषताएँ भी यत्र तत्र प्राप्त की जा सकती हैं। यथा—'इमं' (गाथा 3), 'तुमं' (गाथा, 12) इत्यादि रूप शौरसेनी के ही हैं। कतिपय अपभ्रंश के रूप भी वहाँ प्राप्य हैं। यथा 'लग्गवि (गाथा, 92), उग्गह (गाथा, 4)[17] इत्यादि। 'परकज्जेकरसिल्लो' (गाथा, 11) में प्रयुक्त 'रसिल्लो' शब्द न प्राकृत का है तथा न अपभ्रंश का। देशी नाममाला में भी यह शब्द प्राप्त नहीं होता। मालवी बोली में रसिक के अर्थ में प्रयुक्त 'रसीला' शब्द के यह निकट है। पेट के अर्थ में 'पोट्ट' (गाथा, 57) शब्द भी कुछ इसी प्रकार का है। स्पष्ट है, स्थानीय लोकभाषा का भी इस काव्य पर प्रभाव है। 'चुहुचुहुइ' (गाथा, 44) में ध्वनि को शब्दायित किया गया है। जहाँ तक कतिपय उपर्युक्त भाषागत दोषों का प्रश्न है, वह उत्कीर्ण करने वाले का नहीं, मूल प्रति का ही दोष है, जिसके आधार पर काव्य उत्कीर्ण किया गया।

कतिपय स्थलों पर एक ही पंक्ति की पुनरावृत्ति की गयी है। 23 वीं गाथा की यह पंक्ति[18] —

परिकलिउं न चइज्जइ अज्झवसाओ हु एत्थ पुरिसाण।

28 वीं गाथा में भी प्राप्त होती है। 32 वीं गाथा की इस पंक्ति की[19]—

दुज्जणजणो हु जंपइ पट्ठी कुम्मेण ओड्डिआ भारे।

33 वीं गाथा में पुनरावृत्ति की गयी है। तथा 98 वीं गाथा के इस पूर्वार्द्ध का[20]—

जइ जमो च्चिम्र लब्भइ ता लब्भउ कमढजम्भसारिच्छो ।

101 वीं गाथा में पुनः उपयोग किया गया है। कुछ परिवर्तन के साथ 10 वीं गाथा की इस पंक्ति को[19]—

तेण कमढेण सरिसो न य जाम्रो नेम्र जम्मिहिइ ।

55 वीं गाथा में प्रस्तुत किया गया है[20]—

जस्स सरिच्छो कुम्रणे न य जाम्रो ने म्र जम्मिहिइ ।

14 वीं गाथा की इस[21]—

जइ जम्मो वि हु जायइ ता जायउ कमढ तुज्झ सारिच्छो ।

पंक्ति का मिलान 101 वीं गाथा की इस पंक्ति से किया जा सकता है[21]—

जइ जम्भो च्चिम्र लब्भइ ता लब्भउ कमढजम्भसारिच्छो ।

93 वीं गाथा की इस पंक्ति में[25]—

सेसकिरिकुम्मदिग्गयपमुहाणं निम्रह ववसिम्रं लोम्रा ।

तथा 94 वीं गाथा की इस पंक्ति में केवल सेस तथा किरि का स्थान परिवर्तन कर दिया है—

किरिसेसकमढदिग्गयपमुहाणं निम्रह ववसिम्रं लोम्रा ।

यही नहीं—

'न य जाम्रो नेम्र जम्मिहिइ'

का 'अवनिकूर्मशतम्' में पाँच बार उपयोग किया गया है।[26]

'कूर्मशतम्' की भाषा सरल है। पिशेल का अभिमत है कि समग्र रूप से देखा जाय तो प्रतीत होता है कि रचयिता का भाषा पर अपूर्व अधिकार था। वहाँ कई रूप तथा देशी शब्द ऐसे प्रयुक्त हुए हैं जो अन्यत्र सुलभ नहीं होते।[27]

कूर्मशतक की भाषागत ये विशेषताएँ द्वितीय 'कूर्मशतम्', कोदण्डकाव्य, खड्गशतम्, अज्ञातनामाकाव्य आदि तद्युगीन शिलांकित[28] प्राकृत काव्यों में भी प्राप्त होती हैं। ये शिलालेख धारा की भोजशाला से ही प्राप्त हुए हैं जो वहीं के पुरातत्त्व-संग्रहालय में सुरक्षित हैं। द्वितीय 'कूर्मशतम्' उपर्युक्त प्रथम कूर्मशतम् के साथ, उसी शिला पर अंकित है।

अवनिकूर्मशतकम् का स्रोत—

विष्णु के दस अवतारों में कूर्म भी एक अवतार है। समुद्रमन्थन के अवसर पर मथनी बना मन्दराचल जब समुद्र में धँसने लगा तब विष्णु ने कच्छप बनकर उसे अपनी पीठ का आश्रय दिया। प्रायः सभी वैष्णव पुराणों में इसका विवरण प्राप्त होता है।

कूर्म का आख्यान तैत्तिरीय आरण्यक,[29] शतपथब्राह्मण[30] तथा जैमिनीयब्राह्मण[31] में संक्षेप में उपलब्ध होता है। यहाँ कूर्म को प्रजापति का ही रूप बताया गया है। पुराणों में इसे विष्णु का अवतार बताया गया है। भागवत,[32] कूर्म,[33] अग्नि,[34] गरुड़,[35] पद्म,[36] ब्रह्म[37] तथा विष्णुपुराण[38] में कूर्म के उल्लेख उपलब्ध होते हैं।

पूर्वकल्प के आदि में प्रजापति ने कूर्म आदि रूप धारण किये थे।[39] भगवान् स्वयं कूर्म रूप धारण कर क्षीरसागर में घूमते हुए मन्दराचल के आधार बने।[40]

क्षीरोदमध्ये भगवान्कूर्मरूपी स्वयं हरिः ।
मन्थनाद्रेरधिष्ठानं भ्रमतोभून्महामुनेः ॥

भारत में विष्णु कूर्मरूप मे निवास करते हैं।[41] भागवत में भी ऐसा ही वर्णन है।[42]

परन्तु कूर्मशतक में किसी प्रकार के कथानक का अभाव है। केवल पुराणप्रसिद्ध इस तथ्य पर ही विशेष अवधान दिया गया कि कूर्म ने परोपकार के लिए पाताल में धँसती पृथ्वी[43] का भार वहन किया। सम्पूर्ण शतक में कूर्म की इसी महत्ता के लिए प्रशस्ति करते हुए उसे ध्रुव से भी ऊँचा, पृथ्वी धारण करने वाले उसके समानधर्मा शेष, किरि तथा दिग्गज से भी धीर बताया गया। कूर्म के सत्कर्म के समक्ष ये उपहास के भाजन भी बने।[44] उसकी इस असाधारण महत्ता के कारण उस जैसे पुत्र को जन्म देने वाली उसकी माता को भी धन्य कहा गया। विष्णु के अपर अवतार वराह (किरि) ने भी भूभार का वहन किया था। अतः उसका भी नामतः स्मरण कर लिया गया है।[45]

स्पष्ट है भूभारवहन की मूलकल्पना पुराण से गृहीत होने पर भी उस कल्पना को लगभग 100 गाथाओं में विकीर्ण कर, विविध रूपों में प्रस्तुत करने में जिस कल्पना का उपयोग किया गया, वह मौलिक है। पुनः विष्णु के कूर्म अवतार तथा उसके इस श्लाघनीय कर्म के प्रति कवि का उतना आकर्षण नहीं है। उनके अनुसार तो शेषनाग, वराह, कूर्म, दिग्गज आदि[46] भी शिव के आदेश से ही भूभार धारण करते हैं[47]—

जस्स भणिएण भुअणं कुम्मप्पमुहा वि धारयन्ति इमं ।
सो अकलिज्जसरूओ ससिचूडो देउ सोक्खाइं ॥

'कुम्मप्पमुहा' के द्वारा उन्होंने इन सब का बोध करवाया है। शिव की अद्वितीय इच्छा-शक्ति से ही भुवन धारण किया गया है[48] –

इच्छाए जस्स भुअणं धरिअं एक्काए असमसत्तीए ।

स्पष्ट है, भोज के अनुसार भूभार को धारण करने में जो विष्णु के अवतारों की प्रवृत्ति हुई वह भी पार्वतीनाथ शिव की इच्छा से ही। वही प्रवर्तक है तथा सभी उसी के आदेश के अनुचर।

स्पष्ट ही, यहाँ विष्णु के अवतार कूर्म को भी शिव की इच्छा-शक्ति के अधीन स्वीकार किया गया है। ग्रन्थ का रचयिता स्वयं शैव होने से शैवधर्म को श्रेष्ठ बताने की प्रवृत्ति से ही यह प्रयास हुआ है। भूभार का वहन नृपगण भी करते हैं,[49] परन्तु वे भी अपनी नहीं, शिव की इच्छा-शक्ति से।

अवनिकूर्मशतम् का काव्यगत वैशिष्ट्य—

गाथा (आर्या) छन्द में विरचित अवनिकूर्मशतम् सरलभाषा तथा हृदयस्पर्शी भावों से पूर्ण है। उसमें सात्त्विक श्रद्धा का उन्मेष पद-पद पर प्रकट होता है। यही कारण है कि कई बार वह एक ही भाव को उन्हीं अथवा परिवर्तित शब्दों में अन्यत्र भी अभिव्यंजित करने में निरत हो जाता है।

पिशेल के अनुसार कूर्मशतक में काव्यगत मूल्य का अभाव है।[50] परन्तु रचयिता इसका इतना महत्त्व समझता है कि वह 'शतक' शब्द को ही भिन्न सन्दर्भ में प्रस्तुत कर देता है। उनके

अनुसार केवल सौ गाथाओं की रचना के कारण यह 'गाथाशतम्' नहीं है अपितु प्रत्येक गाथा को लोग सौ-सौ बार पढ़ते हैं इसलिए यह 'गाथाशतम्' है[51]—

गाहासयं न एअं गाहाण सएहिं केवलेहिं कयं ।
सयवारं एक्केकं पढइ जणो जेण तेण सयं ॥

खड्गशतम् में भी इस गाथा का उपयोग हुआ है ।[52] पुनः रचयिता स्वयं को भी यही बात कहता है[53]—

एआइं सयाइं तए गाहाण सएहिं नेअ रइआइं ।
सयवारं आवत्ती जेण एआण तेण सए ॥

धारा से प्राप्त एक लघुशिलाखण्ड पर उत्कीर्ण कतिपय खण्डित प्राकृत गाथाओं में इस गाथा का भी अंश उपलब्ध होता है ।[54] इसी प्रकार एक ही तथ्य को उन्हीं शब्दों में[55] अथवा वैसे ही शब्दों में[56] बार-बार व्यक्त कर पाठकों के हृदय में अभीष्ट तथ्य का प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास भी किया गया है । तुलसीदास के रामचरितमानस में राम के ईश्वरत्त्व को व्यक्त करने वाली उक्तियाँ असंख्य हैं जिनमें भावगत भेद नहीं है । तथैव कूर्म की असाधारणता व्यक्त करने के लिए ही तथा पाठकों के हृदय पर उसका प्रभाव स्थापित करने के लिए ही—

'न य जाओ नेअ जम्मिहिइ'

गाथांश की सम्पूर्ण शतक में विभिन्न स्थानों पर पाँच[57] बार आवृत्ति की गयी है । इसी गाथांश की आवृत्ति एक अन्य खण्डित प्राकृत काव्य में भी की गयी है जिसका अभिधान अज्ञात है ।[58] किसी बात को विशेष शक्ति प्रदान करने के लिए कवि ने वाक्य-खण्ड की भी आवृत्ति की है[59]—

जइ जम्मो च्चिअ लब्भइ कमढजम्मसारिच्छो ।
लद्धेण व अन्नेणं न हु कज्जं तेण न हु कज्जं ॥

दुर्जनों को प्रताड़ित करने के लिए बोलचाल की शैली अपनायी गयी है—

दुज्जणजणो हु जंपइ पट्ठी कुम्मेण ओड्डिआ भारे ।
एअं पि हु तेण कयं वीएणं भणसु जइ भणसु ॥

यहाँ[60] पर 'भणसु' शब्द प्रथम बार 'भण' तथा द्वितीय बार 'भणसि' का अर्थ देता है, अतः यमक अलंकार भी है ।

भोज की चम्पूरामायण अथवा शृंगारमंजरीकथा कृतियों में उपलब्ध अलंकृत भाषा की प्रवृत्ति यहाँ दृष्टिगत नहीं होती । परन्तु यहाँ काव्य अपनी स्वाभाविक गति से भावप्रवणता में गति पाता है । इसमें अलंकरण की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव है । यदि अलंकार का सन्निवेश हुआ भी है तो वह अनायास ही हुआ है ।

कमठ को अप्रतिम बताने के लिए अनन्वय अलंकार का अधिक उपयोग किया गया है । उदाहरणार्थ[61]—

रे कमढ तुज्झ गोत्ते के न हुआ के न अत्थि होहिंति ।
सच्चेण पुण भणामो तुज्झ सरिच्छो तुमं चेअ ॥

कमठ का उपमान और कोई नहीं बन सकता, वह स्वयं ही उसका उपमान है।[62]

उवमाणं कह लब्भउ पेच्छह कुम्मस्स असमचरिअस्स।

वह स्वयं परोपकारियों का उपमान बन सकता है[63] —

जइ जम्मो च्चिअ लब्भइ ता लब्भउ कमढजम्मसारिच्छो।

क्योंकि परोपकार का मार्ग प्रथम बार कूर्म ने प्रशस्त किया[64]—

परउवयरणे मग्गो पढमो कुम्मेण निम्मविओ।

कूर्म का यह कर्म उसकी जाति के अनुकूल नहीं है। परन्तु उसने जो व्यवसाय किया वह अपनी क्या, अन्य जातियों के आचार के भी विरुद्ध, किं वा उनके लिए भी आदर्श है।[65]

निअजाईयसरिच्छं चरिअं निव्वडइ एत्थ पुरिसाण।

निअपरजाइविरुद्धं दीसइ एक्कस्स कुम्मस्स॥

व्यतिरेक अलंकार के द्वारा कूर्म के चरित को उभारने का प्रयास किया गया है। कूर्म अपने सुकर्मों से धरती के नीचे रहते हुए भी ध्रुव की ऊँचाई को लाँघ गया[66]—

अणुकूलेण विहिणा धुअ तं जाएसु उअरि भुअणस्स।

कुम्मेण ववसिएहिं सव्वे तुम्हे तले विहिआ॥

पुनः ध्रुव को उपालम्भ देने में व्यतिरेक से चमत्कार प्रस्तुत किया गया है जिसमें अर्थान्तरन्यास भी मिल जाने से संसृष्टि अलंकार बन गया है[67] —

कुम्मो धरेइ भुअणं तए समं कीस तं सि धुअ कहसु।

लज्जसि न विप्फुरंतो अह व अयासाण कह लज्जा॥

ध्रुव ! कूर्म भुवन को धारण करता है, उसके समान तू कैसे हुआ ? तुझे चमकते हुए लाज नहीं आती। ठीक ही तो है। निर्वसन को (?) लाज कैसी ?

अन्यत्र कवि कहता है कि कूर्म सा और कौन है जिसने बिना स्वार्थ के जैसी पीठ अपने सुख को दी वैसी ही वनभार को भी[68] —

कुम्मेण को नु सरिसो विणा वि कज्जेण जेण एक्केण।

जह निअसुहस्स पट्ठी तह दिण्णा भुअणभरस्स॥

यहाँ पर 'पट्ठी' शब्द में पीठ तथा मुख मोड़ना दोनों अर्थ स्फुरित होते हैं। 'पीठ देना' मुहावरे का भी इसमें उपयोग कर लिया गया है।

शाब्दिक--चमत्कार से अर्थ में चमत्कार लाने की भोज की प्रवृत्ति रही है। यहाँ प्राकृत-काव्य में उसके अधिक उदाहरण तो प्राप्त नहीं होते परन्तु सर्वथा अभाव भी नहीं है। 'कूर्म ने शेष-सहित सारी पृथ्वी उठा ली' यह कहने के लिए कवि ने विरोधाभास का उपयोग किया है[69]--

जेण ससेसा पुहइ बूढा न हु ! उअह नीसेसा।

शब्दावृत्ति की छटा इस पंक्ति मे[70] प्राप्त की जा सकती है—

अन्नेण समं बूढा बूढो वि हु सो अनिव्वूढो।

अर्थान्तरन्यास का भी यहाँ अभाव नहीं है। अध्यवसाय तो वह जिसका अनुसरण कोई नहीं कर पाये। इसीलिए वह कूर्म पर ही ठहरा, अन्य तो बेचारे अलग ही रह गये[71]—

अज्झवसिअं खु तं चिअ जं न हु कइआ वि को वि अणुसरिहो।
तं कुम्मे च्चिअ थक्कं इअरा इअर च्चिअ वराया॥

भुवनभार को वहन करने में भी कमठ को और ही सुख प्राप्त होता है। जो रुचिकर हो, वही सुखद है। सुख की और गति नहीं। साथ ही अर्थान्तिरन्यास के कतिपय अन्य भी उदाहरण प्राप्त होते हैं—

सो च्चिअ वुब्भइ भारो वीओ खंधं न जस्स ओड्डेइ।
कुम्मो अन्नेण समं पेच्छह जइ भारमुव्वहइ॥[72]

अथवा[73]

धवलाण गई एसा मुआ वि न मुअन्ति उअह धवलत्तं।
कुम्मस्स मयस्स वि कप्परं पि भुअणं समुव्वहइ॥

अपह्नुति अलंकार की छटा इस पंक्ति में प्राप्त की जा सकती है[74] —

पसवच्छलेण गब्भा सविआ सयलाण एत्थ महिलाण।

अवनिकूर्मशतम् के सुभाषित—

जो कवि अपनी वाणी को कहावतों में, सूक्तियों में ढालकर जितना अधिक लोकमुख तक पहुँचाने में समर्थ होता है, वह उतना ही सफल कवि माना जाता है।[75] कालिदास, भर्तृहरि, भारवि तथा तुलसीदास ने इस क्षेत्र में सफलता तथा ख्याति अर्जित की। जो जितना अनुभवी तथा भुक्तभोगी अथवा महान् कवि होगा वह उतनी ही अधिक सूक्तियों का निर्माण कर सकने में समर्थ होगा।

जाति तो दैवाधीन है, पुरुष के अधीन तो उसका चरित है। नीच जाति में उत्पन्न होने पर भी देखो, कूर्म का कैसा अनोखा अध्यवसाय है[76]—

जाई देव्वायत्ता चरिअं पुण होई पुरिससाहीणं।
अज्झवसायं पेच्छह केरिसओ सो हु कुम्मस्स॥

वेणीसंहार[77] के कर्ण की गर्वोक्ति—

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्॥

के भावों की छाया से यह उपर्युक्त गाथा अछूती नहीं है।

इस गाथा में यह सूक्ति है—

(क) जाई देवायत्ता चरिअं पुण होई पुरिससाहीणं।

इसी प्रकार इस शतक में अन्य भी कई सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं—

(ख) निअ सुह कज्जे सव्वो इह ववसई।[78]

(ग) आयारो जाई वा ववसाए कारणं न पेच्छामो।[79]

(घ) अयासाण कह लज्जा ।[80]

(ङ) जम्भविसासाण कए जो जम्मो सो हु कस्स न हु एत्थ ।[81]

(च) चंकमिअन्तं वुच्चई जेणं मग्गे वि दरिसिए इअरा ।[82]
न च यन्ति पयं दाउं मग्गे............॥

(छ) कज्जसएहिं कएहिम्वि किन्तेहि कएहिं सारर्रहिएहिं ।[83]

(ज) दिट्ठे मग्गे जो वि हु सो वि हु पायडई निअयववसायं ।[84]

(झ) धवलाण गई एसा मुआ वि न मुअन्ति उअह धवलत्तं ।[85]

(ञ) गरुआण गई एसा अन्ते वि मुअन्ति नेअ अत्ताणं ।[86]

भोज ने न केवल गाथा-खण्ड के माध्यम से ही सूक्तियाँ कहीं, बल्कि सम्पूर्ण गाथा के रूप में सुभाषित भी रचे, जो निम्नानुसार हैं—

(क) सो च्चिअ वुब्भइ भारो अन्नेहिं जाइ जो न परिकलिउं ।
अन्नेण समं वढा वूढा वि हु सो अनिव्वूढो ॥[87]

(ख) जाओ सो च्चिअ वुच्चइ जम्मो सहलो हु तस्स एक्कस्स ।
जस्स सरिच्छो भुअणे न य जाओ नेअ जम्मिहिइ ॥[88]

(ग) जम्मप्फलो हु जम्मो जो जायइ होउ होउ किन्तेण ।
परउअयरणस्स कज्जे जो जम्मो सो हु फलजम्मो ॥[89]

(घ) पोट्टभरणस्स कज्जे जे जाया ते मुआ हु तम्मि खणे ।
परउअयरणस्स कए जाणं जम्मो हु ते धन्ना ॥[90]

(ङ) वीएण विणा वूढं जं वूढं तं खु एत्थ सच्चिमयं ।
अन्नमुहं दट्ठूणं जं वुब्भइ तं खु जाउ ब्रहे ॥[91]

109 गाथाओं के अवनिकूर्मशतम् में इतनी सारी सूक्तियाँ प्राप्त होना साधारण बात नहीं । संस्कृत भाषा में विरचित सूक्तियों तथा सुभाषितों के दर्शन भोज के अन्य ग्रन्थों में भी सुलभ हैं परन्तु प्राकृत सूक्तियाँ तथा सुभाषित प्रायः यहीं सुलभ होते हैं ।

भोज के नाम से प्रचलित तथा उनसे सम्बद्ध कतिपय शिलांकित खण्डित प्राकृत काव्य

धारा की भोजशाला में कई शिलाखण्डों पर अनेक खण्डित प्राकृत काव्य उपलब्ध हुए हैं, जिनमें से बहुधा अब वहाँ के पुरातत्त्व संग्रहालय में सुरक्षित हैं । ये काव्य भोज की प्रशंसा में निरत हैं । यहाँ तक कि एक कोदण्ड (काव्य ?) की पुष्पिका उसे भोज-विरचित कहती है परन्तु समग्र काव्य में भोज की ही प्रशंसा की गयी है । परन्तु ये काव्य शैली तथा भाषागत वैशिष्ट्य की दृष्टि से भोजकृत 'अवनिकूर्मशतम्' के अत्यन्त निकट हैं । द्वितीय कूर्मशतम् भी उसी शिला पर उत्कीर्ण है जिस पर प्रथम कूर्मशतक । स्वभावतः वह भोजयुगीन है तथैव उपर्युक्त कोदण्ड काव्य (?) भी भोज के नाम से उत्कीर्ण है । अवनिकूर्मशतम् की भाँति दो खण्डित 'खड्गशतम्' भी भोजशंसा में निरत हैं तथा उसी प्रकार एक ही शिला पर उत्कीर्ण हैं । एक खण्डित काव्य का अभिधान उपलव्ध

नहीं होता। वह भी आकार-दृष्ट्या कोदण्ड काव्य (?) के निकट है। भाषा तथा भावगत समानता सर्वत्र प्राप्त होती है। अवनिकूर्मशतम से उनकी इन समानताओं के कारण ही प्रस्तुत परिशिष्ट में उन काव्यों का भी सामान्य विवरण दिया जा रहा है। भोजकृत न होने से इनका विशिष्ट अध्ययन अभीष्ट नही है।

(क) द्वितीय कूर्मशतम्—

भोज के 'अवनिकूर्मशतम्' के साथ उसी शिला पर, वैसी ही वर्णाकृति में, उसी महाराष्ट्री प्राकृत तथा वैसी ही शली में, उतनी ही 109 गाथाओं के इस उत्कीर्ण शतक के अन्त में पुष्पिका उपलब्ध नहीं होती है। इस शतक की 69, 72, 74, 75, 77, 80, 82, 85, 88, 90, 93, 95, 98 तथा 100 वीं गाथा आंशिक रूप से खण्डित हैं। इसका प्रारम्भ भी प्रथम कूर्मशतम् के समान 'ओं नमः शिवाय' से होता है तथा प्रथम गाथा में शिव से ही मंगल कामना की गयी है[92]—

भुअणाइं वहइ कन्हो वुब्भइ तस्सेअ निअह कंकालं।
हेलाए जेण सो इह तुम्हाण सिवो सिवं देउ॥

सम्पूर्ण शतक में कहीं इसका अभिधान भी प्राप्त नहीं होता। अन्तिम 109 वीं गाथा से ज्ञात होता है कि इस शतक को उस भोज ने रचवाया जिसके सामने कुलगिरि भूमिधर भी छोटे पड़ गये।[93]

कुलगिरिणो भूमिहरा सयला वि हु लहुइआ इंह जेण।
तेण सयं निम्मविअं एअं सिरिभोअराएण॥

इस गाथा से स्पष्ट है कि इस शतक का रचयिता भोज नहीं, उसका आश्रय प्राप्त कोई प्राकृत भाषा का कवि रहा।

साथ ही इस शतक में सत्रह स्थानों पर भोज को ही सम्बोधित किया गया है[94] तथा तेरह स्थानों पर नामतः स्मरण कर उसका यशोगान किया गया है।[95] ग्रन्थकर्ता स्वयं की यशोगाथा लिखने के लिए काव्य-निर्माण करे, यह असम्भव प्रतीत होता है। पुन. वह भोज, जिसने शृंगारमंजरीकथा में सभासदों के आग्रह पर भी कथा सुनाने में इसलिए संकोच किया कि उसे उसमें स्वयं का वर्णन करना पड़ेगा।[96] सभासदों द्वारा भोज की आशंका का निरास होने पर भी आत्मवर्णन यन्त्रपुत्रक के द्वारा ही करवाया जाता है।[97]

इस शतक का उपजीव्य तथा लक्ष्य प्रथम अवनिकूर्मशतम् की यह पंक्ति है[98]—

कुम्मस्स वि विसामो दिन्नो एक्केण भोअराएण।

धरती के भार को कूर्म, वराह, शेष, दिग्गज आदि ने वहन किया, भोज ने उसका अनायास आहरण कर लिया।[99] अब तक गुरुता ने धरती समुद्र तथा पर्वतों में ही आश्रय पाया था[100] परन्तु इस राजा भोज के उत्पन्न होने पर उनकी गुरुता भी मिथ्या हो गयी। इसलिए तो निर्झर के व्याज से कुलगिरि तथा लहरों के व्याज से सागर क्रन्दन कर रहे हैं।[101] जब पुरुषों की यह स्थिति है तो महिला की क्या स्थिति होगी ? बेचारी पृथ्वी सरिताओं के व्याज से रो रही है।[102] जो धरती कूर्म के लिए भी वजनी थी, भोज के लिए वह हल्की हो गयी। वजन का होना न होना वाहक की शक्ति

पर निर्भर करता है।[103] भोज ने भूभार को मणिवलय के समान धारण कर लिया।[104] इस प्रकार प्रथम कूर्मशतम की पृष्ठभूमि पर इस शतक का निर्माण हुआ। कूर्मशतम् में कूर्म को असाधारण बताया गया है तथा इसमें भोज को उससे भी महान् बताकर उसकी महत्ता अत्यन्त परिवर्धित कर दी गयी है। भावाभिव्यक्ति तथा काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह शतक कहीं कहीं भोजकृत अवनि-कूर्मशतम् से आगे निकल जाता है।

शृंगारमंजरीकथा में[105] भोज को 'भुवनभारोद्धारक्षमः' कहा गया है। शतक उस सूत्र की वृत्ति प्रतीत होता है, उस सूत्र की भी जो अवनिकूर्मशतम् की पूर्वोक्त 107 वीं आर्या में प्राप्त होता है।

इस शतक में भोज सम्बद्ध ही विवरण प्राप्त होने से तथा शतक की अन्तिम गाथा से स्पष्ट है कि यह कृति भोज की नहीं है। उसने अपने आश्रित किसी पण्डित से इसे रचवाया है।

(ख) अज्ञातनामा काव्य—

परमार इन्स्क्रिप्शन्स्[106] में प्रकाशित यह काव्य भी महाराष्ट्री प्राकृत म विरचित तथा शिलांकित है। इस काव्य के उपलब्ध भाग से ज्ञात नहीं होता कि इसका अभिधान क्या रहा ? इस खण्डित काव्य में वे सारी विशेषताएँ प्राप्त होती हैं, जो पूर्वोक्त शतक में उपलब्ध होती हैं। यह भी भोज की कीर्ति-गाथा में निरत है। कूर्मशतक में कूर्म की माता को ही वस्तुतः माता कहकर बताया गया कि यदि वस्तुतः प्रसव हुआ है तो कूर्म की माता का ही[107]—

सच्चेण पसविआ गुण एक्क च्चिअ कमढ तव जणणी।

तथा

जाया सच्चप्पसवा एक्क च्चिअ कमठिणी भुअणे॥

इस अज्ञातनामा काव्य में इसकी प्रतिक्रिया प्राप्त होती है। वहाँ पर भोज के श्रेष्ठ गुणों तथा कृत्यों के सामने कूर्म के नगण्य होने से कूर्म-जननी के मातृत्व को निष्फल बताया गया है। वराह तथा शेष को भी नगण्य बताया गया है।[108] इसमें भी प्रत्यक्षतः कई स्थलों[109] पर भोज को सम्बोधित किया गया है। महाराष्ट्री प्राकृत मे 565 से अधिक[110] गाथाओं मे विरचित इस काव्य की पुष्पिका प्राप्त नहीं होती। काव्य अत्यन्त खण्डित है जिसका प्रारम्भ 'ओं नमः शिवाय' से होता है।

स्पष्ट है, यह काव्य भोज के ही काल, उसी के आश्रित कवि के द्वारा, उसी की प्रशंसा में रचा गया।

(ग) खड्गशतम्—

शृंगारमंजरीकथा में भोज को 'असिधेनु विद्या' का विशेषज्ञ कहा गया है[111]

भृगुरिवासिधेनुविद्यालतानामेकभवनम्।

उपर्युक्त भोज-प्रशंसा में विरचित काव्यों की पंक्ति मे इस शिलांकित काव्य की भी रचना हुई है।[112] भाषा, छन्द, भोज-प्रशंसा की शैली आदि सभी कुछ वैसा ही है। काव्य अत्यन्त खण्डित है। ये तीन शतक थे। द्वितीय शतक तथा तृतीय शतक के मध्य—

.........भिधानं द्वितीयं खड्गशतम् ।

उत्कीर्ण प्राप्त होता है। इससे पूर्व 105 से अधिक गाथाएँ रहीं तथा पश्चात् भी 100 से अधिक ।[113] प्रथम शतक में भोज को कई बार प्रत्यक्षतः सम्बोधित किया गया है[114] तथा द्वितीय शतक में 'तुज्झ', 'तुह' आदि[115] के द्वारा नायक की प्रशंसा की गयी है। वहाँ पर उसकी तलवार के पानी की विशेष चर्चा प्राप्त होती है[116] तथा प्रथम शतक में भोज की असिधारा तथा उसके साहस पर प्रकाश डाला गया है।

अवनिकूर्मशतम् की 108 वी गाथा का पूर्वार्द्ध प्रायः यथावत् प्रथम खड्गशतम् में प्राप्त होता है। कूर्मशतम् की पंक्ति इस प्रकार है–

गाहासयं न एअं गाहाण सएहिं केवलेहिं कयं ।

तथा प्रथम खड्गशतम् की गाथा इस प्रकार है—

गाहा सज (यं ?) न सकं गाहाण सएहि केव ....।

स्पष्ट ही यह काव्य भी भोज के काल उसी के आश्रित किसी कवि ने उसके खड्गशौर्य की प्रशंसा में रचा।

भोज के युक्तिकल्पतरु में पृष्ठ 139 से 174 तक खड्गपरीक्षायुक्ति प्राप्त होती है। काव्यमाला[117] में एक सौ स्रग्धरा में विरचित सटीक खड्गशतकम् प्रकाशित है जिसका रचयिता तथा समय, आद्यन्त खण्डित होने से अज्ञात है।

(घ) कोदण्ड (काव्य ?)—

महाराष्ट्री प्राकृत गाथाओं में विरचित यह शिलांकित काव्य[118] खण्डित रूप में प्राप्त होता है। केवल गाथाओं के अंश ही पढ़े जा सकते हैं। इसमें 576 से अधिक गाथाएँ हैं[119] तथा पुष्पिका इस प्रकार है[120]—

इति महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीभोजदेवविरचितः कोदण्ड .. ....।

जो अवनिकूर्मशतम्, शृंगारप्रकाश, शृंगारमंजरीकथा आदि की पुष्पिका के समान ही है। शृंगारमंजरीकथा में व्यक्त भोज के व्यक्तित्व[121] 'प्रकटितधनुर्वेदविद्यारहस्यश्च' का इसमें पल्लवन दृष्टिगत होता है। इसमें प्रत्यक्षतः भोज को सम्बोधित[122] कर उसकी वीरता तथा उसके धन्वी-व्यक्तित्व का यशोगान किया गया है। इसमें भोज को 'राजमदन', राजमार्तण्ड तथा नरनाथ उपाधियों से मण्डित कहा गया है।[123] द्वितीय कूर्मशतम् में जिस 'कन्ह' का उल्लेख किया गया था,[124] भोज के द्वारा उसके पराजित होने अथवा उसे नीचा दिखाने का उल्लेख यहाँ अनेक बार हुआ है।[125] भोज के वंश को इसमें अग्नि से उत्पन्न बताया गया है,[126] जिसकी पुष्टि शृंगारप्रकाश,[127] तिलकमंजरी,[128] नवसाहसांकचरित,[129] उदयपुरप्रशस्ति,[130] आदि से भी होती है। कोदण्डकाव्य में जयकुंजरस्तम्भ का विवरण प्राप्त होता है[131]—

असिकिरणरज्जुबद्धं जेणं जयकुंजरं तुमं धरसि ।
जयकुंजरस्सथंभोए अच्छं ति सोक्खेग ॥

शृंगारमंजरीकथा में भी जयकुंजर की कल्पना की गयी है[132]—

छिद्यत इव जयकुंजरदशनकिरणविसरैः ।

उसमें कालिका,[133] भोज की तुरुष्क-विजय[134] (जिसका स्पष्ट उल्लेख उदयपुर-प्रशस्ति में भी हुआ है),[135] भोज के द्वारा सहस्रों गायों का दान,[136] उसके आश्रित पण्डितवर्ग[137] आदि के उल्लेख प्राप्त होते हैं। पण्डितविषयक पुष्टि भोजप्रबन्ध तथा प्रबन्धचिन्तामणि से भी होती है।

ग्रन्थ में स्वयं भोज को प्रत्यक्षतः लगभग 15 बार सम्बोधित कर उसका यशोगान किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि यह कृति भोज विरचित नहीं है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है कि शृंगारमंजरी कथा में भोज आत्मशंसा से विमुख रहता है तथा यह कार्य यन्त्रपुत्रक से सम्पन्न करवाता है। यह कैसे सम्भव है कि कोदण्डकाव्य में वह स्वयं ही आत्मस्तुति करने में निरत हो जाय? प्रकट है, किसी पण्डित ने भोज की प्रशंसा में यह काव्य रचकर उस पर भोज का नाम उत्कीर्ण करवा दिया। अथवा द्वितीय कूर्मशतम् की भाँति इसकी भी रचना भोज ने करवायी हो। डॉ० एन० पी० चक्रवर्ती[138] भी इसके भोज विरचित होने में सन्देह करते हैं।

भोज का प्राकृत को प्रश्रय—

'अवनिकूर्मशतकम' काव्य भोज-विरचित है परन्तु इसी उच्छ्वास के परिशिष्ट में जिन खण्डित प्राकृत काव्यों का विवरण दिया गया है वे काव्य चाहे भोज-विरचित न हों परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि इन्हें रचवाने में भोज का हाथ था। कम से कम द्वितीय कूर्मशतम् की पूर्वोक्त अन्तिम आर्या से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। इससे यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि भोज अपने आश्रित पण्डितों को न केवल संस्कृत अपितु प्राकृत में भी काव्य रचने के लिए प्रोत्साहन देता था। द्वितीय कूर्मशतम्, कोदण्डकाव्य, खड्गशतम्, अज्ञातनामाकाव्य आदि इसी प्रकार के प्रोत्साहन देकर रचवाये गये काव्य प्रतीत होते हैं।

यह भी असम्भव नहीं कि भोज अपने आश्रित पण्डितों में निश्चित भाषा में काव्य रचने के लिए स्पर्धा करवाता रहा हो। उनमें से जो काव्य श्रेष्ठ प्रतीत होता था उन्हें वह शिलांकित करवाता रहा हो। दो खड्गशतम् का एक ही शिला पर, एक साथ उत्कीर्ण होना इसका प्रमाण है। दोनों कूर्मशतम् भी एक ही शिला पर अंकित हैं। दोनों की गाथा संख्या में भी अन्तर नहीं है। असम्भव नहीं, यदि स्वयं भोज भी इस स्पर्धा में भाग लेता रहा हो। प्रथम कूर्मशतम् इसका प्रमाण है परन्तु उसकी आज्ञा से उसकी स्पर्धा करने वाले कवि ने भोज की ही प्रशंसा कर, उसे कूर्म से भी श्रेष्ठ बता दिया। उसकी काव्य-शैली से प्रसन्न होकर भोज ने उसे भी श्रेष्ठता की स्वीकृति देकर अपने काव्य के साथ उत्कीर्ण करवाया हो, तो भी असम्भव नहीं। इससे भी प्रतीत होता है कि भोज न केवल प्राकृत को प्रश्रय देता था अपितु स्वयं भी काव्य रचकर उस साहित्य के वैभव में परिवृद्धि करता रहता था। भोज ने अपनी शृंगारमंजरीकथा के अन्त में भी चार प्राकृत गाथाएँ रची है जो अब खण्डित होने से पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं होतीं।[139] इसमें 'कड्डवक' जैसे प्राकृत तथा 'अक्का' तथा 'अव्वा' जैसे देश्य शब्दों का संस्कृत कथा के मध्य प्रयोग किया है। प्राकृत तथा देश्य शब्दों से संस्कृत शब्दों का निर्माण भी किया गया है। जैसे 'ठक' तथा 'ठकयित्वा' शब्द देश्य 'ठग' से बने हैं। 'टिरटिल्लितानि' प्राकृत शब्द 'टिरिटिल्ल' से बनाया गया है।[140] भोज-विरचित प्रथम कूर्मशतम् में भी अनेक देशी शब्द प्राप्त होते हैं जिनका उल्लेख हो चुका है।

भोज ने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश में भी संस्कृत, प्राकृत तथा देशभाषा तीनों का उपयोग करने की छूट दे रखी है।[141] वह प्राकृत गाथाओं की रमणीयता को पसन्द करता है।[142] सट्टक, खण्डकथा, परिकथा आदि प्राकृत कथाओं से वह परिचित है।[143] वह शूद्रककथा

से भी परिचित है,[144] जिसकी भाषा कुछ समय पूर्व ही चर्चा का विषय बन चुकी है ।[145] यही नहीं, भोज ने इनके रचना-प्रकार भी दिये हैं । भोज ने प्राकृत तथा अपभ्रंश रचना के प्रकार भी दिये हैं ।[146] भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश में प्राकृत के अमित उद्धरण दिये हैं । पैशाची के भी उद्धरण दिये हैं,[147] जिनमें से दो तो गुणाढ्य की बृहत्कथा के प्रारम्भ के नमस्कार छन्द हैं ।[148]

भोज ने प्राकृत की कृतियों को अपने इन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उद्धृत किया है, जिनमें कतिपय के उद्धरण भी दिये हैं । हरिविजय, लीलावती, शूद्रककथा, इन्दुमती, सेतुबन्ध, गोरोचना, अनंगवती, चेटक, मारीचवध इत्यादि ऐसे ही उदाहरण हैं । अब्धिमथन के समान भीमकाव्य भी अपभ्रंश में विरचित प्रतीत होता है । उसने पाणिनि तथा कात्यायन की प्राकृत व्याकरण का भी उल्लेख किया है जिसके विषय में विद्वानों में मतभेद है ।[149] हाल की गाथा सप्तशती की लगभग सभी गाथाओं को भोज ने उद्धृत कर दिया है ।[159] लीलावती से भी कई गाथाएँ उद्धृत हैं । शृंगारप्रकाश की इन प्राकृत गाथाओं को सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का भी प्रयास हुआ है ।[151] इस प्रकार भोज ने स्वयं ग्रन्थ रचकर, रचवाकर तथा तद्विषयक शास्त्रीय विस्तृत विवरण देकर[152] प्राकृत, अपभ्रंश आदि की उन्नति में भी पर्याप्त योगदान दिया । संस्कृत, प्राकृत आदि में अपभ्रंश तथा देश-भाषा के रसिल्लो, पोट्ट आदि[153] शब्दों के उपयोग में भी पीछे नहीं रहा जो स्थानीय मालवी बोली के शब्दों के पूर्वरूप प्रतीत होते हैं ।[154]

शृंगारमंजरीकथा की नायिका सर्वविद्या-विशारद होने के साथ ही देश-भाषा से भी विशेष परिचित थी तथा गाथा-ग्रथन में अग्रणी भी ।[155]

अव्यपदेश्या देशभाषासु·········प्रथमा गाथाग्रथने ।

स्वयं शृंगारमंजरीकथा में प्राकृत तथा देशी शब्दों का मुक्त हस्त से उपयोग किया गया है ।[156] इससे प्रतीत होता है कि भोज संस्कृत के साथ ही प्राकृत, अपभ्रंश तथा स्थानीय बोली के साहित्य को समृद्ध करने के लिए भी सन्नद्ध था । ऐसे उदाहरण भोज-प्रबन्ध तथा प्रबन्धचिन्तामणि मे भी सुलभ हैं । यहाँ उसके आश्रित कवि सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा देशी भाषा का अपनी काव्य रचना में खुलकर प्रयोग करते थे ।

सुभाषित-प्रबन्ध—

भूमिका—

भोजकृत सुभाषित-प्रबन्ध की केवल एक ही हस्तलिखित प्रति उपलब्ध होती है ।[157] इसके प्रारम्भ में—

'भोजकृत ग्रन्थः प्रारम्भः'

लिखा हुआ है तथा पुष्पिका में—

'इति भोजराजकृतः सुभाषित-प्रबन्धः ।'

इसमें 255 श्लोक हैं जिनमें से एक श्लोक का दो बार (102 तथा 251) प्रयोग होने से कुल श्लोकों की संख्या 254 है । तत्पश्चात् 37 श्लोकों का एक 'भोजप्रबन्धसार' है । इन दोनों ग्रन्थों की समाप्ति पर पुनः अन्त में पुष्पिका दी गयी है—

'इति भोजकृत-सुभाषितं समाप्तं ।'

प्रारम्भ तथा अन्तिम वाक्यों से ज्ञात होता है कि यह कृति भोज की है।

विषय-विवरण:—

इस ग्रन्थ में संगृहीत श्लोकों को संकलनकर्त्ता ने विषयानुरूप विभाजित कर दिया है जो निम्नानुसार है—

क्रमांक	विषय	श्लोक-क्रमांक
1	स्तुति-नमस्कार	1 से 6
2	प्रतापवर्णन	7 से 10
3	कीर्ति	11 से 19
4	प्रातःकाल	20 से 23
5	सन्ध्याकाल	24 से 25
6	चन्द्रोत्प्रेक्षा	26 से 35
7	चंद्रांकवर्णन	36 से 43
8	कटाक्षवर्णन	44 से 51
9	शृंगार	52 से 88
10	विरहवर्णन	89 से 92
11	वायुवर्णन	93 से 95
12	पर्जन्यवर्णन	96 से 98
13	दरिद्रोक्ति	99 से 101
14	अन्योक्ति	102 से 104
15	राजवर्णन	105 से 113
16	पण्डितवर्णन	114 से 116
17	समस्या	117 से 121
18	प्रस्ताव	122 से 152
19	वैराग्य	153 से 158
20	प्रस्ताव	159 से 163
21	मानुष्यप्रस्ताव	164 से 166
22	ब्राह्मण	167 से 168
23	कुपण्डित	169 से 170
24	मूर्खप्रस्ताव	171 से 192
25	कूट	193 से 203
26	प्रश्नोत्तर	204 से 210
27	चन्द्रान्योक्ति	211 से 255

चन्द्रान्योक्ति में अभिधान न देते हुए कई खण्ड सम्मिलित कर दिये गये हैं। उनका विस्तृत विभाजन इस प्रकार होगा -

1	चन्द्रान्योक्ति	211 से 215
2	जलधरान्योक्ति	216 से 220
3	हंसान्योक्ति	221 से 222
4	काककोकिलान्योक्ति	223 से 224
5	चातक अन्योक्ति	225 से 229
6	शुक अन्योक्ति	230
7	काक अन्योक्ति	231 से 232
8	केसरी अन्योक्ति	233
9	मृग अन्योक्ति	234
10	सहकार अन्योक्ति	235
11	किंशुक अन्योक्ति	236
12	इक्षु अन्योक्ति	237 से 241
13	सागर अन्योक्ति	242
14	गंगा अन्योक्ति	243
15	काक अन्योक्ति	244
16	वक अन्योक्ति	245 से 246
17	करीन्द्र अन्योक्ति	247 से 248
18	मृग अन्योक्ति	249 से 250
19	शाखी अन्योक्ति	251
20	मक्षिका अन्योक्ति	252
21	महीरुह अन्योक्ति	253 से 254
22	न्यग्रोध अन्योक्ति	255

ग्रन्थ-प्रकृति—

भोज के सुभाषित-प्रबन्ध में विभिन्न काव्यों से श्लोक संगृहीत कर उन्हें विषयानुरूप विभाजित कर दिया गया है।

भोज के अनुसार ऐसे श्रव्य काव्य को 'कोश' कहते हैं[158]—

कोश इव यस्सुभाषितरत्नसमूहात्मकः समुद्रियते ।
महतः काव्याम्भोधेः स कोश इव सप्तशतिकादि ॥

ऐसे सुभाषितसंग्रहों में प्रायः स्रोतग्रन्थ अथवा रचयिता का भी श्लोकों के साथ उल्लेख रहता है। भोज के 'सुभाषितप्रबन्ध' में केवल 194 वें श्लोक के साथ ही 'बालभारतस्य' लिखा गया है। इस अपवाद के अतिरिक्त सम्पूर्ण ग्रन्थ में कहीं भी श्लोकों के स्रोत का उल्लेख नहीं है।

ग्रन्थ के श्लोकों के स्रोत[159]—

ग्रन्थ के कई श्लोकों का स्रोत अज्ञात है। सुभाषित-प्रबन्ध में कई प्राचीन ग्रन्थों से श्लोक संगृहीत किये गये हैं— महाभारत (श्लोक 143) तथा 172), वररुचि (149), भास (35), कालिदास (212), अभिज्ञानशाकुन्तल (85), भर्तृहरि नीतिशतक (122, 127, 155, 157, 170) वैराग्यशतक (153,154), पंचतन्त्र (147, 152, 250), शान्तिशतक (45), मालतीमाधव (29, 158), उत्तररामचरित (81), कादम्बरी (109, 134), रत्नावली (30, 159), दशकुमारचरित (4), काव्यादर्श (190), भट्टनारायण (209), मुरारि (20), हनुमन्नाटक (33), अमरुशतक (47,52,53,54,56,57,58,60,61,62,73,89,90), रुद्रटालंकार (75), ध्वन्यालोक (108,239), काव्यमीमांसा (204), बालभारत (194), इत्यादि पूर्ववर्ती कवियों अथवा कृतियों से श्लोक उद्धृत करने के साथ ही भोज (999 ई० से 1054 ई०) के समकालीन कवियों के भी श्लोक संगृहीत किये गये हैं। क्षेमेन्द्र (151,176), धनिक (44), बिल्हण (136), कृष्णमिश्र (230) आदि लगभग समकालीन के अतिरिक्त परवर्ती स्रोतों से भी श्लोक उद्धृत किये गये हैं। जयदेव के प्रसन्नराघव (12 वी सदी),[160] शार्ङ्गधर (14 वी सदी),[161] भानुपण्डित (जल्हण के नाम से 13 वीं सदी में सूक्तिमुक्तावली का रचयिता),[162] पण्डितराज जगन्नाथ (17 वीं सदी)[163] इत्यादि के भी श्लोक संगृहीत किये गये हैं। हितोपदेश (148) के अतिरिक्त भोजप्रबन्ध में इस सुभाषित-प्रबन्ध के 53 श्लोक हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ के अमित श्लोक भोजयुग से परवर्ती काल में विरचित हैं। परवर्ती लिपिकारों के काव्य-लोभवश भी, परवर्ती श्लोकों का इस पूर्ववर्ती ग्रन्थ में सन्निवेश सम्भव है। परन्तु इतनी मात्रा में श्लोकों का सन्निवेश लघु ग्रन्थ में करना असम्भव-सा प्रतीत होता है।

ग्रन्थ का रचयिता—

इस ग्रन्थ में कवि प्रतिभा की दृष्टि से नूतनता पाना कठिन है क्योंकि इसमें अन्य कवियों के श्लोक संकलित है। परन्तु उपर्युक्त परिस्थिति में, जबकि परवर्ती रचयिताओं के भी श्लोक इसमें प्राप्त होते हैं, इस ग्रन्थ का रचयिता परमार राजा भोज प्रथम(999 ई० से 1054 ई०)को स्वीकार करना उपयुक्त नहीं है। इसके अन्य भी कई कारण हैं -

(1) इसी ग्रन्थ की प्रारम्भिक स्तुति के छठे श्लोक में ईश्वर से किसी रामचन्द्र नामक नरेश की रक्षा-प्रार्थना की गयी है -

> गौरीं वचयितुं मतिं हृदि यदा कर्पूरगौरः शिवो
> धत्ते केलिरसे त्वदीययशसां राशिं समालिंगति।
> दृष्ट्वा तद्गलकालकूटगुटिकां तर्केण संतर्क्य तं
> श्लिष्यन्ती यमयं च रक्षतु सदा त्वां रामचन्द्रं नृप ॥

श्लोक क्रमांक 106 में, बल्लाल के भोजप्रबन्ध के (276 वें) श्लोक—

> बल्लालक्षोणिपाल त्वदहितनगरे संचरन्ती किराती
> कीर्णान्यादाय रत्नान्युरुतरखदिरांगारशंकाकुलांगी।
> क्षिप्त्वा श्रीखण्डखण्डं तदुपरि मुकुलीभूतनेत्रा धमन्ती
> श्वासामोदानुयातैर्मधुकरनिकरैर्धूमशंकां बिभर्ति ॥

के स्थान पर—

'श्रीराम क्षोणिपाल त्वदहितभवने·······।' इत्यादि पाठ करके पूर्वोक्त राजा राम का प्रशंसा-परक श्लोक बना दिया गया है। उसी प्रकार जल्हण की सूक्तिमुक्तावली में अनंगभीम के नाम से जो[164]—

> **एतस्मिन् मृगयां गते च सहसा चापे समारोपिते**
> **ऽप्याकर्णान्तगतेपि पुष्टिगलिते बाणेऽङ्गलग्नेपि च।**
> **स्थानान्नैव पलायितं न चलितं नोत्कम्पितं नोत्प्लुतं**
> **मृग्या मद्वशगं करोति दयितं कामोऽयमित्याशया॥**

इत्यादि श्लोक प्राप्त होता है उसमें ही बल्लालकृत भोजप्रबन्ध में[165] 'श्रीभोजे मृगयां गते' पाठ कर दिया गया है तथा भोजकृत सुभाषित-प्रवन्ध में[166] **'श्रीरामे मृगयां गते'**। इसका अनुसरण तुलसीदास ने भी किया है।[167] इस कल्पना का मूल रघुवंश में पाया जा सकता है।[168]

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ के श्लोकों का संग्रहकर्त्ता रामचन्द्र नामक राजा के आश्रित कोई पण्डित रहा।

(2) 17 वीं सदी के पण्डितराज जगन्नाथ तथा इससे पूर्व के भोज से परवर्ती कवियों के श्लोकों का इसमें संग्रह किया गया है।[169]

> **कति कति न वसन्ते वल्लयः शाखिनो वा**
> **किसलयसुमनोभिः शोभमाना बभूवुः।**
> **तदपि युवजनानां प्रीतये केवलोभू-**
> **दभिनवकलिकालीभारशाली रसालः॥**

(3) ग्रन्थ की उपलब्ध प्रति की लिपि 18 वीं सदी से प्राचीन नहीं है।

(4) सुभाषित-प्रबन्ध के 7 से 19 तक श्लोक तथा 128 एवं 252 वाँ श्लोक भोज की ही प्रशंसा में निरत है। चाहे वे आश्रित कवियों के द्वारा ही विरचित हों, उस भोज के लिए यह समुचित नहीं था जो शृंगारमंजरी कथा में आत्मविवृत्ति के लिए यन्त्रपुत्रक को नियुक्त करता है।

(5) मंगलाचरण—

> **कविजनबुधवन्द्यामिन्दुवर्णां प्रसन्नां**
> **करयुगधृतवीणां गीतवाद्यप्रवीणां।**
> **सुरभिकुसुममालां केशपाशे दधानां**
> **बसुगुणगण-युक्तां शारदां तां नमामि॥**

मैं शृंगारमंजरीकथा अथवा चम्पूरामायण के रचयिता की कल्पना-प्रवणता का अभाव है। सुभाषित जैसे सुरुचिपूर्ण श्लोकों से सम्पन्न आकलन के लिए कविराज भोजराज से, जिसके मुख में सदा वाग्देवता विराजती रही,[170] ऐसे काव्यच्छटा-रहित श्लोक की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

(6) भोज अलंकारशास्त्र का निर्माता एवं साहित्य-निर्माण का पथप्रदर्शक था। तथापि इस ग्रन्थ में, संगृहीत श्लोकों के रचयिताओं के अभिधान न देकर, सुभाषित-ग्रन्थनिर्माण की परम्परा का अनुसरण नही किया।

(7) सारे ग्रन्थ से यह कहीं प्रतीत नहीं होता कि यह भोज राजा भी था जबकि भोज के अन्य ग्रन्थों में उसकी उपाधियाँ भी प्राप्त होती है।

(8) सुभाषित-प्रबन्ध में संगृहीत एक श्लोक धनिक-विरचित है[171]—

उज्जृम्भाननमुल्लसत्कुचतटं लोलभ्रमद्भ्रूलतं
स्वेदाम्भःस्नपितांगयष्टिविगलद्व्रीडं सरोमांचया।
धन्यः कोऽपि युवा स यस्य वदने व्यापारिताः सस्पृहं
मुग्धे दुग्धमहाब्धिफेनपटलप्रख्याः कटाक्षच्छटाः॥

जिसे उन्होंने अपनी दशरूपकावलोक टीका में उद्धृत किया है।[172] धनिक ने अपनी इस टीका में क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी से भी श्लोक उद्धृत किया है।[173] बृहत्कथामंजरी की रचना 1037 ई० में हुयी।[174] स्वभावतः 1037 ई० के पश्चात् धनिक ने टीका रची तथा इसके पश्चात् भोज का सुभाषित-प्रबन्ध संगृहीत हुआ। अथवा धनिक ने अपनी जिस कृति से स्वयं का श्लोक उद्धृत किया उसी कृति से भोज ने भी किया हो तो इस काल के पश्चात् नहीं बल्कि लगभग इसी काल यह ग्रन्थ भी संगृहीत होना चाहिए,। इससे पूर्व सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश में भोज अत्यन्त सुन्दर सहस्रों श्लोक उदाहृत कर चुका था। उन महान् प्रयासो के पश्चात् संग्रह करने का ऐसा सामान्य तथा अमहत्त्वशाली प्रयास न समुचित है तथा न सम्भव है। स्वभावतः यह भोज की कृति नहीं हो सकती।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ परमार राजा भोज का नहीं हो सकता। 17वीं सदी के पण्डितराज से भी परवर्ती लगभग 18वी सदी के किसी रामचन्द्र राजा का यह कोई आश्रित कवि अथवा पण्डित रहा, जिसने या तो श्लोकों का संकलन कर, ग्रन्थ-प्रसिद्धि की कामना से, उसमें भोज का नाम लगा दिया। अथवा उस कवि का भी अभिधान भोज रहा हो। इस प्रकार के एक भोज कवि का 'गोविन्दविलास' काव्य प्राप्त होता है,[175] जिसकी प्रतिलिपि 1602 तथा 1514 विक्रमसंवत् में हुई थी। इसी प्रकार अन्य भी भोज नाम के कवि हो सकते है।

इस ग्रन्थ का संकलनकर्त्ता किसी रामचन्द्र राजा के आश्रित था। 16 वीं सदी में रीवाँ-नरेश रामचन्द्र हुए, जिनका विवरण वीरभद्रदेवचम्पू में प्राप्त होता है।[176] 18 वीं सदी में शृंगवेरपुर के राजा रामचन्द्र भी नागेश आदि विद्वानों के आश्रयदाता थे।[177]

इस ग्रन्थ के संकलनकर्ता के विषय में ये सम्भावनाएँ ही की जा सकती हैं। ग्रन्थ में, संकलनकर्ता इससे अधिक कोई प्रमाण नही छोड़ गया जिनके आधार पर किसी निश्चयात्मक निर्णय पर पहुँचा जा सके।

सन्दर्भ

1. 1982 ई० में उज्जैन में सम्पन्न भोजसेमिनार के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका में प्रकाशित।

2. ए० इ०, ग्रन्थ 8, भाग 4, अप्रेल 1906, पृ० 241–60
तथा प० इ०, 1944, धार स्टेट, हिस्टोरिकल रेकार्डस्

3. संस्कृत छाया—कूर्मस्यापि विश्रामो दत्तः एकेन भोजराजेन।
हृत्वा वैर्याशां कूर्मशतं विरचितं तेन ।।
गाथा 107

4. डा० दशरथ शर्मा, पंवार–वंश–दर्पण, चतुर्थ परिशिष्ट

5. अच्छिन्नमेखलपलब्धदृढोपगूढमप्राप्तचुम्बनमवीक्षितवक्त्रकान्ति।
कान्ताविमिश्रवपुषः कृतविप्रलम्भसम्भोगसख्यमिव पातु वपुः पुरारेः ।।

6. देहार्धयोगः शिवयोः स श्रेयांसि तनोतु वः।
दुष्प्रापमपि यत्स्मृत्या जनः कैवल्यमश्नुते ।।
त्रिविधान्यपि दुःखानि यदनुस्मरणान्नृणाम्।
प्रयान्ति सद्यो विलयं तं स्तुमः शिवमव्ययम् ।। 1–2

7. जयति व्योमकेशोसौ यः सर्गाय बिभर्ति ताम्।
ऐंदवीं शिरसा लेखां जगद्बीजांकुराकृतिम्।
तन्वन्तु वः पुरारातेः कल्याणमनिशं जटाः।
कल्पान्तसमयोद्दामतडिद्वलयपिंगलाः ।।
—ए० इ०, भाग 11, पृ० 81

8. संस्कृत छाया—इच्छया यस्य भुवनं धृतमेकयाऽसमशक्त्या।
उपनयतु सः सुखानि युष्माकं पार्वतीनाथः ।।

9. संस्कृत छाया—
यस्य भणितेन भुवनं कूर्मप्रमुखा अपि धारयन्तीदम्।
स अकल्यस्वरूपः शशिचूडो ददातु सौख्यानि ।।
गाथा 3

10. संस्कृत छाया—
कूर्मस्यापि विश्रामो दत्तः एकेन भोजराजेन।
गाथा 107

11. संस्कृत छाया—
यथा निजसुखस्य पृष्ठी तथा दत्ता भुवनभारस्य।
गाथा 5

12. अवनिकूर्मशतम्, गाथा—56,60,63,64 आदि

30. शतपथब्राह्मण, 7/5/1/5
31. जैमिनीयब्राह्मण, 3/272
32. भागवतपुराण, 8/7/8–10
33. कूर्मपुराण, 1/16/77–78
34. अग्निपुराण, 4/49
35. गरुड़पुराण, 1/142
36. पद्मपुराण, 5/4,13
37. ब्रह्मपुराण, 180,213
38. विष्णुपुराण, 1/4
39. वही, 1/4/8
40. वही, 1/9/88
41. वही, 2/2/50
42. श्रीमद्भागवत, 1/3/16
43. अवनिकूर्मशतम्, 93 तथा 94
44. वही, गाथा 69
45. वही, गाथा 10
46. वही, गाथा 93 तथा 94
47. वही, गाथा 3
48. अवनिकूर्मशतम्, गाथा 1
49. द्वितीय कूर्मशतम्, ए० इ०, ग्रन्थ 8, पृ० 241–60
50. They have no poetical value.

    ए० इ०, ग्रन्थ 8, पृ० 242
51. संस्कृत छाया—

    गाथाशतं न एतत् गाथानां शतैः केवलैः कृतम् ।
    शतवारं एकैकः पठति जनो येन तेन शतम् ।।

    —गाथा, 108
52. ·······माहा सज (यं ?) नं एकं गाहाण सएहि केव·······।

    खड्गशतम्, परमार इन्स्क्रिप्शन्स. पृ० 80, पंक्ति 41
53. संस्कृत छाया—

    एतानि शतानि त्वया गाथानां शतैः नैव रचितानि ।
    शतवारं आवृत्तिः येन एतासां तेन शतानि ।।

    —गाथा, 109

54. ....एई आई । सयवारं आवत्ती जेणं ए आ........।

14वीं पंक्ति

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वाराणसी, सं० 2007, वर्ष 55

अंक 4, पृ० 306

55. अवनिकूर्मशतम्, गाथा 23 तथा 28, 32 तथा 33, 98 तथा 101

56. वही, गाथा 10 तथा 55, 14 तथा 101, 38 तथा 64, 93 तथा 94

57. अवनिकूर्मशतम्, गाथा 10,16,48,55 तथा 85

58. प० इ०, पृ० 83, गाथा 50

59. संस्कृत छाया—

यदि जन्मैव लभते तल्लभतां कमठजन्मसदृक्षम् ।
लब्धेन वा (?) अन्येन न खलु कार्यं तेन न खलु कार्यम् ।।

—अवनिकूर्मशतम्, 101

60. संस्कृत छाया—

दुर्जनजनः खलु जल्पति पृष्ठी कूर्मेण समर्पिता भारे ।
एतदपि खलु तेन कृतं द्वितीयेन भण यदि भणसि ।।

—वही, गाथा 32

61. संस्कृत छाया—

रे कमठ तव गोत्रे के न भूताः के न सन्ति भविष्यन्ति ।
सत्येन पुनः भणामस्तव सदृक्षस्त्वमेव ।।

—गाथा 99

62. संस्कृत छाया—

उपमानं कथं लभ्यतां प्रेक्षध्वं कूर्मस्यासमचरितस्य ।

—गाथा 25

63. अवनिकूर्मशतम्, गाथा 101

64. संस्कृत छाया—

परोपकरणे मार्गः प्रथमः कूर्मेण निर्मापितः ।

—गाथा 38

65. संस्कृत छाया—

निजजातिसदृक्षं चरितं निर्वर्तते अत्र पुरुषाणाम् ।
निजपरजातिविरुद्धं दृश्यते एकस्य कूर्मस्य ।।

—गाथा 15

66. संस्कृत छाया—

अनुकूलेन विधिना ध्रुव । त्वं यायाः उपरि भुवनस्य ।
कूर्मेण व्यवसितैः सर्वे यूयं तले विहिताः ॥

—गाथा 72

67. संस्कृत छाया—

कूर्मो धारयति भुवनं त्वया समं किमर्थं त्वमसि ध्रुव । कथय ।
लज्जसे न विस्फुरन् अथवा अवासतां (?) कथं लज्जा ॥

—गाथा 70

68. संस्कृत छाया—

कूर्मेण को न सदृशो विनापि कार्येण येनैकेन ।
यथा निजसुखस्य पृष्ठी तथा दत्ता भुवनभारस्य ॥

—गाथा 5

69. संस्कृत छाया—

येन सशेषा पृथिवी व्यूढा न खलु पश्यत निःशेषा ।

—गाथा 95

70. संस्कृत छाया—

अन्येन समं व्यूढो व्यूढोपि खलु सः अनिर्व्यूढः ।

—गाथा 19

71. संस्कृत छाया—

अध्यवसितं खलु तदेव यन्न खलु कदापि कोप्यनुसरिष्यति ।
तत् कूर्म एव स्थितं इतरा इतर एव वराकाः ॥

—गाथा 40

72. संस्कृत छाया—

स एवोह्यते भारः द्वितीयः स्कन्धं न यस्य समर्पयति ।
कूर्मः अन्येन समं पश्यथ यदि भारमुद्वहति ॥

—गाथा 18

73. संस्कृत छाया—

धवलानां गतिः एषा मृताः अपि न मुञ्चन्ति पश्यथ धवलत्वम् ।
कूर्मस्य मृतस्यापि कर्परोपि भुवनं समुदवहति ॥

—गाथा 89

74. संस्कृत छाया—

प्रसवच्छलेन गर्भाः शप्ताः (?) सकलानामत्र महिलानाम् ।

—गाथा 102

75. डा० भगवतशरण उपाध्याय, —कालिदास के सुभाषित, पृ० 297
1970 ई०, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

76. संस्कृत छाया—

जातिर्दैवायत्ता चरितं पुनर्भवति पुरुषस्वाधीनम् ।
अव्यवसायं पश्यथ कीदृशकः स खलु कूर्मस्य ॥

—गाथा 20

77. भट्टनारायण, —वेणीसंहार, 3/37

78. संस्कृत छाया —

निजमुखकार्ये सर्व इह व्यवस्यति । —गाथा 34

79. ,, आचारो जातिर्वा व्यवसाये कारणं न प्रेक्षामहे । —गाथा 30

80. ,, अवाससां कथं लज्जा । —गाथा 70

81. ,, जन्मविनाशयोः कृते यज्जन्म तत्खलु कस्य न खल्वत्र । —गाथा 80

82. ,, चंक्रमितं तदुच्यते येन मार्गे अपि दर्शिते इतरे ।
न शक्नुवन्ति पदं दातुं मार्गे·······॥ —गाथा 82

83. ,, कार्यशतैः कृतैरपि किं तैः कृतैः साररहितैः । —गाथा 86

84. ,, दृष्टे मार्गे योपि खलु सोपि प्रकटयति निजकव्यवसायम् । —गाथा 87

85. ,, धवलानां गतिरेषा मृताः अपि न मुञ्चन्ति पश्यथ धवलत्वम् । गाथा 89

86. ,, गुरुकाणां गतिरेषान्तेपि मुञ्चन्ति नैवात्मानम् । —गाथा 90

87. ,, स एव उह्यते भारः अन्यैर्याति यो न परिकलितुम् ।
अन्येन समं व्यूढो व्यूढोपि खलु सः अनिर्व्यूढः ॥ —गाथा 19

88. ,, जातः स एवोच्यते जन्म सफलं खलु तस्यैकस्य ।
यस्य सदृक्षं भुवने न च जातो नैव जनिष्यते ॥ —गाथा 55

89. ,, जन्मफलं खलु जन्म यो जायते भवतु भवतु किं तेन ।
परोपकरणस्य कृते यज्जन्म तत्खलु सफलं जन्म ॥ —गाथा 56

90. ,, उदरभरणस्य कार्ये ये जातास्ते मृताः खलु तस्मिन्क्षणे ।
परोपकरणस्य कृते येषां जन्म खलु ते धन्याः ॥ —गाथा 57

91. ,, द्वितीयेन विना व्यूढं यद्व्यूढं तत्खल्वत्र सत्यमयम् ।
अन्यमुखं दृष्ट्वा यद् उह्यते तत्खलु यातु ह्रदे ॥ —गाथा 81

92. संस्कृत छाया—

भुवनानि वहति कृष्णः उह्यते तस्यैव पश्यत कंकालम् ।
हेलया येन स इह युष्माकं शिवः शिवं ददातु ॥ —गाथा 1

93. संस्कृत छाया—

कुलगिरयः/भूमिधराः सकलाः अपि खलु लघूकृता इह येन ।
तेन शतं निर्मापितमेतत् श्रीभोजराजेन ॥ —गाथा 109

94. गाथा क्रमांक—5, 11, 20, 27, 29, 42, 47, 52, 66, 69, 73, 78, 79, 83, 88, 96, तथा 108 ।

95. गाथा क्रमांक—8, 18, 28, 31, 32, 41, 49, 80, 82, 84, 85, 91, तथा 104 ।

96. न चैतस्याः पुरीतोन्या विलक्षणा काचिदप्यस्तीति प्रथममेषैव वर्णनीया भवति। अस्याश्चाधिष्ठातृत्वप्रसंगेनात्मापि भणनीयः। तच्चानुचितमिवास्मादृशाम्। –शृं० क०, पृ० 1
97. शृं० क०, पृ० 7
98. अवनिकूर्मशतम्, गाथा, 107
99. द्वितीय कूर्मशतम्, गाथा, 8
100. वही, गाथा 36
101. वही, गाथा 38, 39
102. वही, गाथा 40
103. वही, गाथा 55 तथा 104
104. वही, गाथा 65
105. शृं० क०, पृ० 8
106. प० इ०, पृ० 81 से 85
107. संस्कृत छाया—

सत्येन प्रसविता पुनः एकैव कमठ ! तव जननी।

तथा

जाता सत्यप्रसवा एकैव कमठिनी भुवने।

–अवनिकूर्मशतम्, गाथा क्रमशः 103, 104

108. अज्ञातनामा काव्य, गाथा 9, 10, 11, 43 तथा 28 वीं पंक्ति।
109. वही, गाथा 11, 33, 34 57 पंक्ति 34, 35, 39, 47, 63, 64, 65, 67, 72, 79।
110. इस अंक के पश्चात् खण्डित गाथाएँ हैं परन्तु उनके क्रमांक प्राप्त नहीं होते।
111. शृं० क०, पृ० 8
112. प० इ०, पृ० 79 से 81
113. इन अंकों के पश्चात् गाथाएँ खण्डित हैं, अतः उनके क्रमांक उपलब्ध नहीं होते।
114. खड्गशतम्, पंक्ति 2, 9, 22, 33
115. वही, पंक्ति 44, 67, 78 आदि।
116. वही, पंक्ति 44, 53, 62, 68, 70, 78
117. काव्यमाला, एकादशो गुच्छकः, पृ० 37–78
118. प० इ०, पृ० 70 से 78
119. इन अंकों के पश्चात् कतिपय खण्डित गाथाएँ उपलब्ध होती हैं, जिनके क्रमांक उपलब्ध नहीं होते।
120. प० इ०, पृ० 78
121. शृ ० क०, पृ० 8
122. प० इ०, कोदण्डकाव्य (?), पंक्ति, 16, 19, 23, 34, 35, 37, 43, 69, 70, 72, 73 आदि।

123. वही, क्रमशः 10, 70, 37, 75 वीं पंक्ति।
124. द्वितीयकूर्मशतम्, गाथा 1 तथा 107
125. कोदण्डकाव्य (?), पंक्ति 13, 57, 65, 68, 70 आदि
126. वही, पंक्ति 40
127. शृं॰ प्र॰, भाग दो, पृ॰ 575
128. धनपाल, तिलकमंजरी, श्लोक 39
129. पद्मगुप्त परिमल, नवसाहसांकचरित, 11/49–71
130. ए॰ इ॰, भाग 1, पृ॰ 234
131. संस्कृत छाया—

असिकिरणरज्जुबद्धं येन जयकुञ्जरं त्वं धारयसि।
जयकुंजरस्य स्तम्भे अच्छं इति·······सौख्येन॥
—कोदण्डकाव्य, 37 वीं पंक्ति।

132. शृं॰ क॰, पृ॰ 2
133. कोदण्डकाव्य, 46 वीं पंक्ति तथा खड्गशतम् की 19 वी पंक्ति।
134. वही, 59 वी तथा 67 वीं पंक्ति।
135. चेदीश्वरेन्द्ररथतोग्गलभीममुख्यान्।
कर्णाटलाटपतिगुर्जरराट्तुरुष्कान्॥
—ए॰ इ॰ भाग 1, उदयपुरप्रशस्ति, श्लोक 17

136. कोदण्डकाव्य, 38 वी पंक्ति
137. वही, 48 वीं पंक्ति
138. आर्कोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, 1934–35, तृतीय खण्ड, एपिग्राफी, पृ॰ 60
139 शृं॰ क॰, पृ॰ 89
140. शृं॰ क॰, इण्ट्रोडक्शन, पृ॰ 39
141. डा॰ राघवन् भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ॰ 186
142. वही, पृ॰ 370
143. वही, पृ॰ 540 तथा 355
144. वही, पृ॰ 625
145. जर्नल आफ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 18 वाँ भाग, क्रमांक 4 जून 1969, पृ॰ 315–17
146. डा॰ राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ॰ 14 तथा 35
147. वही, पृ॰ 850
148. वही, पृ॰ 855
149. वही, पृ॰ 747
150. वही, पृ॰ 822
151. जर्नल आफ शिवाजी युनिवर्सिटी, कोल्हापुर, खण्ड 1, भाग 1, पृ॰ 11–18, जुलाय, 1968

152. विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के द्वारा 1970 की फरवरी में किये गये भोज सेमिनार मे डा० ए० एन० उपाध्ये के द्वारा प्रस्तुत शोधपत्र में तद्विषयक सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं।
153. अवनिकूर्मशतम्, गाथा 11 तथा 57
154. द्रष्टव्य, इसी उच्छ्वास में 'अवनिकूर्मशतम् का भाषागत वैशिष्ट्य' शीर्षकस्थ विवरण
155. शृं० क०, पृ० 12
156. शृं० क०, पृ० 32, 33, 34, 53
157. द्वितीय उच्छ्वास में इस प्रति का विवरण दिया जा चुका है। इसकी प्रतिलिपि मेरे पास सुरक्षित है।
158. शृं० प्र०, भाग दो, पृ० 470
159. भोज की कतिपय अल्पज्ञात साहित्यिक कृतियाँ—
—ऑल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेन्स के 25 वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोधपत्र
160. सुभाषित-प्रबन्ध के श्लोक क्रमांक 28, 175 तथा 181 प्रसन्नराघव में क्रमशः 7/61, 1/19 तथा 2/1 क्रमांक पर उपलब्ध होते हैं।
161. सुभाषित-प्रबन्ध का 195 वाँ श्लोक सुभाषित-सुधा-रत्नभाण्डागार के अनुसार शाङ्र्गधर-विरचित है।
162. सुभाषित-प्रबन्ध का 102 तथा 251 वाँ, श्लोक जो मूलतः एक ही श्लोक है, सूक्ति-मुक्तावली के पृष्ठ 107 पर प्रथम श्लोक है।
163. सुभाषित-प्रबन्ध का 236 वाँ श्लोक, पण्डितराज-काव्यसंग्रह (हैदराबाद, 1958) में पृ० 151 पर 255 वाँ श्लोक है।
164. जल्हण, सूक्तिमुक्तावली, 385/16
165. बल्लाल, भोजप्रबन्ध, 217
166. सुभाषितप्रबन्ध, 113
167. शर चारिक चारु बनाइ कसे कटि पाणि शरासन सायक लै।
वन खेलत राम फिर मृगया तुलसी छवि सो वरणै किमिकै।
अवलोकि अलोकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकें चितवें चितदै।
न डगै न भगै जियजानि शिलीमुख-पंचघरे रतिनायक है॥
—तुलसीदास, कवितावली, अरण्यकाण्ड, 49 वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० 1961
168. धनुर्भृतोप्यस्य दयार्द्रभावमाख्यातमन्तः करणैर्विशंकैः।
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः॥
रघुवंश, 2/11
169. सु० प्रबन्ध, श्लोक 236 तथा पण्डितराज जगन्नाथ-काव्यसंग्रह (हैदराबाद, 1958), पृ० 151, श्लोक 255
170. यद्वक्त्राम्बुजमाप्य गर्वमसमं वाग्देवतापि श्रिता।
—राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति, अन्तिम श्लोक

171. सुभाषितप्रबन्ध, 44
172. दशरूपकावलोक, पृ० 186
 —चौखम्बा, वाराणसी, 1962 ई०
173. डी० सी० गंगुलि, हिस्ट्री ग्राफ परमार डायनेस्टी, पृ० 276
174. वही, पृष्ठ 276 तथा बलदेव उपाध्याय, सं० सा० इ०, पृ० 275
175. द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का द्वितीय उच्छ्वास तथा हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 11259
 —राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर
176. छविनाथ त्रिपाठी, चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन, पृ० 170
177. बलदेव उपाध्याय, सं० सा० इ०, 1968, पृ० 69

सप्तम उच्छवास

भोज की साहित्येतर कृतियों में साहित्यिक तत्त्व

भूमिका—

एक कवि तथा कवियों के आश्रयदाता के रूप म भोज की विशेष ख्याति रही है। उसकी साहित्याभिरुचि से सम्बन्धित अनेक प्रसंग विभिन्न ग्रन्थों में अंकित हैं। परन्तु काव्य के अतिरिक्त ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में भी भोज की वैसी ही गति तथा अभिरुचि थी। और असम्भव नहीं यदि उसके आश्रित विद्वानों में कवियों के अतिरिक्त ज्ञान-विज्ञान के अन्य अंगों के विशेषज्ञ भी रहे हों। केशव,[1] दामोदर,[2] अमितगति,[3] उव्वट[4] आदि कतिपय ऐसे ही विद्वान् थे। इन आश्रित विद्वानों ने विभिन्न विषयक ग्रन्थ रचे। प्राचीन वाङ्मय तथा टीकाओं में भोज के विभिन्न विषयक अभिमत उद्धृत किये गये हैं। साथ ही भोज के नाम से अलंकारशास्त्र, व्याकरण, कोष, शिल्प, राजनीति तथा धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, दर्शन आदि साहित्य के अतिरिक्त विविध विषयक लगभग पचास ग्रन्थ अथवा ग्रन्थ के अभिधान उपलब्ध होते हैं।[5] इनमें से कई ग्रन्थ प्रकाशित हैं, कई अप्रकाशित हैं तथा कई के केवल नाम ही ज्ञात हैं।

काव्यरसिक जब वाङ्मय के काव्येतर क्षेत्रों में ग्रन्थरचना करता है तो स्वभावतः उसमें उसकी काव्य-प्रवृत्ति पद-पद पर प्रकट हो ही जाती है। ऐसे व्यक्तियों की काव्येतर कृतियों में भी काव्यात्मक तत्त्वो का सन्निवेश अनायास हो ही जाता है। भोज की काव्य-रसिकता सर्वविश्रुत रही। परन्तु उसकी काव्येतर कृतियाँ भी अमित हैं। भोज का कवि इन असाहित्यिक कृतियों में भी साहित्यिक तत्त्वों का कहाँ तक सन्निवेश कर पाया? इस तथ्य पर यहाँ यथासम्भव प्रकाश डाला जाएगा।

यहाँ विभिन्न कृतियों का पृथक्-पृथक् विवरण न देते हुए काव्य के उपकारक तत्त्वों के परिप्रेक्ष्य में भोजकृत साहित्येतर कृतियों से ऐसे अंशों का समष्टि रूप में उपयोग किया गया है जो साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वशाली रहे हों। स्वभावतः ऐसे प्रयास में इन कृतियों में उपलब्ध होने वाले साहित्यिक महत्त्व के सारे अंशो का उपयोग नहीं किया जा सका। परन्तु काव्य के तत्त्वों को प्रस्तुत करने के लिए जितने अंश आवश्यक थे वे ही संगृहीत हुए हैं। इस प्रयास में यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि प्रत्येक ग्रन्थ में पृथक् रूप से साहित्य के सारे अंश सुलभ हों। परन्तु विभिन्न ग्रन्थों से एकत्र करने पर साहित्य के सारे अंग हमें सुलभ हो सकते हैं।

साहित्येतर कृतियों में गद्य—

शृंगारप्रकाश, सरस्वतीकण्ठाभरण, शालिहोत्र तथा राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति में भोज ने पद्य के साथ ही गद्य का भी उपयोग किया है।

शालिहोत्र में पद्यबहुलता तथा योगसूत्रवृत्ति में गद्यबहुलता परिलक्षित होती है। शृंगारप्रकाश तथा सरस्वतीकण्ठाभरण में गद्य-पद्य का यथावश्यक उपयोग हुआ है। शालिहोत्र का गद्य वृत्ति के रूप में ही रचा गया है। श्लोक के भावों को स्पष्ट करने के लिए उसका उपयोग हुआ है। यह बहुत ही स्फुट अथवा प्रसादमय एवं चूर्णक शैली में है। यथा[6]—

यो वाजी भ्रमरसदृशवर्णः स कृष्णतालुर्न दोषावहः।

सरस्वतीकण्ठाभरण का गद्य भी ऐसा ही है परन्तु कहीं-कहीं लाटी रीतिपरक एवं वृत्तगन्धि भी हो गया है। यथा[7]—

अत्र कान्तामुखादावुपमेये पद्मादिविपर्ययज्ञानप्रत्याख्यानेन इवादीनामभावेपि कान्त्यादिलुप्तधर्मप्रतीतेलुप्तानामेयम्पदार्थोपमासु वाक्योपमाभक्तिः।

यहाँ अनुष्टुप् का चरण एवं इन्द्रवज्रा का चरणभाग स्फुट है। शृंगारप्रकाश में चूर्ण शैली की बहुलता है। कहीं-कहीं पांचाली एवं लाटी रीति का गद्य भी रचा गया है।

योगसूत्रवृत्ति का गद्य चूर्ण के साथ ही वृत्तगन्धि भी है। कहीं-कहीं दोनों ही विशेषताओं का अद्भुत सामंजस्य हो गया है[8]—

योगो युक्तिः समाधानम्

अथवा[9]

''''सूक्ष्म च यथाक्रमं भूतानां कारणत्वेन व्यवस्थितानि गन्धादितन्मात्राणि।

यहाँ पर चूर्णक के साथ ही अनुष्टुप् के एकाध चरण स्फुट होने से वृत्तगन्धि भी है। तथैव[10]—

ननु धर्माधर्मादयस्तत्र क्रियमाणा उपलभ्यन्ते।

यहाँ अन्तिम शब्द को 'उपलभ्यते' कर देने पर (यद्यपि ऐसा परिवर्तन समुचित नहीं है) अनुष्टुप् के दो चरण पूर्ण हो जाते हैं।

गद्य में प्रसाद गुण, वैदर्भी तथा लाटी रीति की बहुलता है।

साहित्येतर कृतियों में भाव —

भोज की प्रायः कृतियों के प्रारम्भ में ईश-वन्दना की गयी है। इन वन्दनात्मक श्लोकों में जहाँ भावप्रवणता प्राप्त होती है वहीं पर उनमें कमनीय काव्य की कान्ति भी परिलक्षित होती है। काव्य-शैली की कमनीयता ग्रन्थकलेवर में भी यत्र-तत्र तरल हो उठी है।

काव्यप्रकाशकार मम्मट ने देव, मुनि, गुरु, नृप, पुत्र आदिविषयक रति तथा व्यंजित व्यभिचारी भाव को भाव कहा है[11]—

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः। भावः प्रोक्तः।

भोज की साहित्येतर कृतियों में व्यभिचारी की व्यंजना पाना कठिन है। परन्तु देवादिविषयक रति सुलभ है। ऐसे देवताओं में प्रमुखतया शिव है। गणेश, वाग्देवी आदि की भी अर्चना की गयी है। ज्योतिष् के ग्रन्थों में सूर्य की भी वन्दना की गयी है।

शिवस्तुति—

शृंगारप्रकाश के प्रारम्भ में शिव की अर्चना की गयी है—

अच्छिन्नमेखलमलब्धदृढोपगूढ-
मप्राप्तचुम्बनमवीक्षितवक्त्रकान्ति ।
कान्ताविमिश्रवपुषः कृतविप्रलम्भ-
सम्भोगसख्यमिव पातु वपुः पुरारेः ॥[12]

व्याकरणकृति सरस्वतीकण्ठाभरण के प्रारम्भ में भी अर्धनारीश्वर की ही वन्दना की गयी है[13]—

प्रणम्यैकात्मतां यातौ प्रकृतिप्रत्ययाविव ।
श्रेयः पदमुमेशानौ पदलक्ष्म प्रचक्ष्महे ॥

इन्हीं अर्धनारीश्वर की वन्दना में भोज राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति प्रारम्भ करने से पूर्व निरत होता है[14]—

देहार्धयोगः शिवयोः स श्रेयांसि तनोतु वः ।
दुष्प्रापमपि यत्स्मृत्या जनः कैवल्यमश्नुते ॥

योग के सन्दर्भ में शिव की वहाँ प्रत्येक पाद के प्रारम्भ में वन्दना की गयी है। यथा[15]— ग्रन्थ के प्रारम्भ का द्वितीय श्लोक—

त्रिविधान्यपि दुःखानि यदनुस्मरणान्नृणाम् ।
प्रयान्ति सद्यो विलयं तं स्तुमः शिवमव्ययम् ॥

द्वितीय, साधनपाद के प्रारम्भ का श्लोक[16]—

ते ते दुष्प्रापयोगाङ्गसिद्धये येन दर्शिताः ।
उपायाः स जगन्नाथस्त्र्यक्षोस्तु प्रार्थिताप्तये ॥

तथा तृतीय, विभूतिपाद के प्रारम्भ का यह श्लोक[17]—

यत्पादपद्मस्मरणादणिमादिविभूतयः ।
भवन्ति भविनामस्तु भूतनाथः स भूतये ॥

एवं चतुर्थ कैवल्यपाद का यह प्रारम्भिक श्लोक[18]—

यदाज्ञयैव कैवल्यं विनोपायैः प्रजायते ।
तमेकमजमीशानं चिदानन्दमयं स्तुमः ॥

शिव की स्तुति में ही लीन है।

तत्वप्रकाश के प्रारम्भ में भी शिव की ही स्तुति की गयी है[19]—

चिद्घन एको व्यापी नित्यः सततोदितः प्रभुः शान्तः ।
जयति जगदेकबीजं सर्वानुग्राहकः शम्भुः ॥

समरांगणसूत्रधार के प्रारम्भ मे जगन्निर्माता के रूप में शिव का स्मरण किया गया है[20]—

देवः स पातु भुवनत्रयसूत्रधार-
स्त्वां बालचन्द्रकलिकांकितजूटकोटिः ।
एतत्समग्रमपि कारणमन्तरेण
कात्स्न्यादसूत्रितमसूत्र्यत येन विश्वम् ॥

विद्वज्जनवल्लभ प्रश्नज्ञात के प्रारम्भ में शिव का त्रिकालविज्ञ के रूप में स्मरण किया गया है[21]—

भूतं च भावि च भवच्च भवस्वरूपं
वेत्त्येव यः करतलामलकानुकारि ।
देवं तमिन्दुकलिका-कलितावतंस-
मत्यद्भुतैकविभवं विभुमानतोऽस्मि ॥

राजमार्तण्ड[22] योगसंग्रह के प्रारम्भ में की गयी शिव की स्तुति गौड़ी रीति तथा ओज-गुणमयी एवं रूपक से अलंकृत है—

नीलस्निग्धगिरीन्द्रजालकलतासम्बन्धबद्धस्पृह-
श्चंद्रांशुद्युतिशुभ्रदंष्ट्रवदनः प्रोत्सर्पदुग्रध्वनिः ।
लीलोद्रेककरप्रहारदलितोद्दामद्विपेन्द्रः श्रियं
दिश्याद्वोऽग्निशिखापिशङ्गनयनश्चण्डीशपंचाननः ॥

युक्तिकल्पतरु के प्रारम्भ में ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के रूप में ईश्वर की आराधना की गयी है[23]—

विश्वसर्गविधौ वेधास्तत्पालयति यो विभुः ।
तदत्ययविद्यावीशस्तं वन्दे परमेश्वरम् ॥

भोज के ताम्रपत्रों के प्रारम्भ में भी शिव की ही स्तुति प्राप्त होती है[24]—

जयति व्योमकेशोऽसौ यः सर्गाय बिभर्ति ताम् ।
ऐन्दवीं शिरसा लेखां जगद्बीजांकुराकृतिम् ॥
तन्वन्तु वः स्मराराते: कल्याणमनिशं जटाः ।
कल्पान्तसमयोद्दामतडिद्वलयपिङ्गलाः ॥

गणेश-स्तुति—

भोज की कतिपय कृतियों में गणेश की भी वन्दना की गयी है। श्रृंगारप्रकाश में शिव की स्तुति के पश्चात् गणाधिनाथ की आराधना की गयी है[25] —

यत्पादपंकजरजः परिमार्जितेषु
चेतस्सु दर्पणतलामलतां गतेषु ।
शब्दार्थसम्पद उदारतराः स्फुरन्ति
विघ्नच्छिदेस्तु भगवान्स गणाधिनाथः ॥

विद्वज्जनवल्लभप्रश्नज्ञान का प्रारम्भ गणेश-स्तुति से ही होता है[26]—

यस्य भृङ्गावली कण्ठे धृतदानाम्बुभूषिते ।
भाति रुद्राक्षमालेव स नः पायाद् गणाधिपः ॥

विष्णु-स्तुति—

भुजबलनिबन्ध के प्रारम्भ में हरि की स्तुति की गयी है[27]—

इन्दीवरदलश्यामं पीताम्बरधरं हरिम् ।
नत्वा तु क्रियते यस्माज्ज्योतिश्शास्त्रमनुत्तमम् ॥

युक्तिकल्पतरु के प्रारम्भ में भी कंसारि की स्तुति की गयी है[28]—

कं सानन्दमकुर्वाणः कं सानन्दं करोति यः।
तं देववृन्दैराराध्यमनाराध्यमहं भजे॥

इसी प्रकार राजमार्तण्ड तथा व्यवहारसमुच्चय में सूर्य[29] की भी स्तुति की गयी है तथा सरस्वती-कण्ठाभरण में वाग्देवी की उपासना की गयी।[30] कतिपय ग्रन्थों में विविध देवताओं की सामूहिक रूप से भी वन्दना की गयी है। राजमृगांक करण में नवग्रहों की प्रार्थना की गयी है[31]—

अर्कश्चन्द्रः कुजः सौम्यो जीवः शुक्रः शनिस्तमः।
केतुग्रहा नवाप्येते पान्तु वो दुरितच्छिदः॥

नाममालिका के प्रारम्भ में भी इसी प्रकार की स्तुति की गयी है[32]—

वागीशं वरलक्ष्मीशं गौरीशं गणनायकम्।
कुमारं च हृदि ध्यात्वा क्रियते नाममालिका॥

इन स्तुतियों से भोज की विविध देवताओं के प्रति आस्था एवं भक्ति प्रकट होती है।

राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति के प्रारम्भ में पतंजलि की वाणी की भी वन्दना की गयी है[33]—

पतंजलमुनेरुक्तिः काप्यपूर्वा जयत्यसौ।
पुंस्प्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो यया॥

एवं

जयन्ति वाचः फणिभर्तुरान्तरस्फुरत्तमस्तोमनिशाकरत्विषः।
विभाव्यमानाः सततं मनांसि याः सतां सदानन्दमयानि कुर्वते॥

युक्तिकल्पतरु में भी कवि विविध मुनियों की चरणवन्दना करता है[34]—

नमामि शास्त्रकर्तॄणां चरणानि मुहुर्मुहुः।
येषां वाचः पावयन्ति श्रवणेनैव सज्जनान्॥

भोज की साहित्येतर कृतियों में विविध काव्य—

परन्तु इन्हीं स्तुतियों में साहित्य की विभिन्न विशेषताएँ भी निहित हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक स्थल हैं जहाँ स्थान-स्थान पर साहित्य मुखर होता-सा प्रतीत होता है। समरांगणसूत्रधार का सम्पूर्ण कलेवर साहित्य की छटा लिये हुए है। टी० गणपति शास्त्री ने इस ग्रन्थ के प्रथम भाग की भूमिका में लिखा है कि ऐसी कृतियों में प्रायः व्याकरणगत दोष पाये जाते हैं। परन्तु समरांगणसूत्रधार इस दृष्टि से शुद्ध है। तथा प्रायः यह मनोरम तथा मधुर शैली में रचा गया है।[35] राजमार्तण्ड योगसंग्रह में स्वयं भोज भी व्यक्त करता है कि उसने इस कृति को स्फुट पदों से युक्त कर, सुन्दर तथा उद्दाम बन्धों व वृत्तों में रचा है।[36]

दृष्ट्वा रोगैः समग्रैर्जनमवशमिमं सर्वतः पीड्यमानं
योगानां संग्रहोऽयं नृपतिशतशिरोविष्ठिताज्ञेन राज्ञा।
कारुण्यात्संनिबद्धः स्फुटपदपदवीसुन्दरोद्दामबन्धै-
र्वृत्तैरुद्वृत्तशत्रुप्रमथनपटुना राजमार्तण्डनाम्ना॥

भोज की इन विभिन्न कृतियों में स्फुट तथा ललित पदों में विषयप्रतिपादन हुआ है।

(क) रीति—

भोज की साहित्येतर कृतियाँ प्राय वैदर्भी रीति में विरचित हैं। परन्तु इससे भिन्न रीतियों का भी वहाँ अभाव नहीं हैं। वैदर्भी रीति के उदाहरण के रूप में यह श्लोक प्रस्तुत किया जा सकता है[37]—

तात्पर्यमेव वचसि ध्वनिरेव काव्ये
सौभाग्यमेव गुणसम्पदि वल्लभस्य।
लावण्यमेव वपुषि स्वदतेऽङ्गनायाः
शृंगार एव हृदि मानवतीजनस्य ॥

अथवा[38]

ऋतौ वसन्ते सम्प्राप्ते वाहयेत्सततं हयम्।
सनिलम्बलवणं दद्यात्तैलं लवणमेव च ॥

भोज की इन कृतियों में गौडी रीति का प्रायः अभाव है। परन्तु राजमार्तण्डयोगसार-संग्रह में इस प्रकार का एक श्लोक है जिसमें चण्डीश की पंचानन के रूप में प्रार्थना की गयी है। स्वभावतः तदनुरूप भयानक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए निविड़ समासों से युक्त पदावली का प्रयोग किया गया है[39]—

नीलस्निग्धगिरीन्द्रजालकलतासम्बद्धबद्धस्पृहः
चन्द्रांशुद्युतिशुभ्रदंष्ट्रवदनः प्रोत्सर्पदुग्रध्वनिः।
लीलोद्रेककरप्रहारदलितोद्दामद्विपेन्द्रः श्रियं
दिश्याद्वोऽग्निशिखापिशङ्गनयनश्चण्डीशपंचाननः।

समासबहुलता की स्थिति इस श्लोकार्ध में भी प्राप्त की जा सकती है[40]—

अच्छिन्नमेखलमलब्धदृढोपगूढ-
मप्राप्तचुम्बनमवीक्षितवक्त्रकान्ति।

भोज के ग्रन्थों में पांचाली रीति से मण्डित भी कतिपय स्थल पाये जा सकते हैं। यथा[41]

दृष्ट्वा रोगैः समग्रैर्जनमवशमिमं सर्वतः पीड्यमानं
योगानां संग्रहोऽयं नृपतिशतशिरोधिष्ठिताज्ञेन राज्ञा।
कारुण्यात्सन्निबद्धः स्फुटपदपदवीसुन्दरोद्दामबन्धै-
र्वृत्तैरुद्धृत्यशत्रुप्रमथनपटुना राजमार्तण्डनामा।

अथवा[42]

समस्तपाथोनिधिवीचिसंचय-
प्रवर्तितान्दोलनकेलिकीर्तिना।
प्रकाशितो भोजनृपेण देहिनां
हिताय नानाविधयोगसंग्रहः ॥

भोज आवन्तिका, लाटी तथा मागधी रीतियों का भी अपने सरस्वतीकण्ठाभरण में विवेचन करते हैं।[43] आवन्तिका रीति में दो-तीन अथवा चार पदों का समास होता है[44]—

सावन्तिका समस्तैः स्याद्द्वित्रैस्त्रिचतुरैः पदैः ।

इस रीति का भोज की कृतियों में प्रायः उपयोग हुआ है। यथा[45]—

यः कुष्ठचूर्णं रजनीविरामे
मध्वाज्यसंमिश्रित-मत्ति नित्यम् ।
स मत्तमातंगबलः सुगन्धि-
र्वाग्मी चिरायुश्च भवेन्मनुष्यः ॥

इसी प्रकार समरांगणसूत्रधार का यह श्लोक भी आवन्तिका रीति में ही विरचित है[46]—

इत्थमेव सुरमंदिरतुल्यं संचलत्यलघुदारुविमानम् ।
आदधीत विधिना चतुरोन्तस्तस्य पारदभृतान् दृढकुम्भान् ॥

भुजबलनिबन्ध का यह श्लोक भी इसी रीति का उदाहरण बन सकता है[47]—

शुभग्रहार्कवारेषु मृदुक्षिप्रध्रुवेषु च ।
शुभराशिविलग्नेषु शुभं शान्तिकपौष्टिकम् ॥

इस प्रकार भोज की साहित्येतर कृतियों में विभिन्न रीतियों की छटा सुलभ है ।

(ख) गुण—

भोज की साहित्येतर कृतियों में प्रायः प्रसादगुण ही प्राप्त होता है। ऐसे स्थल कठिनाई से ही प्राप्त होंगे जहाँ ओज अथवा माधुर्यगुण से मण्डित काव्य रचा गया हो। प्रारम्भिक वन्दनात्मक श्लोकों मे ही ये गुण प्रायः सुलभ होते हैं ।

ओज—राजमार्तण्डयोगसार के प्रारम्भ के स्तुति श्लोक में जहाँ शिव की पंचानन के रूप में कल्पना की गयी है, ओज से मण्डित है[48]—

नीलस्निग्धगिरीन्द्रजालकलतासम्बद्धबद्धस्पृहः
चन्द्रांशुद्युतिशुभ्रदंष्ट्रवदनः प्रोत्सर्पदुग्रध्वनिः ।
लीलोद्रेककरप्रवाहदलितोद्दामद्विपेन्द्रः श्रियं
दिश्याद्वोऽग्निशिखापिशंगनयनश्चण्डीशपंचाननः ॥

ग्रन्थ का प्रयोजन भी ओज गुण में ही व्यक्त हुआ है[49]—

दृष्ट्वा रोगैः समग्रैर्जनमवशमिमं सर्वतः पीड्यमानं
योगानां संग्रहोऽयं नृपतिशतशिरोधिष्ठिताज्ञेन राज्ञा ।
कारुण्यात् सन्निबद्धः स्फुटपदपदवीसुन्दरोद्दामबन्धै-
र्वृत्तैरुद्धृत्यशत्रुप्रमथनपटुना राजमार्तण्डनामा ॥

माधुर्य—माधुर्यगुण के उदाहरण के रूप मे भुजबलनिबन्ध का यह श्लोकार्ध समुचित है[50]—

इन्दीवरदलश्यामं पीताम्बरधरं हरिम् ।

अथवा शृंगारप्रकाश का यह श्लोक भी माधुर्य का उदाहरण बन सकता है[51]—

आभावनोदयमनन्यधिया जनेन
यो भाव्यते मनसि भावनया स भावः ।
यो भावनापथमतीत्य विवर्तमानः
साहङ्कृतौ हृदि परं स्वदते रसोऽसौ ॥

समरांगणसूत्रधार का यह श्लोक भी माधुर्य की सरसता से पूर्ण है[52]—

कोकिलालापसुभगैर्मधुमत्तालिशालिभिः ।
विचित्रफलपुष्पाढ्यैः काननैरुपशोभिताः ॥

प्रसाद—भोज की सभी साहित्येतर कृतियाँ प्रसाद की सरसता तथा सरलता से तरल हैं। व्यवहारसमुच्चय का यह श्लोक प्रसादगुण से युक्त है[53]—

तमश्विनीसंगमुपैत्यवारानसूचितां शक्तिमवाप्नुवन्ति ।
अंधं समासाद्य विलासिनीनां कटाक्षबाणा इव निष्फलाः स्युः ॥

समरांगणसूत्रधार के इन श्लोकों में भी प्रसाद गुण है[54]—

स तानूचे प्रभुर्वोसौ मरुतामिव वासवः ।
दण्डधारी च दुष्टानां प्रभावे लोकपालवत् ॥
यस्तु केवल शास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः ।
स मुह्यति क्रियाकाले दृष्ट्वा भीरुरिवाहम् ॥

राजमार्तण्डयोगसार में प्रसाद गुण के मनोहारी उदाहरण पद-पद पर पाये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ[55]—

आरोपिते मूर्धनि शीतवारिकुम्भे शमं गच्छति तत्क्षणेन ।
असृक्प्रवाहः प्रदरामयोत्थः स्त्रीणां नदीस्रोत इवावरोधात् ॥

(ग) अलङ्कार—

भोज की शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक कृतियों में भी अलंकार की छटा पद-पद पर पायी जा सकती है।

अनुप्रास—भोज ने अनुप्रास को वाङ्मय का जीवित कहा है[56] 'अनुप्रासस्तु जीवितम् ।' भोज के अनुसार उपमा आदि से रहित काव्य में अनुप्रास का लेशमात्र भी निवेश कर दिया जाय तो वह सुशोभित हो जाता है, कांतिमान् हो उठता है[57]—

उपमादिवियुक्तापि राजते काव्यपद्धतिः ।
यद्यनुप्रासलेशोपि हन्त तत्र निवेश्यते ॥
कुण्डलादिवियुक्तापि कान्ता किमपि शोभते ।
कुंकुमेनांगरागश्चेत्सर्वांगीणः प्रयुज्यते ॥

आयुर्वेदिक ग्रन्थ राजमार्तदण्ड को भोज ने अलंकारों से तथा प्रमुखतः अनुप्रास से अलंकृत कर दिया है[58]—

अर्कस्य पत्रं परिणामपीतं घृतेन लिप्तं शिखिना च तप्तम् ।
आलोड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं कर्णामयो नश्यति पूरणेन ॥

अथवा

क्षौद्ररोध्रमधुकैः ससर्षपैर्निस्तुषीकृतयवैश्च पेषितैः ।
लेपितं भवति तप्तकांचनप्रेक्ष्यमाननमतीव सुन्दरम् ॥

समरांगणसूत्रधार भी अनुप्रास की ललित छटा लिये हुए है। यथा[59]—

जयस्वेति समाकर्ण्य विश्वकर्मा व तद्वचः ।
जगाद गर्जदम्भोदध्वनिगम्भीरया गिरा ॥

विद्वज्जनवल्लभ का यह श्लोक भी अनुप्रास से अनुप्राणित है[60]—

यदा तदासौ लभते सुरूपां विरूपरूपामपि पापधिष्ण्यौ ।

तथैव विद्वज्जनवल्लभ का अन्तिम श्लोक भी अनुप्रास-मण्डित है—

आनैवाखिलवारिराशिरचनादच्छेदिनीं मेदिनीं
शास्त्येकां नगरीमिव प्रतिहतप्रत्यर्थिनो यस्य सः ।
प्रश्नज्ञानमिदं सपार्थिवशिरोविन्यस्तपादाम्बुजः
श्रीविद्वज्जनवल्लभाख्यमकरोच्छ्रीभोजराजः कृती ॥

प्रथम चरण के अन्तिम पदों—'छेदिनीं' में यमक की छटा तथा 'पादाम्बुजः' में रूपक भी विन्यस्त है। राजमृगांककरण के इस श्लोक में भी अनुप्रास पाया जा सकता है[61]—

वासनासारसर्वस्वं व्युत्पन्नं लघुकर्मवत् ।
ब्रूमो राजमृगांकस्य सारं सिद्ध्यै द्युसद्मनाम् ॥

शालिहोत्र में भी श्लोक प्राप्य हैं। यथा[62]—

कंकोलं केतकी द्राक्षा शर्करा मधुयष्टिका ।
दत्तोऽयं सघृतः पिण्डः पुष्टिं नयति वाजिनाम् ॥

यमक—भोज यमक में ही वाग्वैदग्ध्य स्वीकार करते हैं।[63]

विना यमक-चित्राभ्यां कीदृशी वाग्विदग्धता ।

राजमार्तण्डयोगसार में इसके उदाहरण सुलभ हैं[64]—

अपहरति रोगमचिराद्दारुणमपि दारुणाभिख्यम्

तथा

सुदारुणो दारुणकः क्षणेन ।

प्रश्नोत्तर—भोज के शब्दालंकारों में एक प्रश्नोत्तर भी है।[65] युक्तिकल्पतरु के प्रारम्भ में इसे यमक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है[66]—

कं सानन्दमकुर्वाणः कं सानन्दं करोति यः ।

किसे सुखी न करते हुए किसे सुखी करता है? इसका उत्तर भी इसी वाक्य में निहित है—कंस को सुखी न करते हुए ब्रह्मा को सुखी करता है।

यहाँ 'कंसानन्द' शब्द में यमक है। यहाँ यमक के माध्यम से 'प्रश्नोत्तर' सम्पन्न होने से ये दोनों अलंकार संकीर्ण हैं।

विरोधाभास— उपर्युक्त श्लोक के उत्तरार्ध में विरोधाभास अलंकार है—

तं देववृन्दैराराध्यमनाराध्यमहं भजे ।

सम्पूर्ण श्लोक के पूर्वार्ध में यमक तथा प्रश्नोत्तर का संकर है तथा उत्तरार्ध में विरोधाभास अलंकार है। पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध में प्रश्नोत्तर तथा विरोधाभास में संसृष्टि अलंकार है।

राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति के प्रारम्भ का श्लोक भी विरोधाभास का सुन्दर उदाहरण है[67]—

पतंजलिमुनेरुक्तिः काप्यपूर्वा जयत्यसौ ।
पुंप्रकृत्योर्वियोगोऽपि योग इत्युदितो यया ॥

रूपक – राजमार्तण्डयोगसार संग्रह के प्रथम श्लोक में रूपक के द्वारा सिंह तथा चण्डीश में समानता व्यक्त की गयी है[67]—

नीलस्निग्धगिरीन्द्रजालकलतासम्बद्धबद्धस्पृहः
चन्द्रांशुद्युतिशुभ्रदंष्ट्रवदनः प्रोत्सर्पद्दुप्रध्वनिः ।
लीलोद्रेककरप्रवाहदलितोद्दामद्विपेन्द्रः श्रियं
दिश्याद्वोऽग्निशिखापिशंगनयनश्चण्डीशपंचाननः ॥

यहाँ 'पंचानन' में श्लेष है। तथैव राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति के इस श्लोक में भी रूपक है[68]—

जयन्ति वाचः फणिभर्तुरान्तरस्फुरत्तमस्तोमनिशाकरत्विषः ।
विभाव्यमानाः सततं मनांसि याः सतां सदानन्दमयानि कुर्वते ॥

यहाँ 'तमः' शब्द में श्लेष है। समरांगणसूत्रधार के इस श्लोक में भी रूपक है।[69]

साधु वत्स ! त्वया सम्यक् प्रज्ञयातिविशुद्धया ।
प्रश्नोऽयमीरितो वास्तुविद्याब्जवनभास्करः ॥

विभावना—समरांगणसूत्रधार के प्रथम श्लोक में विभावना अलंकार है[70]—

देवः स पातु भुवनत्रयसूत्रधार-
स्त्वां बालचन्द्रकलिकांकितजूटकोटिः ।
एतत्समग्रमपि कारणमन्तरेण
कात्स्न्र्यादसूत्रितमसूत्र्यत येन विश्वम् ॥

प्रस्तुत श्लोक के द्वितीय चरण में रूपक अलंकार है।

उत्प्रेक्षा—पातंजलयोगसूत्र में[71]—

यथा जलतरंगेषु चलत्सु चन्द्रश्चलन्निव प्रतिभासते तच्चित्तम् ।

उत्प्रेक्षा है।

उपमा—उपमा भोज के सम्पूर्ण साहित्य में अपेक्षाकृत अधिक स्थान प्राप्त कर सकी है। राजमार्तण्डयोगसार में व्यक्त यह श्लोक उपमा से अलंकृत है[72]—

प्रच्छानपूर्वं परिपिष्टगुंजाफलैः समालेपितमिन्द्रलुप्तम् ।
प्रणाशमायात्यचिरेण पुंसां पापं यथा जह्नुसुताभिषेकात् ॥

अथवा[73]—

दिने दिने याति शिशुः प्रवृद्धि
पतिर्नदीनामिव शुक्लपक्षे ॥

अथवा[74]—

आरण्यगोमयनिघृष्टमभिप्रलिप्तं
गोमूत्रतक्रलवणैः क्वथितैः प्रयत्नात् ।
नाशं प्रयाति रकसं चिरसंप्ररूढ-
मप्याशु पापमिव संस्मरणेन शम्भोः ॥

अथवा[76]—

शर्कराविशतिलैः समांशकैर्माक्षिकेण सह भक्षितैः स्त्रियः ।
नास्ति गर्भपतनोद्भवं भयं पापभीतिरिव तीर्थसेवया ॥

अथवा[77]—

आरोपिते मूर्धनि शीतवारिकुम्भे शमं गच्छति तत्क्षणेन ।
असृक्प्रवाहः प्रदरामयोत्थः स्त्रीणां नदीस्रोत इवावरोधात् ॥

आयुर्वेद के तथ्यों को उपमा आदि अलंकारों के माध्यम से स्फुट तथा सरस बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

समरांगणसूत्रधार के इस श्लोकार्ध में भी उपमा अलंकार है[78]—

स तानूचे प्रभुर्वोऽसौ मरुतामिव वासवः ।

व्यवहार-समुच्चय में भी उपमा की छटा पायी जा सकती है[79]—

तमश्विनीसंगमुपैत्यवारानशूचितां शक्तिमिवाप्नुवन्ति ।
अंधं समासाद्य विलासिनीनां कटाक्षबाणा इव निष्फलाः स्युः ॥

युक्तिकल्पतरु में पद-पद पर उपमा पायी जा सकती है। यथा[80]—

परासनस्थो यो राजा यो राजा च निरासनः ।
परैर्हन्यते सिंहैरिव मत्तगजाधिपः ॥

अथवा[81]

नक्षत्रमालेव दिवो विशीर्णा
दन्तावली तस्य महासुरस्य ॥

लुप्तोपमा—भुजबलनिबन्ध का यह श्लोकार्ध लुप्तोपमा का सुन्दर उदाहरण है।[82]

इन्दीवरदलश्यामं पीताम्बरधरं हरिम् ।

अथवा राजमार्तण्ड के इस श्लोकार्ध में भी लुप्तोपमा है[82]—

प्रलेपमात्रेण करोति केशान्
शशिप्रकाशानपि षट्पदाभान् ॥

केशों को भ्रमर के समान काले कहना भोज को प्रिय है। इसी ग्रन्थ में दो और स्थानों पर ऐसा ही वर्णन है।[83] शालिहोत्र में भी काले अश्व का उपमान भँवरा ही बना है[84]—

षट्पदाभो भवेद्यस्तु कृष्णतालुर्न दुष्यति ॥

भोज का उपमाप्रेम उनके कोश नाममालिका में भी यथावत् प्रकट होता रहा।
यथा[85]—

वेलावलयकाण्डेशकान्तानयनसन्निभाः ।

इस प्रकार भोज की साहित्येतर कृतियों में भी अलंकारों की छटा स्थान-स्थान पर सुलभ होती है।

(स) छन्द—

भोज की साहित्येतर कृतियाँ प्रायः छन्दोबद्ध हैं। राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति गद्य-प्रधान होने पर भी श्लोकों से नितान्त रहित नहीं है। इस ग्रन्थ में अनुष्टुभ्, उपेन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका तथा शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग हुआ है। शालिहोत्र में अनुष्टुभ्, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा तथा शार्दूलविक्रीडित छन्दों का उपयोग हुआ है।

युक्तिकल्पतरु में अनुष्टुभ् ही अधिक हैं। परन्तु, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित प्रभृति छन्दों का भी उपयोग हुआ है।

व्यवहारसमुच्चय में अनुष्टुभ् के साथ ही उपजाति का भी उपयोग हुआ है। राजमृगांक अनुष्टुभ् के साथ ही रथोद्धता तथा वसन्ततिलका से भी युक्त है।

ज्योतिष के राजमार्तण्ड ग्रन्थ में अनुष्टुभ् के साथ ही शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, उपजाति आदि का भी सन्निवेश किया गया है। विद्वज्जनवल्लभ में अनुष्टुभ्, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, तोटक, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों का उपयोग हुआ है।

विविधविद्याविचारचतुरा में अनुष्टुभ् के साथ ही उपजाति का प्रयोग हुआ तथा सिद्धान्तसारपद्धति में वसन्ततिलका का भी उपयोग हुआ है।

समरांगणसूत्रधार में अनुष्टुभ्, इन्द्रवज्रा, रथोद्धता, उपजाति, मालभारिणी, शालिनी आर्या, वसन्ततिलका प्रभृति छन्दों का उपयोग किया गया है। तत्त्वप्रकाश आर्या तथा वसन्ततिलका में रचा गया है।

आयुर्वेद की कृति राजमार्तण्ड के प्रारम्भ में ही रचयिता ने उद्घोषणा कर दी थी कि यह कृति सुन्दर तथा विविध वृत्तों में रची गयी है।[86]

कारुण्यात्सन्निबद्धः स्फुटपदपदवी सुन्दरोद्दामबन्धै-
र्वृत्तैरुद्धृत्य शत्रुप्रमथनपटुना राजमार्तण्डनामा ॥

प्रतिज्ञा के अनुरूप ही यह कृति विविध सुन्दर छन्दों में निबद्ध है। इस ग्रन्थ में इन छन्दों का उपयोग हुआ है—अनुष्टुभ्, आर्या, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, त्रोटक, वंशस्थ, वियोगिनी, वैतालीय, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, पृथ्वी, शार्दूलविक्रीडित इत्यादि।

इस प्रकार साहित्य के विभिन्न अंगों की विविध विशेषताएँ भोज की साहित्येतर कृतियों में यथावसर अधिक अथवा न्यून रूप में सुलभ हैं। भोज का साहित्यप्रेम इन कृतियों में भी यथावत् बना रहा और स्थल-स्थल पर वह प्रकट भी होता रहा। साहित्य के पुट से ये कृतियाँ अधिक सरस तथा हृदयावर्जक बन गयी हैं।

सन्दर्भ

1. पृथिव्यां श्रीभोजदेवो धर्मसंरक्षणाय च ।
देशमालवकोत्पन्नः श्रीराजगृहमेत्य च ॥
भोजदेवोऽजयद्द्वेष्यान्सर्वेषां च प्रमूर्धनि ।
न तत्तुल्यो जगत्यस्ति न भूतो न भविष्यति ॥
श्री मद्भोजपुरे विद्वानासीत् सोमेश्वरो द्विजः ।
तत्पुत्रकेशवेनैषा कृता कौशिकपद्धतिः ॥

डा० हरिरामचन्द्र दिवेकर, वेदविद्या, पृ० 104–105 नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

2. हनुमन्नाटक का सम्पादक तथा शब्दप्रबोध (भोजदेवसंग्रह), रेउ, राजाभोज, पृ० 299
3. अमितगति ने सुभाषित रत्नसंदोह (1050 संवत्) भुंज के काल में रचा तथा 1013 ई० में धर्मपरीक्षा रची ।
–डी० सी० गांगोली, हिस्ट्री आफ परमार डायनेस्टी, पृ० 276 तथा
विश्वेश्वरनाथ रेउ, राजा भोज, पृ० 20–21
4. आनन्दपुरवास्तव्य-वज्रटाख्यस्य सूनुना ।
मन्त्रभाष्यमिदं क्लृप्तं भोजे पृथ्वीं प्रशासति ॥
–विश्वेश्वरनाथ रेउ, राजा भोज, पृ० 222
5. द्रष्टव्य, नवम उच्छ्वास में भोजकृत ग्रन्थों की सूची
6. भोज–शालिहोत्रम्, पृ० 4, पंक्ति 68
7. स० क०, 4. 17/10 की वृत्ति
8. राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति, 1/1 की वृत्ति
9. वही, 1/44 की वृत्ति
10. वही, 3/3 की जिज्ञासा–वृत्ति
11. मम्मट, काव्यप्रकाश, 4/35, 36
12. शृं० प्र०, 1/1
13. सरस्वतीकण्ठाभरण, टी० चिन्तामणि द्वारा सम्पादित तथा मद्रास से प्रकाशित ।
14. राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति, 1/1, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, 1904 ई०
15. वही, 1/2
16. वही, पृ० 16
17. वही, पृ० 31
18. राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति, पृ० 47
19. तत्त्वप्रकाश, तात्पर्यार्थदीपिका व्याख्या सहित, टी० गणपतिशास्त्री द्वारा सम्पादित, गवर्नमेंट प्रेस, त्रिवेन्द्रम्, 1920 ई०
20. समरांगणसूत्रधार, टी० गणपतिशास्त्री द्वारा सम्पादित,
–गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा

21. जर्नल आफ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, एम० एस० युनिवर्सिटी बड़ौदा, व्हाल्यूम 17, भाग 1, सितम्बर, 1967, पृ० 4
22. राजमार्तण्ड, द्वितीय संस्करण, 1924 ई० —यादव शर्मा के द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित, बोरा बाजार स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई
23. युक्तिकल्पतरु, ईश्वरचन्द्र शास्त्री द्वारा सम्पादित
    सिद्धेश्वर प्रेस, कलकत्ता, 1917 ई०
24. भोज के सभी ताम्रपत्रों के प्रारम्भ में ये दो श्लोक प्राप्त होते है। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य, भोज का बाँसवाड़ा ताम्रपत्र, ए० इ०, भाग 11, पृ० 81
25. शृं० प्र०, 1/2
26. जर्नल आफ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, सितम्बर, 1967, पृ० 4
27. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, आर नं० 3074
28. युक्तिकल्पतरु, 1/2
29. यच्छास्त्रं सविता चकार विपुलं स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्योतिषं
    तस्योच्छित्तिभयात्पुन. कलियुगे संसृत्य यो भूतलम्।
    भूयः स्वल्पतर वराहमिहिरो व्याख्यां तु सर्वं व्यधा-
    दित्थं यत्प्रवदन्ति योगकुशलास्तस्मै नमः भास्वते ॥
    —राजमार्तण्ड (ज्यो०) वेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई

    तथा

    नमस्कृत्य सहस्रांशुसुरासुरनमस्कृतम्।
    व्यवहारोच्चयं वक्ष्ये व्यासादिमुनिसम्मतम् ॥ 1
    —बम्बईविश्वविद्यालय, हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 457
30. ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्यास्पदचतुष्टयम्।
    यस्याः सूक्ष्मादिभेदेन वाग्देवीं तामुपास्महे ॥
    —सं० क०, 1/1
31. ब्रह्मविद्या, वाल्यूम, 4 पार्ट 3, 1 अक्टोबर, 1940, पृ० 97
32. नाममालिका, एकनाथ दत्तात्रेय कुलकर्णी तथा वासुदेव दामोदर गोखले द्वारा सम्पादित, डकन कालेज, पूना, 1955
33. राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति, 3, 4
34. युक्तिकल्पतरु, 1/3
35. समरांगणसूत्रधार, प्रथम भाग, गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज, बड़ौदा, प्रिफेस, पृ० 2
36. राजमार्तण्ड, योगसारसंग्रह, 1/2
37. शृं० प्र०, 1/5
38. शालिहोत्रम्, पृ० 16, श्लोक 113
39. राजमार्तण्डयोगसार, प्रथम श्लोक
40. शृं० प्र०, 1/1

41. राजमार्तण्डयोगसार, 2
42. राजमार्तण्डयोगसार, श्लोक 418
43. स० क०, 2/13/6–7
44. वही, 2/13/6
45. राजमार्तण्डयोगसार, श्लोक 392
46. समरांगणसूत्रधार, 31/97
47. भुजबलनिबन्ध, अन्तिमश्लोक
48. राजमार्तण्डयोगसार, 1
49. वही, 2
50. भुजबलनिबन्ध, 1
51. शृं० प्र०, 1/10
52. समरांगणसूत्रधार, 10/29
53. व्यवहारसमुच्चय, 13
54. समरांगणसूत्रधार, क्रमशः 7/2
55. राजमार्तण्डयोगसार,
56. शृं० प्र०, पृ० 389
57. स० क०, 2/15/2–3
58. राजमार्तण्डयोगसार, क्रमशः श्लोक, 37,99
59. समरांगणसूत्रधार, 4/1
60. विद्वज्जनवल्लभप्रश्नज्ञान, श्लोक 110
61. राजमृगांककरण, 1/2
62. शालिहोत्र, 126
63. शृं० प्र०, पृ० 389
64. राजमार्तण्डयोगसार, 16–17
65. यस्तु पर्यनुयोगस्य निर्भेदः क्रियते पदैः ।
    विदग्धगोष्ठ्यां वाक्यैर्वा तं हि प्रश्नोत्तरं विदुः ॥
    स० क०, 2/21/1
66. युक्तिकल्पतरु, नीतियुक्ति, 2
67. राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति, 3
68. राजमार्तण्ड योगसार, 1
69. राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति, 4
70. समरांगणसूत्रधार, 4/2
71. समरांगणसूत्रधार, 1/1
72. पातंजलयोगसूत्र 1/4 की वृत्ति
73. राजमार्तण्ड योगसार, 13
74. वही, 382
75. वही, 131
76. वही, 325

77. राजमार्तण्ड योगसार, 308
78. स० सू०, 7/2
79. व्यवहारसमुच्चय. 13
80. युक्तिकल्पतरु, नीतियुक्ति, 379
81. वही, मुक्तापरीक्षा, 84
82. भुजबलनिबन्ध, 1
83. राजमार्तण्डयोगसार, 22
84. वही, 29,32
85. शालिहोत्र, 24
86. नाममालिका, 128 वीं पंक्ति
87. राजमार्तण्डयोगसार, 2.

अष्टम उच्छ्वास

पूर्ववर्ती कवियों का भोज की कृतियों पर प्रभाव

प्राय: कवियों के भाव, भाषा तथा शैली पूर्वसूरियों की कृतियों से किसी न किसी रूप में प्रभावित रहती है। पूर्वप्रवृत्ति से अछूता रह पाना प्रायः असम्भव सा रहता है। भोज भी इसका अपवाद नहीं है। अवश्य ही उसके साहित्य पर पूर्ववर्ती अनेक कवियों तथा कृतियों तथा शास्त्रों का प्रभाव न्यूनाधिक रूप में रहा है। ऐसे प्रभाव प्रस्तुत उच्छ्वास मे यथासम्भव प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

चम्पू-परम्परा में भोजचम्पू—

भोज से पूर्व संस्कृत श्रव्य तथा दृश्य काव्यों की सुदीर्घ परम्परा रही है। श्रव्य काव्यों में गद्य तथा पद्य, भाव तथा शैली की दृष्टि से चरम सीमा छू रहे थे। चम्पू साहित्य की परम्परा अधिक प्राचीन नहीं थी। रामायणचम्पू की रचना से लगभग एक सौ वर्ष पूर्व के त्रिविक्रमभट्ट-विरचित नलचम्पू अथवा दमयन्तीकथा एवं मदालसाचम्पू प्राप्त होते हैं। इससे पूर्व दण्डी ने[1]—

गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते।

कहकर चम्पू की परिभाषा प्रस्तुत कर दी थी। अवश्य ही उनकी दृष्टि में चम्पू रहे, जिन्हें देखकर उन्होंने उसका लक्षण बनाया। परन्तु वह कौनसी कृति थी, यह अज्ञात है।

नलचम्पू का अपर अभिधान दमयन्तीकथा भी है। भोज ने शृंगारप्रकाश में चम्पू के उदाहरण के रूप मे इसका उल्लेख किया है तथा सरस्वतीकण्ठाभरण में इसके रचयिता त्रिविक्रम-भट्ट का। यह कथाबन्ध दुष्कर भङ्गश्लेष में आबद्ध है।[2] रचयिता के अनुसार कथा सरस है तथा कथानक रुचिर।[3] चम्पू के वैशिष्ट्य बताते हुए कवि कहता है कि उसमें उदात्त नायक तथा ओज, प्रसाद, माधुर्य आदि गुणों से मण्डित मुक्तक छन्द से युक्त चम्पू सबको सुहाता है।[4]

उदात्तनायकोपेता गुणवद्वृत्तमुक्तका।
चम्पूश्च हारयष्टिश्च केन न क्रियते हृदि॥

इनके नलचम्पू का नायक उदात्त है तथा शैली त्रिगुणात्मिका—ओज, माधुर्य एवं प्रसाद से युक्त।

सुबन्धु की वासवदत्ता के समान इस कृति में रचयिता की प्रतिज्ञानुसार भङ्गश्लेष का बाहुल्य है। बाणभट्ट की श्लेषानुप्राणित उपमावली की शैली इनकी कृति में भी स्थान-स्थान पर पायी जा सकती है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में आर्यावर्त-वर्णन इसका प्रमाण है। कुण्डिनपुर, निषधराज, ऋतु, दोहद आदि का वर्णन सुबन्धु की वासवदत्ता के आदर्श पर विरचित हैं। बीच-बीच में प्रयुक्त श्लोक भी इन्हीं वैशिष्ट्यों से बोझिल है। अलंकारभार तथा निबिड़ समासों की परम्परा से कहीं-कहीं गद्य अत्यन्त क्लिष्ट हो गया है।

959 ई० के लगभग विरचित सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू की गद्य-शैली पूर्ववर्ती सुबन्धु, बाण आदि की स्पर्धा करती है।[5] जन्मान्तरों के विवरणात्मक कथानक में कादम्बरी का अनुकरण है। राजा मारिदत्त, यशोर्घ तथा यशोधर का वर्णन कादम्बरी के क्रमशः शूद्रक, तारापीड़ तथा चन्द्रापीड़ के वर्णनों से समता रखता है। इस चम्पू मे 'प्रयुक्त पद्य कथावस्तु को आगे नहीं बढ़ाते अपितु स्वतन्त्र मुक्तकों का-सा आनन्द प्रदान करते हैं।[6] इनमें भी गद्य सी ही कला-चातुरी बताने का प्रयास हुआ है।

भोज की रामायणचम्पू ने इन परम्पराओं को तोड़ा है। यहाँ गद्य तथा पद्य ओज, प्रसाद तथा माधुर्य तीनों गुणों से सम्पृक्त प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार गद्य कथानक को आगे बढ़ाता है उसी प्रकार पद्य भी। पद्य केवल स्वतन्त्र सूक्ति बनकर नहीं रह गये हैं वरन् उनका कथा के अभिन्न अंग के रूप में अस्तित्व है। पूर्ववर्ती चम्पूकाव्यों में सुबन्धु, बाण आदि की कृतियों के समान वर्णन-बाहुल्य प्राप्त होता है। जहाँ पद-पद पर कथा गतिहीन हो जाती है। कल्पना की प्रचुरता दिखाने में ही कवियों ने अपनी शक्ति का व्यय किया है। भोज का गद्य तथा पद्य, दोनों ही कथा के वाहक हैं। वहाँ वर्णन के लिए वर्णन कहीं भी प्राप्त नहीं होता। कथा की अपेक्षानुसार ही हेमन्तादि ऋतुओं के वर्णन हुए हैं।

सम्पूर्ण चम्पूरामायण में ऐसा कोई स्थल नहीं जहाँ किसी वर्णन के कारण कथा रुक गयी हो। यदि वर्णन भी हुआ है तो वही जहाँ वाल्मीकि रामायण के परिप्रेक्ष्य में अपेक्षा थी।

भोज पर न केवल साहित्य की अलंकृत परम्परा का, वरन् स्वयं से पूर्ववर्ती सम्पूर्ण परम्परा का प्रभाव है। गद्य पर बाण तथा दण्डी का प्रभाव है। तो पद्य पर रामायण, पुराण, कालिदास, माघ आदि का। कल्पना की दृष्टि से कवि अपने से पूर्ववर्ती वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भारवि, कुमारदास, माघ, भवभूति, बाणभट्ट आदि से प्रभावित है। इस प्रकार भोजचम्पू किसी विशिष्ट परम्परागत शैली का वाहक नहीं, वरन् सम्पूर्ण परम्परा को आत्मसात् कर नूतन शैली का सर्जक है। इस नूतन शैली की रमणीयता पूर्ववर्ती न किसी गद्य-काव्य में, न किसी पद्य काव्य में तथा न किसी चम्पू में प्राप्त होती है।

परम्परा को आत्मसात् करने के पश्चात् अभिव्यक्ति कला के नये-नये साँचों का निर्माण कर लेती है। रामायणचम्पू इसका साक्षात् उदाहरण है। पुनः रामायण अब तक या तो महाकाव्यों में अथवा रूपकों में अपने नूतन कलेवर पाती रही परन्तु चम्पू शैली में उसे प्रस्तुत करने का कभी प्रयास नहीं हुआ था। भोज ने प्रथम बार रामायण को चम्पू की हृदयावर्जक शैली में प्रस्तुत किया। जहाँ गद्य तथा पद्य दोनों उसके काव्यात्मक कथाभार का समान रूप से वहन करते हैं। अलंकृत गद्य-रचना में रामायण प्रायः उपेक्षित रही। भोज ने इस ओर भी प्रयास किया तथा चम्पू में प्रयुक्त गद्य में भी उतनी ही सफलता से रामायणकथा को व्यक्त किया, जितनी सफलता से पद्य में। भोज का चम्पूशैली तथा वस्तु की दृष्टि से यह नूतन प्रयास था जिसमें वह पूर्ववर्ती चम्पूओं की अपेक्षा, कथा, वर्णन, गद्य-पद्य प्रयोग, अलंकरण, रसवत्ता आदि में अधिक सन्तुलन बनाये रखने में सफल रहा।

वाल्मीकि-रामायण का प्रभाव—

कथा की दृष्टि से चम्पूरामायण में आद्योपान्त वाल्मीकि-रामायण का श्रद्धामय अनुसरण किया गया है। कथा के प्रारम्भ करने से पूर्व ही वह आदिकवि वाल्मीकि तथा उनकी कृति के प्रति ऋणभार व्यक्त कर उसे उपजीव्य रूप में स्वीकार कर लेता है[7]—

वाल्मीकिगीतरघुपुङ्गवकीर्तिलेशै-
स्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम् ।
गङ्गाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः
किं तर्पणं न विदधाति नरः पितृणाम् ।।

रामायण को भोज ने गंगाजल के समान पवित्र, अजस्र तथा हृदयावर्जक माना है। तथा उसी में से भरी हुई अंजली के समान अपनी कृति–चम्पूरामायण को। अंजली में परिमित गंगाजल तथा बहते गंगाजल के परिमाण में ही अन्तर हो सकता है, गुणों में नहीं। अंजली में गंगाजल का आहरण करना अर्थात् बहते गंगाजल के बहुधा वैशिष्ट्यों का आहरण करना है। भोज वाल्मीकि को आदि कवि के गौरव के अनुसार आदर भी देते हैं[8]—

वाचं निशम्य भगवान् स तु नारदस्य
प्राचेतसः प्रवचसां प्रथमः कवीनाम् ।

आदिकवि ही नहीं, वे केवल 'कवि' शब्द से भी वाल्मीकि का ही बोध करवाते हैं[9]—

अथ रामाभिधानेन कवेः सुरभयन् गिरः ।
अलंचकार कारुण्याद्रघूणामन्वयं हरिः ।।

भगवान् वाल्मीकि महर्षि[10] कवि हैं। उन्होंने सर्वप्रथम कविकर्म का मार्ग दिखाया। मधुर कविता की सर्जना कर उन्होंने कवियों के लिए पथ-प्रशस्त किया। उनका रामायण काव्य न केवल शुभ अपितु स्वादु भी है[11]—

शुभमतनुत काव्यं स्वादु रामायणाख्यं
मधुमयभणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः ।

वाल्मीकि की इतनी प्रशंसा करना, उन्हीं के रामायण के आधार पर अपनी कृति का निर्माण करना तथा काव्य के इस ऋणभार को सहर्ष स्वीकार करना आदि स्फुट रूप से व्यक्त करते हैं कि भोज की कृति आमूल वाल्मीकि से प्रभावित है। भोज प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देते हैं कि उन्होंने रामायण का ईमानदारी से अनुसरण किया है। व्यतिक्रम कहीं भी नहीं हुआ है इसके प्रमाण भी मध्य-मध्य में कवि देता रहता है—

(1) बालकाण्ड का प्रारम्भ प्रास्ताविक विवरण से युक्त होने से वाल्मीकि रामायण का कवि यथावत् पालन नहीं कर पाया पर जैसे ही मूल विषय को व्यक्त करना प्रारम्भ किया जाता है, वाल्मीकि-रामायण के एक प्रसिद्ध श्लोक[12]—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

का यथावत् उद्धृत कर दिया जाता है।[13]

(2) इसी प्रकार सुन्दरकाण्ड में[14]—

'शीतो भव हनुमतः'

रूप में सीता की अग्नि से प्रार्थना में वाल्मीकि की ही वाणी को उद्धृत कर दिया गया है।[15]

जहाँ तक उद्धृत करने का प्रश्न है कालिदास ने भी वाल्मीकि-रामायण का एक श्लोक रघुवंश में वैसा ही उद्धृत कर दिया है।[16]

(3) यही नहीं अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा तथा सुन्दरकाण्ड का प्रारम्भ भी उन्हीं पदों से होता है, जिन पदों से वाल्मीकि-रामायण का —

	चम्पूरामायण	वाल्मीकि-रामायण
अयोध्याकाण्ड	गच्छता दशरथेन निर्वृतिम् ।	गच्छता मातुलकुलं........।
अरण्यकाण्ड	प्रविश्य विपिनं महत्त........।	प्रविश्य तु महारण्यं ....।
किष्किन्धाकाण्ड	स तां सतां बुद्धिमिव........।	स तां पुष्करिणी गत्वा........।
सुन्दरकाण्ड	ततो हनुमान् दशकण्ठनीतां....।	ततो रावणनीतायाः........।

इस अनुकरण में भोज का आदिकवि के प्रति आदरभाव तथा विनम्रता व्यक्त होती है। साथ ही यह प्रतीति करवाना भी सम्भव है कि वह कहीं भी रामायण के पद्य का व्यतिक्रम नहीं कर रहा है। जिस प्रकार वाल्मीकि ने काण्डों का विभाजन किया, उसी प्रकार, कथा का उतना ही भाग समाप्त होने पर चम्पूरामायण में भी काण्ड की समाप्ति होती है। वाल्मीकि तथा रामकथा के प्रति इन स्थितियों में श्रद्धा व्यक्त करना ही भोज को अभीष्ट रहा है[17]

(4) वाल्मीकिरामायण के पद्य का ही भोज ने अनुसरण किया, इसकी पुष्टि अरण्यकाण्ड में वर्णित सीताहरण पर रामविलाप से भी होती है[18]—

इत्थं विलप्य दयितां विपिने विचिन्वन्
रामो न तत्र धृतिमान्न च लक्ष्मणोऽपि ।
तादृग्विधामपि कथां कथयन् स्ववाचा ।
वाल्मीकजन्ममुनिरेव कठोरचेताः ॥

यहाँ स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि भोज वाल्मीकि-वर्णित रामविलाप के विस्तार में न जाकर इंगित कर देता है कि यहाँ केवल दिङ्निर्देश है, विस्तृत के लिए वाल्मीकि की कृति द्रष्टव्य।

इन विवरणों से स्पष्ट है कि भोजचम्पू आद्योपान्त वाल्मीकिरामायण से प्रभावित तथा उसका ऋणी है।

कथा के साथ ही पात्र-चित्रण, संवाद, स्थल-विवरण आदि की दृष्टि से भी रामायण-चम्पू वाल्मीकि से प्रभावित है। परन्तु यह प्रभाव अनुवाद के रूप में नहीं हुआ है।

कथा रामायण की है, परन्तु वाणी भोज की है। रामायण तथा भोज के स्थितिकाल की मध्यावधि में वाङ्मय ने सुदीर्घ यात्रा की है। इस यात्रा में वह भाव तथा अलंकरण में रामायण के काल से पर्याप्त आकर्षक तथा चमत्कार से समृद्ध हो चुकी थी। इस अवधि में सृष्ट विस्तृत ज्ञान का उपयोग करने में भोज स्वतन्त्र था। यही कारण है कि वाल्मीकि-रामायण के तथ्य, भोज की कल्पना तथा भाषा पाकर अपूर्ववत् भासित हो उठे। कवि का महत्त्व नवीन वस्तु के शोध में नहीं परन्तु धारावाही संस्कारों को नवीन भूमिका प्रदान करने में है। वस्तुतः कवि की प्रतिभा का संस्पर्श पाकर पुरातन भाव भी नूतन आभा से चमक उठते हैं।

काव्य दो प्रकार के होते हैं—अन्यच्छाया-स्फुरित तथा स्वयं स्फुरित।[19] कथानक की दृष्टि से चम्पूरामायण अन्यच्छायास्फुरित काव्य है। परन्तु अभिव्यक्ति की मौलिकता की दृष्टि से, नूतन कल्पना की दृष्टि से भोजकृति का अधिकांश अयोनि अथवा स्वयंस्फुरित है। सम्पूर्ण परम्परा को आत्मसात् कर उसे नयी अभिव्यक्ति देना ही कला है। भोज ने वाल्मीकि के द्वारा अभिव्यक्त तथ्यों को नूतन परिवेश में प्रस्तुत किया है।

अब तक रामायण काव्य अथवा नाटक के माध्यम से व्यक्त होता आया था। भोज ने इन दोनों के सम्मिश्रणरूप चम्पू में उसे प्रस्तुत कर सहृदयों के लिए सर्जना का नूतन द्वार खोल दिया। 'वाल्मीकि ने अपने युग के महापुरुष सीतापति राम पर काव्य-रचना की। वाल्मीकि के आदिकाव्य का संक्षेप करते हुए भी रामायणचम्पू का रचयिता अपने युग के राम और सीता को नहीं भूलता। देश, काल और वस्तु स्वभाव के परिवर्तन से कवि प्रभावित है। पूर्ववर्ती महाकवियों की राम-विषयक कृतियाँ कवि के स्मृतिकोष में सुरक्षित हैं। इन दोनों प्रकारों से प्रभावित कवि की रचना में कुछ विशेषताएँ हैं, जिनमें कवि की मौलिकता का आभास मिल जाता है।'[20] ध्वन्यालोककार का भी कहना है कि देश-काल आदि का ध्यान रखकर रसभाव से सम्बद्ध करके औचित्यानुसार रचना करने पर किसी भी स्थिति में उसका परिक्षय नहीं होता है।[21]—

रसभावादि सम्बद्धा यथौचित्यानुसारिणी।
अन्वीयते वस्तुगतिर्देशकालादिभेदिनी॥
वाचस्पतिसहस्राणां सहस्रैरपि यत्नतः।
निबद्धा सा क्षयं नैति प्रकृतिर्जगतामिव॥

कतिपय उदाहरणों से भोज की मौलिकता का आभास हो सकेगा। रामायण के अयोध्या-दिकाण्ड के प्रथम श्लोक के प्रथम शब्द का उपयोग चम्पूरामायण में भी उसी प्रकार हुआ है। यह तथ्य गत पृष्ठों में व्यक्त हो चुका है। शब्द का चाहे भोज ने उपयोग किया परन्तु तथ्यात्मक दृष्टि से भी भोज ने क्या वाल्मीकि का अनुवाद कर दिया?

वाल्मीकिरामायण के अरण्यकाण्ड का प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान्।
रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम्॥

दण्डकारण्य की भयंकरता का आभास देने वाले 'महारण्यं दण्डकारण्यं' का वर्णवैचित्र्य भोज की दृष्टि से ओझल नहीं हुआ। परन्तु 'वाल्मीकि के राम 'आत्मवान्' हैं और इसीलिए इस महारण्य दण्डकारण्य में भी 'दुर्धर्ष' हैं, इस बात की पुष्टि 'रामो ददर्श दुर्धर्षः, की क्रमशः कर्कश होती किन्तु भावपूर्ण ध्वनियाँ कर देती हैं।'[22] वाल्मीकि के इस अभीष्ट तथ्य की रक्षा करते हुए भोज ओज की एक अलग ही छटा विकीर्ण करते है--

प्रविश्य विपिनं महत्तदनु मैथिलीवल्लभो
महाबलसमन्वितश्चलितनीलशैलच्छविः।
निशाचरदवानलप्रशमनं विधातुं शरै-
श्चचार सशरासनः सुरपथे तडित्वानिव॥[23]

यहाँ भी राम 'महाबलसमन्वित' तथा निशाचरदवानल को शान्त करने के लिए 'सशरासन' भी है। वे तडित्वान् के समान हैं जो किसी भी शक्तिशाली को नष्ट करने की क्षमता रखते है। परन्तु साथ ही आकाश की विशालता तथा रूप की रमणीयता भी अविस्मरणीय है। इसी रमणीयता से आकर्षित होकर शूर्पणखा भी इन्हें पाने के लिए लालायित हो जाती है।[24] भोज के इस कमनीय काव्य में भाषा का लालित्य भी आकर्षक है।

वाल्मीकिरामायण का हेमन्त-वर्णन हृदयावर्जक है। संस्कृत कवि इससे सदा प्रभावित होते रहे हैं। भोज ने भी हेमन्त का चित्रण गद्य-खण्ड मे किया है। इस हेमन्त-वर्णन में वाल्मीकि के

भाव, कालिदास की कल्पना, बाण की शैली तथा सामयिक हेमन्तकालीन लोकजीवन का आकर्षक समाहार हुआ है ।[25]

वाल्मीकि का युग ग्राम्यविशेषतः ग्राम्यसभ्यता का युग था परन्तु भोज का युग नागरिक सभ्यता का । स्वभावतः स्वयुगीन प्रभाव से कवि मुक्त नहीं रह सकता । वाल्मीकि के युग में आश्रमों की बहुलता रही । स्वयं उस स्थिति के भुक्तभोगी थे । तत्सम्बद्ध अभिव्यक्ति स्वानुभूत थी । स्वभावतः वाल्मीकि के वर्णन में अधिक स्वाभाविकता रही । भोज का तापसाश्रम वर्णन कल्पना-मण्डित है । कल्पना तथा अलंकरण एवं शब्दों के जंगल से आश्रम का आभास करवाने की चेष्टा की गयी है ।[26]

वाल्मीकि की व्यासशैली रही है तथा भोज की समासशैली । भोज संक्षेप में अनेक बातें रुचिकर शैली में कह जाते हैं । वाल्मीकि कुशीलव का परिचय सम्पूर्ण एक सर्ग में देते हैं तथा लगभग अन्त में यह श्लोक रचते हैं[27]—

> इमौ मुनी पार्थिवलक्षणान्वितौ
> कुशीलवौ चैव महातपस्विनौ ।
> ममापि तद् भूतिकरं प्रचक्षते
> महानुभावं चरितं निबोधत ॥

भोज इस सम्पूर्ण सर्ग के विवरण को उपयुक्त श्लोक की ध्वनि में परन्तु रुचिर वर्णन होने से तदनुरूप रुचिरा वृत्त में इस प्रकार प्रस्तुत कर देते हैं[28]—

> उपागतौ मिलितपरस्परोपमौ
> बहुश्रुतौ श्रुतिमधुरस्वरान्वितौ ।
> विचक्षणौ विविधनरेन्द्रलक्षणौ
> कुशीलवौ कुशलव नामधारिणौ ।

इस प्रकार भोज के चम्पूरामायण का उपजीव्य चाहे वाल्मीकि-विरचित रामायण रहा परन्तु वक्ताभेद से स्वभावत कृतिभेद हो गया है । दोनों का अपना व्यक्तित्त्व है । भला, इक्षुरस तथा उससे निर्मित गुड का स्वाद, एक ही तो नही हो सकता न ! दोनों की मधुरता में क्या अन्तर है, इसे तो सरस्वती भी नही बता सकती[29]—

> इक्षुक्षीरगुडादीनां माधुर्यस्यान्तरं महत् ।
> तथापि न तदाख्यातुं सरस्वत्यापि शक्यते ॥

भोज की कृतियों पर विभिन्न काव्यों का प्रभाव—एक सर्वेक्षण—

चम्पूरामायण पर हुए वाल्मीकि के प्रभावों का कुछ दिग्दर्शन पूर्ववर्ती कतिपय पृष्ठों में कर दिया गया है ।

शृंगारमंजरीकथा में भी वाल्मीकि, उनकी रामायण तथा उसके पात्र—राम, लक्ष्मण, रावण, विभीषण, नील, नल, सुग्रीव, विरोचन, प्रहस्त, सुबाहु एवं स्थान, किष्किन्धा आदि के केवल नाम अथवा सम्बद्ध घटना के संकेत प्राप्त होते हैं । ये सभी संकेत प्रासंगिक हैं, प्रायः उपमानों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं अथवा श्लेष में । परन्तु इससे इतना निष्कर्ष तो सहज ही निकाला जा सकता है कि भोज पद-पद पर रामायण से प्रभावित रहता है । रामायण को भोज ने आत्मसात् कर लिया

था। तथा आत्मसात् करने के पश्चात् जो भी व्यक्त होता था, रामायण उसमें जाने अनजाने अनुस्यूत हो जाती थी।

चाणक्यराजनीतिशास्त्र में भोज ने एक श्लोक रामायण से भी उद्धृत किया है[30]—

एतदर्थं हि सौमित्रे राज्यमिच्छन्ति भूभृतः।
यदेषां सर्वकार्येषु वाचो न प्रतिहन्यते॥

रामायण में यह श्लोक इस प्रकार प्राप्त होता है—

एतदर्थं हि राज्यानि प्रशासति नराधिपाः।
यदेषां सर्वकृत्येषु मनो न प्रतिहन्यते॥[31]

चम्पूरामायण मूलतः रामयण पर आधारित होने से वह आद्योपान्त प्रभावित है। परन्तु रामायण को चम्पू रूप में प्रस्तुत करते हुए भोज वाल्मीकि ही नहीं, परवर्ती साहित्यकारों की रामायण तथा इतर विषयों से सम्बद्ध कृतियों की विचारसरणी को भी सम्पृक्त कर देते हैं। इन सबका मिश्रण प्रस्तुत करने में भोज की अपनी प्रतिभा का योगदान विशिष्ट रहा है फलतः वह कृति पूर्वकल्पनाओं से प्रभावित होने पर भी अभिव्यंजना तथा प्रस्तुतीकरण में मौलिक रही है।

वाल्मीकि का हेमन्तवर्णन सहृदयों को सदा से आकर्षित करता रहा है। उसकी स्वाभाविक अभिव्यक्तियों तक कालिदास का ऋतुसंहार भी नहीं पहुँच पाया है। ऋतुसंहार में भी इस वर्णन की छाया पायी जा सकती है परन्तु वक्ता के भेद से अभिव्यक्ति में भेद हो जाने से कृति स्वयं ही भिन्न हो गयी है। ये दोनों कृतियाँ पद्य में विरचित हैं। भोज ने भी चम्पूरामायण[32] में हेमन्तवर्णन किया है। यह वर्णन गद्य में किया गया है। भोज का हेमन्तवर्णन वाल्मीकि तथा कालिदास से तो प्रभावित है ही परन्तु वर्णन-शैली की दृष्टि से बाण से प्रभावित है। इतने सब प्रभावों के उपरान्त भी भोज का युग इन पूर्ववर्ती कवियों के युग से भिन्न रहा। प्रकृति के प्रति जो आकर्षण पूर्वकाल में रहा, वह परवर्तीकाल में क्रमशः घटता गया। परन्तु नगरीय सभ्यता, सामाजिक परिवेश एवं शीत से बचने के साधनों में सुधार होता गया। भोज राम के युग का हेमन्तवर्णन करते हुए भी अपने युग की विशेषताओं को विस्मृत नहीं कर सके। इस सम्पूर्ण परम्परा को आत्मसात् कर उसने हेमन्त का जो चित्र प्रस्तुत किया वह स्वयं में अपूर्व बन गया। कवि के ऐसे कर्म को राजशेखर 'द्रावक' कहता है[33]—

अप्रत्यभिज्ञेयतया स्ववाक्ये नवतां नयेत्।
यो द्रावयित्वा मूलार्थं द्रावकः स भवेत् कविः॥

हेमन्त ऋतु में कमल नष्ट हो जाते हैं केवल उनके नाल ही बच रहते हैं।[34]

नालशेषा हिमध्वस्ता न भान्ति कमलाकराः।

भोज इस तथ्य को अन्य ही प्रकार से व्यक्त करता है। वह हेमन्त को कमलों को जलाने वाला दावानल—

'सरसीरुहदावपावकः'

कहकर उपर्युक्त तथ्य का समावेश कर देता है।

वाल्मीकि हेमन्त को 'सुभगो हव्यवाहनः'[35] कहते हैं। भोज के युग में वह 'हव्यवाहन' नहीं रह गया था। उनके युग में शीतबाधा दूर करने के लिए अंगीठियों का प्रचार था। वे अपने युग का वैशिष्ट्य भी वाल्मीकि के भावों में संयुक्त कर देते हैं—

'निर्धूमाङ्गारभरितहसन्तिकायन्त्रस्य च सुभगङ्करः'

यहाँ वाल्मीकि के 'सुभगः' के लिए 'सुभगङ्करः' शब्द भी रख दिया तथा 'हव्यवाहनः' के स्थान पर धूमरहित जलते कोयलों से भरी अंगीठी।

शीतलता का संचार करने वाले अथवा शैत्य को रोक पाने में असमर्थ उपकरणों का इस काल में उपयोग नहीं किया जाता. इस तथ्य को कालिदास इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं[36]—

मनोहरैः कुङ्कुमरागरक्तैस्तुषारकुन्देन्दुनिभैश्च हारैः।
विलासिनीनां स्तनशालिनीनां नालंक्रियन्ते स्तनमण्डलानि॥
न बाहुयुग्मेषु विलासिनीनां प्रयान्ति सङ्गं वलयाङ्गदानि।
नितम्बबिम्बेषु नवं दुकूलं तन्वंशुकं पीनपयोधरेषु॥
काञ्चीगुणैः काञ्चनरत्नचित्रैर्नो भूषयन्ति प्रमदा नितम्बम्।
न नूपुरैर्हंसरुतं भजद्भिः पादाम्बुजान्यम्बुजकान्तिभाञ्जि॥

कालिदास से प्राप्त उपर्युक्त मूल भावना को भोज इस प्रकार प्रकट करते हैं—

चन्द्रातपे निरानन्दतां चन्द्रनानुलेपने निर्लोलुपतां चन्द्रशालायां निराशतां चन्द्रोपलस्थले निरास्थतां बालाव्यजनसेवने निरुत्सुकतां वापीकूपोपकण्ठे निरुत्कण्ठतां वासरावसाने नादरतां वारिविहारे निराकांक्षतामुत्पलनाला-यामुपेक्ष्यतामुपवनव्रजनेऽप्युद्विग्नतां च जनानां जनयन्·······हेमन्तसमयः समुदजृम्भत।

कालिदास के हेमन्तवर्णन तथा बाण के वाक्यविन्यास के साथ ही भोज की नूतन कल्पना के चमत्कार ने इस वर्णन में एक नवीन आनन्द की सर्जना कर दी है। साथ ही—

'वासरावसाने नादरतां वारिविहारे निराकांक्षताम्'

भावना को व्यक्त करते समय कालिदास द्वारा वर्णित ग्रीष्म[37]—

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः॥

का किञ्चित प्रभाव व्यक्त किया गया है। परन्तु उपर्युक्त कल्पना का स्रोत यही श्लोक प्रतीत होता है। यही भाव शृंगारमंजरी (पृष्ठ 67) पर

तुहिनकणकलितजलतया···········
क्रीड़ोपभोगशून्यासु···········
कमलदीर्घिकासु में भी पाया जा सकता है।

'कालागरुधूमन्य' कहते समय भोज के अवचेतन में 'शिरांसि कालागरुधूपितानि'।[38] की कल्पना हो सकती है।

इसी काल बहती शीतल वायु को बाणभट्ट ने 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहा है जिसे भोज ने—

'अश्रान्तदन्तवीणाव्यापारवेपमानाधरपुटतया'

के रूप में प्रस्तुत किया है।

अंगरागों में केसर तथा कुंकुम का उपयोग शीतकाल के लिए उपयोगी है, इस तथ्य को भोज ने अपनी कृति शृंगारमंजरीकथा में भी व्यक्त किया है—

'मसृणमसृणेन कश्मीरजन्मनापि जरितासु तनुलतासु'[39]

तथा

'कुङ्कुमरसरञ्जितेषु'[40]

चम्पूरामायण में 'काश्मीराङ्गरागस्य' कहकर इसे विस्मृत नहीं किया गया। भोज की चारुचर्या में—

काश्मीरपंकेन कृतप्रलेपो हेमन्तजानाशु निहन्ति दोषान्।

कहकर हेमन्त में केसर की स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगिता व्यक्त की गयी है।

शीतरक्षा के सर्वाधिक प्रचलित साधन कम्बल को भोज विस्मृत नहीं करता। रामायण-चम्पू रचते हुए वह, हेमन्तवर्णन में शीतबाधा के निरोध के लिए कम्बल का तीन बार सन्दर्भ देता है—

(1) 'शशोदररोममृदुकम्बलस्य'
(2) अविरलपुलकपालीककम्बलितकलेवरतया

तथा

(3) स्फुरणविधिवितीर्णरोमकम्बलकृताङ्गरक्षमिव

शृंगारमंजरीकथा में भी कम्बल के सम्बन्ध में मनोरम कल्पना की गयी है[41]—

'पुण्याग्निधूमैः स्थगितगगनतया वलयितप्रान्ततया च शीतार्त्या प्रावृतकम्बलेष्विवोपलक्ष्यमाणेषु ग्रामधानेषु।'

शीतकाल में सुखद होने से ही यास्क भी 'कम्बलः कमनीयो भवति'[42] कहकर उसकी प्रशंसा करते हैं।

स्वयं भोज अपनी अन्य कृति चारुचर्या में कम्बल की उपयोगिता इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

'शीतं नैव वितीर्यते प्रियतमैरालिङ्गनं कम्बलम्।'

इस प्रकार भोजवर्णित 'हेमन्त' पूर्वागत परम्परा से प्राप्त तथ्यों के समाहार के साथ ही अपने काल की विशेषताओं से गर्भित विशिष्ट शैली में विरचित है।

वाल्मीकि की उपमाओं को भोज ने कहीं-कहीं यथावत् स्वीकार कर लिया है।

तस्मिन् क्षणे वरयुगं चिरतप्ततास्त्र-
नाराचवेधपरुषं श्रवसी विदार्य। अयोध्या, 12

चम्पूरामायण की उपर्युक्त कल्पना में तप्त नाराच से कान में विदीर्ण करने की भावना में मूलतः वाल्मीकि का यह श्लोक है—

श्रोत्रयोरुभयोर्मध्ये तप्तनाराचसन्निभम्।
न सहे हीदृशं वाक्यं वैदेहि जनकात्मजे॥

वा० रा०, अरण्यकाण्ड, 45/21

कालिदास ने अपनी कृति के प्रारम्भ में जिस शालीनताभिव्यक्ति के साथ ही वाल्मीकि में आस्था तथा श्रद्धा व्यक्त की[43]—

(क) क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।

(ख) मन्दः कवियशः प्रार्थीगमिष्याम्युपहास्यताम्।

तथा

(ग) अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः॥

भोज भी अपनी कृति के प्रारम्भ में वाल्मीकि के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं। परन्तु साथ ही यह भी व्यक्त कर देते हैं कि उन्हें रामायण की पुनरावृत्ति करने में संकोच नहीं है[44]—

वाल्मीकिगीतरघुपुंगवकीर्तिलेशै-
स्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्।
गंगाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः
किं तर्पणं न विदधाति नरः पितॄणाम्॥

भोज रामायण तथा उसके वर्ण्यविषय के गौरव-वर्णन से आशंकित नहीं हैं। कालिदास पहिले शंकित होकर पुनः आश्वस्त होते हैं। भोज शंकित ही नहीं होते, वे आश्वस्त होकर ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हैं परन्तु कालिदास के समान वाल्मीकि तथा उनकी कृति के प्रति आदर अवश्य व्यक्त कर देते हैं।

महाभारत—

शृंगारमंजरीकथा में महाभारत का तथा उनके रचयिता व्यास का एक बार उल्लेख हुआ है। पराशर मुनि का भी उल्लेख हुआ है। महाभारत के पात्रों में अर्जुन, सुभद्रा, द्रौपदी, नकुल, कृप आदि द्व्यर्थक होने से प्रयुक्त हुए हैं। बलराम द्वारा प्रलम्ब का नाश, कौरव-पाण्डवों की द्यूत क्रीड़ा आदि का भी उल्लेख हुआ है।

धर्मापायभयेन वत्सविरहं वक्ष्यामि वक्ष्यामि किं
यावत्कल्पमकीर्तिरार्तिजननी जायेत जाये! तव॥

चम्पूरामायण में व्यक्त दशरथ की उपर्युक्त उक्ति पर गीता की इस उक्ति का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है—

"सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥"

रामायणचम्पू (किष्किन्धा, 23) में तो स्पष्ट ही श्लेषरूपेण, अर्जुन, धार्तराष्ट्र एवं देवकीनन्दन का उल्लेख है—

दत्तार्जुनविकासेन धार्तराष्ट्रान्निरस्यता।
तेन जीमूतकालेन देवकीनन्दनायितम्॥

चाणक्यराजनीतिशास्त्र में महाभारत के 35 श्लोक उद्धृत हैं।[45]

रामायणचम्पू में कालिदास की शैली का अनुकरण कई स्थलों पर प्राप्त हो सकता है।[46]

प्रारब्धयात्रस्य रघूद्वहस्य प्रागेव सीता रथमारुरोह ।
आनीलरथ्यां रथमारुरुक्षोरह्नां प्रभोरग्रसरी प्रभेव ॥

इस श्लोक की भाषा वैदर्भीरीति तथा उपमा की कल्पना सर्वथा कालिदास के पथ का अनुसरण करती है । इस उपमा से कालिदास की ये उपमाएँ स्मरण हो आती है—

श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्[47]

अथवा

छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ।[48]

रामायणचम्पू के इस श्लोक में[49]—

जग्राह जनकात्सीतां तातादेशेन राघवः ।
आम्नायशासनेनार्चां यजमानादिवानलः ॥

में प्रयुक्त अर्चा (होमादि सत्क्रिया) से सीता को उपमित होते देखकर शाकुन्तल की[50]—

"शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया"

की स्मृति होना भी स्वाभाविक है । परस्त्रीविमुख होने की जो प्रवृत्ति अभिज्ञानशाकुन्तल में[51]—

वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ।

तथा रघुवंश में[52]—

वशिनां रघूणां मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति

व्यक्त की गयी है एवं रविकीर्ति[53] ने भी जिस भावना को 'परदारनिवृत्तचित्तवृत्तेः' श्लोकांश में व्यक्त किया है, उसी से प्रभावित मनोभाव को चम्पूरामायण में व्यक्त किया गया है ।

(क) 'परकलत्ररतिरपत्रपां'[54] तथा
(ख) परदारनिरीक्षणरपत्रपां

अथवा

बद्धादरोऽपि परदारपरिग्रहे त्व-
मिक्ष्वाकुनायककलत्रमनार्य ! मा गाः ।[55]

रघुवंश में इन्दुमती को अज अनेक रूपों में पाता है[56]—

गृहिणी सचिवः सखी मिथः
प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।

जिसकी मृत्यु होने से विधाता ने उसका सब कुछ छीन लिया । सीतावियुक्त राम भी सीता को अनेक रूपों में देखते हैं[57]—

आधौ सिद्धौषधिरिव हिता केलिकाले वयस्या
पत्नी त्रेतायजनसमये क्षत्रियाण्येव युद्धे ।
शिष्या देवद्विजपितृसमाराधने व...
सीता सा मे शिशिरितमहाकानने का न जाता ॥

चिन्ताकाल में सिद्धौषधि, केलिकाल में वयस्या, हवनकाल में पत्नी, युद्धकाल में क्षत्रियाणी, देव द्विज तथा मातापिता की सेवा में शिष्या, कष्टकाल में प्रिय मित्र आदि विविध रूपों में उसे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया।

लवकुश का परिचय देने में भोज जिस माधुर्य को प्रस्तुत कर देते हैं[58]—

उपागतौ मिलित परस्परोपमौ
बहुश्रुतौ श्रुतिमधुरस्वरान्वितौ।
विचक्षणौ विविधनरेन्द्रलक्षणौ
कुशीलवौ कुशलवनामधारिणौ॥

उसके मूल में वाल्मीकि तथा कालिदास की कल्पना का सम्मिश्रण कर अपनी दृष्टि से प्रस्तुतीकरण का ही वैशिष्ट्य है। वाल्मीकि के द्वारा प्रदत्त कुशीलव का परिचय—

कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ॥[59]

एवं

इमौ मुनी पार्थिवलक्षणान्वितौ
कुशीलवौ चैव महातपस्विनौ।
ममापि तद् भूतिकरं प्रचक्षेत
महानुभावं चरितं निबोधत॥[60]

तथा कालिदास के द्वारा प्रस्तुत चित्र[61]—

रूपे गीते च माधुर्यं तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम्।
ददर्श सानुजो रामः शुश्राव च कुतूहली॥

का मनोहारी समन्वय भोजकृत उपर्युक्त श्लोक में प्राप्त होता है।

चम्पूरामायण वाल्मीकिरामायण का अवितथ अनुकरण है। गौतम के शाप से अहल्या अदृश्या रही। उसके आश्रमवन में राम के आगमन पर वह पवित्र हो गयी तथा पुनः अपना शरीर धारण कर लिया।[62] भोज भी इसी तथ्य को यथावत् व्यक्त कर देते हैं।[63] परन्तु कालिदास गौतमशाप से अहिल्या को शिलामयी होना बताते हैं जिसका उद्धार राम के चरणरज की कृपा से हुआ।[64]

प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारु गौतमवधूः शिलामयी।
स्वं वपुः स किल किल्विषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रहः॥

भोज की दृष्टि में अहल्या चाहे शिलामयी न हुई हो परन्तु कालिदास के 'रामपादरज' के विशेष महत्त्व को वह विस्मृत नहीं कर सका। यही कारण है कि वह वाल्मीकि-सम्मत तथ्यों को स्वीकार करते हुए भी कालिदास की भावना को भी स्वीकार कर लेता है।[65]

दुःखे सुखे च रज एव बभूव हेतु-
स्तादृग्विधे महति गौतमधर्मपत्न्याः।
यस्माद्गुणेन रजसा विकृतिं गता सा
रामस्य पादरजसा प्रकृतिं प्रपेदे॥

शृंगारमंजरीकथा (पृष्ठ 67) में शिशिरकाल का वर्णन करते हुए कल्पना की गयी है कि शीत के भय से ही सूर्य दक्षिणदिशा का आश्रय ले रहा है अर्थात् दक्षिणायन हो रहा है—

'शिशिरसमये शितिभयेवाश्रयति दक्षिणां ककुभमतिजरठरश्मावशुमालिनि'

भोज की इस कल्पना का आधार रघुवंश (449) की यह सुप्रसिद्ध पंक्ति प्रतीत होती है —

दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि ।

दशरथ के पायसविभाजन में भोज ने वाल्मीकि के अभिमत से भिन्न रघुवंश तथा नरसिंहसंहिता के अभिमत को स्वीकार किया है।[66]

कुमारसम्भव में उमा के यौवन के प्रस्फुटीकरण के सन्दर्भ में कवि ने एक उपमा दी है[67]—

'सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम् ।'

भोज को यह उपमा अधिक रुचिकर लगी और उसने इसे अपनी कृति चारुचर्या में केतकी-कुसुम का वैशिष्ट्य व्यक्त करते हुए इस प्रकार स्थान दिया है[68]—

'कान्तानां हृदयारविन्ददलने सूर्यांशुतुल्यप्रभम्'

इसी कल्पना को रूपक का परिवेश प्रदान कर शृंगारमंजरीकथा में प्रस्तुत करने में अन्य ही चारुता आ गयी है[69]—

रविकिरणकुञ्चिकोद्घाट्यमानदलकवाटेषु प्रागन्तरुषितैर्यामिकैरिव
मधुकरैर्विमुच्यमानेष्वनेकैरपरैस्त्वापतद्भिः प्रतिगृह्यमाणेषु
प्रकटितद्वारेषु श्रियो विलासभवनेषु पङ्कजेषु ।

इस कमनीय कल्पना का मूल बीज कालिदास के कुमारसम्भव के उपर्युक्त श्लोकांश में ही है।

कुमारसम्भव में हिमालय अपनी गुहाओं में अन्धकार को आश्रय देता है[70]—

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु
लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम् ॥

भोज एक सुन्दर कल्पना प्रस्तुत करता है[71] —

मुकुलितकुमुदकोशकोटरान्तर्निलीनमधुकरतया दिवसकरतया प्रतनुतां
गतेनान्धकारेणेव संश्रितानि ।

कुमारसम्भव में हिमालय को सारे देवताओं की वास-भूमि कहा है[72]—

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः
पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः ॥

शृंगारमंजरीकथा में भी ऐसा ही भाव व्यक्त किया गया है[73]—

मंगलगृहमिव हिमाचलस्थलीदेवतानाम् ।

कुमारसम्भव की यह उक्ति[74]—

निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ।

शृंगारमंजरीकथा की निम्नोक्ति में प्रतिविम्बित हो रही है[75]—

यदि जीवितेश्वरो न पश्यति तद्वृथायं शृंगारो नृत्तं च ।

राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति में कार्तिकेय वन में उर्वशी के लता बन जाने का उल्लेख है[76]—

उर्वश्याश्च कार्तिकेयवने लतारूपतया ।

जो निश्चय ही विक्रमोर्वशीय के आधार पर है। विक्रमोर्वशीय में इस तथ्य का विवरण इस प्रकार है[77]—

.........स्त्रीजनपरिहरणीयं कुमारवनं प्रविष्टा ।
प्रवेशानन्तरं च काननोपान्तवर्तिलताभावेन परिणतमस्या रूपम् ।

शृंगारमंजरीकथा की यह उक्ति[78]—

सव्यापाराभिरचितमणियन्त्रपुत्रिकाभिः पुरातनस्य वेधसस्त्रिभुवनेऽपि
सृष्टिप्रपंचमिवोपहसत् ।

विक्रमोर्वशीय के 'पुराणमुनि' की स्मृति की पृष्ठभूमि बना देती है[79]—

वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ।

विधाता के कृतित्व को अस्वीकार करने का वैसा ही एक और प्रसंग प्रस्तुत किया गया है[80]—

न खल्वस्यास्त्रिभुवनसर्गकारी प्रजापतिर्निर्माणहेतुः
यतस्तद्विनिर्मितयोषिद्विलक्षणमेव रूपमस्याः ।

जिसकी समता में विक्रमोर्वशीय का उपर्युक्त श्लोकार्ध रखा जा सकता है।

शृंगारमंजरी के इस वाक्य मे[81]—

किं स्वप्नोयं किमुत मायेन्द्रजालं वा किमेतदिति किमपि नाज्ञासीत् ।

स्वप्नवासवदत्तम् के इस श्लोक की[82]—

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे सदा ॥

तथा अभिज्ञानशाकुन्तल के इस श्लोकार्ध की[83]—

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु
क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम् ।

छाया पायी जा सकती है।

रघुवंश की इस प्रसिद्ध उक्ति की[84]—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम् ।

छाया शृंगारमंजरीकथा की इस उक्ति में प्राप्त होती है[85]—

जातस्य जन्तोर्नियतमेव निर्याणेन भवितव्यम् ।

शृंगारमंजरीकथा में उपलब्ध इस सुन्दर कल्पना[86]—

प्रारब्धकाकलीगीतिमिव मृदुपवनापूर्यमाकीचकरन्ध्रध्वनितैः.........।

का मूल कालिदास के रघुवंश, कुमारसम्भव तथा मेघदूत में प्राप्य है—

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः
कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम् ।[87]

तथा

यः पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान्-
दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।[88]

एवं

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः[89]

रघुवंश,[90] नैषधचरित[91] आदि के समान अठारह द्वीपों की बात शृंगारमंजरीकथा में भी प्राप्य है[92] —

अष्टादशद्वीपानिव नखमणीनुद्वहन्तम् ।

स्तम्भों को शालभंजिकाओं से अलंकृत करने की बात कालिदास ने कही है[93]—

स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनाना-
मुत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणाम् ।
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति संगा-
न्निर्मोकपट्टाः फणिभिर्विमुक्ताः ॥

शृंगारमंजरीकथा के दो उद्धरणों को मिलाने से यह कल्पना पुनः प्रस्तुत हो सकती है[94]—

(क) स्तम्भस्तम्भशीर्षकपट्टसाल-
भंजिकानां परस्परसुसंहततया........।

तथा

(ख) रतिनिधानस्तनकलशरक्षिणो मदनभुजगस्य निर्मोकपट्टिकामिव
हारलतामुरसि कलयन्ती...........।

चम्पूरामायण में भी लंका में रावण के स्नानागार के स्तम्भ के सिरों को स्फटिकशिला से निर्मित शालभंजिका से सुशोभित बताया है[95]—

तत्रत्यविचित्रतरशातकुम्भस्तम्भाग्रप्रयुप्त-
स्फटिकशिलाशालभंजिकापुंज........... ।

बाणभट्ट की कादम्बरी में चन्द्रापीड़ सोलहवर्ष की अवस्था में सर्वविद्या में अधीत हो जाता है[96]—

अयमत्रभवतो दशमो वत्सरः विद्यागृहमधिवसतः
प्रविष्टोऽसि षष्ठमनुभवन् वर्षम्, एवं सम्पिण्डितेनाधुना
षोडशेन प्रवर्द्धसे ।

शृंगारमंजरीकथा में रविदत्त भी सोलह वर्ष की अवस्था में सर्वविद्याविशारद हो गया था ।[97]

क्रमेण चायमुपनीतो विधिवदधीतसकलवेदवेदांगोऽधिगतसकलशास्त्रः
षोडशवर्षदेशीयः संवृत्तः ।

कादम्बरी में यौवन से उत्पन्न तम को अत्यन्त गहन बताया है[98] —

अतिगहनं तमो यौवनप्रभवम् ।

यही बात शृंगारमंजरीकथा में भी कही गयी है[99]—

यौवनं नामातिगहनमन्धं तमः ।

दण्डी ने अपने काव्यादर्श में भी यही भाव व्यक्त किया है[100]—

अरत्नलोकसंहार्यमवार्यं सूर्यरश्मिभिः ।
दृष्टिरोधकरं यूनां यौवनप्रभवं तमः ॥

शृंगारमंजरीकथा में कुट्टनी कहती है[101]—

पुत्र प्रविश्यताम् ।"""""धन्याहं यस्यास्त्वमेवंविधो जामाता ।

कुट्टनीमत में भी यही भाव व्यक्त किया गया है[102]—

दुहितर एव श्लाघ्याः धिग्लोकं पुत्रजन्मसन्तुष्टम् ।
जामातार आप्यन्ते भवादृशा यदभिसम्बन्धात् ॥

आकाश में गरजते बादलों को सिंह सह नहीं पाते, इस भावना को ऋग्वेद[103] में व्यक्त किया गया है—

दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते
यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ।

रावणवध का रचयिता भट्टि[104] इसे कल्पना का मनोरम परिवेश प्रदान करता है।

गर्जन् हरिः साम्भसि शैलकुञ्जे
प्रतिध्वनीनात्म-कृतान् निशम्य ।
क्रमं बबन्ध क्रमितुं सकोपः
प्रतर्कयन्नन्यमृगेन्द्रनादान् ॥

रामायणचम्पू में इसी कल्पना की एक अन्य छटा का संकेत प्राप्त होता है[105]—

इत्थं मत्वैव वैरं झटिति घनघटा राघवस्याहवोत्था-
माशामाशाश्च रुद्ध्वा स्तनितमिषमहासिंहनादान्वितेनुः ।

तथा चाणक्यराजनीतिशास्त्र में इसी भाव को सुभाषित का स्वरूप प्रदान कर दिया गया[106]—

न सदश्वाः कशाघातं न सिंहा घनगर्जितम् ।
परैरङ्गुलिनिर्दिष्टं न सहन्ते मनस्विनः ॥

चम्पूरामायण में[107] दशरथ अपने पूर्वपुरुषों की विवृत्ति परिकर अलंकार के माध्यम से व्यक्त करते हैं—

विदितमेव हिमवतां शिवतातिमेव मतिं दधानाः
सुपथा संचरमाणाः प्राणिनां दयमानमानसा मानधनाः यशःसंमार्जन-
जागरूकाः जनोपतापसंमार्जनतत्पराः परां निवृत्तिमुपेत्य देवभूयं गताः
सर्वे नः पूर्वपुरुषा इति ।

जिसके मूल में भारवि की यह अभिव्यक्ति [108] प्रतीत होती है—

महौजसो मानधना धनार्चिता
धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः ।
न संहतास्तस्य न भिन्नवृत्तयः ।
प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम् ।

चम्पूरामायण का यह श्लोक[109]—

सीता पुरा गगनचारिभिरप्यदृष्टा
मा भूदियं सकलमानवनेत्रपात्रम् ।

इत्याकलय्य नियतं पितृवे विधाता
बाष्पोदयेन नयनानि शरीरभाजाम् ॥

वें० वरदाचार्य के अनुसार[110] कुमारदास के जानकीहरण से प्रभावित हैं।

रामायणचम्पू के श्लोकों की रचनाप्रक्रिया माघ की शैली से कई स्थलों पर समान प्रतीत होती है। शब्दचयन तथा श्लोकों में उनका गठन बहुत कुछ माघ जैसा ही है। गंगावतरण[111] के ये श्लोक—

अथ वीचीचयच्छन्नदिगन्तगगनान्तरा ।
शशाङ्कशङ्खसम्भिन्नतारामौक्तिकदन्तुरा ॥
तरङ्गाकृष्टमार्तण्डतुरंगायासितारुणा ।
फेनच्छन्नस्वमातङ्गमार्गणव्यग्रवासवा ॥
अद्भिः शाखाशिखोन्नेयनन्दनद्रुमकर्षणा ।
एकोदकनभोनागदिङ्मूढादिवसेश्वरा ॥

शिशुपालवध के इन श्लोकों की रचना क्रम से अधिक भिन्न प्रतीत नहीं होते[112]—

ततः सपत्नापनयस्मरणानुशयस्फुरा ।
ओष्ठेन रामो रामौष्ठबिम्बचुम्बनचञ्चुना ॥
दधत्सन्ध्यारुणव्योमस्फुरत्तारानुकारिणीः ।
द्विषद्द्वेषोपरक्ताङ्गसङ्गिनीः स्वेदविप्रुषः ॥
ककुद्मिकन्यावक्त्रान्तर्वासलब्धाधिवासया ।
मुखामोदं मदिरया कृतानुव्याधमुद्वमन् ॥

भोज के गद्य का आदर्श बाणभट्ट का गद्य रहा। श्लेषबन्ध से उपमा की सृष्टि कर सहृदयों को आकर्षित करने का जो क्रम बाणभट्ट की कृतियों में है[113]—

'चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाणशङ्खचक्रलांछनः, हर इव जितमन्मथः, गुह इव अप्रतिहतशक्तिः, कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डलः'

वही स्थिति चम्पूरामायण के गद्य में भी पायी जा सकती है[114]—

'पद्यप्रबन्धमिव दर्शित सर्गभेदम्, प्राकृतव्याकरणमिव प्रकटित-वर्णव्यत्यासम्, बुधमिव सोमसुतम्'

यही स्थिति भोजकृत शृंगारमंजरीकथा के गद्य की भी है[115]—

हरिश्चन्द्रकथेव प्रथितचारुलोचना, किष्किन्धगुहेव सुग्रीवोद्भासिता,
रामायणकथेव प्रख्यातसुबाहुप्रहस्ता, प्रावृडिव घनस्तननाभिरम्या,
छन्दःस्थितिरिवोज्ज्वलतनुमध्या, प्रजापतिरिव सदा समजघना,
क्रौञ्चगिरिरन्ध्रपद्धतिरिव परिचितराजहंसगतिः कुरुपाण्डवद्यूतवेलेव
प्रवृत्तोद्दन्द्वा शृंगारमंजरीगद्यप्रवृत्तिरिव सुललितपदा ।

बाण ने विन्ध्याटवी की भीषणता का वर्णन 30 पंक्तियों में किया है[116] तथा भोज ने अतिरमणीयभीषण विन्ध्याटवी तथा उसके ग्रीष्म का वर्णन 145 पंक्तियों के एक वाक्य में किया है।[117] प्रतीत होता है वर्णन-पटुता की स्पर्धा में बाण को भोज पीछे छोड़ देना चाहता हो।

शृंगारमंजरीकथा में धारा नगरी[118] का वर्णन धनपाल की तिलकमंजरी की रूपरेखा पर अयोध्यावर्णन ही सम्भवतः विकास पा सका है। धनपाल भोज का समकालीन ही था। इसी प्रकार भोज के समकालीन पद्मगुप्त परिमल के महाकाव्य 'नवसाहसांकचरित' की[119] गुणाढ्यरचित बृहत्कथा नव कल्पना का प्रभाव शृंगारमंजरी[120] के इस वाक्य में—

देवोऽप्यखिलजनताबन्धुः श्रीमासौ गुणाढ्यः प्रशस्तगीर्वाणिः।

पाया जा सकता है।

शृंगारमंजरीकथा में विविध कथानिकाओं का संग्रह है। इस संग्रह के प्रारम्भ में, इसे प्रस्तुत करने की लघुभूमिका, धारावर्णन, राजा भोज का वर्णन, शृंगारमंजरीकथा तथा उसकी माता का वर्णन है। शृंगारमंजरी को उसकी माता विभ्रमशीला की शिक्षा के उपरान्त द्वादश रागों के उदाहरण रूप में तेरह कथानिकाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। स्पष्ट है इस ग्रन्थ का कलेवर किसी एक कथानक का वहन नहीं करता। शृंगारमंजरी तथा विभ्रमशीला का श्रोता-वक्ता का एक सूत्र ही इन विविध कथानिकाओं को एकत्व प्रदान करता है। स्पष्ट ही इस प्रकार की कथा का प्रथम ज्ञात स्रोत दण्डी का दशकुमारचरित है। जहाँ अनेक वक्ता अपनी आप-बीती बताते हैं। स्वभावतः कथानक भी विभिन्न हो गये परन्तु श्रोता एक ही है— राजवाहन। इसी श्रोता के कारण ये सारे कथानक, जिनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं, एक सूत्र में बँध जाते हैं। शृंगारमंजरीकथा दण्डी के दशकुमारचरित से मूलतः इस दृष्टि से भिन्न है। यह कथा द्वादशरागों को समझाने के लिए उदाहरण रूप में कल्पित होने से सोद्देश्य रचित है। दशकुमारचरित इस प्रकार के उद्देश्य से अछूता है। वह शुद्ध आनन्द के लिए रचा गया है।

साहित्यशास्त्रीय दृष्टि से भी भोज दण्डी से विशेष प्रभावित है।[121] सभासदों की प्रार्थना पर भोज नयी कथा सुनाना तो स्वीकार कर लेता है परन्तु कथाधारा से सम्बद्ध वहाँ के नरेश का वर्णन करना भी आवश्यक है। वह स्वयं ही वहाँ का नरेश है। ऐसी अवस्था में यह कहाँ तक समुचित है कि उसका वर्णन वह स्वयं करे। भामह ने भी अभिजात वर्ग के लिए यह समुचित नहीं माना कि नायक का वर्णन वह स्वयं करे।[122] सभासद भोज के इस संकोच को दूर कर देते हैं दण्डी के इस कथन को उद्धृत कर कि वस्तुतः गुण हों तथा उन्हें व्यक्त कर दिया जाय तो दोष नहीं।[123]

स्वगुणाविष्क्रियादोषो नात्रभूतार्थशंसिनः।

अपने मत की पुष्टि में वाल्मीकि, व्यास, पराशर, आदि मुनि तथा व्यास, गुणाढ्य, भवभूति, बाण आदि कवियों का नाम परिगणन भी किया गया है। तथापि अभिजात होने से भोज को आत्मप्रशंसा समुचित प्रतीत नहीं हुई और उसने स्वयं का वर्णन धन्यकुब्जक के द्वारा करवाया।

अवनिकूर्मशतम्—पौराणिक अवतार-कल्पना के आधार पर अवनिकूर्म की प्रशस्ति की रचना हुई है। इस कल्पना-ग्रहण के अतिरिक्त और किसी पौराणिक घटना अथवा कल्पना का इसपर प्रभाव नहीं है। इसमें व्यक्त[124]—

जाई देव्वायत्ता चरिअंपुण होई पुरिससाहीणं।

गाथार्ध का भाव वेणीसंहार के इस श्लोकार्ध का भाव पाया जा सकता है[125]—

दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।

शृंगारमंजरीकथा के स्रोतग्रन्थ—

वेश्या तथा वेश्यावृत्ति के उल्लेख भारत में अत्यन्त प्राचीनकाल से प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद,[126] महाभारत,[127] मत्स्यपुराण,[128] मनुस्मृति,[129] याज्ञवल्क्यस्मृति,[130] अंगुत्तरनिकाय,[131] धम्मपद[132] इत्यादि भारतीय प्राचीन साहित्य में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से वेश्या के उल्लेख उपलब्ध होते हैं।

शास्त्रीय कृतियाँ—

कामसिद्धान्त तथा राग-विवृत्ति की दृष्टि से शृंगारमंजरीकथा का विशेष महत्त्व है। इन्हें लोकरंजक रूप से व्यक्त करने के लिए तथा सरलतया बुद्धिग्राह्य बनाने के लिए कथानिकाओं की रचना की गयी है। शृंगारमंजरीकथा में द्वादशरागों की विवृत्ति है। इन रागों का सैद्धान्तिक दृष्टि से शृंगारप्रकाश के 36 वें प्रकाश में विवेचन किया गया है। इनमें से प्रमुख चार राग हैं जिनमें अन्य रागों का समाहार हो जाता है। यथा नीलीराग में रीति तथा अक्षीवराग का, मजिष्ठाराग में कषाय एवं सकलराग का, कुसुम्भराग में लाक्षा तथा कर्दम राग का एवं हरिद्राराग में रोचना तथा काम्पिल्य राग का समाहार हो जाता है। अतः इन चार रागों के उदाहरण के रूप में ही क्रमशः प्रथम चार कथानिकाएँ रची गयीं हैं।

अतः शृंगारमंजरीकथा में प्रतिपादित राग-सम्बद्ध सिद्धान्तों के उपजीव्य के रूप में स्वयं भोज के ही शृंगारप्रकाश को स्वीकार किया जा सकता है।

विषमशीला की शिक्षा में व्यक्त वैशिकरहस्यों में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, वे वात्स्यायन के कामसूत्र के वैशिक (षष्ठ) अधिकरण में प्राप्त होते हैं। विषमशीला की शिक्षा में प्रतिपादित रागेतर सिद्धान्तों को कामसूत्र के सम्बद्ध सूत्रों से एकीकरण का प्रयास डा० कृष्णकान्त चतुर्वेदी ने किया है।[133] उन्होंने कामसूत्र के सूत्रों के प्रकाश में शृंगारमंजरीकथा की कथानिकाओं को देखने का भी प्रयास किया है। शृंगारमंजरीकथा में परोक्ष रूप से कामसूत्र का उल्लेख भी हुआ है[134]—

विचक्षणा कामसूत्रादिविचारेषु।

प्राचीनकाल में कामतन्त्र के प्रमाण के रूप में प्रायः दत्तक के वचनों तथा सिद्धान्तों का ही उपयोग किया गया है। वात्स्यायन को अपेक्षाकृत कम महत्त्व दिया गया है। इसका उल्लेख वात्स्यायन के कामसूत्र,[135] शूद्रक के पद्मप्राभृतक,[136] ईश्वरदत्त के धूर्तविटसंवाद,[137] श्यामिलक के पादताडितक[138] तथा दामोदरगुप्त के कुट्टनीमतम्[139] में हुआ है। पद्मप्राभृतक में दत्तकसूत्रों का उल्लेख है तथा धूर्तविटसंवाद में दत्तक का एक सूत्र उद्धृत किया गया है। भोज ने शृंगारमंजरीकथा में दत्तक के वैशिकरहस्यों को बताने का उल्लेख किया है[140]—

विशेषतः दत्तकादिप्रणीतवैशिकरहस्यानि च ज्ञापितः।

साथ ही वैशिकोपनिषद् का रहस्य भी व्यक्त किया है[141]—

यस्यां च वैशिकोपनिषदि रहस्यमेतद्-यद्
व्याघ्रादिव प्रेम्णः सावधानतया सर्वदेवात्मा रक्षणीयः।

तथैव अन्यत्र भी[142]—

वैशिकोपनिषदि……………प्रावीण्यमगमत्।

एवं

वैशिकरहस्य के समान ही वैशिकोपनिषद् का स्मरण प्रकट करता है कि सम्भवतः ये दोनों एक ही हैं एवं वैशिकोपनिषद् से व्यक्त रहस्य सम्भवतः दत्तकप्रणीत ग्रन्थ का ही कोई सूत्र है। असम्भव नहीं यदि भोज ने दत्तकसूत्रों तथा दत्तक के वैशिक विचारों का भी अपनी इस कृति में उपयोग किया हो। भोज ने शृंगारमंजरीकथा की मूलदेव-कथानिका में वणिक् दत्तक का उल्लेख किया है।[143] तीसरी सदी के पूर्वार्ध के पश्चिमी गंगराजा माधववर्मन् द्वितीय के एक लेख में दत्तक का उल्लेख है।[144]

इन शास्त्रीय कृतियों का शृंगारमंजरीकथा में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपेण आधार ग्रहण किया गया है।

ललितसाहित्य में रचित ग्रन्थ—

ईश्वरदत्तप्रणीत भाण धूर्तविटसंवाद में प्रश्नोत्तर शैली में वेशजीवन से सम्बद्ध कामविषयक तथ्यों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। शृंगारमंजरीकथा के समान यहाँ भी काव्य में कामशास्त्र का निवेश कर दिया गया है। भोज के अनुसार उसे भी हम काव्यशास्त्र प्रकार का भाण कह सकते हैं।[145] यहाँ राग का मूल काम बताया गया है[146]

कामसूलश्च रागः।

ललितकृतियों में कामवृत्ति की सांगोपांग व्याख्या हमें सर्वप्रथम इसी भाण में प्राप्त होती है। बृहस्पति, उशना आदि के आक्षेपों का भी उसमें उत्तर दिया गया है।[147] इसमें भाण की प्रकृति के अनुरूप गद्य तथा पद्य दोनों का उपयोग किया गया है। भोज ने अपने शृंगारप्रकाश में इसका उल्लेख किया है—

> धूर्तविटकुट्टनीमतमयूरमार्जारिकादि यल्लोके।
> कार्याकार्यनिरूपणमिह निदर्शनं तदपि।

असम्भव नहीं यदि शृंगारमंजरीकथा की रचना के काल भोज के अवचेतन में इस भाण की कामविषयक चिन्तनप्रणाली का प्रभाव रहा हो।

कुट्टनीमत—उपर्युक्त श्लोक से ही स्पष्ट है कि भोज दामोदरगुप्त के कुट्टनीमत अथवा शम्भलीमत से सुपरिचित था। वेश्या के उपदेशार्थ विरचित उपलब्ध कृतियों में यह सर्वप्राचीन तथा प्रतिष्ठाप्राप्त है। यह सम्पूर्ण कृति छन्दोबद्ध है जिसमें पंचतंत्र शैली में उदाहरण रूप में कथाएँ कही गयी है। क्षेमेन्द्र की समयमातृका भी इसी प्रकार की पद्य में विरचित कृति है। परन्तु यह 1050 ई० में रची गयी है।[148] पूर्व पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि शृंगारमंजरीकथा इस काल से बहुत पहिले ही रची जा चुकी थी। इस काल भोज के शासन का लगभग अन्तिम काल आ गया था क्योंकि 1055 ई० के पूर्व तो उसका अवसान निश्चित ही हो चुका था। समयमातृका में क्षेमेन्द्र ने भोज का उल्लेख किया है।[149] अतः एक ही काल के इन उभय विद्वानों ने वेशजीवन से सम्बद्ध ग्रन्थ रचे परन्तु वे प्रकृति तथा स्वरूप की दृष्टि से एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। क्षेमेन्द्र की समयमातृका प्रकृति में कुट्टनीमत के समान है। उनके 'कलाविलास' में व्यक्त[150] कथा शृंगारमंजरीकथा की छठी तथा तेरहवीं कथानिका से कुछ समता रखती है परन्तु क्षेमेन्द्र का काल 1028 ई० से पूर्व होने का कोई प्रमाण नहीं है[151] तथा न इस काल से पूर्व क्षेमेन्द्र के किसी ग्रन्थ-रचना का प्रमाण ही सुलभ है। असम्भव नहीं यदि इन एक-सी कथाओं का मूल स्रोत कोई अन्य ही ग्रन्थ रहा हो।

कुट्टनीमत में उपलब्ध हारलता की कथा में सुदर्शन के वियोग में हारलता अपने प्राण त्याग देती है। वेश्याओं का अपने प्रिय के प्रति यह अटूट प्रेम शृंगारमंजरीकथा की अशोकवती

(दसवी कथानिका) तथा लावण्यसुन्दरी (आठवीं कथानिका) नायिकाओं में प्रदर्शित किया गया है। ऐसी नायिकाओं मे मृच्छकटिक की वसन्तसेना,[152] दशकुमारचरित की रागमंजरी[153] तथा वसुदेवहिण्डि की वसन्तसेना[154] स्मरणीय वेश्याएँ है।

शृंगारमंजरीकथा में मुख्यतया तीन प्रकार के वेशवनिताएँ दृष्टिगत होती हैं। प्रथम प्रकार की वे वेश्याएँ हैं जो श्रीमानों को आकर्षित कर उनसे धन दूहकर उन्हें अपने घर से निकाल देती है। दूसरी वे वेश्याएँ, जो स्वयं ही दण्डित हो जाती हैं तथा तीसरी वे, जो अपने प्रेमी से वस्तुतः प्रेम करती हैं। उपर्युक्त अशोकवती तथा लावण्यवती तृतीय प्रकार की हैं।

पहली तथा पाँचवी कथानिका प्रथम प्रकार का वैशिष्ट्य व्यक्त करती हैं। कुमारपाल-प्रतिबोध की कामलता-कथा में भी अशोक का धन प्राप्त करने के लिए कामलता कपटमृत्यु का अभिनय करती है। अशोक से धन प्राप्त कर उसे निकाल बाहर कर देती है।[155] कथासरित्सागर की सुन्दरीकथा में भी लगभग ऐसी ही कथा है।[156] इस प्रकार कपटमृत्यु धनिक को रोककर तथा उससे धन हड़प कर रीता कर निकाल बाहर करने में सहायिका व्यक्त की गयी है।

द्वितीय प्रकार की विवृत्ति भी शृंगारमजरीकथा में प्राप्त होती है। कथासरित्सागर की इसी कथा में नायक ईश्वरवर्मन् वानर के मुख से धन प्राप्त होने के छल से सुन्दरी का सारा धन हड़प लेता है। शृंगारमंजरीकथा की सातवीं कथा में भी ऐसी ही कथा है जहाँ प्रथम तो कुट्टनी सोमदत्त से छल करके वित्तप्रदा कपोतिका ले लेती है परन्तु बाद में सोमदत्त धन प्राप्त करने की मिथ्या सिद्धि के बदले कपोतिका तथा उसका पूर्व अर्जित सारा धन ले लेता है।

छठी कथानिका की लावण्यसुन्दरी तथा तेरहवीं कथानिका की चेल्लमहादेवी वेश्या न होकर कुलस्त्रियाँ हैं। लावण्यसुन्दरी अपने पति को राजा के पंजे से छुड़ाने के लिए अल्पकालीन वेश्याजीवन व्यतीत करती है। परन्तु चेल्लमहादेवी रानी है जो नीचकुलोत्पन्न महावत से प्रेम करती है जिसे अन्त में दण्डित किया जाता है।

कथासरित्सागर[157] की एक कथा में विक्रमसिंह का एक गणिका कुमुदिका से प्रेम रहता है। अमात्य अनंगतुंग राजा को सचेत करता है परन्तु राजा कुमुदिका की परीक्षा लेने के लिए कपटमृत्यु का अभिनय करता है। श्मशान में चिता पर कुमुदिका भी उसके साथ ही जल जाना चाहती है। राजा को विश्वास हो जाता है परन्तु अमात्य को नहीं होता। विजय के उपलक्ष्य में राजा उससे वर माँगने का आग्रह करता है। कुमुदिका उज्जयिनी के अपने प्रेमी की रक्षा चाहती है। क्षेमेन्द्र के कलाविलास में भी यही कथा प्रस्तुत की गयी है।[158] शृंगारमंजरीकथा में इस कथा को अधिक स्वाभाविकता प्रदान कर दी गयी है।

छठी कथानिका की लावण्यसुन्दरी तैलिक की पत्नी है। वह अपने पति को बचाने के लिए उज्जैन के राजा विक्रमादित्य के यहाँ वेश्याचार करती है। भट्ट मातृगुप्त की आशंका पर वह स्वयं आत्महत्या भी कर लेती है। आशापुरा के आशीर्वाद से बच जाती है। राजा के आग्रह पर वह एक सौ हाथी चाहती है जिनसे वह अपने पति को छुड़ा लेती है। भोज ने यहाँ कथानक में अधिक स्वाभाविकता तथा औचित्य ला दिया है। राजा का मरकर श्मशान घाट तक पहुँचने की अपेक्षा नायिका की मृत्यु बताना अधिक समुचित है।

कथासरित्सागर[159] में एक विवाहिता का एक हीनकुलोत्पन्न कुरूप व्यक्ति से प्रेम का विवरण है। दशकुमारचरित में भी इसी प्रकार का प्रसंग है।[160] सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू[161] में भी ऐसा ही कथानक प्राप्त होता है। यशोधर रानी अमृतगति को एक रात छिपकर रूपहीन महावत

से मिलने जाती है जिसका राजा ने पीछा किया। रानी के विलम्ब से पहुँचने पर महावत ने क्रोधित होकर उसे पीटा भी। अन्ततः रानी ने राजा का वध कर दिया। लगभग ऐसी ही कथा हेमचन्द्र ने अपने परिशिष्टपर्व में भी दी है।[162] जिसके अन्त में प्रदत्त श्लोक[163]—

अहो असूर्यंपश्यानामपि यद्राजयोषिताम्।
शीलभंगो भवत्येवमन्यनारीषु का कथा॥

शृंगारमंजरीकथा की इस अभिव्यक्ति से अधिक दूर नहीं है[164]—

कुलस्त्रियोपि दृष्टिमात्ररागिण्यः परपुरुषेष्वेवं जीवितवित्तादिनिरपेक्षा व्याहरन्ति किं पुनः स्वतन्त्राः वेशवनिताः।

प्राकृत में इसी कथा के कई रूपान्तर प्राप्त होते हैं।[165] हेमचन्द्र भोज से परवर्ती थे।

भोज की शृंगारमंजरीकथा, बाणभट्ट की कादम्बरी से प्रभूत प्रभावित है। पूर्व के एक उदाहरण से भोज की गद्य-शैली तथा बाण की गद्य-शैली की समानता व्यक्त की जा चुकी है।

भोज की लघु कथानिकाओं में भी कथा के समान ही वर्णन की विपुलता प्राप्त होती है। नगर, ऋतु, सन्ध्या, प्रातः आदि के वर्णन के साथ ही अन्य अनेक वस्तुओं, स्थानों तथा व्यक्तित्वों का वर्णन वहाँ सुलभ है। कादम्बरी[166] के समान ही शृंगारमंजरीकथा[167] में भी विन्ध्याटवी-वर्णन है। कादम्बरी की अपेक्षा इस वर्णन में अधिक व्यापकता है। यद्यपि वन की निविड़ता, भयंकरता तथा वन्य पशुओं के वर्णन में अधिक भेद नहीं है। कादम्बरी में शबरसेना तथा शबरसेनापति का अलग से वर्णन है।[168] भोज ने विन्ध्याटवी के वर्णन में ही शबरसेनापति का व्यक्तित्व भी प्रस्तुत कर दिया है।[169] कादम्बरी में इन्द्रायुध[170] नामक दिव्य अश्व का वर्णन प्राप्त होता है तथा शृंगारमंजरीकथा[171] में भी दिव्य अश्व का वर्णन प्राप्त होता है। अश्वशास्त्र की दृष्टि से इन दोनों स्थानों पर वर्णित अश्व श्रेष्ठ हैं। कादम्बरी के उज्जयिनी-वर्णन[172] तथा शृंगारमंजरीकथा के धारावर्णन[173] में भी समानता पायी जा सकती है।

कालिदास ने ऋतुसंहार में दावानल तथा उससे त्रस्त पशुओं का वर्णन किया है।[174] शृंगारमंजरीकथा में दावानल से त्रस्त वानर, हस्तीयूथ आदि का वर्णन स्वाभाविक बन पड़ा है।[175] भोज ने ग्रीष्म का वन[176] तथा नगर[177] में भिन्न-भिन्न प्रभाव तथा उससे बचने के उपाय व्यक्त किये हैं, जिनके मूल बीज ऋतुसंहार में पाये जा सकते हैं।

शृंगारमंजरी का वर्षावर्णन खण्डित है।[178] पथिकों के कामोद्दीपन के रूप में वहाँ इस ऋतु का विस्तार से वर्णन प्रस्तुत किया गया है। खण्डित होने से यह कहना कठिन है कि शृंगारमंजरी का वर्णन वाल्मीकि-रामायण तथा ऋतुसंहार के वर्षावर्णन से कहाँ तक समानता रखता है। शरद्वर्णन[179] संक्षिप्त होने पर भी ऋतुसंहार के सम्बद्ध प्रसंगों को नूतन परिवेश में प्रस्तुत करता है। शिशिर[180] में वर्णन ऋतुसंहार के शिशिरवर्णन को आत्मसात् करने के साथ ही अन्य कई नूतन कल्पनाओं से मण्डित है। शृंगारमंजरीकथा में दो स्थानों पर वसन्तवर्णन है।[181] इसमें भी ऋतुसंहार का प्रभाव पाया जा सकता है। इस प्रकार शृंगारमंजरीकथा पर ऋतुसंहार का व्यापक प्रभाव है। साथ ही अन्यान्य कृतियों से भी स्थान-स्थान पर प्रभावित है। शैली की दृष्टि से कादम्बरी का प्रभाव भी कम नहीं है।

शृंगारमंजरीकथा की कतिपय कथानिकाएँ कथासरित्सागर से समता रखती हैं। उनकी समता वस्तुतः इसकी मूल कृति गुणाढ्य की बृहत्कथा से रही होगी, जो आज असुलभ है। परन्तु भोज के काल में वह सुलभ थी। शृंगारमंजरीकथा में भोज ने गुणाढ्य का दो बार स्मरण किया है[182] तथा अपने शृंगारप्रकाश में बृहत्कथा से मूल पैशाची उद्धरण भी उद्धृत किये हैं।[183]

वस्तु की दृष्टि से उपर्युक्त ग्रन्थों की शृंगारमंजरीकथा के स्रोत के रूप में केवल सम्भावना ही की जा सकती है। निर्णयात्मक रूप से कुछ कह पाना असम्भव है। यह भी स्पष्ट है कि भोज की इस कृति का मूल कोई एक ग्रन्थ नहीं है। विविध कथानिकाएँ तथा विविध सिद्धान्तों के स्रोत भी अनेक रहे हों तो आश्चर्य नहीं। पुनः भोज ने मूल स्रोतों का यथावत् उपयोग नहीं किया अपितु आवश्यकतानुसार, तथा औचित्य की दृष्टि से उनमें परिवर्तन कर उन्हें स्वीकार किया है।

पुनः कथानिकाओं की मूल कल्पना अन्य से गृहीत होने पर भी भोज के उन्हें व्यक्त करने के वैशिष्ट्य ने उन्हें असाधारण बना दिया है। कवि का वैशिष्ट्य उसके प्रस्तुतीकरण में देखा जाता है। उसकी वस्तु की वर्णन-प्रणाली, कहानी का विकास, चरित्र-चित्रण, वर्णन, भाषा आदि में उसकी महत्ता निहित रहती है। इस दृष्टि से शृंगारमंजरीकथा अपने पूर्ववर्ती सारी कथाओं से विशिष्ट है।

कवि का महत्त्व नवीन वस्तु के शोध में नहीं है परन्तु धारावाही संस्कारों को नवीन भूमिका प्रदान करने में है। वस्तुतः कवि की प्रतिभा का संस्पर्श पाकर पुरातन भाव भी नूतन आभा से चमक उठते हैं। एक ही भाव को जितनी प्रतिभाओं का संस्पर्श प्राप्त होगा उसके उतने ही रूप होंगे, और प्रत्येक एक दूसरे से भिन्न तथा नूतन। भोज की शृंगारमंजरीकथा की पृष्ठभूमि पुरातन है, परन्तु प्रस्तुतीकरण की नवीनता तथा अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य ने उसे सम्पूर्ण सस्कृत कथासाहित्य में विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान कर दिया।

इस प्रकार भोज की साहित्यिक कृतियाँ अपने से पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य में सुलभ प्रायः सभी विशेषताओं को एकत्र प्रस्तुत करने में लीन रही। पूर्वसूरियों तथा उनकी कृतियों का प्रभाव न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र पाया जा सकता है।

सन्दर्भ

1. काव्यादर्श, 1/31
2. भङ्गश्लेषकथाबन्धं दुष्करं कुर्वता मया ।–नलचम्पू 1/22
3. वही, 1/24
4. वही, 1/25
5. वासवदत्ता, पृ० 203 से 206 तथा यशस्तिलकचम्पू आश्वासक 2, पृ० 349 से 352
6. छविनाथ त्रिपाठी, चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक तथा ऐतिहासिक अध्ययन, पृ० 333 तथा 343
7. रामायणचम्पू, बालकाण्ड, 4
8. च० रा०, बालकाण्ड, 5
9. वही, बालकाण्ड, 30, नाममालिका में भी वाल्मीकि को कवि कहा गया है—
   प्राचेतसस्तु वाल्मीकिर्वल्मीकश्च कुशी कविः । –पंक्ति 405
10. वही, पृ० 10
11. वही, बालकाण्ड, 8
12. वा० रा०, बालकाण्ड, 2/15
13. च० रा०, बालकाण्ड, 6
14. वही, पृ० 345
15. वा० रा०, सुन्दरकाण्ड, 53/27
16. रघुवंश, 15/61 तथा मल्लिनाथ की टीका 'कवि-वाक्यमेतत्'
17. रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा से प्रकाशित रामायणचम्पू की भूमिका, पृ० 12
18. च० रा०, आरण्यकाण्ड, 41
19. वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 3/2/8
20. उमेशचन्द्र रस्तोगी, संस्कृत साहित्य में मौलिकता एवं अनुहरण, 1965, चौखम्बा, पृ० 195
21. ध्वन्यालोक, 4/9–10
22. उमेशचन्द्र रस्तोगी, पूर्ववत्, पृ० 196
23. च० रा०, अरण्यकाण्ड, 1
24. च० रा०, अरण्यकाण्ड, 18
25. द्रष्टव्य, इसी परिच्छेद का उत्तरभाग
26. रामायणचम्पू, पृ० 186 तथा 196
27. रामायण, बालकाण्ड, 4/35
28. च० रा०, बालकाण्ड, 9
29. दण्डी, काव्यादर्श, 1/102
30. विश्वेश्वरानन्द भारतभारती ग्रन्थमाला, 28, अध्याय 4, श्लोक 16
31. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 52/25

32. च० रा०, पृ० 202–203
33. काव्यमीमांसा, अध्याय 12
34. रामायण, अरण्यकाण्ड, 16/26
35. रामायण, अरण्यकाण्ड, 16/5
36. ऋतुसंहार, 4/2–4
37. अभिज्ञानशाकुन्तल, 1/3
38. ऋतुसंहार, 4/5
39. शृं० क०, पृ० 67
40. वही, पृ० 68
41. वही, पृ० 68
42. यास्क, निरुक्त, द्वितीय अध्याय।
43. रघुवंश, 1/2, 3, 4
44. च० रा०, बालकाण्ड, 4
45. विश्वेश्वरानन्द भारतभारती ग्रन्थमाला, 28, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 79
46. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 42
47. रघुवंश, 2/2
48. वही, 2/6
49. च० रा०, बालकाण्ड, 108
50. अभिज्ञानशाकुन्तल 5/15
51. वही, 5/28
52. रघुवंश, 16/8
53. ऐहोले शिलालेख एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 4, पृ० 1 से 12, श्लोक 9
54. च० रा०, पृ० 314
55. वही, सुन्दरकाण्ड, 50
56. रघुवंश, 8/67
57. च० रा०, किष्किन्धा-काण्ड 4
58. वही, बालकाण्ड, 9
59. रामायण, बालकाण्ड, 4/5
60. वही, पृ० 4/35
61. रघुवंश, 15/65
62. रामायण, बालकाण्ड, 48/29–32
63. च० रा०, बालकाण्ड, 90–91
64. रघुवंश, 11/34
65. च० रा०, बालकाण्ड, 94
66. च० रा०, बालकाण्ड, 23 तथा उसकी साहित्यमंजूषा टीका
67. कुमारसम्भव, 1/18

68. चारुचर्या, केतकी-कुसुमवर्णन
69. श्रृंगारमंजरीकथा, पृ० 60
70. कुमारसम्भव, 1/12
71. श्रृं० क०, पृ० 4
72. कुमारसम्भव, 5/45
73. श्रृं० क०, पृ० 5
74. कुमारसम्भव, 5/1
75. श्रृं० क०, पृ० 68
76. राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति, 2/12
77. विक्रमोर्वशीय, पृ० 228, सम्पादक, तारिणीश झा, रामनारायणलाल बेनीमाधव, -इलाहाबाद, 2, प्रथम संस्करण
78. श्रृं० क०, पृ० 5
79. विक्रमोर्वशीय, 1/10
80. श्रृं० क०, पृ० 76-77
81. वही, पृ० 70
82. भास, स्वप्नवासवदत्तम्, 5/9, पी० पी० शर्मा द्वारा सम्पादित, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, 1956
83. अभिज्ञानशाकुन्तल, 6/10
84. रघुवंश, 8/87
85. शृं० क०, पृ० 53
86. वही, पृ० 52
87. रघुवंश, 2/12
88. कुमारसम्भव, 1/8
89. पूर्वमेघ, 56
90. अष्टादशद्वीपनिखातयूपः । रघुवंश, 6/38
91. नवद्वयद्वीप........। नैषधमहाकाव्य, 1/5
92. शृं० क०, पृ० 46
93. रघुवंश, 16/17
94. शृं० क०, पृ० क्रमशः 4 तथा 5
95. च० रा०, पृ० 24
96. बाणभट्ट, कादम्बरी, पृ० 237
97. शृंगारमंजरीकथा, पृ० 19
98. कादम्बरी, पृ० 313
99. शृं० क०, पृ० 19
100. काव्यादर्श, 2/197
101. शृं० क०, पृ० 63

102. दामोदरगुप्त, कुट्टनीमत, 146
103. ऋग्वेद, 5/83/3
104. भट्टिकाव्य 2/9
105. च० रा०, किष्किन्धाकाण्ड, 24
106. च० रा० शा०, 3/14
107. च० रा०, पृ० 99
108. किरातार्जुनीयम्, 1/19
109. च० रा०, अयोध्याकाण्ड, 33
110. संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी), 1962, पृ० 182
111. च० रा०, बालकाण्ड, 78,79,80
112. माघ, शिशुपालवध, क्रमशः 2/14/18,20
113. कादम्बरी, शूद्रकवर्णन, पृ० 10–11
114. च० रा०, पृ० 39
115. शृं० क०, पृ० 13
116. कादम्बरी, पृ० 55 से 61
117. शृं० क०, पृ० 48 से 53
118. वही, पृ० 2 से 7
119. नवसाहसांकचरित, 7/64
120. शृं० क०, पृ० 1
121. पा० वा०, कारणे, हिस्ट्री आफ संस्कृत पोयेटिक्स, 1961, पृ० 257–258
122. काव्यालंकार, 1/29
123. काव्यादर्श, 1/24
124. अवनिकूर्मशतम्, 20
125. वेणीसंहार, 3/37
126. ऋग्वेद, 1/66/4, 1/117/18, 1/134/3
127. महाभारत 2/61/8, उद्योगपर्व 30/38, 86, 15, 151, 58
128. मत्स्यपुराण, 227/114
129. मनुस्मृति, 4/209, 219, 8/362
130. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1/81, 2/48, 2/290–92
131. अंगुत्तरनिकाय 3, पृ० 208
132. धम्मपद 4, पृ० 197
133. विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा 1970 ई० में आयोजित भोजसेमिनार में पठित शोधप्रबन्ध —कामसूत्र का वैशिक अधिकरण एवं शृंगारमंजरी
134. शृं० क०, पृ० 12
135. कामसूत्र,1/1/10, 11 तथा 6/2/74
136. शृंगारहाट, पद्मप्राभृतकम्, 24 (दत्तकसूत्रे व्विवोकारः)

137. शृंगारहाट, धूर्तविटसंवाद, 58, पृ० 107 (दत्तकेनाप्युक्तं कामोर्थनाशः पुंसामिति।)
138. अपुमान् शब्दकामः इति दात्तकीयाः। पादताडितकम्, 78
139. कुट्टनीमत, 77 (दत्तकाचार्यान्)
140. शृं० क०, पृ० 19
141. वही, पृ० 19
142. वही, पृ० 33 तथा 56
143. वही, पृ० 86–88
144. एपिग्राफिया कर्नाटिका, 9, पृ० 7 तथा
डा० राघवन्, शृंगारमंजरी आफ सेंट अकबरशाह, पृ० 35, हैदराबाद, 1951 एवं
चतुर्भाणी, भूमिका, पृ० 12
145. यथार्थशशास्त्राणां काव्ये विनिवेश्यते महाकविभिः।
तद्भट्टिकाव्यमुद्राराक्षसवत्काव्यशास्त्रं स्यात्॥–शृं० प्र०, पृ० 470
146. धूर्तविटसंवाद, 62
147. वही, पृ० 64
148. वही, पृ० 469

संवत्सरे पंचविंशे पौषशुक्लादिवासरे।
श्रीमतां भूतिरक्षार्थं रचितोयं स्मितोत्सवः॥

समयमातृका, अन्तिम श्लोक, स्थानीय संवत् 25 को सन् में बदलने से 1050 ई० होता है।
149. यामर्थयते दूतैर्दक्षिणदिग्वल्लभो भोजः। समयमातृका, 8/22
150. कलाविलास, 4/15–38 श्लोक, काव्यमाला 1, 34
151. बलदेव उपाध्याय, सं० सा० का इतिहास, पृ० 274, अष्टम संस्करण
वाचस्पति गेरोला, वही, पृ० 860
152. शूद्रक, मृच्छकटिक
153. दण्डी, दशकुमारचरित, द्वितीय उच्छ्वास
154. शृं० क०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 33 तथा संघदासगणिवाचक, वसुदेवाहिण्डि, पृ० 28 (भावनगर, 1930–31)
155. सोमेश्वरसूरि, कुमारपालप्रतिबोध, पृ० 82–92
156. सोमदेव, कथासरित्सागर, 10/1
157. वही, पृ० 10/2
158. क्षेमेन्द्र, कलाविलास, 4/15–38, पृ० 57–59
159. कथासरित्सागर, 10/9
160. दण्डी, दशकुमारचरित, चतुर्थ उच्छ्वास
161. सोमदेव, यशस्तिलकचम्पू, तृतीय उच्छ्वास
162. हेमचन्द्र, परिशिष्टपर्व, बिब्लियोथेका इण्डिका, 96, 1932 ई०
163. वही, श्लोक 561, पृ० 96
164. शृं० क०, पृ० 88

165. के० के० हिण्डिक्वि, यशस्तिलकचम्पू एण्ड इण्डियन कल्चर, तृतीय अध्याय, पृ० 42 तथा 48
166. कादम्बरी, पृ० 55–61
167. शृं० क०, पृ० 48–53
168. कादम्बरी, पृ० 87–100
169. शृं० क०, पृ० 52
170. कादम्बरी, पृ० 238–243
171. शृं० क०, पृ० 37–39
172. कादम्बरी, पृ० 153–167
173. शृं० क०, पृ० 2–7
174. ऋतुसंहार, 1/24–27
175. शृं० क०, पृ० 50–51
176. वही, पृ० 48–53
177. वही, पृ० 85–86
178. वही, पृ० 27
179. वही, पृ० 29
180. वही, पृ० 67–68
181. वही, पृ० 20–22 तथा 73–76
182. वही, पृ० 1
183. डा० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 850

नवम उच्छ्वास

भोज की साहित्यिक कृतियों से उन्मीलित भोज का व्यक्तित्व तथा कृतित्व

एवं

भोज का युग

भोज विपुल ज्ञान का आधार रहा। उसके अपने अमित ज्ञान का प्रस्तुतीकरण उसकी प्रत्येक कृति में प्रायः पद-पद पर होता रहा है। विभिन्न स्रोतों से ज्ञात होता है कि भोज न केवल वीर अपितु एक सफल विजेता, कुशल शासक, महान् दानी, विद्वानों का आश्रयदाता, ज्ञान का आराधक तथा धर्म के प्रति सहिष्णु था। वह राजनीति का वेत्ता तथा उसका सफल प्रयोक्ता भी था। भोज की साहित्यिक कृतियों के प्रकाश में उसके व्यक्तित्व तथा कृतित्व का उन्मीलन एवं तद्युगीन समाज का यथासम्भव विवरण प्रस्तुत करने का इस उच्छ्वास में अभ्यास किया जाएगा।

भोज का व्यक्तित्व तथा कृतित्व—

भोज का शारीरिक सौष्ठव—

'भोज' शब्द की निरुक्ति मिहिरभोज की ग्वालियर-प्रशस्ति में प्राप्त होती है[1]—

आक्रम्य भूभृतां भोक्ता यः प्रभुर्भोज इत्यभात्।

भूभृतों (राजाओं अथवा पर्वतों) पर आक्रमण कर जिसने उनके राज्य तथा उनकी सेवा का उपभोग किया वह प्रभु या स्वामी 'भोज' कहलाया। शृंगारमंजरीकथा में भोज ने स्वयं के व्यक्तित्व का विशेष परिचय दिया है। उस अलंकृत विवृति में भोज की कई विशेषताओं की यथार्थता अन्य स्रोतों से भी पुष्ट होती है।

शृंगारमंजरीकथा का यह भाग खण्डित उपलब्ध होने से भोज से सम्बद्ध पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने से हम वंचित रह गये। कथा के प्रारम्भ का प्रथम पत्र भी उपलब्ध न होने से आवश्यक तथ्य लुप्त हो गये हैं। यही स्थिति कथा के अन्तिम पत्र के खण्डित प्राप्त होने से भी है। इन विविध पत्रों के सुरक्षित प्राप्त होने पर और भी कई विशेष ज्ञातव्य ज्ञात होने की सम्भावना है। उपलब्ध तथ्यों से हमें भोज विषयक यह ज्ञान होता है—

भोज का व्यक्तित्व आकर्षक था। मरकत की कान्ति में सुवर्णप्रभा के सम्मिलित होने से जो वर्ण स्फुटित होता है, भोज के शरीर का वैसा ही आकर्षक वर्ण था।[2] तात्पर्य यह कि भोज गेहुँए वर्ण का था।[3] उसकी भुजाओं में अपरिमित शक्ति थी।[4] भुजबलभीम तथा भीमपराक्रम जैसे उसके विरुदों से भी यही प्रकट होता है। वह आकृति से सुन्दर था।[5] परन्तु वीरता के कारण शत्रुओं को दुर्दर्शन था। वह विलासों की वस्ती था।[6] उसकी कमनीय आकृति पर विलासिनियाँ

सदा मुग्ध होती रहती थीं। धर्म के प्रति विशेष आकर्षण होने से[7] वह अन्य कामिनियों की संगति नहीं करता था। फलतः घर-घर की विलासिनियाँ अपने स्तनों पर कर्पूरमिश्रित चन्दनरस से यह लिखकर भोज को प्रतिदिन उलाहना देती रहती थी[8]—

'निर्दय। स्त्रीवध के पाप से भी नहीं डरता।'

उसकी कमनीय आकृति को देखते ही मानिनियाँ मान त्याग देती थीं।[9] उसे देखते ही कामिनियों में कामभावना जागृत हो जाती थी।[10]

अज्ञातनामा काव्य में भोज की सुन्दर आकृति तथा उस पर अनुरक्त कामिनियों से सम्बद्ध अनेक गाथाएँ रची गयी हैं।[11] भोज सुरुचिसम्पन्न था। ऋतु के अनुरूप वसन, पुष्प, लेपन आदि का वह सेवन करता था जिसका ज्ञान चारुचर्या से होता है।

भोज कान्ति से सुशोभित तथा लक्ष्मी से सम्पन्न होने से श्रीभास थे।[12] विविध पुरुषों में अनुरक्त राजलक्ष्मी को भोज ने एक स्थान पर बांध दिया।[13]

भोज की जीवनचर्या के आदर्श—

भोज की दृष्टि में आदर्श जीवन वही है जो नीति, आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्र का प्रतिदिन अनुसरण करता हो। चारुचर्या में ऐसे जीवन जीने की ही अनुशंसा की गयी है। इन तीनों घटकों का प्रतिदिन सम्यक् आचरण करने से जीवन में चारुचर्या सम्भव है।[14]

भोज ने छोटी-छोटी बातों पर ध्यान दिया था। भोज के अनुसार सज्जनों तथा राजपुत्रों को दैनिक जीवन इस प्रकार व्यतीत करना चाहिए।[15] शौचविधि के अनन्तर दन्तधावन के पश्चात् स्नान करना चाहिए। मलिन, परवस्त्र, स्त्री-वस्त्र, खण्डवस्त्र, जला हुआ तथा मूषकविद्ध वस्त्र नहीं पहनना चाहिए।[16] अपनी वैभवशक्ति के अनुसार आभूषण धारण करना चाहिए। आभूषणों से पवित्रता, सौभाग्य, आयु तथा लक्ष्मी में परिवृद्धि होती है।[17] ऋतु के अनुरूप विविध पुष्पों तथा लेपन का सेवन करना चाहिए।

मानव को सदाचार से पूर्ण होना चाहिए। देव, पितृ आदि की अर्चना के पश्चात् मंगल-दर्शन के अनन्तर ही भोजन करना चाहिए।[18] भोजन के पश्चात् ताम्बूल-सेवन करना चाहिए।[19]

कुरूपिणी, कुशीला, विधवा, परदार, अत्युत्कृष्ट अथवा हीन, पुत्र, मित्र, अनुज, गुरु आदि की स्त्री, दासकन्या, दुबली, कन्या, वय से बड़ी आदि का सेवन नहीं करना चाहिए।[20]

भोज के अनुसार परस्त्री, परनिन्दा, अमित्र-भाषण, स्त्रियों से वार्तालाप, असत्य, परद्रोह, असूया, पतितों का साथ, क्रोध, आत्मस्तुति आदि का त्याग करना चाहिए। भोज के अनुसार प्राणों पर संकट आने पर भी असत्य नहीं बोलना चाहिए। सत्य ही अमृत है, असत्य विष है। धर्मशास्त्र तथा पुराणों का सतत श्रवण तथा आत्माभ्यास करना चाहिए।[21]

मानव को सन्ध्या-उपासना आदि से कुलाचार करना चाहिए। सूर्योपासना से सारे रोग नष्ट हो जाते हैं। दान, तीर्थ तथा उपवास से धर्मसंग्रह करना चाहिए। अपने माता-पिता, बन्धु देवता, भाई तथा गो-ब्राह्मण को सन्तुष्ट करना चाहिए। गुरु तथा उनकी पत्नी की सेवा करनी चाहिए। विद्याभ्यास व सज्जनों का साथ करना चाहिए। दीन, अंध, कृपण (असहाय), तपस्वी आदि को सन्तुष्ट करना चाहिए। इन कर्त्तव्यों को यथाशक्ति साधने का प्रयास करना चाहिए।[22] जो जीवन के सदाचार भोज ने बताये हैं, उसने उन्हें अपने जीवन में भी उतारा होगा। भोज के

अनुसार नीति, आयुर्वेद, एवं धर्म स्वस्थ जीवन के तीन घटक हैं। इन तीनों के समाहार से ही जीवन में चारुचर्या, सुचारु आचरण सम्भव है। एवं चारुचर्या ही दीर्घायुत्व का मूलमन्त्र है।

स्वयं भोज में धर्म, सत्य, कला, क्षत्राचार, विविधविद्या, नीति, शौर्य, विलास, करुणा, विदग्धता, रसिकता, धनुर्धरता इत्यादि विविध गुणों का समाहार था।[23]

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि भोज शिष्ट, शालीन एवं परिष्कृत मनोवृत्ति का आदर्श नरेश था। समाज को भी इन्हीं मनोवृत्तियों का अनुसरण करने के लिए उसने चारुचर्या ग्रन्थ की रचना कर मार्ग-निर्देश किया। इसमे सन्देह नहीं कि सम्राट् अशोक के समान सदाचारों का स्वयं उदाहरण एवं आदर्श बनकर उसने अपनी प्रजा तथा भावी समाज की मनोवृत्ति के परिष्कार का पुण्य कार्य किया। 'यथा राजा तथा प्रजा' एवं 'राजा कालस्य कारणम्' जैसी शाश्वत, सनातन तथा अवितथ उक्तियों की सार्थकता इसी मे थी।

विजय तथा साहित्याभिरुचि की दृष्टि से भोज समुद्रगुप्त के समान कहा जा सकता है, सदाचार एवं परिष्कृत मनोवृत्ति की दृष्टि से उसे सम्राट् अशोक के समान कहा जा सकता है तथा विदेशियों से स्वदेश की रक्षा में प्रवृत्त होने की दृष्टि से उसे शकारि विक्रमादित्य के समान कहा जा सकता है।

इस प्रकार भोज में विविध गुणों का समाहार होने से युग-युगीन आदर्श सम्राटों के गुणों की एकत्र उपलब्धि भोज में सम्भव है। भारतीय आदर्शो का वह प्रतीक था। काल की सुदीर्घ यात्रा में भोज को पाकर भारत ने अपना आदर्श पा लिया। परवर्ती विघटनकारी परिस्थितियों में भोज ही भारतीय आदर्शो का अन्तिम अवलम्ब था जिसने लोकमानस में विपुल रूप से प्रतिष्ठा पायी।

भोज के (परमार) वंश की उत्पत्ति--

शृंगारमंजरीकथा से ज्ञात होता है कि उसका रचयिता धारेश्वर भोज परमार वंश में उत्पन्न हुआ था।[24] कोदण्डकाव्य से ज्ञात होता है कि भोज का (परमार) वंश अग्नि से उत्पन्न हुआ था।[25] नवसाहसांकचरित[26] तथा तिलकमंजरी[27] से ज्ञात होता है कि विश्वामित्र के द्वारा अपहृत धेनु को छुडाने के लिए वसिष्ठ ने आबू पर्वत पर अपने यज्ञकुण्ड की अग्नि से परमार नामक पुरुष उत्पन्न किया जिसने परमार वंश का प्रवर्तन किया। यह स्मरणीय है कि ये दोनों महाकवि मुंज, सिन्धुराज तथा भोज के आश्रित कवि थे जो तथ्य से अधिक अवगत थे। धनपाल की तिलकमंजरी का सम्बद्ध श्लोक भोज अल्पान्तर से अपने शृंगारप्रकाश में उद्धृत करता है[28]—

> **वासिष्ठैस्सुकृतोद्भवोध्वरशतैरस्त्यग्निकुण्डोद्भवो**
> **भूपालः परमार इत्यधिपतिस्सप्ताब्धिकांचेर्भुवः।**
> **अद्याप्यद्भुतहर्षगद्गदगिरो गायन्ति यस्योद्भटं**
> **विश्वामित्रजयोर्जितस्य भुजयोर्विस्फूरितं गूर्जराः ॥**

इससे स्पष्ट है कि भोज इस तथ्य से सहमत था जिसके अनुसार उसके वंश के आदि पुरुष परमार का जन्म वसिष्ठ के हवन-कुण्ड से हुआ था। उदयपुर प्रशस्ति,[29] अचलेश्वर, देलवाड़ा, हाथल, अर्थूणा, बसंतगढ़, नागपुर, पाटनारायण आदि के अभिलेख तथा अकबरनामा एवं आइने अकबरी, पृथ्वीराजरासो आदि[30] मे संक्षेप अथवा विस्तार से यही कहानी प्राप्त होती है। पृथ्वीराजरासो तथा पाटनारायण के लेख में विश्वामित्र के स्थान पर बौद्ध अथवा दैत्य प्राप्त होते हैं। डा० दशरथ शर्मा

के अनुसार परमारों की उत्पत्ति की यह कथा रामायण के एक आख्यान[31] के आधार पर कल्पित है।[32] भविष्यपुराण के अनुसार[33] कान्यकुब्ज ब्राह्मण ने होम किया जिससे चार क्षत्रिय उत्पन्न हुए जिनमें से एक परमार था। अन्य प्रतिहार, सोलंकी तथा चौहान थे जिनके विषय में ऐसा ही उल्लेख पृथ्वीराजरासो में भी प्राप्त होता है।[34] परन्तु यह विश्वसनीय नहीं है क्योंकि इन क्षत्रिय जातियों की उत्पत्ति की अपनी पृथक्-पृथक् कथाएँ भी प्रचलित हैं।

वाट्सन, फार्बस, कैम्पवेल, डी० आर० भण्डारकर आदि ने परमारों को गूजरों की शाखा माना है। किन्तु ये कल्पनाएँ निराधार हैं।[35] डा० धीरेन्द्र चन्द्र गांगुली ने परमारों को मान्यखेट के राष्ट्रकूटों के वंशज बताया है, जो डा० दशरथ शर्मा के अनुसार समुचित नहीं है।[36]

परमारों की जाति—

शृंगारमंजरीकथा से ज्ञात होता है कि भोज उन्नतिशील तथा समुन्नतवंश का था।[37]—

अत्यर्थोन्नतिभृतः समुन्नतवंशाद्विबुधजनसेव्यमान.......।

इसी ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है कि उसने भार्गव के समान सारे क्षुद्र क्षत्रियों का उन्मूलन कर दिया था[38]—

भार्गव इव निर्मूलिताखिलक्षुद्रक्षत्रियः.......।

इससे स्पष्ट है कि परशुराम के समान भोज भी जाति से ब्राह्मण था परन्तु आचार से क्षत्रिय। इसकी पुष्टि अन्य प्रमाणों से भी होती है। हलायुध ने मुंज को 'ब्रह्मक्षत्रकुलीन' कहा है।[39] उदयपुर-प्रशस्ति में भोज के पूर्वज उपेन्द्रराज को 'द्विजवर्गरत्न' कहा गया है।[40] फलतः डा० दशरथ शर्मा के इस अभिमत में सार प्रतीत होता है[41]—'परमार विद्वान् थे और वीर भी। अतः ब्रह्मक्षत्र शब्द उनके लिए उपयुक्त था। यह भी सम्भव है कि प्रारम्भ में परमार ब्राह्मण हों। धर्म को संकट मे देखकर शुंग, सातवाहन, कादम्ब, पल्लव आदि ब्राह्मण-कुलों की भाँति उन्होंने भी तलवार संभाली और समय पाकर क्षत्रिय माने जाने लगे।'

भोज का राज्याभिषेक तथा शासनावधि—

भोज उन्नतिशीलों में अगुआ तथा संग्राम के विजेताओं में अग्रगण्य एवं भुवनभार के उद्धार मे सक्षम था।[42] भोज ने लगातार सैंकड़ों संग्रामों में विजय प्राप्त की थी।[43] शत्रुओं की आशा का अपहरण करने के पश्चात् ही भोज ने कूर्मशतम् की रचना की थी।[44] उसने सारे छोटे-छोटे राजाओं को अपने अधीन कर लिया था।[45] ये सभी राजा उसकी सेवा में प्रस्तुत रहते थे।[46] राजमार्तण्ड-योगसूत्रवृत्ति के अन्तिम श्लोक[47] तथा राजमार्तण्ड[48] आयुर्वैदिक कृति के द्वितीय श्लोक से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। वह अनेक राजाओं का राजा था।[49] इसीलिए उसकी महाराजाधिराज परमेश्वर,[50] परमभट्टारक[51] सार्वभौम आदि उपाधियाँ रहीं। उसने नागों पर अधिकार कर लिया था, इसीलिए वह अहिराज उपाधि से भी भूषित हुआ।[52] भोज की नाममालिका की एक अन्य प्रति में उसे 'अहीन्द्र' भी कहा गया है।[53] भोज के पिता सिन्धुराज ने नागकन्या शशिप्रभा से विवाह किया था। डा० वासुदेव विष्णु मिराशी के अनुसार ये नाग बस्तर के स्वामी थे।[54] नवसाहसांक-चरित में इस घटना का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। यह मुंज की मृत्यु के पश्चात् रचा गया है। एक खण्डित शिलालेख से भी भोज की नागविजय की पुष्टि होती है।[55] मुंज की मृत्यु 995 ई० से पूर्व सम्भव नहीं है।[56] 999 ई० में भोज शासन का स्वामी हो गया था।[57] अर्थात् सिन्धुराज ने केवल चार वर्ष ही शासन किया। यदि नवसाहसांकचरित के तथ्य को

स्वीकार करते हुए यह मान लिया जाय कि इस अवधि में सिन्धुल ने शशिप्रभा से विवाह किया तो यही मानना होगा कि भोज इस नागकन्या का पुत्र नहीं था। यह उसकी विमाता थी। भोज के शासनकाल में इन नागों ने भोज की राज्य-प्राप्ति का विरोध किया होगा, क्योंकि यह उनके वंश की कन्या का पुत्र नहीं था। इस षड्यन्त्र में अन्य भी उसके कई बन्धु सम्मिलित हुए होंगे। भोज ने इस सामूहिक षड्यन्त्र को सफल नहीं होने दिया। शृंगारमंजरीकथा के इस वाक्य से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है[58]—

त्रिदशराज इव अहितापकारी।

भोज अहि (नाग) को संतप्त करने वाला था। इस तथ्य का संकेत द्वितीय अवनिकूर्मशतम् की अन्तिम गाथा से भी प्राप्त होता है—

कुलगिरिणो भूमिहरा सयला वि हु लहुइआ इहं जेण।
तेण सयं निम्मविअं एअं सिरिभोअराएण।

यहाँ 'कुलगिरि' तथा 'भूमिधर' शब्द अन्य अर्थ भी देते हैं। तदनुसार भोज ने अपने कुल के पर्वत के समान महान् राजाओं को भी हराकर अपने अधीन कर लिया। इस तथ्य की पुष्टि प्रथम कूर्म-शतम् की इस गाथा से भी होती है[59]—

कुम्मस्स वि वीसामो दिन्नो एक्केण भोअराएण।
हरिऊण वेरिआसं कुम्मसयं विरइयं तेण॥

भोज ने अपने शत्रुओं की आशा का अपहरण कर यह कूर्मशतक रचा। असम्भव नहीं, यदि ये शत्रु इसके अपने कुल के रहे हों जिन्हें मालवा की राज्य-प्राप्ति की अभिलाषा रही हो। परन्तु भोज ने इस आशा को सफल नहीं होने दिया। भोज अपना सिंहासन बचाये रखने के लिए ही सम्भवतः राजधानी उज्जैन की अपेक्षा अधिक सुरक्षित स्थान धारा को ले गया हो, जो पूर्व से ही उनकी कुलराजधानी थी।[60] प्रतीत होता है, भोज सिन्धुराज का उत्तराधिकारी तो बन गया था, उसने अपनी शक्ति से शत्रुओं को वश में कर राज्यसंचालन भी सुचारु रूप से चलाना प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु अपने ही बन्धु-शत्रुओं से वह सतत 1021 ई० तक त्रस्त होता रहा। शुभशील ने अपने भोज-प्रबन्ध में कहा है कि भोज विक्रम संवत् 1078 (1021 ई०) में सिंहासनारूढ हुआ।[61]

विक्रमाद् वासरादष्टमुनिव्योमेन्दुसम्मिते।
वर्षे मुंजपदे भोजभूपः पट्टे निवेशितः॥

प्रबन्धचिन्तामणि से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है[62]—

अथ (संवत् 1078 वर्ष) यदा मालवकमण्डले श्रीभोजराजा राज्यं चकार.......।

भोज का विधिवत् राज्याभिषेक 1021 ई० में हुआ परन्तु भोज ने 999 ई० से ही राज्य अपने अधीन कर लिया था। फलतः उसने 55 वर्ष 7 मास तथा 3 दिन तक राज्य भोगा[63]—

पंचाशत्पंचवर्षाणि सप्तमासाः दिनत्रयम्।
भोजदेवेन भोक्तव्यः सगौडः दक्षिणापथः॥

सम्राट् अशोक भी गृहकलह के कारण राज्य-प्राप्ति के चार वर्ष पश्चात् विधिवत् अभिषिक्त हुआ था।[64] इस प्रकार भोज ने भी 999 ई० से 1054 ई० तक सुदीर्घकाल तक शासन किया तथा 90 वर्ष तक जीवित रहा।[65] सुभूतिचन्द्र की अमरकोष पर कामधेनु टीका (1062 से 1172 ई० के मध्य) सर्वप्राचीन है जिसकी हस्तलिखित प्रति तिब्बत के मठ में है। इसमें सरस्वतीकण्ठाभरण और शृंगारप्रकार का उल्लेख है। इसमें भोज की मृत्यु की तिथि 1063 ई० दी गयी है। शरणदेव

(12 वीं सदी) ने दुर्घटवृत्ति में सुभूतिचन्द्र का उल्लेख किया है। (द कल्चरल हेरिटेज, भाग दो, पृष्ठ 330)। क्या यह संभव है कि 1054 ई० में जयसिंह प्रथम ने भोज को गद्दी से हटाकर स्वयं सिंहासनासीन हो गया। और भोज की मृत्यु बाद में हुई। भोज के साथ ही कृष्ण का उल्लेख कोदण्डकाव्य, अज्ञातनामा काव्य तथा प्रच्छन्न उल्लेख द्वितीय अवनिकूर्मशतम् में हुआ है।[66] द्वितीयकूर्मशतम् में भोज को कृष्ण से श्रेष्ठ बताया है[67]—

केत्तिअमेत्ते मारे कन्ह तए पोरिसं पमोत्तूण।
रूपसयाइं कयाइं लोए लहुवाविओ अप्पा॥

जं जं गरुअं जं जं च दुव्वहं जं च जं च अणसक्कं।
त तं कुणंतएणं कन्हो लहुआविओ भोअ॥

1228 के देवपाल के एक शिलालेख में भोज को कृष्णतुल्य कहा गया है।[68]

विदर्भराज भोज—

भोजदेव अथवा भोजराज को भोजपति के नाम से भी पुकारा गया है[69]—

स श्रीभोजपतिः फणाधिपतिकृत्सूत्रेषु वृत्तिं व्यधात्।

राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति की पुष्पिका से यह सिद्ध है कि यह भोजपति धारेश्वर भोज था। प्रबन्धचिन्तामणि में भोज को भोजमार्तण्ड भी कहा गया है।[70] भोजपति अथवा भोजमार्तण्ड से स्पष्ट है कि भोज जाति अथवा भोजदेश का यह स्वामी था। मल्लिनाथ ने भोजपति का अर्थ—भोजदेशाधीश्वर किया है।[71] भोजदेश विदर्भ से अभिन्न है।[72] वहीं पर भोज जाति भी थी तथा भोजों का राज्य भी था। भोजपति से तात्पर्य है भोजदेश तथा जाति एवं वहाँ के राजा के स्वामी। भोजमार्तण्ड से तात्पर्य है भोज नृपों के लिए जो मार्तण्डवत् हैं। दोनों ही अवस्था में भोज का विदर्भस्वामित्व प्रकट होता है जिसकी पुष्टि चम्पूरामायण की पुष्पिका में प्राप्त विदर्भराज विरुद से भी होती है।

भोज की विजयें—

इस भोज ने अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त की थी। कोंकण-विजयपर्व पर उसने भूमिदान किया था, जिसका दानपत्र उपलब्ध है।[73] तुरुष्कों पर विजय का उल्लेख कोदण्डकाव्य में हुआ है।[74] उदयपुरप्रशस्ति में भोज को चेदीश्वर, इन्द्ररथ, तोग्गल, भीम, कर्णाटेश, लाटपति, गुर्जरेश, तुरुष्क आदि को पराजित करने वाला कहा गया है।[75] प्रबन्धचिन्तामणि मे चौल, आन्ध्र, कर्णाट, गुर्जर, चेदि, कान्यकुब्ज, कोंकण, लाट, कलिंग आदि के स्वामी को भी भोज की सेवा में निरत बताया है।[76] उसका गौड़ देश तथा दक्षिणापथ पर भी अधिकार था।[77]

भोज का भिल्लम तृतीय (1020–1045 ई०) के विरुद्ध युद्ध हुआ था। चालुक्य जयसिंह की पुत्री हम्मा अथवा आवल्लदेवी से भिल्लम तृतीय ने विवाह किया था।[78] स्वभावतः भोज तथा जयसिंह के युद्धों में भिल्लम ने जयसिंह का साथ दिया होगा।[79] भोज ने उत्तर में साकेत तथा हिमालय एव दक्षिण में मलय तक तथा पश्चिम में द्वारिका तक एवं नागनृपों पर भी धावा बोला था।[80]

1020 ई० के प्रारम्भ अथवा 1019 ई० के अन्त में भोज ने कोंकण पर अधिकार कर लिया था। स्वभावतः यादव नृप भिल्लम तृतीय भी भोज के हाथ पराजित हुआ। भोज के सामन्त

यशोवर्मा ने नासिक जिले से दान किया था। भिल्लम भी इसी क्षेत्र का व विदर्भ तक का शासक था। स्वभावतः उसका क्षेत्र भोज के अधीन हो गया था। कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने विदर्भ देश भोज के साम्राज्य के अन्तर्गत बताया है।[81] डा० वर्मा के अनुसार मालवा के परमारों का विदर्भ पर आधिपत्य था। यह आधिपत्य जगदेव की मृत्यु के बहुत बाद तक बना रहा। चाहण्ड (चाँदा) में इसी परिवार की एक शाखा बस गयी। इसी शाखा के परमार राजा भोज को यादव राजा सिंघण द्वितीय के सेनापति खोलेश्वर ने पराजित किया था।[82] डा० मिराशी[83] के अनुसार चम्पूरामायण का रचयिता यही विदर्भराज भोज है। परन्तु इस भोज की काव्यनिर्माता के रूप में प्रसिद्धि का कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। पुनः उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि विदर्भ पर मुंज तथा भोज का भी अधिकार था। भोज का गौड़ तथा दक्षिणापथ पर अधिकार था। गौड़ तथा दक्षिणापथ पर अधिकार होने से पूर्व विदर्भ पर अधिकार होना आवश्यक था। स्वभावतः यह पदवी धाराधीश परमार भोज प्रथम (999-1054 ई०) की रही तथा उसी ने वह ग्रन्थ भी रचा।

आश्वी ताम्रपत्र[84] से ज्ञात होता है कि भिल्लम तृतीय की मृत्यु (1045 ई०) के तत्काल पश्चात् उसके शत्रुओं ने उसकी राजधानी पर अधिकार कर लिया था। उसके राज्य के एक ओर कलचूरि कर्ण तथा दूसरी ओर परमार भोज शक्तिशाली थे। कलचूरि कर्ण दक्षिण-विजय का दावा करता है परन्तु डा० मिराशो इस तथ्य से सहमत नहीं हैं।[85] असम्भव नहीं यदि भोज ने इसके राज्य पर अधिकार कर लिया हो।

भोज के आश्रित कवियों ने घोषणा कर दी[86]—

भोः भोः श्री भोजदेवं श्रयत विनयतः शत्रवः क्षात्रवर्गाः

प्राणत्राणाय नो वा न भवति भवतां क्वाप्यरण्यं शरण्यम् ।

पृथ्वीराजविजय महाकाव्य से ज्ञात होता है कि शाकम्भरी का चौहान राजा वीर्य-राम भोज से युद्ध करता हुआ मारा गया था।[87] भोज ने चित्रकूट (चित्तौड़) पर विजय प्राप्त की तथा वहाँ त्रिभुवननारायण का मन्दिर बनवाया था। 'त्रिभुवननारायण' भोज की उपाधि थी।[88] कच्छपघात के अभिमन्यु के भोज की अधीनता स्वीकार करली थी।[89] इस प्रकार अनेक नरेश भोज के अधीन थे तथा उसकी सेवा में निरत रहते थे। कई राजा उसके मित्र एवं स्नेही भी थे।[90] भोज ने राहु के समान सारे तेजस्वियों को ग्रस्त कर लिया था।[91] अभिरामकामाक्षी ने भोज को सूर्य के समान तेजस्वी कहा है।[92]

भोज की राज्य सीमा—

भोज का राज्य चारों तक फैला हुआ था। सारी पृथ्वी पर वह एक नगरी के समान राज्य करता था। भोज का प्रताप प्राकार बन गया था तथा चारों समुद्र परिखा। यह शत्रुओं के लिए दुर्लंघ्य था।[93] उसे भूमि का एकमात्र स्वामी कहा गया है।[94] इसकी पुष्टि उदयपुरप्रशस्ति से भी होती है। वहाँ भोज को राजा पृथु के समान उत्तर में कैलास से दक्षिण में मलयगिरि तथा उदयाचल से अस्ताचल तक विस्तीर्ण भूमि का भोक्ता कहा गया है।[95]

सी० पी० वैद्य,[96] विश्वेश्वर रेउ,[97] आदि भोज के राज्य को सीमित मानते हैं। सी० इ० लुआर्ड एवं के० के० लेले के अभिमत से सहमत होते हुए[98] रेउ कहते हैं कि मुंज के राज्यक्षेत्र में भोज वृद्धि नहीं कर पाया था। पी० टी० श्रीनिवास अय्यंगर[99] भोज का राज्य गोदावरी तथा

यमुना तक विस्तृत स्वीकार करते हैं। डी० सी० गांगुली[100] भोज का राज्य उत्तर में बाँसवाड़ा तथा डूंगरपुर तक, दक्षिण में गोदावरी तक, खानदेश व कोंकण तक, तथा पश्चिम में आज के कैरा जिले तक विस्तृत मानते हैं। 'द स्ट्रगल फार एम्पायर' ग्रन्थ में भोज के राज्य में चित्तौड़, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर, भेलसा, खानदेश, कोंकण तथा गोदावरी के उत्तरी तट का क्षेत्र स्वीकार किया गया है।[101] डा० दशरथ शर्मा के अनुसार[102] 'गुजरात का कुछ भाग, समस्त मालवा, राजस्थान के अनेक भाग, मध्यभारत के कुछ क्षेत्र और महाराष्ट्र का कुछ अंश उसके साम्राज्य मे सम्मिलित था।' एक भग्न शिलालेख के अनुसार निर्वाणनारायण (भोज ?) ने साकेत तथा उससे उत्तर में हिमालय तक, दक्षिण में मलय पर्वत तथा पश्चिम में द्वारिका तक के विस्तृत भूभाग पर अधिकार कर लिया था।[103] श्री क० मा० मुन्शी भोज के राज्य की सीमा उत्तर में छम्ब तथा थानेश्वर से दक्षिण में कृष्णा तथा तुंगभद्रा तक एवं द्वारिका से कन्नोज तक स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार छम्ब, डूबकुण्ड, शाकम्भरी, नाडोल, मेदपाट, पाटण, कच्छ, सौराष्ट्र, लाट, कोंकण, चेदी, कल्याण आदि भी उसके अधीन थे। भोज सार्वभौम था।[104] उसने 'मालवचक्रवर्ती' उपाधि प्राप्त की थी।[105] परन्तु भोज की राज्यसीमा का निर्धारण अब तक अन्तिम रूप से नहीं हो पाया है।

भोज शौर्य का जीवित था।[106] उसने अनेक छोटे-बड़े राजाओं को पराजित कर अपने राज्यक्षेत्र की सीमा में अपरिमित वृद्धि की थी। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है। उसकी वीरता के गुणगान विविध शिलालेख, अवनिकूर्मशतम्, पारिजातमंजरी, कोदण्डकाव्य, खड्गशतम्, अज्ञात-नामा प्राकृत काव्य आदि विविध कृतियों में प्राप्त होते हैं। वह उन्नतिशील विचारधारा का राजा था जो संग्राम विजेताओं में सदा अगुआ रहता था।[107]

विजय-रूपी हाथी का शृंगारमजरीकथा में उल्लेख हुआ है[108]—

मानिनीमानोन्मूलनमकरध्वजैकविजयकुंजरः।

अथवा[109]

छिद्यत इव जयकुंजरदशनकिरणविसरैः'।

कोदण्डकाव्य में भी जयकुंजर के विषय में एक गाथा रची गयी है[110]

असिकिरणरज्जुबद्धं जेणं जयकुंजरं तुमं धरसि।
जयकुंजरस्स थंभोए अच्छं ति सोक्खेण॥

काव्यप्रकाश[111] तथा पारिजातमंजरी[112] में भी जयकुंजर की कल्पना की गयी है। चपल राज-लक्ष्मीरूपी हथिनी को भोज के भुजस्तम्भ ने अचल कर दिया।[113]

डा० क० मा० मुन्शी के कथन में सार प्रतीत होता है। उनके अनुसार न मुंज तथा न सिन्धुराज ने अपनी पीछे वैसा संगठित साम्राज्य छोड़ा था जैसा नागभट्ट द्वितीय ने मिहिरभोज के लिए छोड़ा था। भोज ने पैतृक राज्य के रूप में केवल मालवा प्राप्त किया था जिसे उसने एक विशाल साम्राज्य के रूप में परिवर्तित कर दिया।[114]

भोज का क्षत्राचार—

भोज अपकार उन्हीं का करता था जो उसका अहित करते थे।[115] वह क्षत्राचार का क्षेत्र था।[116] भोज ने अपने कई शत्रुओं को नष्ट किया। क्षत्रियों की जीवनचर्या को सुरुचिपूर्ण बनाने के लिए भोज ने 'चारुचर्या' की रचना की।[117] वह धनुर्वेद[118] का ज्ञाता तथा सफल तीरन्दाज (धन्वी) था।[119] कोदण्ड (काव्य) में 576 से अधिक गाथाओं में उसकी धनुर्विद्या को प्रकाशित

किया गया है। उसने अर्जुन के समान राधावेध का सफल अभ्यास किया था[120] तथा 'अभिनवार्जुन' विरुद भी धारण किया था।[121] वह असिधेनु (छुरी या लम्बा चाकू चलाने की) विद्या का विशेषज्ञ था।[122] उसने अपनी श्याम आभा से चमकती कृपाण से शत्रुओं के गजसमूह नष्ट किये तथा सैकड़ों संग्रामों में विजय प्राप्त की।[123] खड्गशतम् में भोज का खड्गशौर्य तथा उसकी तलवार के पानी की विशद चर्चा हुई है।[124] युक्तिकल्पतरु में भोज से अस्त्र-युक्ति के अन्तर्गत खड्ग[125] तथा धनुष-बाण[126] का विशिष्ट विवरण दिया है। भोज उन्मत्त हाथी को वश में करने की कला से अभिज्ञ था।[127] शृंगारमंजरीकथा में हस्तिलक्षणों का ललित विवेचन है।[128] तथा युक्तिकल्पतरु में गजसम्बन्धी विशेष ज्ञातव्य सुलभ है।[129] अश्वगुणों तथा अश्वचिकित्सा में भोज का ज्ञान अपरिमित था।[130] शृंगारमंजरीकथा में दिव्य हय का वर्णन है।[131] युक्तिकल्पतरु में अश्वयुक्ति प्राप्त होती है।[132] अश्वचिकित्सा से सम्बद्ध भोज-विरचित एक स्वतन्त्र ग्रन्थ शालिहोत्र है। इसके अतिरिक्त भी भोज के अश्वसम्बद्ध कतिपय श्लोक मल्लिनाथ ने शिशुपालवध की टीका में उद्धृत किये हैं जो उपर्युक्त ग्रन्थों में सुलभ नहीं होते।[133] भोज के नीति-निबन्धन अथवा नीतिभजन में भी गज तथा अश्व का विवरण सुलभ है।[134]

भोज नीति का निधान था।[135] भोज के द्वारा संकलित चाणक्यराजनीतिशास्त्र के अतिरिक्त नीतिनिबन्धन भी सम्भवतः इसी विषय से सम्बद्ध है। युक्तिकल्पतरु के प्रारम्भ में नीति-युक्ति प्राप्त होती है। चारुचर्या में नीतिगत कतिपय श्लोक प्राप्त होते हैं।

वह विदग्धता का बन्धु था।[136] उसकी गरिमा तक गुरु (बृहस्पति) नहीं पहुँच पाता है। उसके सामने भार्गव भी प्रतिभाशाली नहीं लगता, उद्धव भी उससे आगे नहीं बढ़ पाता, चाणक्य की गणना बुद्धिमानों में नहीं हो सकती तथा धर्मकीर्ति भी उसके समक्ष कुशाग्रबुद्धि नहीं कहा जा सकता।[137]

वह गुणवानों में अग्रणी था।[138] विविध गुणों से वह अलंकृत[139] तथा सम्पन्न[140] था। तथा करुणा का आकर था।[141] अपनी प्रजा के प्रति बन्धु जैसा व्यवहार करता था।[142] वह सब को हर प्रकार से प्रसन्न करने में निरत रहता था।[143]

भोज के विरुद—

पहले कहा जा चुका है कि प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार भोज के 104 विरुद थे तथा इतने ही उसके गीतप्रबन्ध एवं इतने ही धारा में प्रासाद थे। सरस्वतीकण्ठाभरण के टीकाकार अजड़ के अनुसार भोज की 84 उपाधियाँ तथा इतने ही उसके ग्रन्थों के अभिधानों में अभेद था। 84 संख्या अधिक विश्वसनीय इसलिये भी प्रतीत होती है कि एक ही संख्या की विविध वस्तुएँ निर्माण करने की अथवा उतने ही अन्य अभिधान रखने या वर्गीकरण करने की प्रवृत्ति रही है। सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश में उसने शब्दालंकार, अर्थालंकार, उभयालंकार, शब्द-गुण, अर्थगुण, दोषगुण, दृश्यकाव्य, श्रव्यकाव्य आदि में से प्रत्येक के 24-24 भेद किये हैं। धारा में उसने 24 अट्ट या हाट बनवाये थे।[144] इसी प्रकार विविध संख्या में सतत समानता की प्रक्रिया भोजवाङ्मय में सुलभ है। 84 की भी यही स्थिति है। अजड़ के अनुसार भोज के 84 ग्रन्थ तथा इतनी ही उपाधियाँ थीं। प्रभाचन्द्राचार्य के अनुसार भोजकल्पित धारा में 84 प्रासाद तथा इतने ही चौराहे थे।[145] मदन की पारिजातमंजरी के अनुसार धारा में 84 चौराहे तथा इतने ही देवालय थे।[146] शृंगारमंजरी की उभयानुरागकथानिका में भोज ने उरगपुर के राजा समरसिंह

को 24 कार्वट तथा 84 सामन्तों का स्वामी कहा।[147] अतः अजड़ के इस कथन में सत्य हो सकता है जिसके अनुसार भोज के 84 ग्रन्थों तथा इतनी ही उपाधियों के अभिधानों में अभेद था। 104 संख्या का प्रबन्धचिन्तामणि से अन्यत्र कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु मेरुतुंग के कथ्य में भी सार है। सरस्वतीकण्ठाभरण से मेरुतुंग के अभिमत की पुष्टि होती है। सरस्वतीकण्ठाभरण भोज का विरुद,[148] धारा[149] तथा उज्जयिनी[150] में भोजनिर्मित प्रासाद का अभिधान एवं भोज के व्याकरण, अलंकारशास्त्र तथा सम्भवतः नाटक[151] ग्रन्थ का भी अभिधान था। भोज की ही उपाधि धारण करने वाले लघुभोजराज[152] वस्तुपाल ने सरस्वतीकण्ठाभरण तथा राजमार्तण्ड विरुद भी धारण किये थे।[153] उसे समरांगणप्रणायी भी कहा गया है।[154] भोज के एकाधिक ग्रन्थों का अभिधान राजमार्तण्ड है। राजमार्तण्ड भोज की उपाधि भी थी।[155]

शृंगारमंजरी मे भोज को अखिलजनतासुबन्धु, श्रीभास, गुणाढ्य तथा प्रशस्तगीर्वाण कहा गया है।[156] ये उसकी उपाधियाँ भी हो सकती हैं। इसी ग्रन्थ में एकाधिक स्थलों पर तथा अवनिकूर्मशतम् एवं अन्य ग्रन्थों की पुष्पिका मे भोज को 'महाराजाधिराज परमेश्वर' कहा गया है। भोज के ताम्रपत्रों में उसे इसके साथ ही परमभट्टारक भी कहा गया है। भोज ने मालवमण्डन.[157] सार्वभौम,[158] मालवचक्रवर्ती,[159] अवन्तिनायक,[160] धारेश्वर,[161] निर्वाणनारायण[162] एवं त्रिभुवननारायण अथवा लोकनारायण,[163] विदर्भराज,[164] अहिराज[165] अथवा अहीन्द्र,[166] अभिनवार्जुन,[167] कृष्ण,[168] रणरंगमल्ल[169] इत्यादि के अतिरिक्त अपने ग्रन्थाभिधानों के रूप में भी उसके विरुद अमर बन गये हैं। उसके ग्रन्थाभिधानों तथा विरुदों में अभेद का सोदाहरण संकेत दिया जा चुका है। ऐसे विरुदों में सरस्वतीकण्ठाभरण तथा राजमार्तण्ड के अतिरिक्त आदित्यप्रताप भी अविस्मरणीय है। इस विरुद का उल्लेख उदयपुरप्रशस्ति में हुआ है।[170] आदित्यप्रतापसिद्धान्त भोज की एक कृति का भी अभिधान है। चाणक्यमाणिक्य भोज के चाणक्यराजनीतिशास्त्र का मूल अभिधान है[171] जिसका सांकेतिक उल्लेख मेरुतुंग ने भी किया है।[172] समरांगणसूत्रधार का भी सांकेतिक उल्लेख प्रबन्धचिन्तामणि मे हुआ है।[173] ये सभी भोज के विरुद हो सकते हैं। विद्याविनोद भोज की कृति का अभिधान रहा। उसके एक सभापण्डित का नाम भी विद्याविनोद था।[174] प्रबन्धचिन्तामणि में यह अभिधान 'वादविद्याविनोद'[175] के व्याज से प्रस्तुत किया गया है। विद्याविनोद भोज की उपाधि हो सकती है। चारुचर्या तथा अवनिकूर्म, के अतिरिक्त कोदण्डमण्डल[176] अथवा कोदण्डगुण[177] भी भोज की उपाधियाँ सम्भव हैं। भोज की एक अनुपलब्ध कृति का अभिधान महाकालीविजय भी रहा। कालिका का उल्लेख खड्गशतम् तथा कोदण्डकाव्य में भी हुआ है।[178] महाकालीविजय भी भोज का विरुद हो सकता है। इसके अतिरिक्त भोज की कृतियों के राजमृगांक, भुजबलभीम, भीमप्रकाश अथवा भीमपराक्रम विद्वज्जनवल्लभ, तत्त्वप्रकाश, शृंगारप्रकाश, संगीतप्रकाश, नीतिनिबन्धन अथवा नीतिभजन, युक्तिकल्पतरु, पूर्तमार्तण्ड, आयुर्वेदसर्वस्व इत्यादि के अतिरिक्त राजकन्दर्प,[179] कलिकन्दर्प,[180] राजमदन,[181] कन्दर्पकम्पन (?)[182] के साथ ही कविराज[183] तथा विद्वच्चक्रशिरोमणि[184] के भोजविरुद होने की अधिक सम्भावना है। भोज के विरुदों, भवनों तथा ग्रन्थों के अभिधानों की सार्थकता आदरणीय श्री० वि० वेंकटाचलम्‌जी ने अपने शोधपत्र में व्यक्त की है।[185]

भोज की निर्मितियाँ—

भोज का श्रेष्ठ निर्माता के रूप में स्मरण किया गया है। धारा नगरी के निर्माण की पुष्टि प्रबन्धचिन्तामणि से होती है।[186] इसका नाम एक वेश्या के नाम पर रखा गया था। परन्तु

इसमें तथ्य प्रतीत नहीं होता क्योंकि धारा भोज के पूर्वजों के काल से ही परमारों की कुल-राजधानी रही है।[187] एक होयसाल ताम्रपत्र (1117 ई०) से भी ज्ञात होता है कि भोज ने धारा का पुनर्निर्माण करवाया था।[188] उदयपुरप्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वैरिसिंह द्वितीय ने सम्भवतः धारा पर अधिकार कर लिया था।[189] यह (914–941 ई०) भोज का पूर्वज था।[190] जौनपुर से प्राप्त सातवीं सदी के ईश्वरवर्मा के लेख में भी धारा का उल्लेख है।[191] 150 ई० में टालेमी ने ओफेन (उज्जैन) से 1 डिग्री दक्षिण-पश्चिम में मेरोगिरि का उल्लेख किया है।[192] मेरोगिरि भी सम्भवतः धारागिरि है जो धारा का सम्भवतः प्राचीन अभिधान है। मदन की पारिजातमंजरी अथवा विजयश्री नाटिका में धारा में स्थित धारागिरि तथा वहाँ स्थित लीलोद्यान का उल्लेख हुआ है।[193] पंवारवंशदर्पण में परमारों के वंश में उत्पन्न एक राजा का नाम धारगिर (धारागिरि ?) उपलब्ध होता है।[194] महाभारत में एक पवित्र तीर्थ के रूप में धारा का स्मरण हुआ है।[195] सम्भवतः भोज ने धारा का जीर्णोद्धार अथवा पुनर्निर्माण करवाया था। धारा भोज से पर्याप्त प्राचीनकाल से ही स्थिति में थी। प्रबन्धचिन्तामणि से ज्ञात होता है कि धारा में भोज के बनवाये 104 प्रासाद थे जिनके अभिधान तथा भोज के विरुदों में अभेद था।[196] प्रभावकचरित के अनुसार भोज की धारा में 84 प्रासाद तथा इतने ही चौराहे एवं 24 बाजार थे।[197] पारिजातमंजरी के अनुसार धारा में 84 चौराहे तथा इतने ही सुरसदन अथवा देवालय थे।[198] वहाँ एक सरस्वतीकण्ठाभरण[199] अथवा[200] शारदासद्म या भारतीभवन नामक विद्यामन्दिर था जिसमें 1034 ई० में निर्मित वाग्देवी की मूर्ति पधरायी गयी थी।[201] यह मूर्ति आजकल ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन में सुरक्षित है। शारदासदन आजकल भोजशाला के नाम से विख्यात है।

उदयपुरप्रशस्ति से ज्ञात होता है कि भोज ने केदार, रामेश्वर, सोमनाथ, सुण्डीर, काल, अनल, रुद्र आदि के मन्दिर बनवाये थे।[202] राजतरंगिणी[203] से ज्ञात होता है कि भोज ने काश्मीर के कपटेश्वर (कोटेर) में 60 गज व्यास का एक कुण्ड बनवाया था जिसके जल का वह धारा में रहते हुए नित्य उपयोग करता था। काँच के कलशों में जल नित्य धारा पहुँच सके, ऐसी व्यवस्था कर दी गयी थी।[204] चित्तौड़ का भोजस्वामिदेव मन्दिर भी भोज का ही बनवाया हुआ है।[205] भोपाल के निकट भोजपुर में स्थित मन्दिर तथा वहाँ की 250 वर्गमील की विशाल झील भी भोजनिर्मित कही जाती है।[206] उसने माण्डव में छात्रावास तथा प्राकार भी बनवाया था।[207] उज्जैन में भोजनिर्मित एक सरस्वतीकण्ठाभरण प्रासाद था।[208] भोज ने अपने अन्तिम दिनों उज्जैन में एक पचास हाथ ऊँचा शिवालय प्रासाद बनवाया था।[209]

भोज की वैज्ञानिक प्रतिभा—

शृंगारमंजरीकथा में यन्त्र-धारागृह,[210] मणियन्त्रपुत्रिका,[211] उनका नर्तनाभास,[212] स्वर्णपुत्रिका,[213] पानी में डूबते-उतरते कृत्रिम बककुटुम्ब, बालकमठ, यन्त्रमकर, यन्त्रचालित भारपुत्रक[214] आदि का विवरण प्राप्त होता है। कृत्रिम वर्षा का आभास करवाने की प्रक्रिया, कृत्रिम वानर का मुरजवादन आदि भोज की विचित्र कल्पना का परिणाम है। भोज ने अपना वर्णन यन्त्रपुत्रक के द्वारा करवाकर श्रोताओं को चकित कर दिया।[215] ग्यारहवीं सदी में एक पुतले के द्वारा विस्तृत विवरण दिलवाना वस्तुतः आश्चर्यकारी है। भोज पत्तनिका का उल्लेख करता है जिसका निश्चित स्वरूप अज्ञात है।[216] इन विविध यन्त्रों का तथा इतर अनेक विचित्र यन्त्रों का विवरण भोज के समरांगणसूत्रधार[217] तथा युक्तिकल्पतरु में विशद रूप से प्राप्त होता है।

शृंगारमंजरीकथा में धारा का विशद वर्णन प्राप्त होता है। भोज ने धारा का पुनर्निर्माण करवाया था। इसे उसने सर्वविलक्षण,[218] प्राचीन नगरियों का उपहास करने वाली[219] तथा दर्शकों के लिए आकर्षण का केन्द्र[220] बना दिया था। यह उत्तुंग सौध, विविध बाजार, परिखा, प्राकार, कपाट, प्रतोलिका, कपिशीर्षक, तड़ाग, घाट, उद्यान आदि से अलंकृत थी।[221] समरांगणसूत्रधार के रचयिता का शिल्पज्ञान जैसे इसमें अवतरित हो गया था।

शृंगारमंजरीकथा में भोज ने स्फटिक, मरकत, शोणमणि, चन्द्रमणि, मुक्ताफल, विद्रुम, गारुत्मत आदि विविध बहुमूल्य रत्नों का उल्लेख किया है।[222] जिनका विशिष्ट परिचय युक्तिकल्पतरु में प्राप्त होता है।[223] भोज ने नवग्रह,[224] ग्रहों के पारिवारिक सम्बन्ध,[225] ग्रहों के स्थान-निर्देश,[226] ग्रहों का भाव अथवा अभाव[227] एवं शाकुनिकों का भी संकेत दिया है।[228] भोज ने ज्योतिष से सम्बद्ध अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी रचे हैं।

अश्व तथा गज के सांगोपांग विवरण शृंगारमंजरीकथा में उपलब्ध होते हैं। युक्तिकल्पतरु, नीतिभजन तथा शालिहोत्र मे इनके विशिष्ट विवरण प्राप्त होते है।

भोज का ज्ञान-क्षेत्र—

भोज विविध विद्याओं का प्रमदोद्यान था।[229] भोज की सभा के आप्त विद्वान् तथा स्नेही नृपों का भी कहना है—'इस विषय में जितना देव (आप) जानते हैं, उतना हम नहीं जानते।[230] वह प्रशस्तगीर्वाण थे।[231] स्त्र्यनुराग कथानिका में रत्नदत्त का आत्मविश्वास भोज का अपना आत्म-विश्वास प्रतीत होता है[232] —

या कला याश्च विद्या यानि च विज्ञानानि
मया शिक्षितानि तान्येव मे पाथेयम्।

तथा

सर्वाणि शास्त्राणि, निखिलाःकलाः, सर्वाणि
विज्ञानानि च जानामि। सकृच्छ्रुतं च गृह्णामि।

वह सारे शास्त्र, सारी कला तथा सारे विज्ञानों का वेत्ता था। एक बार सुनने पर उसे स्मरण हो जाता था। वह कलाओं का कुलगृह था।[233] वह कला के ज्ञाताओं का उपमान बन गया था।[234] प्रबन्धचिन्तामणि में भोज को सारे राजशास्त्र, 36 आयुधविज्ञान, 72 कलाओं में पारंगत बताया है [235] जिसकी पुष्टि रासमाला से भी होती है।[236] युक्तिकल्पतरु, समरांगणसूत्रधार, सरस्वती-कण्ठाभरण, शृंगारप्रकाश तथा शृंगारमंजरीकथा से भोज के कला तथा वैज्ञानिक उपलब्धियों पर विशद प्रकाश पड़ता है। भोज ने दो प्रकार की चौसठ कलाओं का निर्देश भी किया है।[237] भोज शृंगाररस का मर्मज्ञ था।[238] उसने शृंगारमंजरीकथा में शृंगार के विविध रूपों को प्रस्तुत किया है। सरस्वतीकण्ठाभरण में शृंगार को ही प्रमुख रस माना गया है तथा शृंगारप्रकाश में उसका विशद विवेचन किया गया है। सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश के अन्त में भोज ने इन कृतियों को 'अनंगसर्वस्व' की संज्ञा दी है।[239]

भोज विविध शास्त्रों का वेत्ता था। उसके नाम से विविधविषयक अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। ज्योतिष, अलंकार, दर्शन, राजनीति, धर्मशास्त्र, शिल्प, व्याकरण, वैद्यक, कोष, काव्य, सुभाषित इत्यादि विषयों पर भोज की कृतियाँ प्राप्त होती हैं।

स्वयं भोज ने शब्दानुशासन तथा वैद्यक का राजमृगांक ग्रन्थ स्वरचित बताया है।[240] भोज के व्याकरण ग्रन्थ 'सरस्वतीकण्ठाभरण' का उल्लेख प्रबन्धचिन्तामणि में भी हुआ है।[241] अलंकार-शास्त्रीय कृति सरस्वतीकण्ठाभरण का उल्लेख दिवाकर ने मेघदूत की टीका में किया है।[242] प्रभावकचरित में भोजकृत शास्त्रों की सूची प्राप्त होती है। तदनुसार—भोजव्याकरण, शब्दालंकार शास्त्र, तर्कशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, राजसिद्धान्त, रसशास्त्र, वास्तुशास्त्र, उदयशास्त्र, अंकशास्त्र, शाकुनकशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, निमित्तव्याख्यानशास्त्र, प्रश्नचूडामणि, अयः (पूर्व जन्म के सुकृत्य, सौभाग्य) सद्भाव पर विवृति, अर्थकाण्ड (पुजासामग्री या मूल्य विवरण)[243] अथवा अर्वशास्त्र अथवा अर्थशास्त्र, मेघमाला इत्यादि भोज की कृतियाँ थीं।[244] अभिज्ञानशाकुन्तल पर काट्यवेन की रची गिरिराजीय टीका में भोज को नाट्यशास्त्र का आचार्य कहा गया है।[245] संगीतरत्नाकर[246] तथा संगीतसमयसार[247] एवं शारदातनय के भावप्रकाश से[248] ज्ञात होता है कि भोज का संगीत पर कोई ग्रन्थ था।[249] मल्लिनाथ की टीका से भोज विरचित अनेकार्थकोष[250] का ज्ञान होता है।

भोज की अपनी विद्वत्परिषद् थी।[251] कोदण्डकाव्य तथा अज्ञातनामा काव्य से भी इसकी पुष्टि होती है।[252] इस परिषद् में विविध विषयों के पाँच सौ के लगभग विद्वान् थे।[253] भोज इन विद्वानों से विशिष्ट समस्याओं पर अभिमत लेता था, जिन्हें स्वीकार करना भोज के लिए अनिवार्य नहीं था।[254] इस परिषद् में आप्त विद्वान् स्नेही तथा नृपगण भी थे।[255] भोज इन सबमें सर्वोच्च था।[256] परिषद् के सदस्य भी उसकी बहुज्ञता में विश्वास करते थे।[257] वह विद्वद्गोष्ठियों में सुनाने के लिए ग्रन्थ रचता था। शृंगारमंजरीकथा विद्वज्जनों के आग्रह पर ही रची गयी है। गोष्ठियाँ धारागृह में बैठकर की जाती थीं।[258] सरस्वतीकण्ठाभरण एवं शृंगारप्रकाश की रचना भी विद्वद्-गोष्ठी के परितोष के लिए ही की गयी थी।[259] विद्वत्परिषद् के आप्त विद्वानों से भोज भी सरस पाण्डित्यपूर्ण तथा विविध शास्त्रों के ग्रन्थ रचवाता था। धनपाल ने भोज के आग्रह पर तिलक-मंजरी रची थी।[260] वैद्यनाथ ने तिथिनिर्णय भी भोज के लिए ही रचा था।[261]

महाराजा भोज के नाम से अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं अथवा प्राचीन साहित्य में उनके संकेत प्राप्त होते हैं। विविध विद्वानों[262] के निर्देशानुसार भोजकृत निम्नांकित कृतियाँ हैं—

1. साहित्यशास्त्र
   1. सरस्वतीकण्ठाभरण
   2. शृंगारप्रकाश
2. साहित्य
   3. चम्पूरामायण
   4. शृंगारमंजरीकथा
   5. अवनिकूर्मशतम्
      कोदण्डकाव्य[263]
   6. सुभाषित-प्रबन्ध)[264]
   7. विद्याविनोद)[265]
   8. शालिकथा)

9. महाकालीविजय)
10. चारुचर्या
11. चाणक्यराजनीतिशास्त्र अथवा चाणक्यमाणिक्य
11. (अ) वाग्देवीस्तुति

3. व्याकरण
12. सरस्वतीकण्ठाभरण
13. प्राकृत-व्याकरण

4. कोष
14. नाममालिका
15. अनेकार्थकोष[266]
16. अमरव्याख्या

5. संगीत
17. (सं) गीतप्रकाश

6. इतिहास —
18. संजीवनी

7. दर्शन
न्यायवार्तिक[267]
19. तत्त्वप्रकाश
20. सिद्धान्तसंग्रह
21. सिद्धान्त-सार-पद्धति[268]
22. राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति
राजमार्तण्ड[269] (वेदान्त)
शिवतत्त्वरत्नकलिका,[270] सम्भवतः यह शिवत्त्वप्रकाशिका[271] से अभिन्न है।
23. तत्त्वचन्द्रिका[272]

8. ज्योतिष्
24. राजमार्तण्ड
25. राजमृगांक
26. विद्वज्जनवल्लभ प्रश्नज्ञान
(प्रश्नचिन्तामणि अथवा प्रश्नचूडामणि भी सम्भवतः इसी का नाम है)
26. (अ) भीमपराक्रम[273]
27. प्रश्नकेरली[274]
28. आदित्य-प्रताप-सिद्धान्त
29. भुजबलनिबन्ध अथवा भुजबलभीम
30. ज्योतिःसागर अथवा ज्योतिःसागरसार
31. रत्नकोष
भोजदेवसारसंग्रह अथवा अब्दप्रबोध[275]

32. ग्रहभाष्यम्[276]
33. भोज सामुद्रिक अथवा हस्तसामुद्रिक[277]
34. रमलामृत[278] (1667 में इसकी प्रतिलिपि की गयी थी।)

9. धर्मशास्त्र

35. पूर्तमार्तण्ड
36. व्यवहारसमुच्चय
37. व्यवहारमंजरी
सिद्धान्तसारपद्धति (?)
38. विविधविद्याविचारचतुरा (काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी), भाग 3, पृ० 1603 के अनुसार यह भोज धारेश्वर से भिन्न है।)
39. भूपालकृत्यसमुच्चय (भूपालपद्धति सम्भवतः इसी का अपर नाम है।)
40. राजमार्तण्ड[279]
41. वृहद्राजमार्तण्ड
42. रत्नमाला अथवा रत्नावली
43. कामधेनु (?)
धर्मप्रदीप (?)[280] (डा० पी० के० गोडे० के अनुसार यह भोज कच्छ का था। पादटिप्पणी 4 का ग्रन्थ)
44. दुर्गोत्सवाधिकार
45. प्रयोगपद्धतिरत्नावलि
45. (अ) मनु (स्मृति) भाष्य[281]

10. राजनीतिशास्त्र

46. नीतिनिबन्धन अथवा नीतिभजन (नीतिभाजनभाजन-भोज को समर्पित)
दण्डनीति) सम्भवतः नीतिनिबन्धन अथवा चाणक्य-
राजनीति)[282] राजनीतिशास्त्र का अपर अभिधान
47. युक्तिकल्पतरु

11. आयुर्वेद

48. राजमृगांक
49. विश्रान्तविद्याविनोद
50. आयुर्वेदसर्वस्व
51. राजमार्तण्ड योगसारसंग्रह
52. शालिहोत्र

12. स्थापत्य

53. समरांगणसूत्रधार

इसके अतिरिक्त कतिपय ग्रन्थों के अभिधान ज्ञात होते हैं जिनका विषय-निर्धारण अनिश्चित है–

54. अभिनवभाष्यम्[283] (पतंजलि)
55. पंचाशिका[284]

56. मेघमाला[285]
57. अयसद्भावविवृत्ति[286]

साथ ही ये ग्रन्थ भी भोज के नाम से प्राप्त होते हैं—

1. द्रव्यानुयोगतर्कणाटीका, जिसका रचयिता कोई जैन भोज है।

तथा

2. गोविन्दविलासकाव्य,[287] जिसका रचयिता परमार राजा भोज से भिन्न कोई भोज है।

भोज के ग्रन्थों की कृतित्व-समस्या

थियोडोर आफ्रेक्ट,[288] कीथ,[289] डा० डी० सी० गांगुली,[290] विश्वेश्वरनाथ रेउ[291] कन्हैयालाल माणकलाल मुन्शी,[292] कु० प्रतिपाल भाटिया[293] आदि को इसमें सन्देह है कि ये सारी कृतियाँ भोज की ही रची हुई हैं। इनके अनुसार इनमें से कतिपय कृतियाँ उसकी रची हुई हो सकती हैं परन्तु कुछ कृतियाँ भोज के मार्गदर्शन में अन्य विद्वानों द्वारा रची गयी हैं। परन्तु पी० टी० श्रीनिवास अय्यंगर[294] इस बात में विश्वास नहीं करते। उनके अनुसार यह कहना ठीक नहीं कि निरन्तर युद्धों में निरत रहने वाला एक राजा इतने ग्रन्थों की रचना का समय नहीं पा सकता। हिन्दू विद्वान् समझ सकते हैं कि यह कार्य कितना सरल सम्भव है। भारत में बचपन में ही सारे ग्रन्थ स्मरण करा दिये जाते थे। इसलिए ग्रन्थ-रचना के समय उन्हें अनेक ग्रन्थों को बार-बार अपनी मेज पर बिखेरने की आवश्यकता नहीं रहती थी। स्मृतिकोष के आधार पर वे नूतन ग्रन्थ, प्रमुखतया शास्त्रसम्बद्ध ग्रन्थ सरलता से इतना शीघ्र रच सकते थे कि उसकी कल्पना न तो विदेशी कर सकते तथा न विदेशी-प्रणाली से शिक्षित भारतीय।

प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार भोज के रचे हुए 104 गीतप्रबन्ध, धारा में 104 प्रासाद तथा इतने ही उसके विरुद थे।[295] सरस्वतीकण्ठाभरण के टीकाकार अजड ने भोज को शिष्टशिरोमणि, निरवद्य, विद्यानिर्माण मे अपूर्वप्रजापति तथा अपने 84 विरुदों के अभिधानों वाले 84 ग्रन्थों का रचयिता कहा है।[296]

वीरभद्रनारायण के अनुसार भोज ने विविध विद्याओं से सम्बद्ध ग्रन्थ रचे थे।[297]

शृंगारमंजरीकथा में भोज स्वयं को 'प्रशस्तगीर्वाण' कहता है।[298] उससे सरस्वती प्रसन्न थी।[299] उसकी जिह्वा पर (?) सरस्वती मानो निरन्तर नृत्य करती थी।[300] स्वयं सरस्वती ने शृंगारमंजरी को पवित्र किया था।[301] भोज की इन अभिव्यक्तियों की पुष्टि भोजकृत अन्य ग्रन्थों से भी होती है। तत्त्वप्रकाश के अन्त में कहा गया है कि भोज तत्त्वों के भी तत्त्व जानता है।[302] राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति के अन्त में कहा गया है कि भोज का मुखकमल पाकर वाग्देवता भी अपूर्व गर्व का अनुभव कर रही है।[303] भोज निखिल विद्या का वेत्ता था, इस तथ्य की पुष्टि भोज की विद्वत्परिषत् के आप्त सदस्य धनपाल की तिलकमंजरी से भी होती है।[304]

कवि तथा कविबन्धु-भोज

भोज स्वयं कवि था। वह गद्य, पद्य तथा चम्पू काव्य रचने में सिद्धहस्त था। वह ये काव्य संस्कृत, विविध प्राकृत तथा सम्भवतः अपभ्रंश में भी रच सकता था। वह अपने आश्रित पण्डितों को भी इस ओर प्रेरित करता था। भोज अलंकृत शैली का आचार्य था। उसने गद्य तथा पद्य मे अलकारों का तथा भाषा की सरसता एवं झंकार का सर्वत्र बड़ी कुशलता से निर्वाह किया है। उसने विविध छन्दों में काव्य-रचना की है। कल्पना-वचित्र्य भोज के काव्य में पद-पद पर पाया जा

सकता है। वह कवियों का आश्रयदाता था। विल्हण ने भोज की मृत्यु के कुछ काल पश्चात् ही उसे कविरंजकों का उपमान बना दिया था। विल्हण एक ओर जहाँ भोज का समकालीन था, वहीं पर उसका नहीं, अपितु उसके शत्रु चालुक्य नृपों का आश्रित कवि था। उसके द्वारा व्यक्त श्लोक[305]—

न भोजराजः कविरंजनाय
मुंजोऽथवा कुंजरदानदक्षः।

में व्यतिरेक होने पर भी भोज की प्रशंसा ही उपलब्ध होती है। उसने क्षितिराज को भोज से उपमित किया है।[306] इन दोनों को कल्हण ने भी कविबान्धव कहा है[307]—

स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ।
सूरी तस्मिन् क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कविबान्धवौ।

उदयपुर-प्रशस्ति में भोज को 'कविराज' कहा गया है।[308] भारतीय नृपकवियों में इसी प्रकार की कविराज उपाधि सम्भवतः सर्वप्रथम समुद्रगुप्त ने धारण की थी।[309]

भोज का दानप्रेम—

भोज अपने आश्रित कवियों को अमित धन देता था। नवसाहसांकचरित के उज्जयिनी-वर्णन में वहाँ के समृद्धि-द्योतन[310] के समान ही काव्यप्रकाश में उद्धृत श्लोक भी भोज का कविरंजन ही प्रकट करता है।[311] प्रभावकचरित, प्रबन्धचिन्तामणि, भोजप्रबन्ध आदि में भोज के ऐसे दानों से सम्बद्ध अमित कथाएँ उपलब्ध होती हैं। भोज के दानपत्रों से भी उसके दानप्रेम की पुष्टि होती है।[312] भोजराज की वीरता तथा दान की प्रशंसा में अर्थवाद के रूप में यह श्लोक प्राप्त होता है[313]—

अस्य श्रीभोजराजस्य द्वयमेव सुदुर्लभम्।
शत्रूणां शृंखलैर्लोहं ताम्रं शासनपत्रकैः॥

यह अतिशयोक्ति सम्भव है परन्तु अमूलोक्ति नहीं हो सकती। उसने सहस्रों गायें दान की थीं।[314] उदयपुरप्रशस्ति तथा विल्हण के अनुसार भोज अप्रतिम था।[315]

भोज ने छित्तप को आश्रय तथा धन प्रदान किया था।[316] त्रिविक्रम के पुत्र भास्करभट्ट को भोज ने विद्यापति की उपाधि से विभूषित किया था।[317] मण्डपदुर्ग (माण्डव) के छात्रावास के अध्यक्ष (?)[318] गोविन्दभट्ट के पुत्र धनपति भट्ट को भोज ने भूमि प्रदान की थी।[319]

भोज न केवल अपने आश्रित पण्डितों का ही संरक्षक था अपितु अपनी सारी प्रजा के प्रति भी उसका सौहार्दपूर्ण तथा श्रेष्ठ बन्धु जैसा बर्ताव था।[320] वह सारी पृथ्वी का आनन्ददाता था।[321]

भोज की शालीनता—

भोज अमित गुणों से सम्पन्न तथा सम्राट् होने पर भी स्वभाव से शालीन था। आप्त विद्वानों, स्नेहियों तथा नृपतियों ने किसी अपूर्व कल्पित कथा सुनाने की प्रार्थना की तब राजा को कथा कहने में इसलिए संकोच हुआ कि कथा के पूर्व विलक्षण नगरियों में श्रेष्ठ धारा का वर्णन करना होगा तथा वहाँ के अधिष्ठाता होने से स्वयं का भी एवं आत्मशंसा उसे अनुचित प्रतीत हुई। विद्वानों ने दण्डी के वचन का नचन का प्रमाण देते हुए आत्मप्रशंसा करने वाले वाल्मीकि, पराशर,

व्यास आदि मुनि तथा गुणाढ्य, भास, भवभूति, बाण आदि कवि के उदाहरण प्रस्तुत किये ।[322] भोज ने कथा कहना प्रारम्भ कर दिया परन्तु आत्मवर्णन के लिए वह प्रवृत्त न हो सका, फलतः उसने इस कार्य के लिए यन्त्रपुत्रक को नियुक्त किया ।[323] यन्त्रपुत्रक के द्वारा राजवर्णना के पश्चात् कथा कहने में भोज प्रवृत्त होता है । चारुचर्या में भोज आत्मस्तुति का निषेध करता है ।[324]

भोज का दार्शनिक ज्ञान--

भोज का दर्शन-सम्बद्ध ज्ञान भी असीमित था । उसके पांचरात्र,[325] लोकायत,[326] वेदान्त,[327] सांख्य,[328] योग,[329] वैशेषिक,[330] अक्षपाद,[331] प्रभाकर,[332] कुमारिल,[333] बौद्धदर्शन[334] आदि दार्शनिक सिद्धान्तों एवं विविध पौराणिक पात्रों तथा आख्यानों के उल्लेख उपलब्ध होते हैं । भोज के योग, वेदान्त (?), पाशुपत सम्प्रदाय आदि से सम्बद्ध प्रामाणिक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं । स्पष्ट ही भोज विविध दर्शनों का मर्मज्ञ था ।

धर्म तथा सम्प्रदायों में विश्वास—

भोज के समय अनेक पाषण्डों की स्थिति थी ।[335] भोज ने पाशुपत पाषण्ड[336] का उल्लेख किया है । विष्णु तथा उनके बलराम, कृष्ण, राम, वामन, नृसिंह, कच्छप प्रभृति अवतारों का भी उल्लेख हुआ है ।[337] कूर्म अवतार की प्रशस्ति में भोज ने अवनिकूर्मशतम् की रचना भी की है । विन्ध्यवासिनी,[338] आशापुरा[339] आदि देवियों के प्रभाव व्यक्त हुए हैं । भोज ने महाकालीविजय सम्भवतः इसी उद्देश्य से रचा था । भोज ने लक्ष्मी[340] तथा सरस्वती[341] की भी वन्दना की है । गणपति की मन्नत का भी उल्लेख हुआ है ।[342] गणपति,[343] ब्राह्मण[344] आदि की वन्दना की गयी है । इन्द्र का कई बार उल्लेख हुआ है । शिव का सम्भवतः सर्वाधिक उल्लेख हुआ है । शृंगारमंजरीकथा में शिव के पर्याय अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है । हर,[345] शिव,[346] महाकाल,[347] महाकालनाथ,[348] शशिचूड़[349] आदि अभिधानों से शिव का स्मरण किया गया है । शिव भोज के इष्टदेव थे । परन्तु उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भोज अन्य सम्प्रदायों के प्रति भी सहिष्णु था । उनका भी उतना ही हृदय से आदर करता था । धनपाल की तिलकमंजरी से ज्ञात होता है कि भोज जैन सम्प्रदाय की विशेषताएँ जानने तथा उनके आगमों के ज्ञान के लिए भी उतना ही उत्सुक रहता था ।[350] उसके आश्रित धनपाल जैसे कवि थे । प्रबन्धचिन्तामणि तथा प्रभावकचरित से ज्ञात होता है कि भोज ने अनेक जैन साधुओं का अपनी सभा में आदर किया था । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि भोज धार्मिक दृष्टि से कट्टरवादी नहीं अपितु सहिष्णु था ।[351] भोज की दृष्टि से सुगत को सुनना चाहिए, अर्हत् का आचरण करना चाहिए, वैदिक का व्यवहार करना चाहिए तथा परमशिव का ध्यान करना चाहिए ।[352]

भोज का प्रकृति-प्रेम

भोज की साहित्याभिरुचि का प्रकृष्ट रूप उसके प्रकृति-प्रेम में प्राप्त होता है । शृंगारमंजरीकथा में भोज ने विविध स्थलों पर विकीर्ण विस्तार से हेमन्त के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं का सूक्ष्मता से वर्णन किया है । हेमन्त-वर्णन चम्पूरामायण में विस्तार पा सका है । विन्ध्यपर्वत तथा उस पर रहने वाले वन्य प्राणियों का वर्णन स्वाभाविकता से युक्त है । अटवी की भयंकरता में भी स्वाभाविकता अनुस्यूत है ।

भोज की कीर्ति—

भोज का ज्ञानक्षेत्र असीमित था । उसने अपने राज्यक्षेत्र का विस्तार किया तथा सुनियो-

जित शासन-व्यवस्था की। वह महान् निर्माता तथा धार्मिक-सहिष्णु था। भोज का राज्य सांस्कृतिक राज्य कहा जा सकता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार 'भोज का राज्य' कल्चर स्टेट का अनुपम उदाहरण है। दान के द्वारा विद्या और धर्म की उन्नति करना भोज का आदर्श था। भोज के राष्ट्र को एक शब्द में 'काव्य-प्रधान' राष्ट्र कह सकते हैं। समस्त राष्ट्र एक महाविद्यालय या विश्वविद्यालय के समान हो गया, जिसमें शिक्षित समुदाय का कार्य एकमात्र काव्य-साहित्य की उपासना था। विद्या के सार्वभौम मन्दिर में देश और काल की सीमाओं का लोप हो गया।[353] श्री तथा सरस्वती का भोज में अवैर वास था।[354]

भोज का प्रताप प्रखर था। वह कीर्ति का स्रोत[355] तथा यश का वितान था। भोज का यश जगत् में विविध रूपों में विकीर्ण था।[356] उसकी कीर्तिलता[357] के गुणगान में अनेक काव्य निरत हैं।[358] एक कवि कहता है कि अकेली जिह्वा भोज का चरित बखान कर पाने में असमर्थ है अतः जन-जन का अंग-अंग रोमांच के व्याज से उसके चरित का गुणगान करता है[359]—

तुह चरिआइं भणिउ जीहाए जाव नेअ सक्केइ।
ता भोअ जंपइ जणो रोमांच निहेण सव्वंगं॥

भोज की प्रशंसा तथा उनके चरित के उद्घाटक अमित ग्रन्थ परवर्तीकाल में रचे गये।

स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त ने रामचरित की उदात्तता तथा द्रावकता के विषय में अपने ग्रन्थ साकेत में उद्घोषणा की थी[360]—

राम ! तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है॥

लगभग इसी प्रकार की उद्घोषणा भोज के विषय में की गयी है—[361]

तं भणसि वत्थु सूवइ वत्थुए विजायए पुणो कव्वं।
जस्स न सरिसं दीसइ न य जायं नेअ जम्मिहइ॥

भोजप्रबन्ध तथा प्रबन्धचिन्तामणि के एक श्लोक में[362] भोज के व्यक्तित्व के अनेक पक्षों का समाहार करने का प्रयास हुआ है—

कविषु वादिषु भोगिषु देहिषु
द्रविणवत्सु सतामुपकारिषु।
धनिषु धन्विषु धर्मधनेष्वपि
क्षितितले न हि भोजसमो नृपः॥

भोज ने जो साधा, जो विधान किया, जो दिया, जो ज्ञान प्राप्त किया, वह किसी ने भी नहीं। इससे अधिक कविराज भोजराज की और क्या प्रशस्ति की जा सकती है[363]—

साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं तद्यन्न केनचित्।
किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते॥

भोज का युग—

भोज की कृतियों से तद्युगीन सभ्यता का ज्ञान सम्भव है। चम्पूरामायण वाल्मीकि-रामायण के पदचिह्नों पर निर्मित होने से वहाँ ऐसे तथ्यों का प्रायः अभाव है तथापि लेखक अपने परिवेश से सर्वथा मुक्त होकर काव्य-रचना नहीं कर सकता। अतः यथासम्भव उपलब्ध ऐसे तथ्यों

का इस उच्छ्वास में उपयोग किया जाएगा। कूर्मशतम् की प्रशस्ति-काया में कवि ने हमारे लिए ऐसा कुछ भी न छोड़ा जिसके आधार पर भोज के युग पर प्रकाश डाला जा सके। चाणक्य-माणिक्य तथा सुभाषितप्रबन्ध सकलित ग्रन्थ होने से उद्देश्य पूर्ति में सहायक नहीं हो सकते। चारुचर्या से तद्युगीन राजपरिवेश की सुरुचि का ज्ञान होता है। शृंगारमंजरीकथा भोज के युग का दर्पण है। भोजयुगीन साहित्यसमृद्धि, भाषा की उदारता, धार्मिक-रूढियाँ तथा विश्वास, राजकीय तथा सामाजिक परिवेश, भौगोलिक संकेत, ऐतिहासिक सन्दर्भ आदि के साथ ही सुरनिवेश, स्थापत्य, मूर्तिकला, यन्त्रविज्ञान तथा वेश-उपनिषद् की विवृत्ति यहाँ सुलभ है। इन्हीं आधारों पर यहाँ भोजयुगीन भारत का दर्शन किया जाएगा। कल्पलता मुन्शी ने शृंगारमंजरीकथा की भूमिका में यह प्रयास किया है।[364] प्रस्तुत प्रबन्ध में भोज की अन्य कृतियों का भी यथासम्भव आश्रय लिया गया है।

भौगोलिक सन्दर्भ—

शृंगारमंजरीकथा में उत्तर पश्चिम के पेशावर की परितः भूमि उद्यान से दक्षिण के सिंहलद्वीप, तथा कच्छ के आसाम के प्राग्ज्योतिष् तक के विस्तृत भूभाग के मध्यवर्ती देशों के उल्लेख इस ग्रन्थ में प्राप्त होते हैं। अवन्ति, कच्छ, नेपाल, पंचाल, मगध तथा मलय देशों का इसमें उल्लेख है। अवन्ति क्षेत्र मालव का अपर अभिधान है। इसकी राजधानी उज्जयिनी सुप्रसिद्ध है। बाणभट्ट की कादम्बरी के समान शृंगारमंजरीकथा में भी उज्जयिनी का परिचय इसी रूप मे दिया गया है[365]—

अस्त्यवन्तिषु श्रीमत्युज्जयिनी नाम नगरी।

इसमें स्थित महाकाल का भी उल्लेख हुआ है।[366] यहाँ के एक शिवतड़ाग का भी उल्लेख किया गया है।[367] उज्जयिनी के उल्लेख के साथ सर्वत्र विक्रमार्क, विक्रमादित्य अथवा साहसांक का भी उल्लेख हुआ है। कच्छ तथा नेपाल आज भी इन्हीं नामों से पहचाने जाते हैं। नेपाल में कस्तूरी की बहुलता व्यक्त की गयी है। अहिच्छत्र (उत्तरप्रदेश के बरेली जिले का आधुनिक रामनगर,) उत्तरी पंचाल की राजधानी थी। प्राचीन मगध आज का दक्षिण बिहार है। मलय आधुनिक मलाबार, कोचिन तथा ट्रावनकोर है। हस्तिनागपुर हस्तिनागपुर से अभिन्न है, जो दिल्ली से उत्तरपूर्व मे है। गंगातट के एक अग्रहार हस्तिग्राम का भी उल्लेख हुआ है। कौशाम्बी वत्स देश की राजधानी थी। वत्स का प्रसिद्ध राजा उदयन था। यह प्रयाग से 30 मील दूर यमुना तट पर आज कोसम है। प्राग्ज्योतिष् आसाम का गौहाटी नगर है जहाँ कृष्णागरु की बहुलता व्यक्त की गयी है। तामलिप्ति अथवा ताम्रलिप्ति बंगाल के मिदनापुर जिले का तामलुक है। कुण्डिनपुर आज अमरावती के निकट का कौण्डिन्यपुर है। यह प्राचीन विदर्भ की राजधानी थी। वत्सगुप्त भी विदर्भ का ही नगर था जिसे आज अकोला जिले के बसिम के रूप में पहचाना जा सकता है। नासिक्य आज का नासिक है। लाट दक्षिण गुजरात है। केरल मलाबार क्षेत्र है। कोंकण तथा द्रविड़ देशों का भी उल्लेख हुआ है। कांची कांजीवरम् से अभिन्न है। उरगपुर को कावेरी के दक्षिण तट पर स्थित तिरुचेर-पल्ली,[368] नागपट्टम[369] तथा मदुरा[370] से विभिन्न विद्वान् एकीकरण करते हैं। मैसूर का दक्षिणी भाग चोल है तथा चोल के उत्तर में कुन्तलदेश। मान्यखेट हैदराबाद के निकट का मालखेड है। आठवीं कथानिका का रत्नदत्त पुण्ड्रवर्धन से मान्यखेट जाता है। मार्ग में विदिशा, भइल्लस्वामिदेव-पुर तथा पूर्णपथक भी पड़ते हैं। भइल्लस्वामिदेवपुर के आधार पर ही विदिशा का नाम भेलसा हो

गया। भइल्लस्वामिदेवपुर विदिशा का ही सम्भवतः शाखापुर अथवा उपनगर था। विदिशा आज भी इसी नाम से विख्यात है। पूर्णपथक बरार के परभानी जिले का पूर्णा ग्राम है।[371] सिंहलद्वीप सिलोन है तथा उद्यान स्वात नदी के तट का उड्डयान है। भोज का मध्यदेश के प्रति विशेष आकर्षण था।[372] धारा मध्यप्रदेश के धार नामक जिला स्थान से अभिन्न है। अलका कैलास के निकट बसी काल्पनिक देवनगरी है। शोण आज पटना के निकट बहने वाली सोन नदी का परितः क्षेत्र है।

सुवर्णद्वीप सुमात्रा तथा रत्नद्वीप जावा के निकट का एक द्वीप है।

हिमाचल, कैलास, मेरु, अंजनगिरि, मन्दर, विन्ध्य, रोहणाचल, क्रौंचगिरि, अपरगिरि, मेकल, शुक्तिमन्तपर्वत तथा श्रीपर्वत का उल्लेख हुआ है। मेकल अमरकण्टक से अभिन्न है। जहाँ से नर्मदा का उद्गम होता है। श्रीपर्वत दक्षिण भारत की नल्लमलुर श्रेणी का प्राचीन नाम है। इस श्रेणी के एक स्थान के 'श्रीशैल' अभिधान में अब भी प्राचीन नाम अवशिष्ट है।[373] रोहणाचल सिलोन की आदम श्रेणी अथवा सुमनकूट है। शुक्तिमन्तपर्वत विन्ध्य का एक भाग है।

सरिताओं में कालिन्दी का उल्लेख हुआ है। मेकलकन्यका तथा उसके अपर नाम नर्मदा का भी उल्लेख हुआ है। त्रिपथगा तथा मन्दाकिनी के नाम से गंगा का स्मरण किया गया है। उज्जयिनी की शिप्रा तथा इसकी सहायक गम्भीरा नदी का भी उल्लेख हुआ है जिसका स्मरण कालिदास ने भी किया है। तापनी सम्भवतः ताप्ती है। सम्भ्रमवती का अपर अभिधान श्वभ्रवती है जो आज साबरमती के नाम से प्रसिद्ध है। ताम्रपर्णी दक्षिण की सरिता है जिससे मोती प्राप्त होते हैं।

चम्पूरामायण में वर्णित भौगोलिक स्थान वाल्मीकि-रामायण से अभिन्न है।[374]

एक पथ पुण्ड्रवर्धन से विदिशा एवं पूर्णपथक होकर मान्यखेट जाता था।

यात्रा के साधन, हाथी, घोड़े, खच्चर, बैलगाड़ी इत्यादि थे। गाड़ी पर छाया के लिए प्रायः श्वेतवर्ण का वस्त्र लगा दिया जाता था।[375]

अपूर्व पथिक यदि स्वाध्यायी हुआ तो मठ आदि में ठहरता था एवं राजपुत्र हुआ तो सूने देवालय में।[376] पथिकों को शीत से बचने के लिए प्रपा पर अग्नि-व्यवस्था होती थी।[377] शीत से बचाव में कम्बल तथा सिगड़ी भी उपयोगी होती थी।[378]

नगर तथा निर्मितियाँ—

मोहेनजोदड़ो तथा हड़प्पा से आज तक नगर सतत सारी सामाजिक प्रक्रियाओं का केन्द्र तथा प्रतीक रहा है। आज की भाँति प्राचीनकाल में भी नगर में सारी सुख-सम्पत्ति सुलभ रहती थी।

शृंगारमंजरी का कथा-केन्द्र धारा है। धारा परमारों की राजधानी थी। भोज से पूर्व परमारों की राजधानी उज्जैन थी तथा कुलराजधानी धारा थी। इसे सम्भवतः सर्वप्रथम वैरिसिंह द्वितीय ने अपने अधिकार में किया था।

शृंगारमंजरीकथा में धारा के नगरविन्यास तथा उसकी समृद्धि पर विशद प्रकाश डाला गया है। भोज ने अपने समरांगणसूत्रधार में नगरविन्यास पर एक सम्पूर्ण अध्याय रचा है।[379] जो कौटिल्य के अर्थशास्त्र के नगर-विवरण से अधिक भिन्न नहीं है।

पुरी अथवा नगरी प्राकार तथा परिखा से सुरक्षित होती थी। परिखा कभी-कभी तीन भी होती थी।[380] उसमें अट्टालक, द्वार, अध्व अथवा राजमार्ग तथा रथ्या होती थी।[381] प्राकार हिम जैसा श्वेत था। यह विविध चमकीले पाषाणों से निर्मित था। इस पर स्थान-स्थान पर अटालियाँ या बुर्जें बनी थीं।[382] इसकी प्राचीर पर ऊँचे-ऊँचे कपिशीर्षक अथवा कंगूरे बने थे।[383] प्राकार में मोटे व चौड़े कपाट के चार द्वारों के साथ प्रतोली होती थी। प्रतोली को ही आज पोल कहते हैं।[384] समरांगणसूत्रधार में इसका उल्लेख है।[385]

प्राकार के बाहर परिखा थी। राजमार्ग तथा रथ्या पर विपणी अथवा दुकानें एवं बाजार, प्रासाद तथा सौध होते थे। ये बहुमूल्य पत्थर तथा स्वर्ण से अलंकृत थे। निवास-स्थान प्रासाद, भवन, गृहक, वेश्म तथा सन्निवेशस्थान कहलाते थे।

नगर में अनेक वीरविलासोद्यान, उपवन, उद्यान तथा प्रमदवन, क्रीडाशैल (बनावटी पहाड़ी) तालाब, वापी, पुष्पकरिणी, दीर्घिका, धारागृह (स्नानघर) यन्त्रधारागृह थे। दीर्घिका, संकीर्ण लम्बा तडाग थी। वापी आज की बावड़ी है। तालाब के तटों पर अनेक स्फटिक के घाट थे। प्रासादों के आधिक्य से नगर प्रासादमय दिखाई देता था[386]—

प्रासादमयमिव भुवनतलं केवलं, सौधमय इव नूतनः सर्गावतारो,
विधेर्दीर्घिकामयमिव महिमण्डलं उपवनमयमिव दिशां चक्रवालम्।

प्रासाद समुन्नत तथा सुधालिप्त होने से सौध कहलाते थे।[387] उन्हें प्रधानता के अनुसार कनकसौध, स्फटिकवेश्म, मरकतमणिप्रासाद आदि अभिधान दिये गये थे।[388]

कनकशिखरों[389] तथा चन्द्रशाला[390] का उल्लेख भी हुआ है। भवन अनेक तल अथवा मंजिलों वाले होते थे, जिन पर उत्संग अथवा ढलवाँ छत होती थी। वलभिका (ढलवाँ छत) पर चन्द्रमणि की नालियाँ होती थीं। गारुत्मत तथा दन्तवलभियाँ भी होती थीं। निर्यूह (कंगूरे या कलश या बुर्ज भी) होते थे। भवन पर हंसपालि तथा कपोतपालि होती थी। भित्तियाँ बाहर से सफेद पुती हुई तथा चित्रों एवं बहुमूल्य पत्थरों से अलंकृत होती थीं।[391]

फर्श की वेदिका पर बैठकें बनी होती थी। भवन में प्राङ्गण तथा तोरण अनिवार्य थे। भवनों पर चढ़ने को सोपान तथा प्रकाश के लिए वातायन थे। गवाक्ष अथवा गोखड़े भी बनाये जाते जो वातायन से छोटे होते थे। गाय की आँख जैसी उनकी आकृति होती थी। राजकीय भवनों में आस्थान (सभाभवन) तथा क्रीडामण्डप एवं क्रीड़ा-भवन होते थे। शयनागार तथा अपवारक होते थे। अपवारक गुप्त स्थान होते थे। भूमिगृह तहखाने होते थे अथवा भाण्डागार होते थे। चम्पू-रामायण में रावण के मज्जनगृह अथवा स्नानघर का उल्लेख है। प्रासादों में प्रेक्षागृह भी होते थे।

उद्यानों में कमल-पुष्करिणियाँ होती थीं। वहाँ सेचनकुटी होती थी। जिसे दृति अथवा मशक से छिड़ककर ठंडा किया जाता था। यह ग्रीष्म के लिए निर्मित होती थी। यन्त्र धारागृह जनसामान्य के लिए नहीं होता था। यह काले पत्थर का बना होता था। इसके स्तम्भों पर शाल-भंजिकाएँ होती थीं। स्तम्भों के शीर्ष पर भारपुत्रकों की ऐसी आकृति बनायी जाती थी मानो सारी छत का भार उन्हीं के लिए पर हो। धारागृह शीतल स्थान होता था। इनके साथ ही छोटे तालाब तथा पुष्किरिणियाँ होती थीं, जिनमें यन्त्रनिर्मित कछुए डूबते-उतराते थे। अन्यत्र नकली मछलियों से कृत्रिम बगुले छले जाते थे। देखने को आकुल मछुइयाँ कुछ डर कर जल में पैर धरे

यन्त्रमकर को देख रही होती थी। कमलिनी की कलियाँ खिलाने को लाल मणियों की किरणें डालकर बालरवि का आभास दिया जाता था। इन दृश्यों को कुतूहल से हृदय थामे, अपलक भार पुत्रक (सिर पर भार उठाये पुतले) देख रहे थे। यन्त्रसार (नकली नटों का) तौर्यत्रिक (गायन, वादन तथा नृत्य) चतुरों को भी चकित कर देता था जिनका उपहास करने के लिए भित्ति पर विकसित श्वेत सरोज लगा था। कमलिनी वन के चारों ओर क्रीड़ा-नदी बहती थी।

स्तम्भों पर लगी शालभंजिकाएँ नाना रत्नों से निर्मित होने पर भी एक रत्न से बनी लगती थीं क्योंकि वे परस्पर सुसंहत, सुसंस्थान तथा निविड़ सन्धिबन्ध से युक्त थीं। मरकतमणि की प्रभा से गगन में अन्धकार का आभास करके, फव्वारों से लगातार गिरते पानी एवं यन्त्रपुत्रक के द्वारा बजाये जाने वाले मुरज से वर्षा का आभास होता था। कहीं विकसित खिले सरोज के मध्य मणिनिर्मित हंसी उठती जलधारा को बिस की भ्रान्ति से पकड़ना चाहती है। कहीं मणि की पुतली क्रीडासारिका (नकली मैना) को नचा रही है। कहीं खिले कनेर पर काली मणि के भ्रमरमिथुन गुंजन कर रहे है। कहीं दिन मे भी ज्योत्स्ना के भ्रम से प्यासे, ललचाये अपनी चोंच खोलकर स्फटिक स्तम्भों की कान्तिकिरणों के पान का चकोर प्रयास कर रहे हैं। कहीं पत्रमकरिका के नयनकोर से, कही अधोमुखी मयूरी की चोंच से, कहीं मणिनिर्मित पुतली के दोनों पयोधरों के चूचुक से, कहीं सद्यः स्नाता स्वर्णपुतली की निचोड़ी जा रही कबरी (चोटी, केशसमूह) के केश-छोर से,[392] कहीं मणिनिर्मित विलासिनी के नख तथा मुख से, कहीं रोते बालक के दन्ताग्र(?) से, कही यन्त्रवृक्ष पर चढ़ते वानर के मुख से, कही धरातल से, भित्तिभाग से, भित्तिनलिनी से, (स्तम्भशीर्ष की) कमलिनी से, मणिपुत्रिकाओं से, स्तम्भों तथा उनके शीर्षों से बिसिनीसूत्र के आकार की जल-धाराएँ फूट रही थीं।

चम्पूरामायण के अनुसार रावण के स्नानघर में खड़े स्वर्णस्तम्भशीर्षों पर नूतन स्फटिक की शालभंजिकाओं के करतल पर चन्द्रमणि के कलश बने थे। चन्द्रोदय के साथ ही उन कलशों से जलधारा स्वतः गिरने लगती थी।[393]

यन्त्रधारागृह का वर्णन कादम्बरी, यशस्तिलकचम्पू, तिलकमंजरी आदि में भी हुआ है।[394] परन्तु डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार[395] यन्त्रधारागृह का वर्णन तो संस्कृत साहित्य भर में ऐसा अन्यत्र नहीं है। उसका कुछ स्पष्ट रूप भुवनदेवकृत 'अपराजितपृच्छा' में आया है। स्वयं भोज के अनुसार यन्त्रधारागृह प्राकृत जनों के लिए नहीं होते हैं। वे सीमित तथा विशिष्ट व्यक्तियों के लिए होते हैं।[396] उसकी प्रशंसा में कवि कहता है[397]—

> **इदं नानाकारं कुलभवनमाद्यं रतिपते-**
> **निवासश्चित्राणामनुकरणमेकं जलमुचाम् ।**
> **पयःपातैर्ग्रीष्मे रविकरपरीतापशमनं**
> **न केषामत्यर्थं भवति नयनानन्दजननम् ॥**

शृंगारमंजरीकथा के प्रारम्भ में बताया गया है कि भोज तथा उसके साथी प्रमदवन के धारागृह में चन्द्रकान्तमणि की मध्यभूमिका (चौकी) पर बैठे थे।

स्पष्ट ही यन्त्रविज्ञान का भोज ने इस कृति में असाधारण विवरण दिया है। यन्त्रपुत्रक के द्वारा भोज का वर्णन करवाना भी उस युग के लिये अचरज की बात है। प्रतिबिम्ब लेने के लिए पत्तनिका का उपयोग करना भी विचित्र है। उसे खोलकर देखा जा सकता था।[398]

शृंगारमंजरीकथा में 'भोजराज द्वारा किये गये वर्णन की शब्द-समृद्धि विलक्षण है। इन वर्णनों की एक विशेषता यह है कि इनमें स्थापत्य की तत्कालीन शब्दावली को समस्त पदों और वाक्यों में बड़े कौशल से ढाल दिया गया है। भारतीय कला-शब्दावली-कोष की यदि रचना की जाय तो उसके लिए यह सामग्री बहुमूल्य सिद्ध होगी।'[399]

चम्पूरामायण में सेतुनिर्माण की प्रक्रिया का संकेत दिया गया है। सेतु बनाने से पूर्व अभीष्ट स्थान का सर्वेक्षण किया जाता है तथा नाप कर चिह्न बना दिये जाते है। चिह्न के रूप में शंकु अथवा कील गाड़ दिये जाते थे।[400] सम्भवतः युद्ध के अवसर पर शत्रुओं का पथ रोकने के लिए सेतु तोड़ दिये जाते थे।[401]

राजकीय प्रशासन–

सार्वभौम राज्य का स्वामी चक्रवर्ती कहलाता था। उसकी राजधानी सार्वभौम नगरी कहलाती थी।[402] वह अपने पड़ौसी राजाओं तथा उनके राज्यों पर शासन करता था। 9वीं कथानिका में उरगपुर के राजा का एक सार्वभौम नरेश के रूप में विवरण प्राप्त होता है[403] —84 सामन्तों, 12 मण्डलेश्वरों, 36 राजकुलिकों,[404] 72 वन्यग्रामों के स्वामियों. 24 कार्वाटिक (दुर्ग के आसपास बसने वाले गाँव) शिल्पी, 21 कोंकण तथा 36 वेलाकुल (बन्दरगाहों के स्वामी) पर उसका आधिपत्य था।

सारा राज्य अनेक मण्डलों में विभाजित होता था जिसका अधिकारी मण्डलेश्वर कहलाता था। मण्डल भोग तथा विषय में विभाजित होते थे। विषय की देखरेख सामन्त करते थे। दण्डपाशिक तथा महत्तम का उल्लेख भी इन्हीं के साथ हुआ है। भोग पथक में विभाजित होते थे। मलय विषय तथा पूर्णपथक का उल्लेख प्राप्त होता है।

चारुचर्या में अमात्य तथा राजपुत्र का उल्लेख हुआ है। चम्पूरामायण में दशरथ अपने अमात्य से मित्रवत् आचरण तथा परिहास करता है। चाणक्यराजनीतिशास्त्र में राजा तथा उसके राष्ट्रपालन पर विचार किया गया है।[405]

धर्म तथा अर्थ के प्रति उसे प्रवृत्त होना चाहिए।[406] राजा को द्यूत, मृगया, स्त्री वृथाटन, निद्रा आदि का व्यसन नहीं होना चाहिए।[407] उसे शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए।[408] पुत्र, सेवक, मन्त्री, पुरोहित तथा इन्द्रियाँ राजा के वश में होना चाहिए।[409]

कुल, शील, गुण तथा कर्म से परीक्षा के पश्चात् ही किसी को राजकीय कार्य में नियुक्त करना चाहिए।[410] वहाँ सेनाध्यक्ष,[411] भाण्डाध्यक्ष,[412] प्रतीहार,[413] लेखक,[414] दूत,[415] गञ्जाध्यक्ष अथवा गुंजाध्यक्ष,[416] सूपकार,[417] भिषक्,[418] आचार्य,[419] पुरोहित,[420] लेखक, पाठक, गणक, प्रतिवोधक, ग्रहमन्त्रप्रयोक्ता आदि तथा राजा का कालज्ञ,[421] मन्त्री,[422] अन्तःपुररक्षक,[423] आदि राजा के परिजनों में परिगणित किये गये हैं। आलसी, मुखर, स्तब्ध, क्रूर, व्यसनी, शठ, असंतुष्ट, अभक्त, लोभी, अप्रगल्भ, कुरूप, दुर्मति, पापी, द्विजिह्व, उद्वेगकारी आदि को राजकीय सेवा में नहीं लेना चाहिए।[424] अर्थ, सामर्थ्य, मन्त्रज्ञान, व्यवसाय आदि में राजा की समता करने वाले भृत्य को नियुक्त नहीं करना चाहिए।[425]

शत्रु-शंका से दुर्ग में सदा घास, इन्धन, अन्न, शस्त्र आदि रखना चाहिए।[426] सन्धि छः मास अथवा एक वर्ष के लिए ही करना चाहिए। अपना बल देखकर शत्रु का पतन कर देना चाहिए।[427] मन्त्रीवर्ग की आँखों में प्रसन्नता, मुख में माधुर्य तथा हृदय में कार्य-निश्चय होना

चाहिए।[428] राजा को सज्जन, विनीत, पण्डित, धर्मज्ञ, सत्यवादी आदि की संगति करना चाहिए, खलों की नहीं।[429] राजा को धीरे-धीरे अपने कोप का परिवर्धन करना चाहिए।[430] उसे आय का तीसरा भाग खर्च करना चाहिए।[431] राजकीय आदेशों की प्रामाणिकता के लिए मोहर की आवश्यकता होती थी।[432]

प्राय: विजेता नृप अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे तथा विलास में भी लीन रहते थे। राज्यपालन, शास्त्रविचार आदि के साथ हाथियों का युद्ध, घुड़सवारी, सायकाभ्यास, युद्धावलोकन तथा शस्त्राभ्यास भी करना पड़ता था। सेना की कवायद होती थी। कवायद के मैदान को खुरुल्लिका कहते थे। उसी मैदान में राजा भी शस्त्राभ्यास करते थे।[433] मृगया, उद्यानविहार, जलक्रीड़ा, प्रणयिनीसमागम, प्रणयगोष्ठी, प्रेक्षा आदि नृपों के मनोरंजन के साधन थे। सैनिकों के मनोरंजन के लिए ही वीरविलासोद्यान की भी व्यवस्था रहती थी।

राजा कलाविद् विविध ज्ञानों का वेत्ता, धर्म तथा नीति का आचरण करने वाला तथा सन्तुलित जीवन व्यतीत करने वाला होना चाहिए।[434] भोज की अपनी विद्वत्परिषद् थी। स्वयं राजा भी उसमें प्रत्यक्ष भाग लेता था। वह काव्य सुनता तथा सुनाता था। शृंगारमंजरीकथा भी ऐसी ही गोष्ठी का परिणाम है।[435] राजशेखर की काव्यमीमांसा के अनुसार राजपरिवेश में विद्वत्परिषत् आवश्यक है।[436]

राजकीय परिषद् होने पर भी राजा के सर्वाधिकार सुरक्षित थे। वह यदृच्छया उपहार दे सकता था। विक्रमादित्य के द्वारा पाँचवीं कथानिका की देवदत्ता तथा छठी कथानिका की लावण्यसुन्दरी को हाथी उपहार में दिये जाते हैं। ग्यारहवीं कथानिका में समरसिंह सुन्दरक को 4000 तथा 8वीं कथानिका में पूर्णपथक का राजा 1000 गाँव रत्नदत्त को प्रदान करने का प्रस्ताव करता है। कभी-कभी अपने स्वार्थ के लिए ये नरेश निरपराधों पर भी मिथ्या आरोप लगाकर उन्हें दण्डित करते थे। छठी कथानिका के तैलिक पर इसी प्रकार का, तैल में मिलावट करने का मिथ्या आरोप लगाया गया था।[437]

अन्य राज्यों से युद्ध करना राजाओं का प्रमुख कार्य था। और इस धुन में वे साहित्य की ओर ध्यान नहीं दे पाते थे। शृंगारमजरीकथा में एक ऐसे नृप का उदाहरण है जो निरन्तर सैनिक तथा राजकीय कर्त्तव्यों में निरत होते हुए भी काव्यसाधना में लीन रहा।[438]

सामाजिक परिवेश—

भोज ने समाज का स्वस्थ चित्र प्रस्तुत किया है। इसी काल (1030 ई०) अल्बरुनी ने भारत-यात्रा की थी। उसके यात्रा-विवरण से भी इसकी पुष्टि होती है। नगर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कायस्थ आदि रहते थे। उच्चकुलीन व्यक्ति भी दुष्कर्मों में प्रवृत्त हो जाते थे। ब्राह्मणों की बस्ती में सारा वातावरण ही ब्राह्मणमय लगता था। श्रोत्रिय विविध मन्त्रों को पढ़ने में व्यस्त रहते थे। खिल तथा निगम का भी पाठ होता रहता था। श्रुति, स्मृति, व्याकरण, पुराण, इतिहास आदि की व्याख्या होती रहती थी। विद्वान् ब्राह्मण राजकीय सहायता पाते थे, फलत: उनके पास अमित वित्त होता था।[439] श्रुति तथा स्मृति के द्वारा निर्दिष्ट पथ का वे अनुसरण करते थे।

प्राय: कन्या की अपेक्षा पुत्रोत्पत्ति श्रेष्ठ मानी जाती थी।[440] बालक को यज्ञोपवीत पहनाते तथा सोलह वर्ष की अवस्था तक वे अपना अध्ययन समाप्त कर लेते थे।[441] इन ब्राह्मणों के

अग्रहार प्राप्त होते थे। गंगातट पर हस्तिग्राम ब्राह्मणों का अग्रहार प्राप्त ही था।[142] ये ब्राह्मण शिक्षा से अपना निर्वाह कर लेते थे।[143] कतिपय सम्पन्न ब्राह्मण भी होते थे। विष्णुदत्त राजा हो गया था तथा माधव सिंहल से व्यापार कर लौटा था। सोमदत्त तथा उसका पुत्र रविदत्त भी सम्पन्न ब्राह्मण था। वेश्या के घर जाना ब्राह्मण जाति के लिए अनुचित नहीं माना जाता था।[144] भोज के अनुसार उस काल के ब्राह्मण भोजन-प्रिय होते थे।[145] उस समय के ब्राह्मण अपनी उदात्तता से गिर चुके थे।[146]

राजा, राजकुमार, सामन्त तथा दरबारी क्षत्रिय होते थे। राजा अन्य वर्ण का भी हो सकता था। मगध का राजा विष्णुदत्त जाति से ब्राह्मण था। पहले कहा जा चुका है कि स्वयं भोज भी जाति से ब्राह्मण था। ये धनी तथा विलासप्रिय थे।

वैश्य कला तथा विज्ञान के वेत्ता होते थे। रत्नदत्त गजविद्या, अश्वविद्या, वणिक्कला, द्यूतरहस्य, वैशिकोपनिषद्, चित्र, पत्रच्छेद्य, पुस्तककला आदि में निष्णात था।[147]

कायस्थ, शाकुनिक, मोहनविद्या तथा इन्द्रजालिका विद्या का भी उल्लेख उपलब्ध होता है। इन्द्रजाल में वहाँ की पींछी उपयोग में ली जाती थी।[148] तैलिक, वैद्य, कर्षकजन, लोहकार, तन्तुवाय, सभिक, सूना अथवा वधशाला, नापित, व्याध, आदि का उल्लेख हुआ है।[149] कर्पटिक, वेलाकुल, कलमगोपिका के उल्लेख के साथ ही शबर तथा उन जैसे किरात, बर्बर, भिल्ल आदि जंगली जाति तथा उनके निवास का भी उल्लेख किया गया है।[150] पाताल-कन्या का भी उल्लेख हुआ है।[151]

इनके अतिरिक्त नागरक जन विट, धूर्त, डिण्डिक, कदर्य, भुजंग, पाषण्डी आदि का उल्लेख भी उपलब्ध होता है जिनका विवरण पाँचवें उच्छ्वास में दिया जा चुका है।

शृंगारमंजरीकथा में समाज के एक महत्त्वपूर्ण अंग[152] वेश्याजनों की विशिष्ट विवृति है। ये सारी कला में निपुण तथा सुन्दरता की आदर्श होती थीं। उनके लम्बे अलक सदा सामयिक पुष्पों से अलंकृत होते थे। उनके परिधान आकर्षक होते थे। ताड्ङक, दन्तपत्र, कुण्डल आदि उनके कर्णाभूषण थे। पुष्पमाला, हार आदि कण्ठाभूषण थे। वलय, कंकण, केयूर आदि उनके कराभूषण थे। पैरों में वे नूपुर पहनती थीं। कर्पूर, कुंकुम, चन्दन, आलता आदि का विभिन्न अंगों में लेप किया जाता था। नृत्य, गीत तथा वाद्य में वे प्रवीण होती थीं। वे राजसभा तथा देवालय में नृत्य करती थीं। शृंगारमंजरीकथा में वेश्या, वेशवनिता, वेशविलासिनी, पण्यरमणी, वेशप्रमदा, पण्यांगना, दारिका, साधारणी, गणिका, वेशयुवति आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।[153] समाज में इनका स्थान साधारण नहीं था। ये विदुषी तथा राजपरिवार एवं सम्पन्न परिवारों से सम्बद्ध रहती थीं। भोज ने इस वर्ग का आदर्श शृंगारमंजरी के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके द्वार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा कायस्थ सभी जाते थे। शृंगारमंजरी की एक रात की भाटि अथवा ग्रहणक 500 सुवर्ण-मुद्राएँ होती थीं।

वेश्या की माता कुट्टनी होती थी। इसका आदर्श विपमशीला के रूप में प्रस्तुत हुआ है। आगन्तुकों तथा कभी-कभी अपनी वेश्या-पुत्रियों के लिए भी कष्टकारिणी हो जाती थीं। फलतः त्रस्त होकर इनके एवं प्रायः चरित्रहीन स्त्रियों के स्वामिमानी नाक-कान अथवा नाक-ओष्ठ काट लेते थे।[154] शृंगारमंजरीकथा में ऐसे कई प्रसंग उपस्थित हुए हैं।[155] साथ ही इनकी दासी, परिचारिका, सखी आदि के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

मनोरंजन—

मनोरंजन-स्थल वेश्यागृह के अतिरिक्त टिण्टा (द्यूतशाला), रंगशाला, क्रीड़ागार, क्रीड़ा-भवन, देवगृह, देवालय अथवा देवायतन होते थे। उद्यान, जलमज्जन, मृगया, कन्दुकक्रीडा, दोलान्दोलन, नृत्य, नाट्य आदि होते थे। वीरों के लिए वीरविलासोद्यान होते थे।

टिण्टा में धनाढ्य लोग द्यूत खेलते थे। सभिक हार-जीत के धन का हिसाब कर उसे द्रम्म के रूप में चुका देता था।[456] द्यूत खेलने का फलक होता था जिस पर अक्ष या पासे फेंके जाते थे।[457]

प्रश्नोत्तर-प्रहेलिका, वाकोवाक्य, समस्या, प्रबन्ध एवं काव्य तथा गाथा का निर्माण, वक्रोक्ति, गीत, वाद्य, नृत्य आदि विद्वद्गोष्ठी के विनोद थे। राजप्रसादों में नृत्य किये जाते थे। ऐसे नृत्य प्रायः गणिका नर्तकियाँ करती थीं। क्षुरिकानाट्य जगद्विलक्षण तथा सौष्ठवैकसाध्य माना गया है जिसमें थोड़ी सी भूल से नर्तक आहत हो सकता है।[458] देशी नत्त का भी नर्तन किया जाता था।[459]

धार्मिक विश्वास—

कई महोत्सव मनाये जाते थे। यात्रामहोत्सव या कामोत्सव वसन्त ऋतु में मनाया जाता था।[460] सूर्यपूजा,[461] आशापुरा,[462] विन्ध्यवासिनी,[463] सरस्वती,[464] वशीकरणविद्या की अधि-देवता,[465] उज्जैन के महाकाल,[466] गणपति[467] आदि देवताओं का उल्लेख है। विष्णु तथा उनके अवतार नृसिंह, वराह, कूर्म, राम, कृष्ण आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। कूर्म की प्रशस्ति में कूर्मशतम् भी रचा गया। प्रत्येक घर में कामिनियाँ कामदेव की अर्चना करती थीं।[468] कामदेवायतन का उल्लेख कादम्बरी, मृच्छकटिक प्रकरण, पद्मप्राभृतक तथा पादताडितक भाण में प्राप्त होता है।[469] पादताडितक में मकरयष्टि का भी उल्लेख है।[470] विदिशा से शुंगयुगीन मकरयष्टि प्राप्त हुई है। मनोकामना-पूर्ति के लिए गणपति से मन्नत ली जाती थी।[471] भोज के समय में धारा में वाग्देवी की प्रतिमा स्थापित की गयी थी तथा उस मन्दिर का नाम सरस्वतीकण्ठाभरण रखा गया था। पाषण्ड अनेक थे।[472] पाशुपत पाषण्ड धारण करने वाले को हीनसत्त्व कहा गया है।[473] कालमुखों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[474] स्वयं भोज का पाशुपत सम्प्रदाय का सम्यक् विवेचन करने वाला तत्त्वप्रकाश ग्रन्थ है। व्रती लोग मुंज की मेखला बाँधते थे।[475] कलिकाल पर अश्रद्धा व्यक्त की गयी है।[476] जैन धर्म के प्रति भी वह उदार था[477] तथा अन्य धर्मों के प्रति भी उसका उदारतापूर्ण दृष्टिकोण था।[478]

देवालय प्रायः खुले तथा सूने रहते थे, जहाँ श्वान आदि अवसर पाकर मूर्ति पर चढ़ी माला को भी उठा ले जाते थे।[479]

भूत अथवा वायु लगे व्यक्ति का शरीर ऐंठ जाता था।[480] मन्त्रवादियों में कपालशिख प्रसिद्ध था।[481]

भाषागत उदारता—

भाषागत उदारता दृष्टिगत होती है। शृंगारमंजरीकथा में प्राकृत तथा अपभ्रंश के शब्दों का भी अनेक स्थानों पर यथावत् अथवा संस्कृत-रूप में प्रयोग किया गया है।

दैनिक सदाचार—

चारुचर्या से हमें तद्युगीन अभिरुचि का विशद ज्ञान होता है। राजपुत्र तथा सज्जन एवं

अमात्य जनों के लिए इसमें विशेष निर्देश हैं। तदनुसार स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। दन्तधावन, स्नान आदि का विवरण प्राप्त होता है। उत्तमांग उष्ण जल से नहीं धोया जाता था। स्नान के पश्चात् तौलिये से उद्वर्तन किया जाता था। शीतकाल में कौषेय, ग्रीष्मकाल में कषाय तथा वर्षाकाल में श्वेत वस्त्र धारण करना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक माना गया है। साथ ही मजीठे, चितकबरे, लाल, पीले आदि वस्त्र भी पहने जाते थे। मलिन, परवस्त्र, स्त्रीवस्त्र, खण्डित वस्त्र, मूषकविद्ध तथा अग्निदग्ध वस्त्र पहिनना दोषपूर्ण माना जाता था।

अपनी शक्ति के अनुसार आभूषण पहने जाते थे। कांचन का आभूषण तो किसी भी अवस्था में पहनना आवश्यक माना गया है।[482] देवतुष्टि के लिए भी विविध आभूषण पहने जाते थे। ये स्वर्ण तथा नवरत्नों से निर्मित होते थे। एकावली, मुक्ताहार, रुद्राक्षमाला, पद्माक्षमाला, सुवर्णमाला, कर्णाभरण, अंगूठी, नूपुर, मेखला, कंकण आदि धारण किये जाते थे।

दान, तीर्थ तथा उपवास से धर्मसंग्रह किया जाता था। सिर पर फूल लगाये जाते थे। बालों में कस्तूरी लगायी जाती थी। केतकी, जाती, नेपाल, कुटज, पाटल, शतपत्र, बकुल, चम्पक, श्रीकण्ठ, कस्तूरी, मन्दार, मरुव, नीलकमल, लालकमल, यूथिपुष्प (जुही), मेंहदी, कनेर, माधवी अथवा कुरुविन्द, पांचारिका, पुन्नाग आदि के पुष्प धारण किये जाते थे। हेमन्त तथा शिशिर में शतपत्र के पुष्प, वसन्त में केतकी के पुष्प, ग्रीष्म में चमेली तथा कुटज के पुष्प, वर्षा में गुलाब, तथा शरद् में कमल का उपयोग करना श्रेष्ठ समझा जाता था।

पानी मिला चन्दन-कपूर का मिश्रण ग्रीष्म में सुखदायी माना गया है। कस्तूरी, चन्दन, कपूर, कुंकुम का मिश्रित लेप भी श्रेष्ठ माना गया है। शिशिरकाल में कस्तूरी, कुंकुम, लाल तथा काला चन्दन एवं जपा का मिश्रित लेप लाभदायी माना गया है। वसन्त में घुसृण (केसर), कस्तूरिका, चन्दन, नवमल्लिका का मिश्रित लेप मनोरम माना गया है।

देवों तथा पितरों की अर्चना कर भोजन किया जाता था। भोजन, सोना, चाँदी अथवा कांसे के पात्रों में किया जाता था। कदली, पलाश आदि के पत्रों में भी भोजन किया जाता था।

भोजन के पश्चात् शतपद चलकर ताम्बूल चबाकर वामभाग से सो जाते थे।

मोटी, दुबली, कुशीला, विधवा, परस्त्री, अत्युत्कृष्ट अथवा हीन, पुत्र-मित्र-अनुज की स्त्री, कन्या आदि की ओर कुदृष्टि नहीं रखी जाती थी। स्त्री का ऋतुकाल पर ही सेवन किया जाता था।

दीर्घजीवन का मूलमन्त्र था[483]—

एकशायी द्विभोजी च षण्मूत्री त्रिपुरीषकः।
स्वल्पसंगमकारी च शतवर्षाणि जीवति॥

परद्रव्य, परस्त्री, परनिन्दा, असत्य, परद्रोह, अमित्रभाषण, परस्त्री से वार्तालाप, असूया पतितों का साथ, क्रोध, आत्मस्तुति आदि अग्राह्य थे। धर्मशास्त्र तथा पुराण का श्रवण एवं आत्माभ्यास पर जोर दिया जाता था। समाज में विद्वान् ब्राह्मणों का आदर था।[484] नीति, वैद्यक तथा धर्मशास्त्र के अनुसार जीवन-यापन करना ही श्रेयस्कर समझा जाता था। यही दीर्घजीवन का रहस्य माना जाता था।

धारा के नागरिक—

स्वास्थ्य एवं सदाचार के इन मानदण्डों का अनुसरण धारा के नागरिक करते थे। भोज के

नागरिक व्यवहार कुशल, क्षमाशील, तापरहित, सौम्य, अविधुर, स्वर्णाभूषण से सुशोभित, शुचि, अनुग्र, निर्मल-वसन धारण करने की रुचि वाले, महिमाशाली, कष्टरहित, शोकरहित, सरल, पूर्ण, शोभित कण्ठ वाले, मित्रों को आनन्दित करने वाले, तेजस्वी, दीर्घायु, धनी, क्रोधरहित, प्रकृति के अनुसर्ता, स्वस्थ तथा सारे रत्नों के अलंकारों से अलंकृत थे ।[485]

सारांश यह है कि भोज की साहित्यिक कृतियों में उसके युग का चित्र प्रस्तुत हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि भोज का युग सुरुचि-सम्पन्न था । ब्राह्मण धनी व गरीब दोनों प्रकार के थे । गरीब ब्राह्मण भिक्षाटन से जीविका चलाते थे । क्षत्रिय राजन्यवर्ग में थे । वैश्य धनाढ्य थे । अन्य जातियाँ अनेक थीं । धनी विलासी थे । वेश्याओं की संगति लोक-दृष्टि से अच्छी नहीं मानी जाती थी । गृहस्थ महिलाएँ भी आवश्यकता होने पर वेश्याचरण कर लेती थीं । कुलांगनाएँ भी सामान्य जनों के प्रेम में फँस जाती थीं । वेश्या भी कभी-कभी सात्त्विक प्रेम से युक्त होती थीं । वेश्याएँ सम्पन्न सुशिक्षित तथा चतुर होती थीं । कभी-कभी उन्हें भी धूर्त-जन ठग जाते थे । अनेक देवी-देवता पूजे जाते थे । अनेक सम्प्रदाय प्रचलित थे । अन्धविश्वास भी बद्धमूल हो गये थे । द्यूत खेले जाते थे । ज्ञानविज्ञान की अनेक शाखाएँ प्रचलित हो गयी थीं । राजनैतिक दृष्टि से कौटिल्य के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रायः यथावत् पालन होता था । राजसेवा, व्यापार आदि से वित्तार्जन किया जाता था । प्रायः लोग अपना पैतृक धन्धा ही करते थे । जो साहसी होते थे, वे ही अन्य धन्धों में हाथ डालते थे । सम्पन्न होने पर भी योग्य पुत्र निष्क्रिय होकर पिता के लिए भार नहीं बनता था । मुद्राओं में द्रम्म, पल तथा सुवर्ण प्रथित थे । सुवर्णद्वीप, रत्नद्वीप तथा सिंहलद्वीप से व्यापार होता था । प्रतिशोध की भावना बद्धमूल थी ।[486]

सन्दर्भ

1. ए० इ०, भाग 18, पृ० 99–114, श्लोक 16
2. कनककान्तिच्छुरितमरकतप्रभाभिरामदेहः । शृं० क०, पृ० 8
3. भोज की उपाधि अवनिकूर्म भी थी । अवनिकूर्म का वर्ण भी भोज ने लगभग ऐसा ही बताया है—सो कुम्मो जो रक्खइ कणयहिकडारदेहवित्थारो ।—अवनिकूर्मशतम्, 2
4. निजभुजोद्दलितदुर्नयरिपु—शृं० क०, पृ० 7
5. सततानिष्कृतसुदर्शनोऽपि दुर्दर्शनः । शृं० क०, पृ० 8
   लावण्यपीयूषसलिलः । पृ० 8
   हरादृदहाद इव विशदकान्तिसम्पदः अभूत प्रसवभूमिः । पृ० 9–10
6. वसतिर्विलासानाम् । शृं० क०, पृ० 8
7. प्रभवो धर्मस्य, वही, पृ० 8
8. ···उत्तुङ्गस्तनभराभोगभित्तिषु समुन्मिषद् घनघारसान्द्रेण चन्दनरसेनालिख्यालिख्यनिर्दय स्त्रीवधपातकादपि न बिभेषि इत्याद्यनेकविधसमुगृहनगताभिरहरहः समुपलभ्यमानः । शृं० क०, पृ० 8
9. नालिनीनालङ्कोन्मूलनकरब्धवर्द्धकविजयकुंजरः । शृं० क०, पृ० 8
10. शौरिरिव मदनजनकः । वही, पृ० 8 तथा द्रष्टव्य छित्तप का यह श्लोक—

    किं वातेन विलङ्घिता न न महाभूतार्दिता किं न न
    भ्रान्ता किं न न सन्निपातलहरी प्रच्छादिता किं न न ।
    तत्किं रोदिति मुह्यति श्वसिति किं स्मेरं च धत्ते मुखं
    दृष्टः किं कथयान्धकारणरिपुः श्रीभोजदेवोऽनया ॥

    —एफ० डब्ल्यू थामस, कवीन्द्रवचनसमुच्चय, पृ० 144, श्लोक 462
    एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, 1912

11. चन्दाओ मुखयंदं तुह कह लोआ इमे पसंसति ।
    कुवलय नयाइं पढमो विअसावइ एस पुण एक्क ॥
    कज्जेण वंकुडेणं तुह मुहयंदेण ससहरो जिक्को ।
    तरुणिनयणुप्पलाइं मउलावं तेण सिरिभोअ ॥
    चरिएहि वंकुडेहि जित्तो आयारवंकुडो चन्दो ।
    तुह मुहचन्दिणा तरुणी नयणुप्पल······॥
    तुह मुहयंदा अगयन्ओ मुहविकहणु पुण एसो ।
    गगन विसंगमे मुंजइ ववइ तवेइ तरुणीउ ॥

    —अज्ञातनामाकाव्य, गाथा क्रमशः 18, 34, 35 तथा 41, ए० इ० ।

12. देवोऽपि······श्रीमान्सः । शृं० क०, पृ० 1
13. चपलराजलक्ष्मीकरेणुकालानपृथुभुजस्तम्भः । शृं० क०, पृ० 8
14. सुनीतिशास्त्रतद्वैद्यधर्मशास्त्रानुसारतः ।
    विरच्यते चारुचर्या भोजभूपेन धीमता ॥—चारुचर्या, प्रथम श्लोक

15. हिताय राजपुत्राणां सज्जनानां तथैव च ।
चारुचर्या इयं श्रेष्ठा रचिता भोजभूभुजा ।। — वही, अन्तिम श्लोक

16. मलिनं परवस्त्रं च स्त्रीवस्त्रं च विशेषतः ।
खण्डं च मूषकैर्विद्धं अग्निदग्धं च वर्जयेत् ।। वही, 24

17. भूषणैर्भूषयेदंगं यथाविभवसारतः ।
शुचिसौभाग्यवृद्ध्यर्थं आयुर्लक्ष्म्याभिवृद्धये ।। —वही, 29

18. ततो भोजनवेलाया सदाचारः सदात्मवान् ।
देवान् पितृन् समभ्यर्च्य कुर्यान्मंगलवीक्षणम् ।। —वही, 126

19. ताम्बूलं चर्वयेद्भुक्त्वा प्रागेव त्रिचतुःसदा । —वही, 157

20. कुरूपिणीं कुशीलां च विधवां च परस्त्रियम् ।
जात्युत्कृष्टां च हीनां च पुत्रमित्रनृपस्त्रियः ।।
त्यजेद्दासकुलोद्भूतां कृशां स्त्रीं कन्यकां तथा ।
वयोऽधिकां स्त्रियं गत्वा तरुणः स्थविरायते ।
तारुण्यरमणीं गत्वा वृद्धोपि तरुणायते ।।
—चारुचर्या, 90–92

21. परद्रव्यं परस्त्रीं च परनिन्दां तथैव च ।
अमित्रभाषणं कार्यं स्त्रियालापं च वर्णयेत् ।।
असत्यवर्जनं कार्यं परद्रोहस्य वर्जनम् ।
वर्जनं चाप्यगम्भाया भक्तस्य च विवर्जनम् ।।
असूयावर्जनं चैव पतितैः संगवर्जनम् ।
क्रोधस्य वर्जन चैव आत्मस्तुतिविवर्जनम् ।।
अनृतं न वदेद् धीमान् प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
धर्मनाशो भवेत्तस्य प्रयाति नरकं ध्रुवम् ।।
अमृतं सत्यमित्याहुरसत्यं विष उच्यते ।
धर्मशास्त्राणि सततं पुराणश्रवणं तथा ।
कारयेद्विधिना सम्यगात्माभ्यासं तु नित्यशः ।।
—चारुचर्या, 12–17

22. कुलाचारं ततः कुर्यात् सन्ध्योपासनमादितः ।
सूर्योपासनतं कुर्यात् सर्वरोगोपशान्तये ।।
धर्मसंग्रहणं कुर्यात् दानतीर्थोपवासकैः ।
स्वपित्रोर्बन्धुदेवानां भ्रातृणां चैव तोषणम् ।।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं सर्वरोगहरं परम् ।
देवब्राह्मणबन्धूनां तर्पणेन प्रजायते ।।
दानं मनोहरं शौर्यमिष्टपूर्तिविवर्धनम् ।
अशेषदेवताभक्तिर्गोषु विप्रेषु तर्पणम् ।।

शुश्रूषणं गुरुस्त्रीणां तपस्तीर्थेषु मज्जनम् ।
विद्याभ्यासेन सततं सततं साधुसंगमः ।।
दीनान्धकृपणेभ्यश्च तपस्वीनां च तोषणम् ।
कुर्याच्च सततं शक्त्या कीर्तिश्र्यभिवृद्धये ।।

चारुचर्या, 46–51

23. यश्च प्रभवो धर्मस्य, आश्रयः सत्यस्य, कुलगृहं कलानाम्, क्षेत्रं क्षत्राचारस्य, प्रमदोद्यानं विद्यालतानाम्, निधानं नीतेः, जीवितं शौर्यस्य, वसतिर्विलासानाम्, आकरः करुणायाः, बान्धवो वैदग्ध्यस्य········रसस्य, धौरेयो धनुर्धराणाम्, अग्रणी गुणवताम् ।

—श्रृं० क०, पृ० 8

24. एतत्कथाकारमिव विराजितपरमारावनीपवंशम् । श्रृं० क०, पृ० 79

25. अग्गी होंतो वंसो निप्पज्जइ जो हु संसओ आसि ।
तस्सावहत्थणं जलणं तो········।।
अग्गीहिंतो सिट्ठिं कट्ठमयं नेय पेच्छ········। प० इ०, पृ० 74

26. पद्मगुप्त परिमल, नवसाहसांकचरित, 11/49–71

27. वासिष्ठेस्म कृतस्मयो वरशतैरस्त्यग्निकुण्डोद्भवो
भूपालः परमार इत्यभिधया ख्यातो महीमण्डले ।
अद्याप्युद्गतहर्षगद्गद्गिरो गायन्ति यस्यार्बुदे
विश्वामित्रजयोज्झितस्य भुजयोर्विस्फूर्जितं गूर्जराः ।।

—धनपाल, तिलकमंजरी, श्लोक 39

28. तिलकमंजरी, 39 तथा श्रृं० प्र०, पृ० 575
29. ए० इ०, भाग 1, पृ० 234, श्लोक 5–7
30. डा० दशरथ शर्मा, परमारों की उत्पत्ति, राजस्थान भारती, भाग 3, अंक 2
31. वा० रा०, अध्याय 54–55
32. पंवार वंश-दर्पण, पृ० 51
33. भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, खण्ड 1, अध्याय 6, श्लोक 45–49
34. पंवारवंशदर्पण, पृ० 50
35. पंवारवंशदर्पण, पृ० 52
36. वही, पृ० 54–56 तथा हिस्ट्री आफ परमार डायनेस्टी, पृ० 9
37. श्रृं० क०, पृ० 9
38. वही, पृ० 8
39. ब्रह्मक्षत्रकुलीनः प्रलीनसामन्तचक्रनुतचरणः ।
सकलसुकृतैकमुंजः श्रीमान्मुंजश्चिरं जयतु ।।

—हलायुध, पिंगल सूत्रवृत्ति तथा रेउ, राजा भोज, पृ० 7

40. उपेन्द्रराजो द्विजवर्गरत्नं शौर्यार्जितोत्तुंगनृपत्वमानः । उदयपुर प्रशस्ति, श्लोक 7, ए० इ०, भाग 1, पृ० 234

41. डा० दशरथ शर्मा, पंवारवंशदर्पण, पृ० 57
42. क्रमवतामग्रेसरः, अग्रगण्यः संग्रामविजयिनाम्, भुवनभारोद्धारक्षमः ।
श्रृं० क०, पृ० 8
43. सततमाश्रयति शतशः संग्रामसीम्नि विजयलक्ष्मीः । वही, पृ० 9
तथा राजमार्तण्ड आयुर्वेद कृति में भी यह बात कही गयी है—
योगानां संग्रहोऽयं नृपतिशतशिरोविष्ठिताज्ञेन राज्ञा,
कारुण्यात्सन्निबद्धा । 2
44. हरिऊण वेरिआसं कुम्मसयं विरइयं तेण ।—कूर्मशतम्, 107
45. भार्गव इव निर्मूलिताखिलक्षुद्रक्षत्रियः । श्रृं० क०, पृ० 8
46. प्रतिदिवसमनवरतमवनमतां नरपतीनां मुकुटतटकोटिविटंकवेदिकोल्लासिभिर्मरकतमणिमयूख-
जालकैरेतदीयकरकमलानां.......। श्रृं० क०, पृ० 8
47. सर्वे यस्य वशाः प्रतापवसतेः पादान्तसेवानति-
प्रभ्रश्यन्मुकुटेषु मूर्वसुदवत्याज्ञां धरित्रीभृतः ।
48. नृपतिशतशिरोविष्ठिताज्ञेन राजा ।
49. क्षमाभृतां भर्ता महाराजाधिराज । श्रृं० क०, पृ० 8
50. श्रृं० क०, श्रृं० प्र०, राजमार्तण्ड, अवनिकूर्मशतम् आदि की पुष्पिकाएँ ।
51. भोज के विविध ताम्रपत्र में उल्लिखित तथा मदन, पारिजातमंजरी, प्रथम अङ्क
52. इति नाममालिकायामहिराजेनैव संगृहीतायां भूम्यादिनामधेयप्रकरणमिदमखिलसुकविमतम् ।
भोजनिघण्टुश्च समाप्तः । —नाममालिका की पुष्पिका
53. सरस्वतीमहल लायब्रेरी, तंजोर, ह० ग्र० क्र० 4791
54. इ० ए० 62, पृ० 120 तथा
ओ० पी० वर्मा, द यादवाज एण्ड देअर टाइम्स, पृ० 27
55. ....नागस्त्रिशंकोदिशं ।
—नागरीप्रचारिणी पत्रिका, अंक 43 सं० 1995
डा० सूर्यनारायण व्यास, अवन्तिका के दो शिलालेख–खण्ड पंक्ति 9
56. डा० बी० सी० एच० छाबड़ा तथा एस शंकरनारायणन्,
राजवल्लभकृत भोजचरित्र, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 17
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1964 ई०
57. वही, पृ० 19
58. श्रृं० क०, पृ० 8
59. अवनिकूर्मशतम्, गाथा, 107
60. नवसाहसांकचरित, 1/90, 18/62 तथा विक्रमांकदेवचरित 9/114
61. शुभशील, भोजप्रबन्ध, 8
62. प्र० चि०, पृ० 25
63. वही, श्लोक 34 तथा बल्लालकृत भोजप्रबन्ध श्लोक 6

64. डा० रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० 124–25,
नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, बनारस, 1956 ई०
65. डा० बी० सी० छाबरा तथा एस शंकरनारायण,
राजवल्लभ के भोजचरित की भूमिका, पृ० 19, द्रष्टव्य लेखक की कृति 'भोजराज'
66. कन्हस्स विरक्खिग्राइं सरिवइणा । तस्स निग्रन्तस्स तए सीसं ग्ररिकेस·······॥
—कोदण्डकाव्य, 13 वीं पंक्ति
कन्हस्स तए नरेंद इह ग्रज्ज । निद्दा दिन्नाएहिं सुहेण सोवेइ वरिसंपि ॥
—कोदण्डकाव्य, 506
तइ मारिऊण ग्रमरो कहं विहिग्रो । वही, 513
भूएहिं वहएहिं लच्छी ववहरइ सच्चभिग्रनार्यं ।
कन्हं भरववइ सिरिभोए ग्रोच्छइ ग्रणुरत्ता ॥ — ग्रज्ञातनामाकाव्य, 17
सिरिवच्छावच्छयलेलक्खिज्जइ कहणु ग्रज्ज कन्हस्स ।
हरिऊण तए लच्छिग्र को दिन्नोव्व पडिहाइ ॥ वही, 42
67. द्वितीय कूर्मशतम्, गाथा क्रमशः 63 व 66
68. ए० इ०, भाग 9, पृ० 113 एफ
69. राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति, ग्रन्तिम श्लोक
70. सत्यं त्वं भोजमार्तण्ड पूर्वस्यां दिशि राजसे ।
— प्र० चि०, पादटिप्पणी, श्लोक 46, पृ० 31
71. रघुवंश 7/20 की संजीविनी टीका
72. भगवतशरण उपाध्याय, कालिदास का भारत, (द्वितीय संस्करण)
प्रथम भाग, पृ० 115–16, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी तथा लेखका भोज तथा कालिदास लेख
73. ए० इ०, भाग 11, पृ० 81
74. तइ रक्खिग्रा तुरुक्का धरणी ग्रज्जं वणे सुसत्तं ।
सिरवेढताण इहं·······। कोदण्डकाव्य, पंक्ति 59 तथा 67
75. चेदीश्वरेन्द्ररथतोग्गलभीममुख्यान् कर्णाटलाटपतिगुर्जरराट्तुरुष्कान् ।
यद्भृत्यमात्रविजितानवलोक्यमौलादोष्णां बलानि कथयन्ति न योद्धृलोकान् ॥
ए० इ०, भाग 1, पृ० 222–38, श्लोक 29
76. चौडः क्रोडंपयोधेर्विशति निवसते रन्ध्रमन्ध्रोगिरीन्द्रे
कर्णाटः पट्टबन्धं न भजति भजते गूर्जरो निर्झराणि ।
चेदिर्लीयतेऽस्त्रैः क्षितिपतिसुभटः कन्यकुब्जो च कुब्जो
भोज त्वत्तन्त्रमात्रप्रसरभयभरव्याकुलो राजलोकः ॥
कोणे कोंकणकः कपाटनिकटे लाटः कलिंगोङ्गणे
त्वं रे कोशलनूतनो मम पिताप्यत्रोषितः स्थण्डिले ।
इत्थं यस्य विवर्धितो निशि मिथः प्रत्यर्थिनां संस्तर-
स्थानन्यासभवो विरोधकलहः कारानिकेतक्षितौ ॥
प्र० चि०, श्लोक 72–73

77. भोजराजेन भोक्तव्यः सगौड़ः दक्षिणापथः।
प्र० चि०, श्लोक 34
एकच्छत्रं करिष्यामि सगौडः दक्षिणापथः। वही, 76
78. इ० ए०, भाग 12, श्लोक 9, पृ० 120. 122
79. ओ० पी० वर्मा, यादवाज एण्ड देअर टाईम्स, पृ० 31, 1970 ई०
80. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 43, संवत् 1995
—अवन्तिका के दो शिलालेख खण्ड
81. द्रष्टव्य, द ग्लोरि देट वाज गुर्जरदेश में सम्बद्ध मानचित्र।
82. वर्मा पूर्ववत्, पृ० 106–107
83. डा० मिराशी द्वारा मुझे दिनांक 6 अगस्त 1970 को मुझे लिखा गया पत्र।
84. ए० इ०, भाग 7, पृ० 250
85. का० इ० इ०, ग्रन्थ 4, भाग 1, पृ० 263–75 तथा इण्ट्रोडक्शन, पृ० 14
86. शाङ्र्गधरपद्धति, श्लोक 1252
87. पृथ्वीराजविजय, 5/67
88. श्रीभोजराजरतित्रिभुवननारायणाख्यदेवगृहे।
चीरवासा लेख, संवत 1330, विएना ओरिएन्टल जर्नल, भाग 21, पृ० 143
नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 3, पृ० 34
89. विक्रमसिंह का दूबकुण्ड लेख, इ० ए०, भाग 18, पृ० 34
90. प्रणयिभिर्नृपतिभिश्चोपास्यमानचरणकमलो.......श्रीभोजदेवः, श्रृं० क०, पृ० 1
91. राहुरिव ग्रस्ततेजस्विमण्डलः।
92. ....स एव तेजस्सविता हि भोजः।
—अभिरामकामाक्षी, अभिनवरामाभ्युदयम्, गवर्नमेण्ट ओ० मे० ला०, मद्रास, भाग 4, खण्ड 1 बी०, पृ० 5203
93. ....भास्वताप्यनतिक्रमणीये रमणीयतायावम् (?) द्दयलाघवमुल्लंघनीये परैरेकपुर इव पृथिव्याः प्राकारतां कलयति प्रतापे परिखाश्रियमाश्रयन्त्यगाधाः परितश्चत्वारोऽपि रत्नाकराः।—श्रृं० क०, पृ० 9
94. भूमेरेकभर्ता, वही, पृ० 8
95. आकैलासान्मलयगिरितोऽस्तोदयाद्रिद्वयादाभुक्ता पृथ्वी पृथुनरपतेस्तुल्यरूपेण येन।
—ए० इ०, भाग 1, पृ० 235
96. सी० वी० वैद्य, डाउनफाल आफ हिन्दू इण्डिया, 1926 ई०, पृ०
97. रेउ, राजा भोज, पृ० 66–67
98. धार स्टेट गजेटियर, पृ० 151, सन् 1908
99. पी० टी० श्रीनिवास अय्यंगर, भोजराजा, अन्नामलाय युनिवर्सिटी हिस्टोरिकल सीरीज, मद्रास, 1931, पृ० 56–57
100. डी० सी० गांगुली. हिस्ट्री आफ द परमार डायनेस्टी, 1933 ई०, पृ० 88
101. द स्ट्रगल फार इम्पायर, पृ० 66
—भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 1957

102. पंवारवंशदर्पण, पृ० 75
103. डा० सूर्यनारायण व्यास, अवन्तिका के दो शिलालेख खण्ड,
—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 43, सं० 1995
104. क० मा० मुन्शी, द ग्लोरी दैट वाज गुर्जरदेश, भाग 3, पृ० 145
105. क्षिप्रं मालवचक्रवर्तिनगरी धारेति को विस्मयः।
—चालुक्यों की बड़नगर प्रशस्ति, ए० इ०, भाग 1, पृ० 297
106. जीवितं शौर्यस्य । शृं० क०, पृ० 8
107. क्रमवतामग्रेसरः, अग्रगण्यः संग्रामविजयिनाम्, वही, पृ० 8
108. शृं० क०, पृ० 8
109. वही, पृ० 2
110. कोदण्डकाव्य, आर्या 309
111. आलानं जयकुंजरस्य……। काव्यप्रकाश उदाहरण 427
112. देवेन जयकुंजरकुंभस्थलादाकृष्य….।
प० इ०, पृ० 48
113. चपलराजलक्ष्मीकरेणुकालानपृथुभुजस्तम्भः । शृं० क०, पृ० 8
114. द ग्लोरी दैट वाज गुर्जर देश, पृ० 145
115. त्रिदशराज इव अहितापकारी । शृं० क०, पृ० 8
116. क्षेत्रं क्षत्राचारस्य । वही, पृ० 8
117. हिताय राजपुत्राणां सज्जनानां तथैव च ।
चारुचर्या इयं श्रेष्ठा रचिता भोजभूभुजा ।।
118. प्रकटितधनुर्वेदविद्यारहस्यश्च ……धौरेयो धनुर्धराणाम् । वही, पृ० 8
119. परमार इ०, पृ० 70–78
120. भोजराजभयाज्जातं राधावेधस्य कारणम् ।
धाराया विपरीतं हि सहते न भवानिति ।।—तथा गद्य भाग, प्र० चि०, पृ० 31–3
121. जिनविजयमुनि, पुरातन प्रबन्धसंग्रह, पृ० 20— सिंघी जैन, ग्रन्थमाला, 2, 1936 ई०
122. भृगुरिवासिधेनुविद्यालतानामेकभवनम् ।—शृं० क०, पृ० 8
तथा द्रष्टव्य–अथासिपुत्रच्छुरिका सातिदीर्घासिधेनुका । नाममालिका, 515 वीं पंक्ति
123. यस्य च कृपाणं उज्ज्वलवैडूर्यसोदरच्छायसलिलमुल्लसद्विपुलपुष्कराभिरामशोभमुद्भवत्कुमुदमधिकविकसत्कुवलयश्रीकमलकमलिनीदलश्यामलमगाधम् । शृं० क०, पृ० 9
124. प० इ०, पृ० 79–81
125. युक्तिकल्पतरु, पृ० 140–171
126. वही, पृ० 175
127. उन्मदकरिकुम्भकूटकुट्टाकविकटकरवालनखरो नृसिंहः । शृं० क०, पृ० 8
128. वही, पृ० 46–47
129. युक्तिकल्पतरु, पृ० 193 से 206
130. (अ) श्वखुरोत्खन्यमानस्फटिकशिलासंक्रान्तोद्यद……। शृं० क०

131. वही, पृ० 36–37
132. युक्तिकल्पतरु, पृ० 181–193
133. शिशुपालवध, 5/10,60 की मल्लिनाथ विरचित टीका
134. राजेन्द्रलाल मित्र, हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकों के नोटिस, क्रमांक 576
135. निधानं नीतेः/शृं० क०, पृ० 8
136. बान्धवो वैदग्ध्यस्य । वही, पृ० 8
137. यस्य चातिप्रज्ञाप्रकर्षमालोचयतां विपश्चितां गिरि न गरिमाणमारोहति
 गुरुः, न प्रति (भासते प्रतिभा) वान् भार्गवो, नोद्धवमतिवर्धयत्युद्धवः
 श्रयते (?) न प्राज्ञगणनां चाणक्यः, न कुशाग्रीयबुद्धितामधित्रयति धर्मकीर्तिः ।
 वही, पृ० 9
138. अग्रणी गुणवताम् । वही, पृ० 8
139. गुणकलापेनालंकृतः । वही, पृ० 9
140. देवोप्यखिलजनतासुबन्धुः श्रीभासो गुणाढ्यः । वही, पृ० 1
 नवसाहसांकचरित में भी गुणाढ्य शब्द का इसी प्रकार प्रयोग हुआ है—
 श्रुता गुणाढ्यस्य बृहत्कथा तव । 7/
141. आकरः करुणायाः । शृं० क०, पृ० 8
142. देवोप्यखिलजनतासुबन्धु । वही, पृ० 1
143. अंगारक इव वसुधानन्दनः । वही, पृ० 7
144. चतुर्विंशतिरट्टानामेवं पुरि च सूत्रिणा । प्रभावकचरित, 18/134
145. चतुर्भिरधिकाशीतिः प्रासादानामिह स्थिता ॥
 चतुष्पथानि तत्संख्यानि च प्रत्येकमस्ति च ।
 —प्रभावकचरित, 18/133–134
146. चतुरशीतिचतुष्पथसुरसदनप्रधाने……। प० इ०, पृ० 46
147. स चतुरशीतेः सामन्तानां……चतुर्विंशतेः कार्वटानां……आधिपत्यमकरोत् ।
 —शृं० क०, पृ० 66
148. प्र० चि०, पृ० 32
149. वही, पृ० 39
150. मालवीयेषूज्जयिनीं गतैरस्माभिः सरस्वतीकण्ठाभरणप्रासादगर्भगृहे पट्टिकायां
 श्रीभोजदेववर्णनात्मकाव्यमून्यहक्षत ।
 —प्रबन्धकोष, पृ० 59
151. कवीन्द्राचार्यसूचीपत्र, क्रमांक 1963, गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज, 17,
 बड़ोदा, 1921
152. विद्वद्भिः कृतभोजराजविरुदः श्रीवस्तुपालः कविः ।—प्र० चि० 237, पृ० 105
153. सरस्वतीकण्ठाभरण–लघुभोजराज–महाकवि–महामात्य श्रीवस्तुपालेन……।
 प्र० चि०, पृ० 102

 तथा प्रबन्धकोष, पृ० 59

 प्रतापो राजमार्तण्ड ! पूर्वस्यामेव राजते । प्र० चि०, 212, पृ० 97

154. श्रीवस्तुपालेन समरांगणप्रणयिना........। प्र० चि० पृ० 102
155. पायडिअ दहनहा तुह इअपाया रायमत्त ड ।।
पं० इ०, कोदण्डकाव्य, पृ० 77, गाथा 534
156. देवोप्यखिलजनतासुबन्धुः श्रीभासो गुणाढ्यः प्रशस्तगीर्वाणः । शृं० क०, पृ० 1
157. मालवमण्डनस्य श्रीभोजराजस्य । प० चि०, पृ० 121
158. मदन, पारिजातमञ्जरी, प्रथम अंङ्क
159. क्षिप्रं मालवचक्रवर्तिनगरी धारेति को विस्मयः ।
—बड़नगरप्रशस्ति, ए० इ० 1, पृ० 297
160. प्रभावकचरित, 18/89
161. राजमार्तण्डयोगसूत्रवृत्ति की पुष्पिका तथा आफ्रेक्ट केटे० केटे०, 158
162. विक्रमविश्वविद्यालय संग्रहालय में सुरक्षित शिलालेख, 8 वीं पंक्ति ।
नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष 43, संवत् 1995
163. विएना ओरिएन्टल जर्नल, भाग 21, पृ० 143 तथा
वर्धमान (1140 ई०) का गणरत्नमहोदधि, 3/5
164. चम्पूरामायण की पुष्पिकाएँ ।
165. नाममालिका अथवा भोजनिघण्टु की पुष्पिकाएँ ।
तंजौर की एक प्रति में इसे महीराज भी कहा गया है । बर्नेल,
संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन द पेलेस एट तंजोर, पृ० 47, 1880 ई०
166. नाममालिका की पुष्पिका, तथा हस्तलिखित प्रति,
सरस्वतीमहल तंजौर, ग्रन्थ क्रमांक, 4791
167. भोजराजस्याभिनवार्जुन इति विरुदं........।
जिनविजयमुनि, पुरातन प्रबन्ध-संग्रह, पृ० 20
—सिंघी जैन ग्रन्थमाला, 2, 1936 ई०
168. ए० इ०, भाग 9, पृ० 113 एफ
169. राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति, श्लोक 5 तथा उज्जैन के महाकाल मन्दिर से प्राप्त एवं विक्रम विश्वविद्यालय संग्रहालय में सुरक्षित एक शिलालेख में भी यह शब्द प्राप्त है ।
170. ए० इ०, भाग 1, पृ० 237–38, श्लोक 21
171. चाणक्यमाणिक्यमिदं कण्ठे बिभ्रति ये बुधाः । चा० रा०, 8/135
172. अवगणितचाणक्यः पण्डितमाणिक्यः....। प्र० चि०, पृ० 67
173. वही, पृ० 102
174. भोजप्रबन्ध, पृ० 14
175. प्र० चि०, पृ० 66
176. शृं० क०, पृ० 8
177. प्र० चि०, पृ० 102, श्लोक 168
178. प० इ०, पृ 75 तथा 79

179. नवं नगरनिवेशं कर्तुकामः पटहे वाद्यमाने धारा (देव्य) भिधया पण्यस्त्रियाग्निवेतालनाम्ना पत्या सह लंकां गत्वा तं नगरनिवेशमालोक्य पुनः समागतया सन्नाम नगरे दातव्यमित्य-भिधाय तत्प्रतिच्छन्दपटो राज्ञेऽर्पितः। ततः स राजा नवां धारां नगरीं निवेशयमास।
—प्र० चि०, पृ० 32

180. नवसाहसांकचरित, 1/90, 18/62 तथा विक्रमांकदेवचरित, 9/114

181. डा० डी० सी० गांगुली, हिस्ट्री ग्राफ परमार डायनेस्टी, पृ० 254 तथा पृ० 88

182. जातस्तस्माद्वैरिसिंहोन्यनाम्ना लोको ब्रूते वज्रटस्वामिनं यम्।
शत्रोर्वर्गं धारयासेर्निहत्य श्रीमद्धारा सूचिता येन राज्ञा॥
ए० इ० भाग 1, पृ० 233–34, श्लोक 11

183. धार स्टेट गजेटियर, पृ० 131

184. का० इ० इ०, भाग 3, पृ० 230, रेउ, राजा भोज, पृ० 83

185. धार स्टेट गजेटियर, पृ० 107

186. प० इ०, पृ० 46 तथा 54, 55

187. सिढायच दयालदास, पवारवंशदर्पण, पृ० 4

188. महाभारत 3/84/25 तथा के० डी० बाजपेयी, दि ज्योग्रोफिकल इनसायक्लोपीडिया ग्राफ एन्शण्ट एण्ड मिडिवल इण्डिया, भाग, 1, 'धारा' का परिचय।

189. प्र० चि०, पृ० 50

190. चतुर्भिरधिकाशीतिः प्रासादानामिह स्थिता॥
चतुष्पथानि तत्संख्यानि च प्रत्येकमस्ति च।
चतुर्विंशतिरट्टानामेवं पुरि च सूत्रणा॥ —प्रभावकचरित, 18/133–134

191. चतुरशीतिचतुष्पथसुरसदनप्रधाने—। प० इ०, पृ० 46

192. प्र० चि०, पृ० 39

193. प० इ०, पृ० 46

194. रूपम, कलकत्ता, जनवरी 1924, पृ० 1–2

195. केदाररामेश्वरसोमनाथसुंडीरकालानलरुद्रसत्कैः।
सुराश्रयैर्व्याप्य च यः समन्ताद्यथार्थसंज्ञां जगतीं चकार॥ —ए० इ० भाग, 1 पृ० 236

196. कल्हण, राजतरंगिणी, 7/190–193

197. विश्वेश्वरनाथ रेउ, राजा भोज, पृ० 86–87

198. वही, पृ० 92

199. वही, पृ० 93,—पी० टी० श्रीनिवास अय्यंगर, भोजराजा, पृ० 106–109

200. वही, पृ० 94, इ० ए०, भाग 17, पृ० 348–52

201. प्रबन्धकोश, पृ० 59

202. प्र० चि०, पृ० 50–51 एवं 124 वाँ श्लोक

203. शृं० क०, पृ० 1, 7

204. वही, पृ० 5, 6, 13

205. वही, पृ० 6

206. वही, पृ० 6
207. वही, पृ० 6–7
208. रे यन्त्रपुत्रक ! यद्यप्यस्मत्परिषदः सम्मतं तथापि निजगुणाविष्करणमवगीतमिव प्रतिभासते। तद्राजवर्णनं भवानेव भणतु इत्यभिहितस्तैर्विस्मयस्तिमितलोचनैरासन्नवर्तिभिः प्रणयिभिरालोक्यमानः स भणितुमारेभे। शृं० क०, पृ० 7
209. राज्ञः सकाशात्पत्तनिकामेकां निजानुचरेण याचयित्वा स्वसन्निधावानाययत् तेषां नखपदानां तया पत्तनिकया तत्प्रतिबिम्बानि जग्राह।

वही, पृ० 70–71

तथा नोट्स, पृ० 99
210. समरांगणसूत्रधार, प्रमुखतया 31वाँ अध्याय
211. न चैतस्याः पुरीतोऽया विलक्षणा काचिदप्यस्तीति। शृं० क०, पृ० 1
212. उपहसतीव त्रिभुवनेऽपि पुरातनान्यखिलसंनिवेशस्थानानि। वही, पृ० 2
213. अनेकजनसहस्रसंकुलाभिः पुरीविलोकनकुतूहलादुपागताभिर्हिग्भिः… ….। वही, पृ० 4
214. वही, पृ० 2–7
215. वही, पृ० 2, 3, 78, 79
216. युक्तिकल्पतरु, अलंकारयुक्ति, पृ० 84 से 138
217. शृं० क०, पृ० 7
218. बुधमिव सोमसुतम्। च० रा०, बालकाण्ड, पृ० 39
219. वही, बालकाण्ड, श्लोक 29
220. सुकृतिनामिव विधुरविरहितोच्छ्रयम्। शृं० क०, पृ० 78
ग्रहपतिरिव बहुशो भुक्तमीनमेषा, वही, पृ० 15
221. शाकुनिकस्थितिरिव पक्षिरुतज्ञानप्रधाना। वही, पृ० 17
222. प्रमदोद्यानं विद्यालतानाम्। वही, पृ० 8
223. यथा एतद्देवो जानाति न तथास्मादृशाः। वही, पृ० 1
224. देवोऽपि………प्रशस्तगीर्वाणः। वही, पृ० 1
225. वही, पृ० 57 तथा 66
226. वही, पृ० 8
227. बोधे कलानां नवभोजराजः।
वेंकटकृष्ण, नटेशविजय, डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, भाग 20, पृ० 7749
228. स (भोजः) अभ्यस्तसमस्तराजशास्त्रः षट्त्रिंशदायुधान्यधीत्य द्वासप्ततिकलाकूपारपारंगमः समस्तलक्षणलक्षितो ववृधे। प्र चि०, पृ० 22
229. फार्बे, रासमाला, आक्सफोर्ड, 1924 भाग 1, पृ० 85
230. प्रकष्टोयम् चतुःषष्टिज्ञाने। शृं० क०, पृ० 12
231. शृंगारे भोजभूपतिः। शंकर आफ केरल, कौमुद्यर्थप्रकाशिका, रिवाइज्ड कैटेलाग आफ द पेलेस ग्रन्थप्पुर, त्रिवेन्द्रम्, 1929, व्हाल्यूम 5, भाग 1, सेक्शन सी, क्रमांक 6394
(ममज्ञः/रसिकः शृंगाररसस्य), शृं० क०, पृ० 8

232. सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश के ग्रन्त में यह श्लोकार्ध उपलब्ध होता है--

इति निगदितभंग्यानङ्गसर्वस्वमेतद्

विविधमपि मनोभिर्भावयन्तोप्यखेदम् ।

233. शब्दानामनुशासनं विदधता पातजले कुर्वता

वृत्तिं राजमृगांकसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके ।

वाक्चेतोवपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृत–

स्तस्य श्रीरणरंगमल्लनृपतर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः ।।

—पातंजल योगसूत्रवृत्ति, 5

234. कः कण्ठाभरणादिभिर्बठरयत्यात्मानमन्यैरपि । प्र० चि०, श्लोकः 139, पृ० 61

235. डा० वि० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 699

236. इसके पाठभेद में ग्रर्वशास्त्र ग्रथवा ग्रर्थशास्त्र भी है ।

237. दर्श्यमानेषु भूपेन प्रैक्षि लक्षणपुस्तकम् ।।

किमेतदिति पप्रच्छ स्वामी तेऽपि व्यजिज्ञपन् ।

भोजव्याकरणं ह्येतच्छब्दशास्त्रं प्रवर्तते ।।

ग्रसौ हि मालवाधीशो विद्वच्चक्रशिरोमणिः ।

शब्दालंकारदैवज्ञतर्कशास्त्राणि निर्ममे ।।

चिकित्सा–राजसिद्धान्त–रस–वास्तूदयानि च ।

ग्रंकशाकुनकाध्यात्म–स्वप्न–सामुद्रिकान्यपि ।।

ग्रन्थान् निमित्तव्याख्यान–प्रश्नचूडामणीनिह ।

विवृत्तिं चायसद्भावेर्घकाण्डं मेघमालया ।।

—प्रभावकचरित, पृ० 285, श्लोक, 74–78

238. मुनीनां भरतादीनां (भोजादीनां) च भूभृताम् ।

शास्त्राणि सम्यगालोच्य नाट्यवेदार्थवेदिनाम् ।।

— डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, भाग 1, खण्ड 1, ए० पृ० 405

239. उद्भ (रुद्र) टोनग्निभूपालो (ग्रनंगभूपालो ?) भोजभूवल्लभस्तथा ।

परमर्दी च सोमेशो जगदेकमहीपतिः ।।

व्याख्यातारो·······। शाङ्र्गदेव, संगीतरत्नाकर

240. शास्त्रं भोजमतंगकश्यपप्रमुखाः—व्यातेनिरेते पुरा ।

पार्श्वदेव, संगीतसमयसार,

241. भाण्डीकभाषयोद्दिष्टाः भोजसोमेश्वरादिभिः ।

गेयलक्षणतः केचिद् वक्ष्यन्ते लक्ष्यसम्भवाः ।।

शारदातनय, भावप्रकाश, द्वितीय ग्रध्याय

242. विशिष्ट विवरणार्थ द्रष्टव्य,

डा० वि० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 606–607

243. नैषध महाकाव्य 22/137 की टीका

244. यद्यप्यस्मत्परिषदः सम्मतं तथापि निजगुणाविष्करणमवगीतमिव प्रतिभासते ।
तथा —शृं० क०, पृ० 7
चंदणधवलो अज्जं पण्डिअवग्गो.......। कोदण्डकाव्य, 391 वीं गाथा

245. चंदणधवलो अज्जं पण्डिअवग्गो.......। प० इ०, पृ० 75
पंडिअवग्गो उग्गया धूलि.......। वही, पृ० 85

246. ततः कूर्मेण पचशतानि विदुषां.......सर्वशास्त्रविचक्षणाः सर्वे
सर्वज्ञाः श्रीभोजराजसभामलंचकुः ।—भोजप्रबन्ध, पृ० 14

247. यद्यप्यस्मत्परिषदः सम्मतं तथापि निजगुणाविष्करणमवगीतमिव प्रतिभासते ।
—शृं० क०, पृ० 7

248. कतिपयैर्विद्वद्भिराप्तैः प्रणयिभिर्नृपतिभिश्चोपास्यमानचरणकमलः । वही, पृ० 1
एवं—असौ हि मालवाधीशो विद्वच्चक्रशिरोमणिः ।। प्रभावकचरित,
पृ० 285, श्लोक 76

249. यथा एतद्देवो जानाति न तथास्मादृशाः । शृं० क०, पृ० 1

250. शृं० क०, पृ० 1

251. वही, पृ० 1

252. इति निगदितमंग्यानङ्गसर्वस्वमेतद् विविधमपि मनोभिर्भावयन्तोप्यखेदम् ।
तदनुभवसमुत्थानन्दसम्मीलिताक्षः परिषदि परितोषं हन्त सन्तः प्रयान्तु ।।
—सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश का अन्तिम श्लोक ।

253. निःशेषवाङ्मयविदोपि जिनागमोक्ताः
श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य ।
तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतोः
राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ।।—तिलकमंजरी, श्लोक 50

254. विज्ञानेश्वरयोगिना भगवतानन्तेन भट्टेन च ।
श्रीमद्भोजमहीभुजे तिथिगणो यो निर्णयोऽङ्गीकृतः ।।
म०म० हरप्रसाद शास्त्री
नोटिसेस आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट, वाल्यूम 4, 1911 ई०, क्र० 108

255. आफ्रेक्ट, केटेलागस केटेलागारम, भाग 1
इण्डी० कुलकर्णी, भोजाज शालिहोत्र, च भूमिका, पूना, सन् 1953
विश्वेश्वरनाथ रेउ, राजाभोज, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, प्रयाग, 1932
टी० आर० चिन्तामणि, सरस्वतीकण्ठाभरण, (व्याकरण) की भूमिका, मद्रास
पी० टी० श्रीनिवास अय्यंगर, भोजराजा, अन्नामलाय विश्वविद्यालय,
1931, पृ० 69
क० मा० मुन्शी, द ग्लोरी देट वाज गुर्जर देश, पृ० 150–51,
भारतीय विद्याभवन, 1944
रामस्वामी शास्त्री, सरस्वतीकण्ठाभरण (व्याकरण) सं० 1948,
शासकीय प्रेस, त्रिवेन्द्रम,

का० कृ० लेले, भोजराज की साहित्य सेवा, इतिहास आफिस, धार, 1934 ई०
डा० वि० राघवन्, विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा 1970 में आयोजित
भोजसेमिनार का उद्घाटन भाषण
तथा संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की विविध सूचियाँ

256. स्वयं भोज की ही प्रशंसा में निरत होने से, उसे भोजकृत सिद्ध करने वाली पुष्पिका फर्जी है।

257. पण्डितराज जगन्नाथ का श्लोक भी इसमें उद्धृत होने से अभीष्ट भोज के कृतित्व में सन्देह।

258. द्रष्टव्यः इसी प्रबन्ध का द्वितीय उच्छ्वास। निर्णयसिन्धु (1612 ई०) में उल्लेख हुआ है।

259. मल्लिनाथ की नैषध 22/137 की टीका में उद्धृत। भरतमल्लिक रचित मेघदूत

260. टीका (श्लोक 81) में भी अनेकार्थ कोश उद्धृत

261. का० कृ० लेले की सूचना सही प्रतीत नहीं होती।

262. 1057 ई० की प्रतिलिपि, वीरपुस्तकालय काठमाण्डू की यह प्रति सम्भवतः सिद्धान्तसंग्रह से अभिन्न हो।

263. डा० राघवन् के अनुसार आफ्रेक्ट का निर्देश त्रुटिपूर्ण है।

264. डा० राघवन् के अनुसार कृष्णानन्द की रचना है।

265. ए० सी० बर्नेल, क्लासिफाइड इण्डेक्स टू द संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन द पेलेस एट तंजौर, 111 ए।

266. डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, अडियार, भाग 10, पृ० 502, क्रमांक 794–95

267. विक्रमविश्वविद्यालय में सुरक्षित भुजबलनिबन्ध के पृ० 10 तथा 38 पर श्लोक 46, 162, 163 1/2 के, 938 में उद्धृत।

268. डिस्क्रिप्टिव केटेलाग, सरस्वतीभवन, वाराणसी 1963 भाग 9, क्रमांक 34891

269. इसका रचयिता दामोदर भी कहा जाता है।

270. केरल विश्वविद्यालय, ह० ग्र० क्रमांक 4849

271. पी० के० गोड़े, स्टडीज इन इण्डियन लिटरेचर, पृ० 212, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 1953 ई०

272. शंकर बालकृष्ण दीक्षित, भारतीय ज्योतिषशास्त्र पृ० 489
—का० कृ० लेले, भोजदेव की साहित्यसेवा, पृ० 4

273. ए० डी० पुसालकर के अनुसार यह ज्योतिष के राजमार्तण्ड से अभिन्न है। (भोजसेमिनार, 1970)

274. बूलर, केटेलाग आफ संस्कृत मेन्यु० काण्टेण्ड इन द प्रायवेट लायब्रेरी आफ गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, सिंध, खानदेश, भाग 3, के० 168

275. द्रष्टव्य पृ० 158 की पादटिप्पणी एक। 12वीं सदी के जीमूतवाहन के दायभाग में तथा विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा टीका में उद्धृत।

276. काणे, पी० वी० धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी) पृ० 1565 तथा 1593
277. संस्कृत प्राकृत हस्तलिखित ग्रन्थ सूची, भाग 2, ए० 1491/5596
(इण्डिया आफिस पुस्तकालय)
278. वे० वरदाचार्य, सं० सा० इ०, (हिन्दी) 1962, पृ० 167
279. प्रभाचन्द्राचार्य, प्रभावकचरित, 22/78
280. वही, 22/78, जैन मल्लिषेण के अयसद्भाव का उल्लेख प्राप्त होता है।
(वि० राघवन्, भोजसेमिनार 1970)
281. विशेष द्रष्टव्य, इसी प्रबन्ध का द्वितीय उच्छ्वास।
282. केटेलागस् केटेलागारम्, भाग 1, पृ० 272
283. पी० वी० काणे, हिस्ट्री आफ संस्कृत पोएटिक्स, 1961 ई०, पृ० 262–63
284. हिस्ट्री आफ द परमार डायनेस्टी, पृ० 279
285. राजा भोज, पृ० 236
286. द ग्लोरी देट वाज गुर्जर देश, भाग 3, पृ० 150
287. डा० दशरथ शर्मा के मार्गदर्शन में लिखी गयी तथा दिल्ली विश्वविद्यालय से 1963 ई० में पी० एच० डी० प्रदत्त थिसिस–द परमार्स, पृ० 455
288. भोज राजा, अन्नामलाय युनिवर्सिटी सिरीज, मद्रास, 1931, पृ० 71
289. भवदीयनगर्यां भवत्कारिताश्चतुरुत्तरं शतं प्रासादाः, एतावन्त इव
गीतप्रबन्धा भवदीयाः एतावन्ति च विरुदानि।–प्र० चि०, पृ० 50
290. इह हि शिष्टशिरोमणि-निरवद्यविद्यानिर्माणापूर्वप्रजापति. प्रचण्डभुजदण्डपराक्रमार्जित
चतुरशीतिविरुदप्रकाशितस्वकृतग्रन्थमनाजः श्रीभोजराजः।
डा० राघवन्, भोजाज श्रृंगारप्रकाश, पृ० 5, तथा
डिस्क्रिप्टिव केटेलाग आफ मेन्युस्क्रिप्ट इन जैन भण्डार इन पाटन, भाग 1
ताडपत्र, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरिज, 76
291. भोज इवायं निरतो नानाविद्यानिबन्धनिर्माणे।
समयोच्छिन्नप्राये सोद्योगः कामशास्त्रेऽपि।
–वीरभद्र, कन्दर्पचूडामणि, 1/2
292. श्रृं० क० पृ० 1
293. ·······द्रावधि भगवती सरस्वती। श्रृं० क०, पृ० 9
294. प्रतिकलमतिहर्षाद् भारती नृत्यतीव। वही, पृ० 89
295. सिंगारमंजरि पाविऊण देवी सरस्सई अज्ज। वही, पृ० 89
296. तत्त्वानामपि तत्त्वं येनाखिलमेव हेलया कलितम्।
श्रीभोजदेवनृपतिः व्यधत्त तत्त्वप्रकाशं सः॥
एवं अघोरशिवाचार्यविरचित वृत्ति में—
यस्याखिलं करतलामलकक्रमेण।
देवस्य विस्फुरति तेजसि तत्त्वजातम॥
–तत्त्वप्रकाश, कुमारविरचित तात्पर्यार्थ-दीपिका सहित।

टी० गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित, अनन्तशयन ग्रन्थावली, 68
गवर्नमेण्ट प्रेस, अनन्तशयन, 1920 ई०

297. यद्वक्त्राम्बुजमाप्य गर्वमसमं वाग्देवतापि श्रिता
स श्रीभोजपतिः फणादिपतिकृत्सूत्रेषु वृत्तिं व्यधात् ।।
—राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति का अन्तिम श्लोक ।

298. निःशेषवाङ्मयविदोपि जिनागमोक्ताः
श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य ।—तिलकमंजरी, 50

299. बिल्हण, विक्रमांकदेवचरित, 3/71

300. यस्या भ्राता क्षितिपतिरिति क्षात्रतेजोनिधानं
भोजक्ष्माभृत्सदृशमहिमा लोहराखण्डलोभूत् ।
—बिल्हण, 18/47

301. कल्हण, राजतरंगिणी, 7/259

302. किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते । ए० इ०, भाग 1, पृ० 222–238 श्लोक 18

303. विद्वज्जनोपजीव्यानेक–काव्य–क्रियाभिः प्रतिष्ठितकविराजशब्दस्य ।
—का० इ० इ०, 3, पृ० 6

304. न पक्षपातेन वदामि सत्यं उषस्सु यस्यां भवनांगणेभ्यः ।
संमार्जिनीभिः परतः क्रियन्ते विसूत्रितैकावलिमौक्तिकानि ।।
—पद्मगुप्त, नवसाहसाकचरित, 1/27

305. मुक्ताः केलिविसूत्रहारगलिताः सम्मार्जिनीभिर्हृताः ।
प्रातः प्रांगणसीम्नि मन्थरचलद्बालांघ्रिलाक्षारुणाः ।
दूराद्दाडिमबीजशंकितधियः कर्षन्ति केलीशुकाः ।
यद्विद्भवनेषु भोजनृपतेस्तत् त्यागलीलायितम् ।।
—मम्मट, काव्यप्रकाश, उदाहरण श्लोक, 506

306. देपालपुर ताम्रपत्र, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, 8, पृ० 305
मोडासा ताम्रलेख, ए० इ०, 33, पृ० 192
महुडी ताम्रलेख, वही, पृ० 215
बासवड़ा ताम्रलेख, वही, 11, पृ० 182
बेटमा ताम्रलेख, वही, 18, पृ० 305
उज्जैन ताम्रलेख, इ० ए०, 6, पृ० 53

307 भोजप्रबन्ध, श्लोक 162

308. गोसहसाणं दाणं केणावि कथावि एत्थ विहिअं । —कोदण्डकाव्य, 313 वीं गाथा
—प० इ०, पृ० 74

309. साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं तद्यन्न केनचित् । ए० इ० भाग 1, पृ० 235
भोजक्ष्माभृत् स खलु न खलैस्तस्य साम्यं नरेन्द्रैः । विक्रमांकदेवचरित, 18/96

310. भोजादेश्चित्तपप्रभृतीनामिव वांछितार्थसिद्धिर्लाभः ।
—वीरनारायण, साहित्यचिन्तामणि
—डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, भाग 22 पृ० 870

311. शांडिल्यवंशे कविचक्रवर्ती त्रिविक्रमोभूत्तनयोऽस्य जातः ।
यो भोजराजेन कृताभिधानो विद्यापतिर्भास्करभट्टनामा ।।
—ए० इ०, भाग 1, पृ० 343
यह लेख 1050 ई० में भोज के जीवनकाल में ही लिखा गया था ।
312. विश्वेश्वरनाथ रेउ, राजा भोज, पृ० 123
313. ए० इ०, भाग 6, पृ० 53
314. देवोप्यखिल-जनतासुबन्धुः । शृं० क०, पृ० 1
315. अंगारक इव वसुधानन्दनः ।
शृं० क०, पृ० 7
316. शृं० क०, पृ० 1
317. रे यन्त्रपुत्रक यद्यप्यस्मत्परिषदः सम्मतं तथापि निजगुणाविष्करणमवगीतभिव प्रतिभासते।
—तद् राजवर्णनं भवानेव भणतु । शृं० क०, पृ० 7
318. चारुचर्या, आत्मस्तुतिविवर्जनम् । 214
319. पंचरात्रस्थितिरिव मायावैभवोपपादितभोगस्थितिः । वही, पृ० 15
320. लोकायतस्थितिरिव मौक्षेकतत्परा । वही, पृ० 15
321. अविद्येवाविचारितरमणीया । वही, पृ० 16
मायेव नानाविधपाशपातितपशु । वही, पृ० 18
322. सांख्यस्थितिरिवापरमार्थोपपदानित्यपुरुषभोगा, वही, पृ० 17
323. यतिजनचित्तवृत्तिरिव मौक्षैकतत्परा । वही, पृ० 15
324. कणादमतिरिव द्रव्यतत्त्वैकप्रधाना । वही, पृ० 17
325. अक्षपादविद्येव सदैव बहुमतेश्वरा । वही, पृ० 17
326. प्रभाकरप्रज्ञेव स्मृतिप्रमोषोत्पादननिपुणा । वही, पृ० 17
327. कुमारिमलतिरिवार्थवादप्रधाना । वही, पृ० 17
328. शाक्यशासनोक्तविश्वस्थितिरिव क्षणिका । शृं० क०, पृ०, 17
329. समधिगतनिखिलपाषण्डः—वही, पृ० 84
330. हीनसत्त्वः पाषण्डमेतदंगीकृतवान्, वही, पृ० 71
331. वही, पृ० 8, 78, 79 कूर्मशतम्, च० रा०, बालकाण्ड, 16
332. वही, 86
333. वही, पृ० 72
334. च० रा०, बालकाण्ड, 1
335. शृं० क०, 89
336. वही, पृ० 68
337. च० रा०, बालकाण्ड, 1
338. वही, बालकाण्ड, 2

339. शृं० क०, पृ० 9
340. अवनिकूर्मशतम्, गाथा 1
341. शृं० क०, पृ० 35
342. वही, पृ० 32
343. अवनिकूर्मशतम्, गाथा 3
344. निःशेषवाङ्मयविदोपि जिनागमोक्ताः
 श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य ॥
 —धनपाल, तिलकमंजरी, श्लोक 50
345. विशेष द्रष्टव्य —
 लुइस एच० ग्रे०, द नेरेटिव आफ भोज, (भोजप्रबन्ध आफ बल्लाल)
 इण्ट्रोडक्शन, पृ० 2–3
 अमेरिकन ओरिएण्टल सोसायटी, न्यू हेवन, कानेक्टीकट, 1950
346. श्रोतव्यः सौगतो धर्मः कर्त्तव्यः पुनराहतः ।
 वैदिको व्यवहर्त्तव्यो ध्यातव्यः परमः शिवः ॥
 —प्र० चि०, पृ० 42 श्लोक 104
347. वीणा, नवम्बर 1932, पृ० 2
348. तत्र श्रीभोजराजोऽस्ति राजा निर्व्याजवैभवः ।
 अवैरं यन्मुखाम्भोजं भारती-श्रीनिवासयोः ।
 –प्रभावकचरित, 17/7
349. यश्च गिरिराज इव त्रिदशसरितः, शशधर इव ज्योत्स्नायाः,
 हराट्टहास इव विशदकान्तिसम्पदः, क्षीरोद इवामृतकरकलायाः..........
 अवदातरोचिषः, कीर्तेरभूत् प्रसवभूमिः ।
 –शृं० क०, पृ० 9–10
350. यस्य चन्द्रातपायितमप्रविष्टेन्दुकिरणविस..........लोदरेषु, मलयजरसच्छटायितं विरहिणीत-नुलताम्, डिण्डीरपिण्डायितमम्बुराशिलहरीषु, सितदुकूलायित–मासाव..........सरित्पूरायित-माकाशवर्त्मनि, पुण्डरीकखण्डायितमखिलसलिलाशयेषु, स्फटिकोपलायितमचलमेखलासु, सितवितानायितं ब्रह्माण्डमण्डपाभ्यन्तरे, विततसितपटायितं प्रवहणव्रातेषु, समुन्मार्जित–द्रविडीदन्तकान्तिसोदरैरुन्निद्रकुन्दच्छदच्छायाबन्धुभिः..........विबन्धप्रसरैर्यशोभिः ।
 –शृं० क०, पृ० 9
351. तुह कित्तिवल्ली जमप्पयावेहिं तह लिआ । प० इ०, अज्ञातनामाकाव्य, गाथा 24
352. द्रष्टव्य, प्रथम उच्छ्वास
353. प० इ०, अज्ञातनामाकाव्य, गाथा 33
354. मैथिलीशरणगुप्त, साकेत, आवरण वृत्त, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी, (सं० 2025)
355. प० इ०, अज्ञातनामा काव्य, गाथा 50
356. भोजप्रबन्ध, श्लोक 181 तथा प्र० चि०, श्लोक 126
357. ए० इ०, भाग 1, पृ० 233–238, श्लोक 18

358. शृं० क०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 74–90
359. वही, पृ० 84
360. वही, पृ० 35
361. वही, पृ० 88
362. क्लासिकल एज, पृ० 244
363. नन्दलाल डे, ज्यॉग्राफीकल डिक्शनरी आफ एण्शण्ट एण्ड मिडिवल इण्डिया, कलकत्ता, 1899, पृ० 211
364. भगवतशरण उपाध्याय, कालिदास का भारत, प्रथम भाग, पृ० 126
365. डा० गांगुली परमारों के मण्डल के अभिधानों में पूर्णपथक भी गिनते हैं।
—हिस्ट्री आफ परमार डायनेस्टी, पृ० 236
366. क्षितिमिव मध्यदेशेनालंकृताम्। शृं० क०, पृ० 87
367. डी० सी० सरकार, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स्, भाग 1, पृ० 235 युनिवर्सिटी आफ कलकत्ता, 1915
368. संबद्ध विवरणार्थ द्रष्टव्य :
डा० रामकुमार राय : रामायणकोष, चौखम्बा विद्याभवन. वाराणसी, 1960
369. विततसितपटायितं प्रवहणत्रातेपु। शृं० क०, पृ० 9
370. अपूर्वःपुमान् स्थानद्वय एवावाप्यते, यदि स्वाध्यायी तथा मठिकादौ, अथ राजपुत्रादिस्तदा शून्यदेवालयादौ। शृं० क०, 58
371. पथिकजनैः प्रतिसन्ध्यामासेव्यमानेषु प्रपाग्निपु, —शृं० क०, पृ० 68
372. शृं० क०, पृ० 68 तथा च० रा०, पृ० 202–203
373. समरांगणसूत्रधार, दशम अध्याय
374. शृं० क०, पृ० 87
375. पुरस्य त्रिविधस्यापि प्रमाणमथ कथ्यते।
प्राकारपरिखाट्टालद्वाररथ्याध्वभिः सह॥—स० स०, 10/1
376. प्राकारेऽट्टालकास्तस्मिन् दिक्षु चतुर्विधम्, स० स०, पृ० 10/31
377. कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी इसका उल्लेख है। ये एक हाथ ऊँचे होते थे।
हस्तोच्चं कपिशीर्षकं स्यात्, सं० सू०, 10/30
378. उदयपुर, जोधपुर, जयपुर आदि में कई द्वार पोल के नाम से ही प्रख्यात हैं। यथा हाथी पोल, आदि। मन्दसौर जिले के लदूना ग्राम मे एक प्राचीन द्वार सूरजपोल कहलाता है।
379. कुर्यात्प्रतोलीः सर्वेषु महाद्वारेष्वथ दृढाः।
दृढार्गलाश्चेन्द्रकीलाः कपाटपरिघान्विताः॥ स० सू०, 10/38
380. शृं० क०, पृ० 2
381. सुधालिप्ततलं हर्म्यं सौधं स्यात् कुट्टिमं च तत्। स० सू०, 10/12
382. शृं० क०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 80
383. सद्मशीर्षश्च दातव्यो यथाशोभं यथारुचि। स० सू०, 10/18
384. चन्द्रशाला चित्रशाला भी कहलाती थीं। राजस्थान में वे अब भी चित्रसारी कहलाती है।
385. शृं० क०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 80

386. वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ० 274 तथा 330
'मथुराकला में इसी प्रकार की एक मूर्ति प्राप्त हुई है जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। गान्धार से भी ऐसी ही मूर्ति प्राप्त हुई है। मत्स्यपुराण में ऐसी मूर्ति को केशनिस्तोयकारिणी तथा शृंगारमंजरीकथा में इस क्रिया को कवरीनिश्च्योतन कहा गया है। स्पष्ट है, गुप्तकाल से पूर्व ही कलाकारों ने इस कल्पना को साकार कर दिया था।

387. च० रा०, पृ० 24–25

388. शृं० क०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 81

389. मध्यप्रदेश सन्देश, ग्वालियर, 12 सितम्बर, 1964, पृ० 16

390. प्राकृतजनार्थमेतन्न विधेयं योग्यमेतदवनिभुजाम्।
मंगल्यानां सदनं दिव्यमिदं तुष्टिपुष्टिकरम्॥ स० सू०, 10/118

391. शृं० क०, पृ० 1 तथा स० सू०, पृ० 182, श्लोक 148

392. राज्ञः सकाशात् पत्तनिकामेकां निजानुचरेण याचयित्वा स्वसन्निधावानायत्..........तेषां नखपदानां तया पत्तनिकया प्रतिबिम्बानि जग्राह।.......यदयं
प्रसादः प्रसार्य गृह्यताम्। वही, पृ० 70–71

393. वासुदेवशरण अग्रवाल, मध्यप्रदेश सन्देश, 12 सितम्बर, 1964, पृ० 16

394. कृत्वा मारुतिलंघनोत्थितरयात्तत्रानुयात्रां ततः
पर्यायात्पतिता महेन्द्रगहनक्षोणीरुहाणां ततिः।
मध्येवारिनिधि प्रकाशितशिखा सेतोः कृते भाविनः
सूत्रन्यासनिखातशंकुनिवहभ्रान्ति पयोधौ दधौ॥

–च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 2

395. भिन्द्यन्ते राजकार्य–सेतवः। –शृं० क०, पृ० 82

396. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 13

397. स चतुरशीतेः सामन्तानां द्वादशानां च मण्डलेश्वराणां षट्त्रिंशतश्च राजकुलिकानां द्वासप्ततेराटविकपल्लीपतीनां च चतुर्विंशतेः कार्वाटानामेकविंशतेः कोंकणानां षट्त्रिंशतश्च वेलाकुलानामाधिपत्यमकरोत्।

–शृं० क०, पृ० 66

398. 36 राजकुलों का उल्लेख राजतरंगिणी में तथा पृथ्वीराजरासो में है।
पृथ्वीराजरासो में राजपूतों की 36 शाखाओं का उल्लेख है। सी० वी० वैद्य ने 36 शासकों की सूची दी है।

–शृं० क०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 77

399. चा० रा०, 4/2, 455

400. च० रा०, 4/8, 10

401. चा० रा०, 4/20

402. वही, 4/21, 22

403. वही, 4/27

404. वही, 5/1, 2
405. वही, 5/3
406. वही, 5/4
407. वही, 5/5
408. वही, 5/6,7
409. वही, 5/8
410. वही, 5/9
411. वही, 5/10
412. वही, 5/11
413. वही, 5/12
414. वही, 5/13
415. वही, 5/14
416. वही, 5/15
417. वही, 5/16
418. वही, 5/17–19
419. वही, 5/21
420. वही, 5/25
421. वही, 5/26
422. वही, 5/27
423. वही, 5/34,35
424. वही, 5/37,38
425. वही, 5/41
426. मुद्रयित्वा प्रपन्नोऽहं तवाभिज्ञानमुद्रया ।–च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 77
427. खुरुल्लिकायां सायकाभ्यासमातन्वानः । —शृं० क०, पृ० 36
428. शृं० क०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 77–78
429. वही, पृ० 1
430. राजशेखर, काव्यमीमांसा, दसवाँ अध्याय, पृ० 54–55
431. कमपि रससंकरकरणादिदूषणव्याजमुत्पाद्य विधारितवान् । शृं० क०, पृ० 42
432. शृं० क०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 79
433. मुक्ताः केलिविसूत्रहारगलिताः संमार्जिनीभिर्हृताः
प्रातः प्रांगणसीम्नि मन्थरचलाबालांघ्रिलाक्षारुणाः ॥
दूराद्दाडिमबीजशंकितधियः कर्षन्ति केलीशकाः–
यद्विद्वदभवनेषु भोजनृपतेस्तत्त्यागलीलायितम् ॥ –काव्यप्रकाश, उदाहरण श्लोक 506
तथा
न पक्षपातेन वदामि सत्यं उषस्सु यस्यां भवानांगणेभ्यः ।
संमार्जिनीभिः परतः क्रियन्ते विसूत्रितैकावलिमौक्तिकानि ॥
–नवसाहसांकचरित, 1/27

434. अल्बरूनीज इण्डिया, भाग 1, पृ० 181

435. क्रमेण चायमुपनीतो विविन्नदधीतसकलवेदांगो अधीतसकलशास्त्रः। शृं० क०, पृ० 19
कादम्बरी का चन्द्रापीड तथा वैशम्पायन की सोलह वर्ष की अवस्था में अधीत हुए थे।
—कादम्बरी, पृ० 237
इसकी पुष्टि अल्बरूनी के यात्राविवरण से भी होती है।
—अल्बरूनीज इण्डिया, भाग 1, पृ० 180–2
तथा पी० टी० श्रीनिवास अय्यंगर, भोजराजा, पृ० 88

436. शृं० क , पृ० 30

437. वही, पृ० 31

438. किन्त्वस्मज्जाति–विरुद्धमिदम्। शृं० क०, पृ० 24

439. विप्रपर्षदिव सदैव भोज्यप्रिया। वही, पृ० 17

440. कलिकालवृत्तिरिव पतितद्विजा। वही, पृ० 15

441. वही, पृ० 56

442. शृं० क०, पृ० 14, 17, च० रा०, बालकाण्ड, श्लोक 7 (इन्द्रजालविधिसाधकपिच्छिकेव।)

443. वही, पृ० 15,43,18 तथा इण्ट्रोडक्शन, पृ० 84

444. वही, पृ० 84

445. वही, पृ० 4

446. च० रा०, सुन्दरकाण्ड, 19 तथा 43 में भी द्रष्टव्य।

447. शृं० क०, पृ० 86

448. शृं० क०, पृ० 30,64,77 तथा 88

449. शृंगारमंजरी तथा उसकी माता विषमशीला का परिचय पाँचवें उच्छ्वास में दिया जा चुका है।

450. शृं० क०, पृ० 61

451. वही, पृ० 87 एवं च० रा०, सुन्दरकाण्ड, श्लोक 38

452. वही, पृ० 68–69

453. वही, पृ० 65

454. द्रष्टव्य, डा० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 651

455. शृं० क०, 21–22, शृंगारप्रकाश में भी इसका उल्लेख है।

456. वही, पृ० 19

457. शृं० क०, पृ० 72

458. वही, 86

459. वही, पृ० 9, 89

460. वही, पृ० 88

461. वही, पृ० 32 तथा 35 एवं वही, पृ० 68 तथा च० रा०, बालकाण्ड, 1

462. वही, पृ० 76

463. मृच्छकटिक, प्रथम अंक, चतुर्भाणी, पृ० 35, पृ० 169, तथा पृ० 218

464. चतुर्भाणी, पृ० 170, तथा डा० हरिहरनिवास द्विवेदी, मध्यभारत का इतिहास, पृ० 624–625, सूचनाविभाग, मध्यभारत, 1956 ई०

465. शृं० क०, पृ० 68
466. जनाधिगतनिखिलब्रह्माण्ड, शृं० क०, पृ० 84
467. गृहीतपाशुपतव्रतः……हीनसत्त्वः पाषण्डैस्तदङ्गीकृतवानस्मि । शृं० क०, पृ० 71
468. कालकुट्टिया हु एसा सा……। प० इ०, पृ० 73
469. अतिमानिव मनुर्जनेश्वरम् । शृं० क०, पृ० 78
470. यशःपताका कलिकालस्य……विघ्नशीला । शृं० क०, पृ० 16
471. ए० इ०, भाग 2, पृ० 239 तथा
   निःशेषवाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ताः
   श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य ॥ —धनपाल, तिलकमंजरी, श्लोक 50
472. श्रोतव्यः सौगतो धर्मः कर्तव्यः पुनरार्हतः ।
   वैदिको व्यवहर्तव्यो ध्यातव्यः परमः शिवः ॥ —प्र० चि०, पृ० 42, श्लोक 104
473. रामाश्रमाद्विगतलक्ष्मणसन्निधाना-
   त्सीतां जहार चपलः पिशिताशनेन्द्रः ।
   मालां नवोत्पलमयीं पललश्रमेण
   देवालयादिव निरस्तजनादलर्कः ॥

   —चं० रा०, अरण्यकाण्ड, 28

   मालां देवकुलादिवानिषधिया क्षिप्तां श्मशाने शुना ।

   —चं० रा०, सुन्दरकाण्ड, 17
474. कृतपयोऽप्यवक्रः । शृं० क०, पृ० 3
475. नापि कपालिकेन सद्यो मंत्रवादी च ।

   —शृं० क०, पृ० 88
476. सुवर्णैर्भूषयेद्देवं यथाविभवसारतः ।
   तथा
   येन केन प्रकारेण कांचनेन विनिर्मितम् ।
   भूषणं धारयेच्छिल्पी सर्वदोषविवर्जितम् ॥ —चारुचर्या, 28,29
477. चारुचर्या, 203
478. चं० रा०, बालकाण्ड, 2
479. शृं० क०, पृ० 3
480. शृंगारमंजरीकथा की आठवीं, तीसरी, सातवीं, दसवीं, तथा तेरहवीं कथानिकाओं के नायक इसी श्रेणी में गिने जा सकते हैं ।

दशम उच्छ्वास

समालोचक भोज तथा कवि भोज

महाराज भोज न केवल साहित्यसर्जक अपितु काव्यशास्त्र के प्रणेता भी थे। 'सरस्वती-कण्ठाभरण' तथा 'शृंगारप्रकाश' उनके साहित्यशास्त्रीय प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में भोज ने अलङ्कारशास्त्रीय विविध विवरणों के साथ ही काव्य के अङ्ग-प्रत्यङ्गों के वैशिष्ट्य पर भी प्रकाश डाला है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में जिन साहित्यिक कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया वे साहित्यशास्त्र अथवा लक्षणग्रन्थों की दृष्टि से कहाँ तक अपने उद्देश्य की पूर्ति करती हैं? स्वयं भोज के द्वारा अपनी साहित्यशास्त्रीय कृतियों में निश्चित काव्यांगों के लक्षणों का उनकी ही साहित्यिक कृतियाँ कहाँ तक अनुसरण करती है? अथवा भोज के द्वारा काव्यांगों के निश्चित मानदण्डों में उनकी ही कृतियाँ कहाँ तक पूर्ण हैं? इन तथ्यों की ओर जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। प्रस्तुत उच्छ्वास में भोज के द्वारा निश्चित मानदण्डों तथा यथासम्भव अन्य लक्षणकारों के द्वारा निश्चित लक्षणों की दृष्टि से भोज की कृतियाँ कहाँ तक समुचित हैं? इस सम्बन्ध में प्रकाश डाला जाएगा।

चम्पू की विशेषताएँ तथा भोजचम्पू—

चम्पूरामायण भोज की सुप्रसिद्ध कृति है। दण्डी ने सर्वप्रथम चम्पू को परिभाषित किया —

गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते।[1]

साहित्यदर्पण ने इसी का अनुकरण किया।[2] तदनुसार गद्य तथा पद्य का सम्मिश्रण चम्पू का प्रमुख लक्षण हुआ जिसे कोई भी अस्वीकार नहीं करता। चम्पू की यह साधारण परिभाषा है।

त्रिविक्रमभट्ट ने नलचम्पू[3] में चम्पू के कतिपय अन्य वैशिष्ट्य भी प्रकट किये। यथा उदात्त नायक, विभिन्न गुण तथा मुक्तक छन्दों से युक्त चम्पू काव्य होता है।

उदात्तनायकोपेता गुणवद्वृत्तमुक्तका।
चम्पूश्च हारयष्टिश्च केन न क्रियते हृदि॥

जीवन्धरचम्पू[4] के अनुसार गद्य तथा पद्य का सम्मिश्रण, वयःसन्धि काल में किशोरी की भाँति अधिक सुखद होता है—

गद्यावली पद्यपरम्परा च प्रत्येकमप्यावहति प्रमोदम्।
हर्षप्रकर्षं तनुते मिलित्वा द्राक्बाल्यतारुण्यवतीव कन्या॥

गद्य-पद्य सम्मिश्रण अधिक हृद्य होता है, इस तथ्य को भोज भी स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार गीति तथा वाद्य के सम्मिश्रण के समान गद्य तथा पद्य का संयोग अधिक हृदयावर्जक होता है। कविपथ के अनुयायियों के आनन्द के लिए चम्पूप्रबन्ध की रचना में भोज निरत हुए।[5]

गद्यानुबन्धरसमिश्रितपद्यसूक्ति-
र्हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः ।
तस्माद्दधातु कविमार्गजुषां सुखाय
चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया ॥

गोपालचम्पू, विश्वगुणादर्शचम्पू, तत्त्वगुणादर्शचम्पू, बालभागवत, गौरीमयूरचम्पू, कुमारसम्भवचम्पू आदि परवर्ती चम्पूकाव्य के रचयिताओं ने भी भोज की उपर्युक्त अभिव्यक्ति का ही समर्थन किया है।[6]

'चम्पू' शब्द का निर्वचन—

चम्पू शब्द के निर्वचन के कई प्रयास हुए हैं। चम्पू की भूमिका में नन्दकिशोर शर्मा ने स्रोत न बताते हुए यह उद्धरण किया है—

गत्यर्थकाच्चौरादिकाच्चपिधातोरुप्रत्यये विहिते चम्पयति
चम्पतीति निष्पन्नश्चम्पूशब्दः ।

वहीं पर हरिदास भट्टाचार्य की यह निरुक्ति भी उद्धृत है—

चमत्कृत्य पुनाति सहृदयान् विस्मितीकृत्य प्रसादयतीति चम्पूः ।

कन्नड़ के विद्वान् डा. आर. एस. मुग्ली ने चम्पू शब्द का निर्वचन 'कान चान' से किया है। इसी से काम्पू या चम्पू शब्द निर्मित हुआ। डा. मुग्ली ने कन्नड़ के कवि तथा नाटककार डी. आर. वेन्द्रे का अभिमत भी व्यक्त किया है, जिसके अनुसार तुलु शब्द 'साम्पु' तथा 'चेम्पे चेम्पे' से चम्पू शब्द का निर्वचन सम्भव है जिसका अर्थ है—मिश्रित तथा सुन्दर।[7]

डा. सी. आर. देशपाण्डे ने[8] चम्पू शब्द का निर्वचन करते हुए बताया है कि—स्वयं भोज के व्याकरण 'सरस्वतीकण्ठाभरण' के एक सूत्र के आधार पर इस शब्द की सिद्धि सम्भव है।

दंभिचपोर्नु च । 2/1/124

इस सूत्र की वृत्ति इस प्रकार है—

आभ्यामूप्रत्ययो नुमागमश्च भवति ।
दम्भूः सर्पजातिः । चम्पूः कथा ।

पाणिनि के धातुपाठ में चप् धातु क्रमशः क्रमांक 399, 1620 तथा 1627 पर प्राप्त होती है—

(क) चप् सान्त्वने (प्रथमगण),

(ख) चपि गत्याम (दशमगण),

(ग) चह् परिकल्कने चप् इत्येके (दशमगण)

इन तीनों धातुओं से 'चम्पू' शब्द का निर्माण सम्भव है।

(क) अश्रान्त गद्य के भय से[9] सहृदयों को विश्रान्ति अथवा सान्त्वना देने के लिए बीच-बीच में पद्य का निवेश होने से 'चप् सान्त्वने' धातु से चम्पू शब्द की व्युत्पत्ति सम्भव है।

(ख) पद्य के पश्चात् गद्य तथा गद्य के पश्चात् पुनः पद्य का प्रयोग होने से शैली में सतत् गद्य-पद्य की स्थिति-परिवर्तन होने से गति बनी रहती है। अतः 'चपि गत्याम्' से भी चम्पू शब्द की निष्पत्ति सम्भ है।

(ग) 'परिकल्कन' के अर्थ में प्रयुक्त चप् धातु से भी यह शब्द सिद्ध हो सकता है। आयुर्वेद में कल्कनिर्माण प्रसिद्ध है। ऐसा मिश्रण जिसके मिले हुए पदार्थों को भिन्न नहीं किया जा सके। चम्पू में गद्य तथा पद्य एक दूसरे से इस प्रकार सम्पृक्त रहते है कि उन्हें विलग नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार गीत तथा वाद्य के एक साथ प्रयोग होने पर, उनकी मिश्रित ध्वनि को विलग नहीं किया जा सकता। वह मिश्रित ध्वनि केवल गीति अथवा केवल वाद्य की अपेक्षा अधिक आकर्षक होती है। उसी प्रकार केवल गद्य अथवा पद्य की अपेक्षा इन दोनों का कल्क (मिश्रण) अधिक हृदयावर्जक होता है।

डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार[10] चम्पू शब्द का मूल क्या है, यह नहीं मालूम। इसमें गद्य तथा पद्य दोनों मिले होते है। प्राय. ऐसे स्थलों पर इनमें पद्य का प्रयोग होता है जहाँ कवि कोई आकर्षक दृश्य अंकित करना चाहता हो, या वक्ता के मुख से कोई मार्मिक उक्ति कहलवाना चाहता हो। वस्तुतः 'चम्पू' शब्द के मूल के विषय में अन्तिम रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

प्रबन्ध-वैशिष्ट्य —

शृंगारप्रकाश में गद्य-पद्य तथा मिश्र तीन प्रकार के प्रबन्ध बताये हैं।[11] जिसमें गद्य तथा पद्य का व्यायोग हो वह मिश्रप्रबन्ध है[12] —

गद्यपद्यव्यायोगो मिश्रम्।

यह पद्यप्रधान, गद्यप्रधान तथा तुल्यरूप होता है। तुल्यरूप में गद्य तथा पद्य का समान प्रयोग होता है। तुल्यरूप भी सजातीय, विजातीय तथा उभय प्रकार का होता है। इनमें से सजातीय प्रकार का तुल्यरूप मिश्र प्रबन्ध 'चम्पू' है।[13] मूल ग्रन्थ में चम्पू के उदाहरणस्थानीय अक्षर नष्ट हो गये हैं। शृंगारप्रकाश से ही अन्यत्र[14] 'गद्यपद्यमयी चम्पूः' कहा गया है जो दण्डी[15] द्वारा व्यक्त पूर्वोक्त परिभाषा से अभिन्न है। पर अन्यत्र भोज ने उस दिव्य गद्य-पद्यमयी कृति को चम्पू कहा है जो साङ्का तथा सोच्छ्वासा हो एवं आख्यायिका से अभिन्न हो। अर्थात् आख्यायिका ही यदि साङ्का तथा सोच्छ्वासा हो जाय तो उस गद्यपद्यमयी कृति को चम्पू कहेंगे[16] —

आख्यायिकैव साङ्का सोच्छ्वासा दिव्यगद्यपद्यमयी।
सा दमयन्ती वासवदत्तादिरिहोच्यते चम्पूः॥

दमयन्तीकथा त्रिविक्रमभट्ट के नलचम्पू से अभिन्न है। वासवदत्ता चम्पू अनुपलब्ध है। यह पतंजलि की वासवदत्ता आख्यायिका तथा सुबन्धु की वासवदत्ता कथा से भिन्न है।[17] हेमचन्द्र तथा वाग्भट ने भोजकृत उपर्युक्त परिभाषा का ही अनुकरण किया है।[18] डा. सूर्यकान्त ने किसी अज्ञात विद्वान् की परिभाषा व्यक्त की[19] —

गद्य-पद्यमयी सांका सोच्छ्वासा कविगुम्फिता।
उक्तिप्रत्युक्तिविष्कम्भशून्या चम्पूरुदाहृता॥

भोज की उपर्युक्त परिभाषा की अपेक्षा इसमें यह वैशिष्ट्य व्यक्त किया गया है कि चम्पू में उक्ति-प्रत्युक्ति तथा विष्कम्भ का अभाव होना चाहिए। चम्पू रूपक नहीं होता है अतः उसमें विष्कम्भ का न होना स्वाभाविक है। उक्तिप्रत्युक्ति का चम्पू में अभाव होना भी अस्वाभाविक है। जहाँ कथा होगी, उक्तिप्रत्युक्ति भी होगी ही।

सरस्वतीकण्ठाभरण में भोज ने शब्दालंकारों के प्रारम्भ में जाति तथा गति अलंकारों का विवेचन किया है। कवि द्वारा प्रयोग में ली गयी भाषा जाति है।[20] औचित्य के पुट से वह अलंकार बन जाती है। गति का लक्षण इस प्रकार दिया गया है।[21]

पद्यं गद्यं च मिश्रं च काव्यं यत्सा गतिः स्मृता।
अयौचित्यादिभिः सापि वागलंकार इष्यते॥

कथाख्यायिकादौ गद्यमेव चम्पूप्रभृतौ मिश्रमेवेत्यादौ पद्योपात्तवर्त्यौचिती द्रष्टव्या।

स्पष्ट है कि चम्पूकाव्य से तात्पर्य एक ग्रन्थ में विभिन्न भाषा का मिश्रण नहीं, बल्कि गद्य-पद्य का ही मिश्रण है। किसी भी भाषा में गद्यपद्यमय–चम्पू–काव्य की रचना हो सकती है। परन्तु सम्पूर्ण कृति में किसी भी एक ही भाषा का प्रयोग होना चाहिए।

कोई भी अन्य चम्पूकार अथवा साहित्यशास्त्र का रचयिता चम्पू के वैशिष्ट्य–विषयक ऐसा कोई नवीन तथ्य नहीं ला सका जो भोज ने व्यक्त नहीं किया हो।

भोज ने चम्पू को आख्यायिका के गुणों से युक्त माना। भोज के अनुसार आख्यायिका में ये गुण आवश्यक हैं[22]—

कन्यापहारसङ्गरसमागमाभ्युदयसूचितं यस्याम्।
नायकचरितं ब्रूते नायक एवास्य वानुचरः॥
वक्त्रापरवक्त्रवती सोच्छ्वासा संस्कृतेन गद्येन।
साख्यायिकेति कथिता मावविका–हर्षचरितादि॥

कन्यापहरण, संग्राम, सन्धि, अभ्युदय आदि का जिसमें विवरण हो तथा जिसमें नायक का चरित स्वयं नायक अथवा उसका अनुचर कहे, उस संस्कृत गद्य-रचना को आख्यायिका कहते हैं। उच्छ्वास में यह विभक्त रहती है तथा वक्त्र-अपरवक्त्रवती होती है।

अन्यत्र सन्धियों का विवरण देने के पश्चात् शृंगारप्रकाश में कहा गया है कि इन सन्धियों का रूपक, कथा, आख्यायिका, महाकाव्य, चम्पू, आख्यायन आदि में निवेश होना चाहिए[23]—

एते तु सन्धयः कार्या नाटकेषु प्रयोक्तृभिः।
तथा प्रकरणेष्वेवं कथास्वाख्यायिकासु च॥
महाकाव्येषु चम्पूषु तथैवाख्यानकेषु च।

इस विवरण से ज्ञात होता है कि भोज ने अपने व्याकरण 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में प्रथम बार 'चम्पू' शब्द के निर्वचन का प्रावधान किया है। अपने साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थ शृंगारप्रकाश में प्रथम बार विस्तृत स्पष्ट लक्षण दिया। तदनुसार चम्पूकाव्य—

(1) सजातीय प्रकार का तुल्यरूप मिश्र-प्रबन्ध है।
(2) वह किसी भी एक भाषा में रचा जा सकता है,
(3) दिव्य गद्यपद्यमयी आख्यायिका को ही यदि अंक एवं उच्छ्वास से सम्पृक्त कर दिया जाय तो चम्पू हो जाता है। आख्यायिका होने से चम्पू काव्य में उदात्त नायक होना स्वाभाविक ही है। अतः त्रिविक्रम भट्ट द्वारा व्यक्त वैशिष्ट्य भी इसी लक्षण में समाहृत हो जाता है।

(4) अन्य प्रबन्धों के समान यह भी सन्धियों से आबद्ध होना चाहिए।

(5) भोज के अनुसार गद्य तथा पद्य का सम्मिश्रण ऐसा होना चाहिए जिसे विभक्त नहीं किया जा सके। विलग करने पर कथा-प्रवाह खण्डित हो जाय। जिस प्रकार गीत तथा वाद्य की सम्मिश्रण ध्वनि को विलग करना असम्भव है। तभी वह हृद्य हो सकता है[24]—

> गद्यानुबन्धरसमिश्रित-पद्यसूक्ति-
> हृद्या हि वाद्यकलया कलितेव गीतिः।
> तस्माद्दधातु कविमार्गजुषां सुखाय
> चम्पूप्रबन्धरचनां रसना मदीया॥

भोज ने केवल 'चम्पू' शब्द का निर्वचन एवं उसका लक्षण ही निश्चित नहीं किया बल्कि स्वयं चम्पू प्रबन्ध—चम्पूरामायण-की रचना कर उसका उदाहरण भी प्रस्तुत किया।

चम्पूरामायण में पद्य का बाहुल्य होने पर भी गद्य तथा पद्य का सन्तुलन बना रहता है। पूर्व चम्पू-कृतियों की भाँति इसमें गद्यकारों के अनुकरण पर विस्तृत गद्य-खण्ड नहीं हैं। गद्य के लघुखण्डों में भी भोज ने समृद्ध गद्य के उदाहरण प्रस्तुत कर दिये हैं। गद्य तथा पद्य के निर्माण में रचयिता की समान गति है। चम्पूरामायण में गद्य तथा पद्य एक दूसरे के पूरक होने से वे नितान्त सम्पृक्त हैं। सम्पूर्ण कृति एक ही भाषा—संस्कृत—में विरचित है। चम्पूरामायण वाल्मीकिरामायण के कथानक का यथावत् वहन करती है। स्वभावतः उसका नायक, राम उदात्तचरित से सम्पन्न है।

चम्पूरामायण मे सीताहरण होने से किसी सीमा तक 'कन्यापहार' वैशिष्ट्य आ जाता है। उसमें युद्ध, सन्धियाँ, राम का यत्र-तत्र अभ्युदय आदि भी परिलक्षित होता है। नायक राम का चरित उनके द्वारा नियुक्त कुशलव ही गाते है और इसी रूप में रामायण का प्रारम्भ तथा अन्त होने से भोज द्वारा व्यक्त आख्यायिका के वैशिष्ट्य चम्पूरामायण में पूर्णतया परिलक्षित होते हैं। वक्त्र, अपरवक्त्र का होना चम्पू के लिए उतना अनिवार्य नहीं है क्योंकि उसमें तो पद्य अनिवार्य रूपेण होते ही हैं।

चम्पूरामायण, रामायण के अनुकरण पर होने से काण्डों में विभक्त है, उच्छ्वासों में नहीं। 'साङ्क' कृति दो प्रकार से हो सकती है—

(क) रूपकवत् अङ्कों में विभाजित। चम्पूरामायण काण्डों में विभाजित है। वही उसके लिए समुचित भी था।

(ख) उच्छ्वास के अन्त में किसी विशिष्ट पद से अंकित हो। दमयन्तीकथा अथवा नल-चम्पू 'हरचरणसरोजाङ्का' है[25]—

> **इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरणसरोजाङ्कायां प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः।**

महाकाव्यों में किरातार्जुनीयम् 'लक्ष्मी' पद से अंकित तथा शिशुपालवध 'श्री' पद से अंकित है। किरातार्जुनीयम् तथा शिशुपालवध का प्रारम्भ 'श्री' से होता है।[26] चम्पूरामायण का प्रारम्भ 'लक्ष्मी' पद से होता है।[27] चम्पूरामायण के काण्डों का अन्त किसी विशिष्ट पद से अंकित नही

है। परन्तु बालकाण्ड के अतिरिक्त काण्ड उसी पद से प्रारम्भ होते हैं, जिस पद से वाल्मीकिरामायण के काण्ड। दोनों ही कृतियों का अयोध्याकाण्ड गच्छता पद से प्रारम्भ होता है, अरण्यकाण्ड 'प्रविश्य' पद से, किष्किन्धा 'सतां' पद से तथा सुन्दरकाण्ड 'ततो' पद से। बालकाण्ड में स्तुति तथा व्रतलीनता की अभिव्यक्ति प्रारम्भ में आ जाने से भोज इस क्रम का पालन नहीं कर पाया। परन्तु बालकाण्ड का वह प्रमुख श्लोक, जो शोक का परिणाम तथा आदिकाव्य की रचना का भी मूल रहा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

चम्पूरामायण में भी यथावत् यथास्थान, कथा के प्रारम्भ में होने से उस क्रम का पालन किसी सीमा तक हो जाता है। इस प्रकार चम्पूरामायण के प्रत्येक काण्ड का प्रारम्भ, रामायणोक्त पदांकित होने से यह कृति साङ्क भी कही जा सकती है। भोज के अनुसार रामायण जैसे काव्य काण्डबन्ध होते हैं।[28] चम्पूरामायण में रामायण का यथावत् अनुसरण होने से वह काण्डबन्ध प्रकार का काव्य है।

रामायणकथा अपरिवर्तित रूप में, चम्पूरामायण में अवतरित हो जाने से प्रबन्ध के लिए आवश्यक सन्धियों का समावेश इसमें भी यथाक्रम, यथास्थान हो ही गया है। परन्तु कृति अपूर्ण होने से अन्तिम सन्धि इसमें सुलभ नहीं है।

इस प्रकार भोज की चम्पूरामायण में भोज तथा अन्य लक्षणकारों के द्वारा व्यक्त 'चम्पू' के लक्षणों का समन्वय हो जाता है।

चाणक्यमाणिक्य—

चाणक्यराजनीतिशास्त्र अथवा चाणक्यमाणिक्य भोज की संकलित कृति है। पूर्ववर्ती विविध शास्त्रों तथा काव्यों से सुरुचिपूर्ण नीतिगत श्लोकों का इसमें संकलन किया गया है। स्वयं भोज इस तथ्य को स्वीकार करते हैं[29]—

नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम्।

आगे चलकर वे यह भी कहते हैं कि चाणक्य के द्वारा व्यक्त मूलसूत्रों को ही यहाँ व्यक्त किया जा रहा है[30]—

मूलसूत्रं प्रवक्ष्यामि चाणक्येन यथोदितम्।

स्पष्ट ही 'चाणक्यमाणिक्य' विकीर्णश्लोकों का आकलन है जिन्हें भोज ने एकत्र, एक सूत्र में ग्रथित कर दिया है[31]—

चाणक्यमाणिक्यमिदं कण्ठे बिभ्रति ये बुधाः।
ग्रथितं भोजराजेन भुवि तैः किं न प्राप्यते॥

भोज के अनुसार उस सुभाषित-रत्न के समूहात्मक ग्रन्थ को कोश कहते हैं जिसमें विभिन्न महान् काव्यों से श्लोक उद्धृत अथवा संकलित किये गये हों।[32] हाल की गाथा सप्तशती इसका उदाहरण है।

कोश इव यत्सुभाषितरत्नसमूहात्मकः समुद्भ्रियते।
महतः काव्याम्भोधेः स कोश इव सप्तशतिकादि॥

दण्डी ने भी कोश का उल्लेख किया है।[33] जिसकी व्याख्या में तरुणवाचस्पति कहता है कि अनेक कर्ताओं के सुभाषितों का समूह कोश है -

कोशो नानाकर्तृकसुभाषितरत्नसमुदयः।

दण्डी की उसी उक्ति की व्याख्या करते हुए वादिजङ्घाल कहता है कि विभिन्न प्रकार की, नूतन अर्थ की द्योतक कथाओं के संग्रह को भी कोश कहते हैं—

कोशोऽप्यनेकभिन्नार्थकथाग्रथितः
कथाकोशः कृष्णसारः तारागण इति।

कथाकोश इसका उदाहरण है।

स्पष्ट ही कोश का तात्पर्य 'संग्रह' से है।[34] पूर्वविवरण से यह भी स्पष्ट है कि भोज संकलित सुभाषितसंग्रह को कोश कहता है। पूर्ण विवरण से यह भी स्पष्ट है कि भोज का चाणक्य-माणिक्य स्वयं ग्रन्थ के अनुसार ही सुभाषितों अथवा नीतिगत श्लोकों का संकलन है। स्वभावतः भोज का चाणक्यमाणिक्य अथवा चाणक्यराजनीतिशास्त्र कोश ग्रन्थ है।

सुभाषित-प्रबन्ध—

वस्तुतः भोज का नहीं, परन्तु भोज द्वारा संकलित कहा जाने वाला सुभाषित प्रबन्ध-ग्रन्थ भी विविध कवियों के काव्यों से संगृहीत किये गये सुभाषितों का संकलन होने से कोश ग्रन्थ ही है।

चारुचर्यम्—

ग्रन्थ के प्रथम श्लोक में ग्रन्थकार द्वारा की गयी प्रतिज्ञा—

सुनीतिशास्त्रसद्वैद्यधर्मशास्त्रानुसारतः।
विरच्यते चारुचर्या भोजभूपेन धीमता॥

से ही स्पष्ट है कि कवि ने नीति, वैद्यक तथा धर्मशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में चारुचर्यम् की रचना की है। स्पष्ट ही यहाँ शास्त्र में काव्य का निवेश किया गया है। ऐसे काव्य को भोज शास्त्रकाव्य कहता है[35]—

शास्त्रं यत्र कवीनां रहस्यमुपकल्पयन्त्यनल्पधियः।
तद्रतिविलासकामन्दकीयवच्छास्त्रकाव्यं तु॥

सरस्वतीकण्ठाभरण में इसे काव्यशास्त्र कहा गया है[36]—

शास्त्रे काव्यविनिवेशः काव्यशास्त्रम्।

वस्तुतः शृंगारप्रकाश में व्यक्त अभिमत ही उपयुक्त है जैसा कि काव्यमीमांसा से भी स्पष्ट होता है[37]—

तत्र त्रिधा शास्त्रकविः। यः शास्त्रं विधत्ते, यश्च शास्त्रे काव्यं संविधत्ते,
योऽपि काव्ये शास्त्रार्थं निधत्ते।

जहाँ शास्त्र में काव्य-निवेश हो वह शास्त्रकाव्य है। चारुचर्या के शास्त्रीय प्रतिपाद्य में काव्य का सन्निवेश होने से शास्त्रकाव्य है।

यह कृति भोज की मौलिक कृति है। कतिपय प्रतियों में अन्य ग्रन्थों के श्लोक प्राप्त होते हैं, वे परवर्ती लेखकों ने सन्निविष्ट कर दिये हैं। अतः 'कोश' नहीं है।

वाग्देवी-स्तोत्र तथा अवनिकूर्मशतम्—

वाग्देवी-स्तोत्र 34 श्लोकों से स्तुति है। एक श्लोक से दूसरे श्लोक का सम्बन्ध नहीं है। पर पूरे काव्य का रचयिता भोज है। इसी प्रकार अवनिकूर्मशतम् में कूर्म की प्रशस्ति में 109 प्राकृत गाथा विरचित हैं। इसका रचयिता अकेला भोज है। एक ही कवि की रची हुई, एक-दूसरे से सम्बद्ध सूक्तियों के समूह को सघात कहते हैं[38] —

एकप्रघट्टके यस्त्वेककृतो भवति सूक्तिसमुदायः।
संघातस्य निगदितो वृन्दावनमेघदूतादि॥

मेघदूत को संघात कहना डा० राघवन् के अनुसार समुचित नहीं है।[39] परन्तु एक शृंखला में (एक प्रघट्टके), एक ही सन्दर्भ में, सम्बद्ध सूक्तियाँ प्रस्तुत करने के कारण ही मेघदूत को भोज ने 'संघात' काव्य कहा। यह इसलिए भी समुचित है कि मेघदूत में सन्धि-कल्पना नहीं है। जो कोश, संघात आदि में आवश्यक भी नहीं रहती[40] —

न सन्धिकल्पना कोशसंघातादिषु विद्यते।

वाग्देवी अवनिकूर्मशतम्, कूर्म की प्रशंसा में एक ही कवि, भोज के द्वारा विरचित 109 आर्याओं का क्रमबद्ध ग्रथन होने से 'संघात' प्रकार का काव्य है। इसी प्रकार उसी कारण से वाग्देवी स्तोत्र भी संघात प्रकार का काव्य है।

द्वितीय अवनिकूर्मशतम् भी किसी एक ही कवि की ऐसी ही क्रमबद्ध रचना होने से 'संघात' हैं, जिसमें भोज की प्रशस्ति की गयी है। कोदण्डकाव्य, खड्गशतम् तथा अज्ञातनामा काव्य जिनमें[41] भोज की कीर्ति तथा शक्ति का वर्णन किया गया है, भी शैली तथा भाषा की दृष्टि से एक ही कवि की रचनाएँ प्रतीत होती हैं। विषय में क्रमबद्धता भी है। स्वभावतः ये कृतियाँ भी काव्य की 'संघात' श्रेणी के अन्तर्गत ही परिगणित की जा सकती हैं।

चाणक्यमाणिक्य तथा सुभाषित प्रबन्ध कोशग्रन्थ है, चारुचर्यम् शास्त्रकाव्य है तथा अवनिकूर्मशतम् आदि प्राकृतकाव्य संघात काव्य हैं जिनमें कथानक का अभाव होने से सन्धि— नियमों का पालन नहीं किया गया है, जो आवश्यक भी नहीं है, जैसा कि स्वयं भोज ने कहा है[42]—

न सन्धिकल्पना कोशसंघातादिषु विद्यते।

कथा तथा शृंगारमंजरीकथा—

भोजविरचित शृंगारमंजरीकथा स्वयं रचयिता के अनुसार एक कथा-ग्रन्थ है। ग्रन्थ में उपलब्ध अन्तः प्रमाणों से भी यही तथ्य प्रकाश में आता है।

(1) आप्त विद्वान् तथा स्नेही नृपगणों ने भोज से प्रार्थना की कि वे उन्हें कोई अपूर्व कथा सुनावें जो उनकी प्रीति तथा व्युत्पत्ति को साथ सकें। पुनः कवि कहता है कि कथा के प्रारम्भ में नगरादि का वर्णन होने से उसका आकर्षण बढ़ जाता है[43]—

अस्माकं प्रीत्यै व्युत्पत्तये च कामप्यपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु
स्वामी इति विज्ञप्तः स्मितपूर्वमिदमभ्यधात् 'एवमेतद्' किन्तु
कथा हि कीर्त्यमाना नगरादिवर्णनपुरःसराः सौन्दर्यमावहति।

(2) शृंगारमंजरी को दी गयी उसकी माता की शिक्षा-समाप्ति पर कहा जाता है[44]—

(6) अन्तिमश्लोकांश से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है[45]—

कृतेयं भोजराजेन कथा (शृंगारमंजरी)।

(7) पर्वतवर्णन के प्रसंग में भी भोज ने श्लिष्टोपमा के माध्यम से इस तथ्य की ओर संकेत किया है[46]—

एतत्कथाकारमिव विराजितपरमारावनीपवंशम्।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में प्रस्तावना के अंश (कथापीठिका, धारा, भोजदेव शृंगारमंजरी तथा उसकी माता विषमशीला का वर्णन एवं शृंगारमंजरी को उसकी माता की शिक्षा) के अतिरिक्त तेरह कथानिकाओं से इस कथाग्रन्थ का कलेवर निर्मित हुआ। इन कथानिकाओं में से प्रत्येक का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है, स्वतन्त्र उद्देश्य है। यह तथ्य इस विवरण से प्रकट हो सकेगा—

1. नीलीराग का स्पष्टीकरण
2. मंजिष्ठा राग का स्पष्टीकरण
3. कुसुम्भराग का ज्ञान
4. हरिद्राराग का प्रकटीकरण
5. पराशय को समझकर उसका रंजन करने का स्थितिज्ञान
6. 'आत्मत्याग से श्रेष्ठ पुरुष से भी स्वार्थ सिद्धि' की अभिव्यक्ति
7. धूर्तों से आत्मरक्षण का स्पष्टीकरण
8. व्याघ्रवत् प्रेम से आत्मरक्षा
9. उभयानुराग का स्वरूपज्ञान
10. 'अतिपीडित्त पुरुष क्रोध में अनर्थ कर सकता है' के ज्ञानार्थ
11. अवमान के निषेधार्थ
12. धूर्त से वृथा वैर करने के लिए तथा
13. त्रिविधराग से दूर रहने की स्थिति-ज्ञानार्थ रची गयी है।

ये कथानिकाएँ स्वयं में स्वतन्त्र तथा पूर्ण रचनाएँ हैं। विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार से अनेक प्रकार के प्रेमाचारों को व्यक्त करने के लिए कथा का ऐसा विधान आवश्यक भी था। इन स्वतन्त्र कथानिकाओं को एक ही वक्ता विषमशीला तथा एक ही श्रोता शृंगारमंजरी से सम्बद्ध कर भोज ने उन्हें एक सूत्र में आबद्ध कर दिया। प्रारम्भ की तीन कथानिकाओं तक शृंगारमंजरी के जिज्ञासावाक्यों का भी प्रयोग किया गया परन्तु पश्चात् की सारी कथानिकाओं के प्रारम्भ में कथानिका का उद्देश्य विषमशीला ही व्यक्त करती चलती है। यथा[47]—

अन्यच्च पुत्रि! यदेतदभिहितं पराशयं परिज्ञाय अनुप्रविश्य परो
रंजनीयः, तत् श्रूयताम्।

तथा अन्त मे उपदेश देती है—यथा[48]—

तत् पुत्रि! यो हि यदाशयस्तत् तेनानुप्रविश्य विश्वावयतां
निश्चितैवार्थसिद्धिः स हि महानुभावः प्रभावस्थापनया
तन्नास्ति यन्न वितरतीति।

केवल ऐसे वाक्यों के निवेश ने ही इन कथानिकाओं को आपस में आबद्ध कर दिया है। और इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ एक सूत्र में ग्रथित हो गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ अनेक परिस्थितियों पर

स्वतन्त्र रूपेण विभिन्न सन्दर्भों पर प्रकाश डालने से विभाजित व्यक्तित्व अथवा बिखराव की प्रतीति करवाता है। परन्तु अपने सम्पूर्ण रूप में वह वैशिकोपनिषद् का रहस्य व्यक्त करने के साथ ही, आद्योपान्त एक ही वक्ता तथा एक ही श्रोता होने से वह एक ही अन्तः-प्रवाह का वाहक है और इस दृष्टि से इसके बिखराव में भी सम्बन्ध है। इसकी व्यष्टि में भी समष्टि है। कथा के ऐसे स्वरूप निर्माण का आदर्श भी सम्भवतः दण्डी ही रहा है। जिसके दशकुमारचरित का सम्पूर्ण कथानक विभिन्न भागों में विभाजित तथा प्रत्येक भाग अपर से स्वतन्त्र है। परन्तु पूर्वपीठिका, उत्तरपीठिका एवं श्रोता के एकत्व ने कथानक को शृंखलाबद्ध कर दिया है।

भोज के शृंगारप्रकाश तथा सरस्वतीकण्ठाभरण में कहीं भी 'कथानिका' का उल्लेख नहीं है, न काव्य की स्वतन्त्र विधा के रूप में तथा न कथा के अंग के रूप में। यही नहीं, अलंकारशास्त्रीय कृतियाँ भी इस विषय में मौन हैं। केवल अग्निपुराण में ही, गद्यकाव्य की पाँच विधाओं में इसका भी परिगणन किया गया है[49]—

आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा।
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पंचधा॥

यहाँ कथानिका की एक स्वतन्त्र गद्यविधा के रूप में स्वीकार किया गया है। अग्निपुराण में इसका लक्षण देते हुए कहा गया है कि कथानिका में भयानक रस होता है किन्तु बीच में करुण और अन्त में अद्भुत का भी समावेश हो जाता है। वस्तुतत्त्व सुखान्त और स्पष्ट होता है किन्तु उदात्त नहीं होता[50]—

भयानकसुखपरं गर्भे च करुणो रसः
अद्भुतोऽन्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका॥

सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश में कथानिका का उल्लेख उपलब्ध न होने पर भी शृंगारमंजरीकथा में गद्य-काव्य की इस विशिष्ट विधा का उपयोग आश्चर्यकारक हो सकता है। परन्तु इस जिज्ञासा का तब निवारण हो जाता है जब यह तथ्य प्रकाश में आता है कि शृंगारप्रकाश सरस्वतीकण्ठाभरण का विस्तार या व्यास है।[54] शृंगारप्रकाश में द्वादशरागों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है, जिनका संकेत इस प्रकार है[55]—

स च सात्त्विकोऽपि नायकभेदात् स्थिरास्थिरत्वादितारतम्यात्
प्रबन्धेन उपपद्यमानो द्वादशप्रकार उत्पद्यते।

शृंगारमंजरीकथा मे भी विषमशीला शृंगारमंजरी को इन्हीं द्वादशरागों का विवरण देती हुई उसे शिक्षा देती है तथा साथ ही इनमें से प्रमुख नीली, मंजिष्ठा, कुसुम्भ तथा हरिद्रा रागों के उदाहरणार्थ प्रारम्भिक क्रमशः चार कथानिकाएँ भी सुनाती है। स्पष्ट है शृंगारमंजरीकथा, शृंगारप्रकाश में वर्णित रागदशाओं के स्पष्टीकरणार्थ रची गयी प्रतीत होती है। प्रकट है कि इन साहित्यशास्त्रीय दोनों कृतियों के पश्चात् शृंगारमंजरीकथा की रचना हुई।

पूर्वरचित अपनी काव्यशास्त्रीय कृतियों में जिस काव्यविधा का उल्लेख नहीं किया, परवर्ती काल में अपनी अन्य रचनाओं में वही ग्रन्थकार उसका उल्लेख अथवा उपयोग नहीं करेगा, यह अनिवार्य नहीं। कथानिका के उल्लेख न होने के कई कारण हो सकते हैं—

1. पूर्वग्रन्थ-रचना के काल काव्य की यह विधा स्मृति में न आयी हो।
2. इन ग्रन्थों की रचना के पश्चात् ही इस विधा का ज्ञान हुआ हो। अथवा

3. भोज की पूर्वोक्त कृतियों में दृश्य काव्य के 24 भेद तथा श्रव्य के भी 24 भेद किये गये हैं। यदि श्रव्य काव्य में इस विधा को भी सम्मिलित किया जाता तो उसकी संख्या 25 हो जाती जो विभिन्न वस्तुओं तथा विवरणों की एक-सी संख्या प्रस्तुत करने वाले भोज को कभी स्वीकार न होता। शब्दालंकार, अर्थालंकार, उभयालंकार, दृश्यकाव्य, श्रव्यकाव्य, शब्दगुण, अर्थगुण, दोषगुण आदि में से प्रत्येक के भोज के अनुसार 24 भेद हैं। संख्याप्रीति से इस काव्यभेद को अपने ग्रन्थों में स्थान न देना भी असम्भव नहीं है।

शृंगारमंजरीकथा में भोज ने इन कथानिकाओं के उदाहरण प्रस्तुत कर उनका स्वरूप भी व्यक्त कर दिया। और अप्रकट रूप से यह भी व्यंजित कर दिया कि पूर्वोक्त उनकी काव्य-शास्त्रीय दोनों कृतियों में कथानिका का उल्लेख न होने पर भी, वे इसे गद्य की एक विधा के रूप में स्वीकार करते हैं जो कथा के स्वरूप-निर्माण में सहायिका भी बन सकती है। यह तथ्य उसी प्रकार सिद्ध है जिस प्रकार पाणिनि की अष्टाध्यायी में भूतपूर्व शब्द की सिद्धि का कोई विधान न होने पर भी उनकी कृति में इसका प्रयोग–भूतपूर्वे चरट्[6]—प्राप्त होने से वह पाणिनिसम्मत तथा प्रामाणिक है। ऐसा कथाग्रन्थ दुर्लभ एवं अपूर्व ही कहा जा सकता है जिसमें कथानिकाओं का अपरिहेय महत्त्व हो।

भोज की शृंगारमंजरीकथा की कथानिकाओं से ज्ञात होता है कि—

1. कथा का लघुरूप कथानिका है। कथा का कलेवर विराट् तथा उद्देश्य भी महान् होता है। उसकी कार्यविधि का विस्तार अपरिमित हो सकता है। कथानिका का कलेवर लघु होता है, उद्देश्य विशिष्ट होता है तथा कार्यविधि का विस्तार भी अपेक्षाकृत परिमित होता है।
2. भाषा, वर्णन, चरित्रवैविध्य, रसवैविध्य आदि की दृष्टि से इसका व्यक्तित्व कथा से किसी प्रकार भिन्न नहीं है।
3. कथानिका के अपने लघु कलेवर में भी इसका अपना पूर्ण एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व रहता है।
4. कथानिका कथा का अंग अथवा पूरक भी बन सकती है।

शृंगारमंजरीकथा में कथानिका का अंग अथवा पूरक रूप में ही उपयोग हुआ है।

जैसा पूर्व में कहा जा चुका है कि अग्निपुराण में कथानिका की परिभाषा उपलब्ध होती है। भोज की शृंगारमंजरीकथा में उपलब्ध कथानिकाओं में वे विशेषताएँ कहाँ तक उपलब्ध होती हैं? इस प्रश्न पर विचार करने से ज्ञात होता है कि भोज की कथानिकाओं में अग्निपुराण सम्मत लक्षणों को पूर्णतया स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई है। अग्निपुराण के अनुसार[57] कथानिका में भयानक रस होता है। शृंगारमंजरीकथा की कुट्टनीवंचनकथानिका में विन्ध्याटवी वर्णन भयानक रस की निष्पत्ति करता है परन्तु स्वयं ग्रन्थकार के अनुसार विन्ध्याटवी की भीषणता भी रमणीयता से अनुरंजित है[58]—

अतिरमणीयभीषणां विन्ध्याटवीं प्रापतुः ॥

इसके अतिरिक्त शृंगारमंजरी की माता विषमशीला का कार्यवर्णन तथा प्रवृत्तिदर्शन सम्मिलित रूप से एक भयावह मूर्ति का निर्माण कर देते हैं। विषमशीला कथानिका की पात्री भी नहीं है।

इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण कथा की विभिन्न कथानिकाओं में कही भी भयानक रस की निष्पत्ति नहीं होती है।

अग्निपुराण के अनुसार कथानिका के मध्य करुणरस होना चाहिए। परन्तु भोजविरचित कथानिकाओं के मध्य नहीं अपितु अन्त मे प्रायः नायक-नायिका का वियोग व्यक्त कर उनमें दुःख का संचार किया गया है। या तो नायक से सारा धन चूस कर वेश्या ने उसे अपा घर से बाहर कर दिया है अथवा छल करने वाली वेश्या स्वयं धोखा खा गयी है, वहीं नायक-नायिका के प्रेम में कुट्टनी बाधा उपस्थित करती है। कुछ स्थल ऐसे है जहाँ नायक-नायिका के प्रेम की अवज्ञा कर देता है। स्त्र्यनुराग कथानिका में लावण्यसुन्दरी अपना सब कुछ छोड़कर रत्नदत्त के साथ मान्यखेट की ओर चल देती है। परन्तु रत्नदत्त की अनुपस्थिति में वहाँ का राजा लावण्यसुन्दरी को उसके प्रासाद मे प्रस्तुत होने को विवश कर देता है। लौटने पर रत्नदत्त उसके वेश से ही वस्तुस्थिति को ताड़ जाता है और चरण-प्रक्षालन को प्रस्तुत लावण्यसुन्दरी को कह देता है[59]—

> **लावण्यसुन्दरि ! पादौ मा प्राक्षीः। त्वं हि मम जननी भवसि।**
>
> **सा तु साकूतमवादीत्—रत्नदत्त ! किमेतत् ?**
>
> **रत्नदत्तस्तां पुनरवादीत्—किमन्यत् ? त्वं हि मत्प्रभोर्दाराः,**
>
> **तद्भवतु, पूर्यते, उपविश्यताम्।**

और अन्ततः रत्नदत्त लावण्यसुन्दरी को त्याग देता है। रत्नदत्त से वस्तुतः प्रेम करने वाली वेश्या, जिसने रत्नदत्त का प्रेम पाने के लिए अपने वेशधर्म का भी त्याग कर दिया था, की मनोवेदना हृदयस्पर्शी रही है। यह वेदना अपनी पूर्णशक्ति के साथ केवल 'रत्नदत्त ! किमेतत् ?' से ही व्यक्त हो जाती है।

उभयानुराग कथानिका में भी अशोकवती अपने प्रिय छड्डलक के वियोग में प्राण त्याग देती है। यह सुनकर छड्डलक भी प्राण त्याग देता है तथा इसका मूल सुन्दरक स्वयं को समझ वह भी प्राण त्याग देता है। यहाँ पर करुणरस है परन्तु अन्त में वे सब देवी की कृपा से पुनर्जीवित हो जाते हैं।

अतः सर्वत्र कथानिका के मध्य करुण सुलभ नहीं होने से भोज की कथानिकाओं मे इसका कथानिका के लक्षणरूप मे उपयोग नहीं किया गया है।

कथानिका के अन्त में अद्भुत रस का नियम भी इस कथानिकाओं में अनिवार्य नहीं है। देवदत्ता कथानिका में अद्भुत का समुचित सन्निवेश हुआ है जहाँ वह काल्पनिक कथा सुनाती है जिसमें वह विचित्र अश्व पर बैठ मनोहारी युवक के साथ व्योम-यात्रा कर पुनः पृथ्वी पर आ पहुँचने की घटना बताती है।

आशापुरा देवी से विक्रमादित्य तथा समरसिंह का वार्तालाप तथा देवी का वरदान आश्चर्यकारक है। साथ ही सातवीं कथानिका में कपोतिका को निगलने-उगलने तथा उससे धन प्राप्ति का विवरण भी अद्भुत है। परन्तु अग्निपुराण का वह लक्षण इसमें सुलभ नहीं, जिसके अनुसार कथानिका के अन्त में अद्भुत रस अनिवार्य है।

कथानिकाओं का वस्तुतत्त्व सर्वत्र सुक्लृप्त है। परन्तु सभी कथानिकाएँ सुखान्त नहीं हैं। बहुधा में नायक अथवा नायिका का वियोग व्यक्त किया गया है।

कथानिका की वस्तु उदात्त नहीं होना चाहिए। वेश-अनुराग से सम्बद्ध होने से यह वैशिष्ट्य भोज की कथानिकाओं में सुलभ है। परन्तु स्त्र्यनुराग तथा उभयानुराग कथानिका इसका अपवाद ही कही जा सकेंगी। इस प्रकार भोज की कथानिकाओं का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है जिसका उल्लेख किया जा चुका है।

विविध लक्षणकर्त्ताओं की दृष्टि में कथा का स्वरूप तथा शृंगारमंजरीकथा—

गद्य की इस प्रमुख विधा पर प्रायः काव्यशास्त्रज्ञों ने विचार किया है। इन विविध विचारों के परिप्रेक्ष्य में शृंगारमंजरीकथा का मूल्यांकन किया जाता है।

अमरकोष—

अमरसिंह ने अपने कोश में व्यक्त किया है कि आख्यायिका में वस्तु प्रख्यात होती है परन्तु कथा में कल्पित वस्तु होती है[60]—

आख्यायिकोपलब्धार्था। तथा
प्रबन्धकल्पना कथा।

भोज की शृंगारमंजरीकथा का नायक भोज इतिहासप्रसिद्ध नरेश है परन्तु वस्तु कल्पित है।

अग्निपुराण—

श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात् कविर्यत्र प्रशंसति।
मुख्यस्यार्थस्यावताराय भवेद्यत्र कथान्तरम्॥
परिच्छेदो न यत्र स्याद् भवेद्वा लम्बकैः क्वचित्।
सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयाच्चतुष्पदीम्॥

अग्निपुराण के अनुसार कथा में कवि को अपना संक्षिप्त वंश-वर्णन श्लोकों में करना चाहिए। मुख्य अर्थ को प्रस्तुत करने के लिए कथान्तर का भी उपयोग किया जा सकता है। कथा में परिच्छेद नहीं होते परन्तु लम्बक आदि में उसका विभाजन किया जा सकता है। बीच-बीच में चतुष्पदियों का भी निवेश करना चाहिए।[61]

शृंगारमंजरीकथा में भोज ने अपने वंश का तो नहीं, परन्तु स्वयं का वर्णन अवश्य किया है। यह वर्णन भी कथा के प्रणेता के रूप में नहीं; बल्कि इसलिए हुआ है कि उसे धाराधीश का वर्णन करना है और धाराधीश वह स्वयं है। इसमें विभिन्न कथानक प्रस्तुत हुए हैं, अतः कथान्तर का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। यह कथा अग्निपुराण की कथा-परिभाषा से अलग हटकर कथा-निकाओं में विभाजित है। चतुष्पदियों का निवेश शृंगारमंजरीकथा के मध्य तो नहीं, परन्तु अन्त में अवश्य हुआ है।

अतः अग्निपुराण के कथालक्षणों का शृंगारमंजरीकथा में प्रायः अभाव पाया जाता है। अग्निपुराण ने जिन कथानिकाओं को गद्य की स्वतन्त्र विधा स्वीकार किया था, भोज ने उन्हें कथा के अंग अथवा पूरक के रूप में इस प्रकार उपयोग किया कि उनकी उस स्वतन्त्र महत्ता की रक्षा के साथ ही उन्हें नूतन व्यक्तित्व भी प्रदान कर दिया। वैसे भोज की कथानिकाएँ अग्निपुराण के लक्षणों के सम्मत भी नहीं हैं। वे केवल नाम से ही एक हैं परन्तु व्यक्तित्व से सर्वथा भिन्न।

भामह—

भामह के अनुसार[62] कथा में न तो वक्त्र-अपरवक्त्र होते हैं तथा न उच्छ्वास ही। उसमें शिष्ट चेष्टाओं का निवेश तो होना ही चाहिए परन्तु वह संस्कृत अथवा अपभ्रंश किसी भी भाषा

में रची जा सकती है। कथा में नायक को अपना चरित अन्य के द्वारा व्यक्त करवाना चाहिए क्योंकि अभिजात व्यक्ति अपनी प्रशंसा स्वयं ही कैसे कर सकता है?

न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि ।
संस्कृतं संस्कृता चेष्टा कथापभ्रंशभाक् तथा ।।
अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते ।
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः ।।

भोज की शृंगारमंजरीकथा सुरुचिपूर्ण चेष्टाओं से युक्त संस्कृत भाषा में विरचित कथा है। यह उच्छ्वासों में नहीं, कथानिकाओं म विभाजित है। नायक भोज का वर्णन यन्त्रपुत्रक करता है। भोज भामह के द्वारा निर्दिष्ट शालीनता को स्वीकार करता है[63]—

रे यन्त्रपुत्रक ! यद्यप्यस्मत्परिषदः सम्मतं तथापि निजगुणाविष्करणमगीतमिव प्रतिभासते । तद्राजवर्णनं भवानेव भणतु ।

दण्डी—

दण्डी के अनुसार कथा, संस्कृत तथा अन्य सारी भाषाओं में रची जा सकती है[64]—

कथा हि सर्वभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते ।

तथा इसकी व्याख्या में प्रेमचन्द्र तर्कवागीश कहते हैं कि कथा में विभिन्न भाषाओं का मिश्रण भी किया जा सकता है—

कथा सर्वभाषाभिर्बध्यते अतः सापि मिश्रा इत्यर्थः ।

संस्कृत भाषा में विरचित भोज की शृंगारमंजरीकथा के मध्य[65] कतिपय स्थलों पर प्राकृत वाक्यों का प्रयोग उपलब्ध होता है तथा अन्त में चार प्राकृत गाथाएँ भी प्राप्त होती हैं।

दण्डी के अनुसार आख्यायिका तथा कथा के भेदक तत्त्वों में कोई वैशिष्ट्य नही, वे गौण हैं। वस्तुतः कथा तथा आख्यायिका एक ही प्रकार की रचनाएँ हैं, केवल उनके अभिधानों में अन्तर है। वस्तु का वक्ता स्वयं हो अथवा अन्य, इससे कृतियों में भेद नहीं होता। आख्यायिका की विशेषताएँ कथा में भी सुलभ होती है। कथा में आर्या के स्थान पर वक्त्र तथा अपरवक्त्र का निवेश हो सकता है। उसे लम्भ से विभाजित किया जाय अथवा उच्छ्वास से, इससे भी कोई अन्तर नहीं आता। इसी प्रकार कन्यापहरण, संग्राम, विप्रलम्भ, उदय आदि गुण सर्गबन्ध महाकाव्यों के समान ही होते हैं। ये कोई विशेष गुण नहीं कहे जा सकते।[66]

अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा ।
इति तस्याः प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल ।।
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा ।
स्वगुणाविष्क्रिया दोषो मात्र भूतार्थशंसिनः ।।
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात् ।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वाभेद-लक्षणम् ।।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वं च भेदकम् ।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत्, प्रसंगेन कथास्वपि ।।
आर्यादिवत्प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः ।
भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः ।।

तत् कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञा द्वयांकिता ।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः ॥
कन्याहरण-संग्राम-विप्रलम्भोदयादयः ।
सर्गबन्धसमा एव नैते वैशेषिका गुणाः ॥
कविभावकृतं चिह्नमन्यत्रापि न दुष्यति ।
मुखमिष्टार्थ-संसिद्धौ किं हि न स्यात् कृतात्मनाम् ॥

कथानिकाओं से विभाजित भोज की शृंगारमजरीकथा में केवल विप्रलम्भ ही प्राप्त होता है। अन्त में चार प्राकृत गाथाएँ भी सुलभ हैं। परन्तु दण्डी के द्वारा व्यक्त कथा तथा आख्यायिका के अन्य वैशिष्ट्य वहाँ असुलभ हैं।

रुद्रट—

रुद्रट के अनुसार महाकथा के प्रारम्भ में श्लोकों से इष्टदेव एवं गुरुजनों का वन्दन करना चाहिए। कर्ता को अपना तथा अपने वंश का भी संक्षेप में परिचय देना चाहिए। कथा का फल कन्यालाभ में प्रस्तुत करना चाहिए तथा अंगीरस शृंगार का सर्वत्र सम्यक् विन्यास करना चाहिए। संस्कृत भाषा में गद्य अथवा पद्य में इसकी रचना होना चाहिए। अन्तः कथा का भी सन्निवेश किया जा सकता है। नायक का अभ्युदय, अन्त, राज्यभ्रंश आदि का भी वर्णन करना चाहिए। मुनियों का प्रसंग उपस्थित हो तो उनका मोक्ष व्यक्त करना चाहिए।[67]

श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरून्नमस्कृत्य ।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात्स्वं च कर्तृतया ॥
कन्यालाभफलां वा सम्यग्विन्यस्तसकलशृंगारम् ।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन ॥
अन्तःकथाश्च कुर्यात् त्रिष्वप्येषु प्रबन्धेषु ।
कुर्यादभ्युदयान्तं राज्यभ्रंशादि नायकस्यापि ।
अभिदध्यादेषु तथा मोक्षं च मुनिप्रसंगेन ॥

शृंगारमंजरीकथा का प्रथम पत्र उपलब्ध न होने से यह कहना असम्भव है कि भोज ने अपनी कथा के प्रारम्भ में इष्टदेव तथा गुरुजन की श्लोकबद्ध वन्दना की अथवा नहीं। भोज ने अपने वंश का तो नहीं परन्तु स्वयं का असंक्षिप्त परिचय दिया है, इस परिचय में स्वयं की जीवन-घटना का निवेश नहीं है। शृंगार रस इस कथा का अंगीरस है, अतः सर्वत्र व्याप्त है परन्तु कथा का फल कन्यालाभ में नहीं है। संस्कृत गद्य में विरचित इस कथा में किसी एक कथा का अभाव होने से अन्तःकथाओं की स्थिति भी नहीं है। नायक भोज का प्रारम्भ में ही अभ्युदय वर्णित है।

इस प्रकार शृंगारमंजरीकथा में रुद्रट द्वारा व्यक्त कथा के लक्षण आंशिक रूप से सुलभ होते हैं।

आप्टे—

वामन शिवराम आप्टे ने अपने कोश में कथा तथा आख्यायिका को इस प्रकार परिभाषित किया है[68]—

प्रबन्धकल्पनां स्तोकसत्यां प्राज्ञाः कथां विदुः ।
परम्पराश्रया या स्यात् सा मताख्यायिका बुधैः ॥

शृंगारमंजरीकथा में प्रबन्धकल्पना कुछ सत्य इस दृष्टि से है कि उसका नायक इतिहास प्रसिद्ध धाराधीश राजा भोज है। भोज की यह कृति उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार कथा ही सिद्ध होती है, इतिहासप्रसिद्ध नरेश के चरितवर्णन का इसमें निवेश होने पर भी।

हेमचन्द्र —

हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन में कथा का लक्षण देते हुए कहा है कि कथा किसी भी भाषा के गद्य अथवा पद्य में विरचित होती है। इसका नायक धीरप्रशान्त होता है[69]—

धीरप्रशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा।

शृंगारमंजरीकथा का नायक भोज धीरप्रशान्त नहीं, बल्कि धीरोदात्त है। वह स्वयं ही शृंगाररस से पूर्ण कथा सुनाता है, अतः धीरललितत्व की आशंका हो सकती है। परन्तु वह विविधराग तथा वेशोपनिषद् स्फुट करने के लिए यह प्रयास करता है, अतः वह धीरोदात्त के गुणों से ही युक्त है। कथानिकाओं के नायक धीरललित हैं।

विश्वनाथ—

साहित्यदर्पण में उस सरस गद्य-रचना को कथा कहा है जिसमें यत्र-तत्र आर्या, वक्त्र तथा अपरवक्त्र का निवेश हो तथा कथा के आदि में पद्यबद्ध नमस्कार एवं खलनिन्दा आदि की विवृति हो[70]—

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्॥
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्॥

शृंगारमंजरीकथा के आदिम पत्र अनुपलब्ध होने से विश्वनाथ-कृत कथा की परिभाषा के अधिकांश के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। शृंगारमंजरीकथा के अन्त में आर्या हैं। गद्य में विरचित शृंगारमंजरीकथा की वस्तु सरस है।

श्रीशम्भूनाथसिंह —

श्रीशम्भूनाथसिंह के अनुसार आधुनिक साहित्य में कथासाहित्य शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'फिक्शन' के अर्थ में होता है। साधारणतया पद्यबद्ध कथाओं को कथाकाव्य और गद्य में विरचित कथाओं को कथासाहित्य, उपन्यास, उपन्यासिका आदि कहते हैं।[71]

इनके अनुसार जैनसाहित्य में मध्यवर्गीय कथावस्तु और पात्रों पर आधारित बहुतसी पद्य-बद्ध रोमांसिक कथाएँ लिखी गयीं। रोमांसिक तत्त्वों और साहसिक कार्यो से युक्त काव्य रूप को ग्रहण कर संस्कृत में गद्यबद्ध कथाकाव्य लिखे गये जो कथा, आख्यायिका के नाम से प्रचलित हुए, किन्तु संस्कृत में कथा-काव्य नाम से अलग काव्य-रूप का निर्धारण नहीं किया गया है। कुछ प्राचीन आचार्यो ने कथाकाव्य को श्रव्य प्रबन्ध के एक अंग के रूप में तथा महाकाव्य या खण्डकाव्य से भिन्न श्रेणी का काव्यरूप माना था। श्रव्यप्रबन्ध के अन्तर्गत कथा-आख्यायिका को रसात्मक गद्य-प्रबन्ध मानना होगा। इसी को रसात्मक कथा-काव्य भी कह सकते है।[72]

श्री शम्भूनाथसिंह ने कथाकाव्यों के प्रमुख तत्त्वों का निर्धारण इस प्रकार किया है—

(1) इसमें गम्भीरता, महत्त् उद्देश्य और महत्त् चरित्र का अभाव होता है। यह रसात्मक और अलंकृत होता है। मनोरंजन ही कथा-काव्यों का प्रधान लक्षण होता है। उनके प्रमुख पात्र धीरललित या धीरशान्त होते हैं।

(2) कथाकाव्यों का कथानक जीवन्त, प्रवाहमय और आकर्षक होता है किन्तु वह यथार्थ जीवन पर आधारित नहीं होता। उसमें नाटकीय सन्धियों से युक्त अन्विति और सुसम्बद्धता नहीं होती।

(3) उसमें असम्भव और अविश्वसनीय बातें, आश्चर्यजनक कार्य, अप्राकृतिक, अमानवीय शक्तियों का बाहुल्य रहता है। कल्पना का चमत्कार बहुत अधिक होता है। रोमांसिकता, अतिशय भावुकता, युद्ध, प्रेम, भयंकर यात्रा और अनहोने कार्यों आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण होता है।

(4) कथाकाव्य में लोकतत्त्व और कथानकरूढ़ियाँ रहती हैं।

(5) नायकों का वीर रूप उनके प्रेम रूप से दबा रहता है। वह प्रेम भी अतिशय भावुकतापूर्ण, सामाजिक दायित्व से रहित, ऐकान्तिक और प्रायः स्थूल शारीरिक होता है।

(6) रसात्मकता, भावव्यंजना और अलंकृति तो होती है, किन्तु विचारों और भावों की गम्भीरता, उद्देश्य की महत्ता, बौद्धिक ऊँचाई और भावभूमि की व्यापकता नहीं होती।[73]

श्री शम्भूनाथसिंह ने चरितकाव्यों के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि संस्कृत प्रबन्धकाव्य चार प्रकार के होते हैं—(1) शास्त्रीय, (2) पौराणिक, (3) ऐतिहासिक तथा (4) रोमांसिक। शास्त्रीय चरितकाव्य नहीं होते। इनमें जीवनचरित की जन्म से मृत्यु या भवान्तरों की कथा होती है। प्रेम, वीरता, धर्म या वैराग्यभावना का समन्वय होता है। कथा के लिए वक्ता श्रोता की योजना रहती है। ये उद्देश्यप्रधान होने से धार्मिक, उपदेशात्मक, प्रचारात्मक या प्रशस्तिमूलक होते हैं। इन भेदक तत्त्वों से वे कथाकाव्यों से पृथक् देखे जा सकते हैं।[74]

शृंगारमंजरीकथा में चरितकाव्य के वैशिष्ट्यों का अभाव है। यह रोमांस से आवृत उपदेशात्मक ललित कथा-काव्य है।

उपर्युक्त कथाकाव्य के तत्त्वों के अनुरूप शृंगारमंजरीकथा में न गम्भीरता है, न महत् उद्देश्य है तथा न महत् चरित्र का सन्निवेश है। यह शृंगाररस से पूर्ण अलंकृत गद्यकाव्य है। कथानिकाओं के पात्र धीरललित हैं एवं मनोरंजन इसके उद्देश्यों में से एक है।

कथाप्रवाह आकर्षक परन्तु अयथार्थ है, क्योंकि सारी कथानिकाएँ काल्पनिक हैं अथवा उनके स्रोत भी अकाल्पनिक नहीं कहे जा सकते। नाटकीय सन्धियों का इसमें अभाव है। देवदत्ता कथानिका की आकाश-यात्रा तथा देवियों का प्रकट होकर वरदान देना अविश्वसनीय व आश्चर्यकारक है। ये अप्राकृतिक तथा अमानवीय तथ्य हैं। सम्पूर्णकथा में आद्योपान्त कल्पना का चमत्कार परिलक्षित होता है। सारी कथानिकाओं में रोमांसिकता, भावुकता तथा प्रेम-वर्णन है। सातवीं कथानिका में विन्ध्याटवी से होकर भयंकर यात्रा का भी चित्रण है।

प्रेम, वेश्या तथा कुट्टनियों की प्रवंचन-प्रवृत्ति का रूढ़िगत वर्णन है। स्थूल-प्रेमाभिव्यक्ति सर्वत्र व्याप्त है। रसात्मकता, भावव्यंजना व अलंकृति सर्वत्र व्याप्त है।

इस प्रकार शृंगारमंजरीकथा में श्री शम्भूनाथसिंह द्वारा प्रतिपादित कथाकाव्य की सामान्य विशेषताओं में से अधिकांश विशेषताएँ सुलभ हैं। तथापि शृंगारमंजरीकथा का अन्य पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कथाओं की अपेक्षा अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है, जो किसी भी लक्षणकार के लक्षण-बन्धनों से पूर्णतया आबद्ध नहीं होता, स्वयं भोज के द्वारा प्रतिपादित कथालक्षणों से भी नहीं। उसमें प्रतिपादित वेश्याचरित की भाँति, जो सदाचार तथा सामाजिक बन्धनों से स्वयं को प्रायः मुक्त रखती

हैं, उनके सदाचार तथा नियमों की अपनी परिभाषाएँ हैं, उसी प्रकार शृंगारमंजरीकथा के कथातत्त्वों का अपना वैशिष्ट्य है। वहाँ वह अपने स्वनिर्मित बन्धनों से आबद्ध है।[75]

भोज की दृष्टि में कथा तथा शृंगारमंजरीकथा

शृंगारमंजरीकथा के प्रारम्भ में स्वयं ग्रन्थकार ने कथा की कतिपय विशेषताओं की ओर संकेत किया है[76] —

> **कामप्यपूर्वां व्युत्पाद्य कथां कथयतु स्वामी इति विज्ञप्तः स्मितपूर्वमिदमभ्यधात्- एवमेतद्, किन्तु कथा हि कीर्त्यमाना नगरादिवर्णनपुरःसरा सौन्दर्यमावहति। न चैतस्याः पुरीतोऽन्या विलक्षणा काचिदप्यस्तीति प्रथममेवैव वर्णनीया भवति । अस्याश्चाधिष्ठातृत्व–प्रसंगेनात्मापि भणनीयः । तच्चानुचित- मिवास्मादृशाम् ।**

इससे ज्ञात होता है कि—

(1) कथा अपूर्व या कल्पित होती है।

(2) वह प्रीति तथा व्युत्पत्ति के लिए कल्पित होती है।

(3) कथा के प्रारम्भ में नगरादि का वर्णन होने से उसकी सुन्दरता में परिवृद्धि हो जाती है। तथा

(4) नगर के अधिष्ठाता का वर्णन भी आवश्यक है।

शृंगारमंजरीकथा पूर्णतया कल्पित है। उसकी नायिका, नायिका की माता तथा समस्त कथानिकाओं का कलेवर कल्पित है।

द्वादशरागों की व्याख्या तथा प्रेम के विविध स्वरूप एवं परिणामों की स्थितियों पर प्रकाश डालने से इस कथा से न केवल शृंगारमंजरी को ही उपदेश एवं बहुज्ञता प्राप्त हुई अपितु भोज से कथा सुनने के इच्छुक विद्वज्जन तथा नरेशों को भी तत्सम्बद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ। तथा कथाश्रवण से रसास्वादन तो हुआ ही।

कथा के प्रारम्भ में धारानगरी का रमणीय तथा सर्वाङ्गीण वर्णन किया गया है। तथा धारा का अधिष्ठाता होने से राजा भोज के व्यक्तित्व का भी उन्मीलन किया गया, जो ग्रन्थ का रचयिता भी है। यह वर्णन उसके नियुक्त यन्त्रपुत्रक ने प्रस्तुत किया है।

इसी प्रबन्ध के पंचम उच्छ्वास में व्यक्त किया जा चुका है कि भोज आत्मस्तुति को अनुचित मानता है और प्रस्तुत परिस्थिति में यह अनिवार्य होगा। अतः वह कथा सुनाने को सन्नद्ध नहीं होता। आत्मस्तुति का अनौचित्य भामह ने प्रतिपादित किया था[77] —

> **अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते ।**
> **स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः ॥**

भामह के अनुसार आत्मचरित अन्यों के द्वारा व्यक्त करवाया जा सकता है परन्तु आत्मस्तुति समाचार के अनुकूल नहीं है।

परिषद् के विद्वान् दण्डी के शब्दों में भोज की आशंका का उत्तर देते हैं[78]—

> **स्वगुणाविष्क्रियादोषो नात्र भूतार्थशंसिनः ।**

तथा सप्रमाण स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत करते हैं[79]—

तथाहि मुनिभिरपि वाल्मीकिपराशरव्यासादिभिः कविभिरपि गुणाढ्यभासभवभूतिवाणप्रभृतिभिरात्मगुणाविष्करणमक्रियत। असद्गुणख्यापनं हि दोषाय। यथार्थगुणाख्यानं पुनरनवगीतमेव इति............।

उपर्युक्त आशंका का यह स्पष्टीकरण स्वयं भोज का है। उस भोज का जिसने सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश में दण्डी के अभिमतों को विशेष रूप से स्वीकार किया तथा अपनी स्थापना में उसके विचारों का आधार भी लिया[80] एवं काव्यशास्त्रीय तथ्यों-रागों-तथा प्रेमावस्थाओं के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए शृंगारमंजरीकथा भी रची। भोज तर्क की दृष्टि से दण्डी का अभिमत स्वीकार कर कथा कहने में प्रवृत्त हो जाता है परन्तु आत्मवर्णन की स्थिति उपस्थित होने पर उसकी सहज शालीनता उसे वैसा करने की अनुमति नहीं देती और सहसा वह भामह के अभिमत को स्वीकार कर यन्त्रपुत्रक से यह कार्य करवा लेता है[81]—

रे यन्त्रपुत्रक ! यद्यप्यस्मत्परिषदः सम्मतं तथापि निजगुणाविष्करणमगीतमिव प्रतिभासते तद्राजवर्णनं भवानेव भणतु इति।

दण्डी भी इस आचरण को स्वीकार करता है। आख्यायिका के सन्दर्भ में दण्डी का अभिमत है कि नायक अपना चरित स्वयं कहे अथवा अन्य से कहलावे[82]—

नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।

भोज ने शृंगारप्रकाश में इसे स्वीकार किया है[83]—

नायकचरितं ब्रूते नायक एवास्य वानुचरः।

+ + +

साख्यायिकेति कथिता माधविकाहर्षचरितादि।

शृंगारमंजरीकथा में नायक भोज अपना वर्णन अपने अनुचर-यन्त्रपुत्रक-से करवाता है। यह विशेषता कथा की नहीं, आख्यायिका की है जिसका सन्निवेश कथा-ग्रन्थ शृंगारमंजरीकथा में हो गया है। इसीलिए शृंगारमंजरीकथा की विदुषी सम्पादिका कुमारी कल्पलता मुन्शी ने इस ग्रन्थ को आख्यायिका की विशेषता से युक्त कथाग्रन्थ कहा है।[84] वस्तुतः प्रस्तुत सन्दर्भ में नायक द्वारा आत्मचरित का वर्णन यन्त्रपुत्रक से करवाने से यह कृति आख्यायिका के गुणों से मण्डित नहीं हो गयी।

वस्तुस्थिति यह है कि कथा के प्रारम्भ में नगरादि का वर्णन रहने से उसका सौन्दर्य बढ़ जाता है। साथ ही उसके अधिष्ठाता का भी वर्णन आवश्यक है। वस्तुतः इस कृति में रचयिता आत्मचरित इसलिए नहीं प्रस्तुत कर रहा है कि कृतिकार का आत्मचरित अथवा आत्मश्लाघा व्यक्त हो सके अपितु वह नगर के अधिष्ठाता महाराजा भोज का विवरण प्रस्तुत कर रहा है जो कथा की सौन्दर्य-वृद्धि के लिए आवश्यक है। यह एक संयोग है कि वर्ण्यनगरी-धारा-के स्वामी से रचयिता अभिन्न है। परन्तु इससे कृति के स्वरूप में अन्तर नहीं आता तथा न इससे शृंगारमंजरी कथा आख्यायिका के गुण से अन्वित हो जाती है। इस परिस्थिति में रचयिता का आत्मवर्णन, नृप के व्याज से प्रस्तुत होने से इस कृति में आख्यायिका का वैशिष्ट्य नहीं आता। इसलिए इस कृति को शुद्ध कथा ही कहा जाना चाहिए, जैसा कि स्वयं रचयिता को भी अभीष्ट है।

शृंगारप्रकाश में कथा का लक्षण इस प्रकार प्राप्त होता है[85]—

या अनियमितगतिभाषा दिव्यादिव्योभयेतिवृत्तवती ।
कादम्बरीव लीलावतीव सा कथा कथिता ।।

भोज के अनुसार कथा में गति तथा भाषा का बन्धन नहीं होता है । सरस्वतीकण्ठाभरण में गति को इस प्रकार परिभाषित किया है[86] —

गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यं यत्सा गतिः स्मृता ।

तात्पर्य यह कि कथा गद्य, पद्य अथवा मिश्र किसी भी प्रकार से रची जा सकती है । शृंगारमंजरीकथा आद्योपान्त गद्य में रची गयी है । केवल अन्त में मालिनी, शिखरिणी तथा अनुष्टुभ् के साथ ही चार प्राकृत गाथाएँ भी रची गयी हैं, जो कथा का महत्त्व तथा विशेषता प्रतिपादित करती हैं ।

कथा में भाषा का भी बन्धन नहीं है । वह संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंश किसी भी भाषा में रची जा सकती है । शृंगारमंजरीकथा संस्कृत भाषा में विरचित कथाग्रन्थ है । कथा के अन्त में चार प्राकृत गाथाएँ सुलभ होती हैं । तथा कथा के मध्य आवश्यकतानुसार प्राकृत-वाक्यों का भी प्रयोग किया गया है ।[87] अतः भाषागत अनियम का सीमित रूप से इसमें उपयोग किया गया है ।

कथा का इतिवृत्त दिव्य तथा अदिव्य किसी भी प्रकार का हो सकता है। शृंगारमंजरीकथा में अदिव्य वस्तु की बहुलता होने पर भी देवदत्ता, लावण्यसुन्दरी तथा उभयानुराग कथानिका में दिव्यादिव्य का सम्मिश्रण हो गया है । देवदत्ता कथानिका में उसकी दिव्य अश्व से आकाशयात्रा इसी रूप में वर्णित है तथा अपर दो कथानिकाओं में देवी के द्वारा मृतों को पुनर्जीवन प्रदान करना भी इसी विशेषता को लिये हुए है ।

शृंगारप्रकाश में ही अन्यत्र कहा गया है कि कथा आदि कामप्रधान होती है[88]—

भवेत्कामप्रधानं तु कथादयः ।

शृंगारमंजरीकथा की रचना से इस तथ्य की सम्यक् पुष्टि होती है । वेशयुवती शृंगारमंजरी को उसकी माता उपदेश देती है कि उसे प्रेम-व्यापार में सम्हल कर रहना चाहिए । प्रेम व्याघ्र के समान भयकर होता है जो अवसर पाते ही आक्रमण कर देता है । आक्रान्त होने के पश्चात् उससे मुक्ति पाना असम्भव है । अतः उससे बचकर रहना चाहिए । यह राग बारह प्रकार का होता है इनमें से प्रमुख चार रागों तथा प्रेम की विविध स्थितियों पर प्रकाश डालने वाली स्थितियों से सम्बद्ध तेरह कथानिकाएँ रची गयी । अतः शृंगारमंजरीकथा आद्योपान्त कामप्रधान है ।

पुनः शृंगारप्रकाश में कहा गया है कि कथा आदि में वृत्ति का भी समुचित समाहार होना चाहिए[89]—

कथादिषु यथायोगं विज्ञेया वृत्तिकल्पना ।

भोज ने चार वृत्तियों की कल्पना की है—भारती, आरभटी, कैशिकी तथा सात्वती । भोज के अनुसार कथा कामप्रधान होनी चाहिए जिसका उपयुक्त उदाहरण शृंगारमंजरीकथा है । शृंगारमंरीकथा कामवृत्ति की प्रकाशिका है । वेशजीवन से सम्बद्ध तथा प्रेम के विविध रूप का निवेश होने से यह स्त्रीसंयुता है जो सदा पर पुरुष को आकर्षित करने के सर्वप्रमुख साधन-नेपथ्य एवं अलंकरण से अपने सौन्दर्य के प्रदर्शन में भी निरत रहती हैं । कई स्थलों पर इसमें नृत्त का भी आयोजिन किया गया है ।[90] इसमें कामोपभोग के अमित उपचार भी पद पद पर सुलभ है । ये सारी विशेषताएँ कैशिकी वृत्ति की है[91]—

या श्लक्ष्णनेपथ्यविशेषचित्रा स्त्रीसंयुता या बहुनृत्तगीता ।
कामोपभोगप्रभवोपचारा तां कैशिकीवृत्तिमुदाहरन्ति ॥

अतः शृंगारमंजरीकथा में कैशिकी वृत्ति की स्थिति है ।

भोज के अनुसार कथा में पंचसन्धि का भी सन्निवेश होना चाहिए[92]—

एते तु सन्धयः कार्या नाटकेषु प्रयोक्तृभिः ।
तथा प्रकरणेष्वेवं कथास्वाख्यायिकासु च ॥

शृंगारमंजरीकथा में सोद्देश्य रची गयी विभिन्न वस्तु तथा उद्देश्य का वहन करने वाली कथानिकाओं का आकलन होने से उसमें किसी प्रकार की सम्यक् सन्धि कल्पना प्राप्त नहीं होती । दशकुमारचरित के समान इस कथा में भी सम्पूर्ण रूप से सन्धि की स्थिति पाना असम्भव है ।

चम्पूरामायण में भोज ने कथा की कतिपय अन्य विशेषताओं तथा उसके प्रयोजन की ओर भी संकेत किया है[93]—

इति विविधरसाभिः कौशिकव्याहृताभिः
श्रुतिपथमधुराभिः पावनीभिः कथाभिः ।
गलितगहनकृच्छ्रं गच्छतोर्दाशरथ्योः
समकुचदिव सद्यस्तादृशं मार्गदैर्घ्यम् ॥

शृंगारमंजरीकथा की कथा तथा कौशिक के द्वारा व्यक्त कथाओं के स्वरूप में अमित अन्तर होने पर भी इस श्लोक से कथा सामान्य की ये विशेषताएँ ज्ञात होती हैं—

(1) कथा में विविध रस हो सकते हैं ।

(2) कथा सुनने में मधुर होती हैं ।

(3) ये पवित्र वस्तु का वहन भी करती हैं ।

(4) इसमें वक्ता तथा श्रोता का सन्निवेश किया जा सकता है ।

(5) थकान तथा कष्ट में मनोरंजन का यह सरस साधन है ।

(6) सरस तथा सुनने से काल तथा मार्ग की दीर्घता संकुचित-सी लगने लगती है ।

शृंगारमंजरीकथा में वक्ता भोज है तथा श्रोता उनकी परिषत् । शृंगारमंजरीकथा में प्राप्त विविध कथानिकाएँ विविध रसों से पूर्ण हैं । शृंगार की वहाँ प्रधानता है परन्तु अद्भुत, बीभत्स, करुण, हास्य आदि रस भी अङ्ग रूप से सुलभ होते है । यह कथावस्तु, भाषा तथा कल्पना की दृष्टि से मधुर है । ये लोकप्रीति तथा व्युत्पत्ति के लिए रची गयी हैं ।

शृंगारमंजरीकथा में कथा के अनुरूप वस्तु का विशद पटल है । वहाँ विभिन्न प्रवृत्तियों के नायक, नायिकाएँ प्राप्त होती हैं । कुट्टनियों के चरित भी इसमें विशिष्ट हैं ।

नगर, पर्वत, अटवी, छहों ऋतुएँ, प्रातः सन्ध्या, चन्द्रोदय, सागर, तडाग, उद्यान आदि के विशद वर्णन के साथ ही अश्व, गज, महिष, मृग, वानर, वराह आदि के भी मनोरम वर्णन प्राप्त होते हैं । इस प्रकार भोज की शृंगारमंजरीकथा में कथा की प्रायः सभी विशेषताएँ सुलभ हैं ।

पूर्व विवरण से स्पष्ट है कि शृंगारमंजरीकथा एक कथा ग्रन्थ है परन्तु उसकी रचना सोद्देश्य हुई है । वह सहृदयों को काव्य का रसास्वादन करवाने के साथ ही वैशिकरहस्यों का भी

उद्घाटन करती है। इसमें दत्तक के द्वारा प्रणीत वैशिक रहस्य अथवा वैशिकोपनिषद् के रहस्य का सुललित एवं हृदयावर्जक शैली में प्रस्तुतीकरण हुआ है[94]—

> यस्यां च वैशिकोपनिषदि रहस्यमेतद्-यद्व्याघ्रादिव प्रेम्णः
> सावधानतया सर्वदेवात्मा रक्षणीयः।..........तथा हि ते
> कथयामि, श्रूयताम्।

एवं

> विशेषतो दत्तकादिप्रणीतवैशिकरहस्यानि च ज्ञापितः।

साथ ही राग के जिन द्वादश प्रकारों का विवरण शृंगारप्रकाश में प्राप्त होता है,[95] उन्हीं रागों का विवरण शृंगारमंजरीकथा में भी सुलभ है।[96] प्रत्येक व्यक्ति की चित्तवृत्ति दुर्विज्ञेय होती है। उन्हें समझकर तदनुकूल उससे व्यवहार करते हुए अपने चित्त तथा वित्त की रक्षा करना चाहिए। इस प्रकार विषमशीला का उपदेश वस्तुतः वैशिकोपनिषद् है जिसके समुचित उदाहरणों के रूप में ही शृंगारमंजरीकथा की तेरह कथानिकाओं की रचना हुई है। इस रूप में यह वात्स्यायन के कामशास्त्र के वैशिक अधिकरण की भी व्याख्या प्रस्तुत करती है। फलतः सम्पूर्ण रूप में शृंगारमंजरीकथा अपने ललित कथा कलेवर में भी वैशिकरहस्य की शास्त्रीय व्याख्या तथा विविधरागों की समुचित विवृत्ति प्रस्तुत करती है। स्वभावतः यहाँ कथारूप गद्यकाव्य में कामशास्त्र का सम्यक् सन्निवेश हो गया है।

भोज अपने शृंगारप्रकाश में ऐसी काव्य-कृति को काव्यशास्त्र की संज्ञा देता है जिसमें शास्त्र का भी समाहार हो गया हो[97]—

> यत्रार्थश्शास्त्राणां काव्ये विनिवेश्यते महाकविभिः।
> तद्भट्टिकाव्यमुद्राराक्षसवत्काव्यशास्त्रं स्यात्॥

भट्टिकाव्य में व्याकरण तथा अलंकारों की विवृत्ति प्रस्तुत की गयी है तो मुद्राराक्षस में अर्थशास्त्र अथवा दण्डनीति की प्रवृत्ति है। शृंगारमंजरीकथा में कामशास्त्र के वैशिक रहस्य का सांगोपांग विवरण सुलभ होने से यह काव्यशास्त्र प्रकार का कथाग्रन्थ कहा जा सकता है।

शृंगारमंजरीकथा में शृंगारमंजरी को उपदेश दिया जाता है। उसे चित्त तथा वित्तरक्षण में सावधान रहने का उपदेश दिया जाता है। शृंगारमंजरी अब तक नहीं जानती कि चित्तवृत्ति को समझकर सब कुछ हड़प कर रागी को कैसे निकाल देना चाहिए, फिर धनी होने पर कैसे उसे अनुरक्त कर लेना चाहिए, कैसे अन्यचित्त को अनन्यचित्त बना लेना चाहिए और राग कितने व कैसे होते हैं? इन तथा इन जैसे अनेक वेशजीवन के लिए आवश्यक तथ्यों की ओर विषमशीला ध्यान आकर्षित करती है। इन्हें ही स्पष्ट करने के लिए वह तेरह कथानिकाएँ कहती है। प्रत्येक कथानिका के अन्त में शृंगारमंजरी को उस कथानिका के आधार पर शिक्षा भी देती चलती है यथा[98]—

> तत्पुत्रि। धूर्ता नातिपीडनीया, यतः पीडिताः सन्तः तत्
> किमपि कुर्वन्ति येन पूर्वसंचितमप्यर्थमादाय प्रयान्ति।

सारी कथानिकाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब अन्त में पुनः समाहाररूपेण शिक्षा देती है[99]—

इत्थं पुत्रि ! न कदाचिदप्यभूद् भुवनैकतापने तपन इवास्मत्कुले
परवंचनाकलंकः । तद् भवत्या तथा प्रयतितव्यं यथा न लुण्ट्यसे विटैः,
न नर्त्यसे धूर्तैः, नोपहस्यसे वयस्याभिः, न कदर्थ्यसे कदर्यैः,
नोपभुज्यसे भुजंगैः, न खण्ड्यसे पाषण्डिभिः, न रज्यसे रागिभिः,
न धिग्क्रियसे किं (तवैः)...............
वितार्य्यन्ते विदग्धाः, भुज्यन्ते महार्थाः, खण्ड्यन्ते पाषण्डिनः...........
कुलकुमुदकौमुदीव भवति ।

स्पष्ट ही यहाँ शृंगारमजरी तथा उस जैसी वेश्याओं को कर्त्तव्याकर्त्तव्य का उपदेश दिया गया है। सारी कथानिकाएँ तथा विषमशीला का उपदेश इसी उद्देश्य की पूर्ति में व्यापृत है।

जो ग्रन्थ कार्य तथा अकार्य के निरूपण में व्यस्त हो, उसे 'निदर्शन' कहते हैं[100]—

धूर्तविटकुट्टनीमतमयूरमार्जारिकादि यल्लोके ।
कार्याकार्यनिरूपणरूपमिह निदर्शनं तदपि ॥

स्पष्ट है, इस दृष्टि से शृंगारमंजरीकथा निदर्शन प्रकार का काव्य है। विषय की दृष्टि से भी उपर्युक्त धूर्तविट, कुट्टनीमत आदि कृतियों से इसकी समता है।

उपसंहार—

इस प्रकार भोज की प्रायः सभी साहित्यिक रचनाओं में भोज तथा इतर रचयिताओं के काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का कहीं पूर्ण रूप से तथा कहीं आंशिक रूप से समाहार हो जाता है। साथ ही इनमें उन वैशिष्ट्यों का भी समाहार है जो उन्होंने अपनी विशिष्ट कृतियों में काव्य की उन-उन विधाओं के लिए व्यक्त किये हैं।

साथ ही प्रस्तुत प्रबन्ध के सम्पूर्ण विवरण से यह भी स्पष्ट है कि चम्पूसाहित्य में भोजचम्पू विशिष्ट है तथा कथासाहित्य में शृंगारमंजरीकथा। चारुचर्या दैनिक सदाचार का धर्म, वैद्यक एवं नीति की दृष्टि से विचार प्रस्तुत कर आदर्श जीवन का पथ-प्रदर्शन करती है। चाणक्यराजनीतिशास्त्र नीतिमय जीवन जीने का आग्रह करता है। सुभाषितप्रबन्ध का भोजकृतित्व सन्देह के परे नहीं है। यदि यह भोजकृत संकलन है तो सुभाषितग्रन्थों में गाथासप्तशती के पश्चात् सर्वप्राचीन होने का गौरव पा सकता है। अवनिकूर्मशतम् रचकर भोज ने प्राकृतसाहित्य की श्रीवृद्धि की है। संस्कृत में भोज की शैली की जो प्रौढ़ता दृष्टिगत होती है, प्राकृत में उसका अभाव नहीं है। गाथारचना में वह सिद्धहस्त है। संस्कृत तथा प्राकृत में भोज ने सफलतापूर्वक काव्यरचना की है और इस रूप में भोज ने इन भाषाओं के पण्डितों को ही प्रश्रय देकर काव्यरचना नहीं करवायी अपितु स्वयं भी सक्रिय भाग लिया।

अवनिकूर्मशतम् की प्राकृत में संस्कृत, अपभ्रंश तथा स्थानीय भाषा के शब्दों के प्रयोग तथा प्रवृत्ति एवं शृंगारमंजरीकथा में प्राकृत तथा देशी शब्दों के प्रयोग तथा उनके संस्कृतीकरण से भोज ने इन भाषाओं को कूपमण्डूकता से मुक्त कर खुले आकाश के नीचे ला खड़ा किया और उन्हें समृद्ध करने के पथों का प्रदर्शन भी किया।

सन्दर्भ

1. काव्यादर्श, 1/31
2. साहित्यदर्पण 6/336
3. नलचम्पू, 1/25
4. जीवन्धरचम्पू, 1/9
5. च० रा०, बालकाण्ड, 2
6. डा० छबिनाथ त्रिपाटी, चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, पृ० 31
7. चम्पूविनमूल (कन्नड), कन्नडसाहित्य, परिषत् पत्रिका, बेंगलोर, भाग 26, अंक 1,
   द हेरिटेज आफ कर्नाटक, बेंगलोर, 1946, पृ० 191
   द पूना युनिवर्सिटी जर्नल, ज्ञानखण्ड, 1955, पृ० 102
8. डा० सी० आर० देशपाण्डे,
   डिरायवेशन आफ द वर्ड चम्पू, ओरियण्टल थाट, ग्रन्थ 6, भाग 3 अक्टोबर 1962, पृ० 9–12
9. अखण्डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात् ।
   व्याघ्रादिव समाघ्रातो गद्यात् व्यावर्तते जनः ।।
   —धनपाल, तिलकमंजरी, 15
10. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्यसहचर, पृ० 166
    नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, 1968
11. शृं० प्र०, पृ० 120
12. वही, पृ० 122
13. वही, पृ० 133
14. वही, पृ० 480
15. काव्यादर्श, 1/31
16. शृं० प्र०, पृ० 470
17. डा० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, प्रथम–अध्ययन, पृ० 816
18. काव्यानुशासन 8/9 तथा वाग्भटालंकार, प्रथम अध्याय
19. दैवज्ञसूर्य विरचित नृसिंहचम्पू की भूमिका
20. सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/6,8,9
21. सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/18 तथा उस पर रत्नेश्वर मिश्र की टीका
22. शृं० प्र०, पृ० 469
23. शृं० प्र०, पृ० 485
24. च० रा०, बालकाण्ड, 3
25. दमयन्तीकथा, हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला, 98, चौखम्बा, बनारस, 1932 ई० पृ० 36
26. श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं–किरातार्जुनीयम् । 1/1
    श्रियः पतिः·········शिशुपालवध, 1/1
27. लक्ष्मीं तनोतु नितरामितरानपेक्षं–च० रा०, बालकाण्ड, 1

28. यत्रेतिहासमखिलं यथास्थितं चैकमेव भाषन्ते ।
    ऋपयस्सकाण्डवन्धो रामायणसन्निभो भवति ॥ —शृं० प्र०, पृ० 470
29. चाणक्यराजनीतिशास्त्र, 1/2
30. वही, 1/15
31. वही, 8/135
32. शृं० प्र०, भाग 2, पृ० 470
33. काव्यादर्श, 1/13
34. वी० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 629
35. शृंगारप्रकाश, भाग दो, पृ० 470
36. निर्णयसागर, पृ० 260
37. राजशेखर, काव्यमीमांसा, पृ० 17 गायकवाड़सीरिज, वड़ौदा
38. शृं० प्र०, पूर्ववत्, पृ० 470
39. भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 629
40. शृंगारप्रकाश, भाग दो, पृ० 480
41. प० इ०, 1944 ई०
42. शृंगारप्रकाश, भाग दो, पृ० 480
43. शृं० क०, पृ० 1
44. वही, पृ० 19
45. वही, क्रमश: पृ० 26, 28, 30, 35, 40, 48, 56, 66, 72, 77, 81, 84,
46. वही, पृ० 89
47. वही, पृ० 89
48. वही, पृ० 89
49. वही, पृ० 79
50. वही, पृ० 35
51. वही, पृ० 40
52. अग्निपुराण, 337/12
53. वही, 337/20
54. डा० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 67
55. शृंगारप्रकाश, 36 वां प्रकाश, तथा शृंगारमंजरीकथा, परिशिष्ट 1
56. पाणिनि, अष्टाध्यायी ।
57. भयानकसुखपरं गर्भे च करुणो रसः ।
    अद्भुतोऽन्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका ॥
    —अग्निपुराण, 337/20
58. शृं० क०, पृ० 53
59. वही, पृ० 65
60. अमरकोश, 1/5/5,6

61. अग्निपुराण, 337/15,16,17
62. काव्यालंकार, 1/28–29
63. श्रृं० क०, पृ० 7
64. काव्यादर्श, 1/38 तथा उस पर प्रेमचन्द्र तर्कवागीश की टीका ।
65. श्रृं० क०, पृ० 32,34,53 एवं 89
66. दण्डी, काव्यादर्श, 1/23–30
67. रुद्रट, काव्यालंकार, 16/20,23,31 एवं 32
68. संस्कृत-हिन्दकोश, पृ० 242, सन् 1966, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, दिल्ली, पटना ।
69. काव्यानुशासन, पृ० 338
70. साहित्यदर्पण, 6/332–33
71. हिन्दी साहित्यकोश, पृ० 203 : कथा, कथासाहित्य द्वितीय संस्करण, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, संवत् 2020
72. वही, पृ० 201–2 : कथाकाव्य
73. हिन्दी साहित्यकोश, पृ० 202
74. वहीं, चरितकाव्य, पृ० 315–16
75. द्रष्टव्य, श्रृं० क०, पृ० 1 तथा 18 एवं 19
76. वही, पृ० 1
77. काव्यालंकार, 1/29
78. काव्यादर्श, 1/24 तथा श्रृं० क०, पृ० 1
79. शृं० क०, पृ० 1
80. डा० राघवन्, भोजाज शृंगारप्रकाश, पृ० 67
81. शृं० क०, पृ० 7
82. काव्यादर्श, 1/24
83. शृं० क०, पृ० 469
84. शृं० क०, इण्ट्रोडक्शन, पृ० 29 तथा 31
85. शृं० प्र०, पृ० 469
86. सरस्वतीकण्ठाभरण, 2/18
87. शृं० क०, पृ० 32,34,53
88. शृं० प्र०, पृ० 480
89. वही, पृ० 480
90. शृं० क०, पृ० 36,58,65,66,68 आदि ।
91. शृं० प्र०, पृ० 485
92. वही, पृ० 485

93. च० रा०, बालकाण्ड, 47
94. शृं० क०, पृ० 19 विषमशीला की शिक्षा एवं रविदत्तकथानिका
95. शृं० प्र०, 36 वाँ प्रकाश ।
96. शृं० क०, पृ० 18–19
97. शृं० प्र०, पृ० 470
98. शृं० क०, पृ० 56
99. वही, पृ० 89
100. शृं० प्र०, पृ०, 469

परिशिष्ट–1

चाणक्यराजनीतिशास्त्र की एक अप्रयुक्त प्रति से पाठ-भेद

होशियारपुर से प्रकाशित होने वाली विश्वेश्वरानन्द-भारतभारती-ग्रन्थमाला 28 में लुडविक स्टेर्नबेक द्वारा सम्पादित चाणक्यनीतिशाखा-सम्प्रदाय के ग्रन्थ 1, भाग 2 (1964 ई०) में छठे ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित भोजराज के चाणक्यराजनीति-शास्त्र के सम्पादन में देश-विदेश की विभिन्न प्रतियों का उपयोग किया गया है। परन्तु भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना में हस्तलिखित ग्रन्थ क्रमांक 74 (1883–1884) पर चाणक्यनीति के नाम से उपलब्ध इसी ग्रन्थ की प्रति का उपयोग नहीं किया गया है। यह प्रति विक्रम संवत 1845 में लिखी गयी है। इसमें 25 पत्र हैं तथा प्रत्येक पृष्ठ पर 12 पंक्तियाँ एवं प्रत्येक पंक्ति में लगभग 38 अक्षर हैं। इस प्रति का आकार $8\frac{1''}{4} \times 4\frac{3''}{4}$ है। प्रस्तुत परिशिष्ट में लुडविक स्टेर्नबेक द्वारा अप्रयुक्त इस प्रति का उनके द्वारा सम्पादित चाणक्यराजनीतिशास्त्र से पाठभेद प्रस्तुत किया जायगा।

अध्यायानुक्रमेण श्लोक-संख्या तथा पाठसाम्य की दृष्टि से यह प्रति भाण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट में क्रमांक 348 (1892–95) पर उपलब्ध प्रति के अधिक निकट है। चाणक्यराजनीतिशास्त्र की विभिन्न प्रतियों के निम्नांकित तुलनात्मक मानचित्र से यह स्पष्ट हो सकेगा।

अ.	चा.रा. पे.	चा.रा. बो.	चा.रा. भा.1	चा.रा. भा.2	चा.रा. भा.3	चा.रा.	चा.रा. ई.	चा.रा. के.1	चा.रा. के.2	चा.रा. ति.	गु.पु.
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
1	52	48	52	53	53	49	59	—	अध्यायों में अविभाजित, म० पु० के समता कुल श्लोक 58	23	25
2	62	65	62	52	52	62	58	24		30	50
3	68	73	66	61	60	61	73	52		31	28
4	34	49	34	40	40	31	59	23		17	28
5	44	48	44	48	48	43	48	41		26	35
6	53	62	54	56	59	52	99	44		23	43
7	85	86	83	65	67	79	98	40		31	63
8	143	145	142	97	98	135	164	—		72	64
कुल	541	576	537	472	477	512	658	224		253	336

लुडविक स्टेर्नबेक के सस्करण में चा० रा० भा० 3 के अध्यायानुसार निम्नांकित श्लोक प्राप्त नहीं होते—

अध्याय 1 में (14,30,36,40,42) 5, अध्याय 2 में (28 से 31, 50) 5, अध्याय 3 में (3,34, 39,41,42,58) 6, अध्याय 4 में (12,16,18,22,24,29,35,37) 8, अध्याय 5 में (16,19 से 27,45,46) 12, अध्याय 6 में (5,10,23,31-33,37,39,47,54,55) 11, अध्याय 7 में (3,4,6,7,37,39,41,48,51,53-55,57,58,62,63) 16, अध्याय 8 में(9,39,46,59,72,76, 77,81,87,91 से 95) में 14। इस प्रकार कुल (5+5+6+8+12+11+16+14) 77 श्लोक एक-दूसरे से भिन्न हैं। अर्थात् चा० रा० भा० 3 के 400 श्लोक चा० रा० में प्राप्त होते हैं। चा० रा० में 512 श्लोक हैं तथा 22 सन्देहास्पद हैं। इस प्रकार कुल श्लोक 534 हैं

534 श्लोकों में से चा० रा० भा० के 400 श्लोक प्राप्त होते हैं। अध्याय 1 का 41 वाँ, अध्याय 2 का 10 वाँ (पादटिप्पणी में), अध्याय 3 का 23 वाँ, अध्याय 4 का 28 वाँ, अध्याय 6 का 3 रा एवं 41 वाँ तथा अध्याय 7 का 24 वाँ. इस प्रकार सन्देहास्पद संकलित श्लोकों में 7 श्लोक उपलब्ध होते हैं। इनके योग पर ही 400 श्लोक दोनों में एक से ज्ञात होते हैं। इनके अतिरिक्त अवशिष्ट 77 श्लोक प्रस्तुत परिशिष्ट में संकलित किये गये हैं।

कतिपय श्लोकों के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में स्थानपरिवर्तन हो गया है। ऐसे श्लोकों का क्रमांक-निर्देश कर दिया गया है। कतिपय श्लोकों के एक अथवा दो सम्पूर्ण चरणों में भिन्नता है, वे भी यहाँ प्रदर्शित कर दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे पाठभेद का इस प्रति में प्रायः अभाव है जिनका विशेष महत्त्व हो। यों तो प्रायः प्रत्येक श्लोक में पाठभेद प्राप्त होते हैं परन्तु वे या तो लेखकीय त्रुटि हैं अथवा सर्वथा असहत्त्वशाली। अतः ऐसे पाठभेद देकर व्यर्थ का विस्तार नहीं किया जा रहा है।

1. नोत्सृजेत्कृपणे दानं पुनः दारिद्र्यशंकया।
   प्राज्ञो बुधो सृजेद्दानं न भाव्यं तत्र शङ्कया ॥1-14

2. साध्वी सुशीलसम्पन्ना सुरूपा च कुलोन्नता।
   देवाग्निगुरुभक्ता च सा भार्या भोगमोक्षदा ॥1-30

3. पत्यौ भक्तिव्रतं स्त्रीणामद्रोहो मन्त्रिणां व्रतम्।
   प्रजानुपालनं राज्ञं (ज्ञां?) व्रतं शीलं महात्मनाम् ॥1-36

4. आयातं स्वपतिं दृष्ट्वा भक्षयंती सदाखिलम्।
   परित्यक्ता निजैः (जैः) पुत्रैः बन्धुभिः स्वजनैस्तथा ॥1-40

5. दुराद्रुन्मुक्तनित्ये (त्ये?) च हसन्त्यवविलोकिता।
   भार्या यासदृशी गेहे पूर्वदुष्कृतसङ्गतिः ॥1-42

6. अहेरिव जनाद्भीतोऽभीष्टान्नाद्यो विषा (षा) दिव।
   राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति ॥2-28

7. मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
   कान्तेव चाभिरम (म?) त्यपनीय दुःखम्।
   कीर्तिं सदैव वितनोति ददातु लक्ष्मीं
   किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥[1] 2-29

8. हर्तुं याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति सर्वात्मना
   ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमा (मा?) ननिशं वृद्धिं परां गच्छति।
   कल्पान्तेपि न हि प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
   येषां तां प्रतिमान मुजागृत (?) नृपा क्स्तैस्सह स्पर्धते ॥[2] 2-30

9. विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नमन्तर्धनं
   विद्या भोगकरी यशस्सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
   विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं भूषणं
   विद्या राजसु पूजिता न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ॥[3] 2-31

10. येषां न विद्या न तपो न दानं न चापि शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।[4] 2-50

11. यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ।।[5] 3-3

12. अप्रगल्भा पदन्यासे जननीरागहेतवः ।
सन्त्येके बहुलालापा कवयो बालका इव ।।[6] 3-34

13. न जारजातस्य ललाटशृङ्गं न सत्कुलीनस्य करेऽस्ति पद्म ।
यदा यदा मुञ्चति वाक्यभावं तदा तदा पश्यति जारजातम् ।।3-39

14. सर्वो सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कुत्रचित् ।
नैकत्र परिशिष्टास्ति ज्ञानस्य पुरुषो क्वचित् ।।3-41

15. न राज्ञा सह मित्रत्वं न सर्पो निर्विषो भवेत् ।
न कुलं निर्मलं तत्र स्त्रीजनो यत्र जायते ।।3-42

16. विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशिन-
स्तेपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुविमलं दृष्ट्वैव मोहं गताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्बन्धस्तरेत्सागरः ।।[7] 3-58

17. यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञ' ।
स एव पूज्यः स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ।।4-12

18. चण्डालश्च दरिद्राश्च श्या (?) विमौ तुलया समौ ।
एकः सुबन्धुभिस्स्पृष्टः तैरपि त्यज्यते परः ।।4-16

19. वृद्धस्य गतदारस्य पुत्रार्पितधनस्य च ।
स्नुषावचनदग्धस्य जीवितां (तात् ?) मरणं वरम् ।।4-18

20. अकारणेव विप्रेभ्यो यः कुप्यति नराधिपः ।
कृष्णसर्पं स गृह्णाति शिरसा बालदर्पितम् ।।4-22

21. एकश्चेत्पूर्वपुरुषः कुले यश्च बहुश्रुतः ।
अपरः पापकृन्मूखे (र्खः ?) कुल कस्यानुवर्तते ।।4-14

22. यथा[8] खरः चन्दनभारवाही भारस्यवाही न तु चन्दनस्य ।
तथा जनोयं श्रुतिशास्त्रपाठी शास्त्रस्य पाठी न तु निश्चयस्य ।।4-29

23. एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धि बुद्धिमतोत्सृष्टा (मतायुक्ता ?) हन्याद्राष्ट्रं सनायकम् ।।4-35

24. राज्ञि[9] धर्मिष्टे धर्मिष्टः पापे पापास्समे समाः ।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ।।4-37

25. गणितज्ञो लिपिर्वेत्ता श्रुतिस्मृतिपरायणः ।
ब्रम्हणो ग्रहमन्दज्ञो देववित्सोमराधिकः ।।5-16

26. कदा संसारजालान्तबद्धं त्रिगुणरज्जुभिः ।
आत्मानं मोचयिष्यामि शिवशक्तिशलाकया ।।5-19

27. नमः शिवाय सांभाय सगणाय ससूनवे ।
सनंदिने संगंगाय सवृषाय नमो नमः ॥5-20

28. कदा[10] वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन्
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोंजलिपुटं ।
अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शंभो वपुरहौ
प्रमे (सी ?) देति क्रोशं निमिशमिव नेयामि दिवसम् ॥5-21

29. कदा शयानो मणिकर्णिकायां कर्णे जपत्यक्षरमिन्दुमौलो ।
अवाप्य मुद्रां गतमोहमुद्रां नालोकयिष्यामि पुनः प्रपञ्चम् ॥5-22

30. वासना यदि भवेत्फलदात्री किं करिष्यति तदा मम काशी ।
व्यापकस्तु भगवान्यदि रुद्रः तारकं किमिह नोपदिशि तत् ॥5-23

31. अर्धरात्रे दिनस्यार्धे त्वर्धे चन्द्रेर्धभास्करे ।
रावणेन हृता सीता कृष्णपक्षे सिताष्टमी ॥5-24

32. नाहं वसामि कैलासे न मेरौ न च मन्दरे ।
मया विश्रम्यते तत्र यत्र नादो मनोरमः ॥5-25

33. नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वा ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ते वसामि तत्र नारद ॥5-26

34. नाहं वसामि ब्रह्माण्डे पंकजेष्वकदाचन ।
मया विश्रम्यते तत्र यत्र वेदध्वनिर्महत् ॥5-27

35. वज्राद्वज्रकृतं प्रणश्यति भयं श्री पद्मरागोद्भवे-
ष्वाकारमपि प्रशाम्यति विषं गारुद्मतोदश्चनात् ।
एकैकं कुरुते प्रभावनियमात्कर्मेति रत्नैः सदा
पुंरत्नै (न ?) प्रभवक्रमेण महिमो न (ब ?) द्धै न किं बध्यते ॥5-45

36. वाल्मीकं मधुजालं च शुक्लपक्षे (च ?) चन्द्रमा ।
भिक्षाद्रव्यं नृपद्रव्यं स्तोकं स्तोकेन वर्धते ॥5-46

37. भाग्येषु क्षीयमानेषु सुकृतं दुष्कृतायते ।
अनुकूलं यदा जंतुरशुभन्तु शुभायते ॥6-5

38. गृहेष्वर्थान्परित्यज्य स्मशाने मित्रबान्धवान् ।
नग्नश्चारिकुहस्तश्च प्रयाति स्वपितो यथा ॥6-10

39. उदयति[13] यदि भानुः पश्चिमायां दिशायां
विकसति यदि पद्म पर्वताग्रे शिलायाम् ।
प्रचलयति (लति ?) यदि मेरु शीततां याति वह्निः
न चलति वधिबद्धाभाविनी कर्मरेखा ॥6-23

40. प्रसन्नचित्तस्य सदैव तुष्यति प्रभुः शिवः शाद्वलमूलपूजनात् ।
न कोटिसौवर्ण-कुशीशयार्चनादशुद्धबुद्धे शरदां शतैरपि ॥6-31

41. न काष्ठेषु विद्यते देवो न पाषाणे न मृन्मये ।
भावेषु विद्यते देवो तस्माद्भावो विकारणम् ॥6-32[14]

42. क्वचिद्विद्या वीणा क्वचिदपि च हाहेति रुदितं
क्वचिद्रम्या नारी क्वचिदपि जराजर्जरवपुः ।
क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि च सुरामत्तकलहो
न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः ॥ 6-33
43. जिह्वाग्रे[15] वसते लक्ष्मी जिह्वाग्रे मित्रबान्धवाः
जिह्वाग्रे स्वजनः शत्रुः जिह्वाग्रे परमं पदम् ॥6-37
44. बाल[16] एवाचरेद्धर्ममनित्यं खलु जीवितम् ।
फलानामपि पक्वानां शश्वत्पतनतो भयम् ॥6-39
45. यश्च धर्मस्य माहात्म्यं क्रियमाणस्य नित्यशः ।
आत्मनः कुरुते श्रेयो लोकस्य भवति प्रियः ॥6-47
46. इष्टा बालकचेष्टा यौवनदर्पोथ वृद्धि (द्ध ?) वैराग्यम् ।
सापि गता सोऽपि गतस्तदपि गतं स्वप्नमायेयम् ॥6-54
47. गतं गतं पश्यसि सर्वमेव धनं जनं पुत्रकलत्रमित्रम् ।
भोग प्रभावं विभवं शरीरं स्थिरं हरं रावनमेव सर्वम् ॥6-55
48. मित्राणि तानि विधुरे भवंति यानि कार्यं विना भवति यः स परोपकारी ।
ते पंडिता जगति ये पुरुषा न राज्ञः त्यागी यः स कृशधनेन विकारकार्यी ॥7-3
49. कश्चिन्मालासमं मित्रं कश्चिन्मित्रं महीसमं ।
कश्चिन्मेरुसमं मित्रं कश्चिन्मित्र तुला समम् ॥7-4
50. य इच्छेच्छाश्वती प्रीतिं त्रिदोषान्परिवर्जयेत् ।
द्यूतमर्थप्रयोग च तं विना दारदर्शनम् ॥7-6
51. गिरा मयूरा गगनेषु मेघा लक्षान्तरे भानु जलेषु पद्मम् ।
द्विलक्षसामे कुमुदोत्पलानि या यस्य प्रीतिर्न च तस्य दूरम् ॥7-7
52. बहूनामल्पसाराणां समवायः हि दुस्सहः ।
तृणैरावेष्टते रज्जुः तया बध्नन्ति कुञ्जरान् ॥7-37
53. कुविवाहैः क्रियालोपैः वौधाध्ययनकेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्रह्मणातिक्रमेण च ॥7-39
54. [18]मित्रद्रोहकृतघ्नस्य स्त्रीघ्नस्य पिशुनस्य च ।
चतुर्णां वयमेतेषां निष्कृतिं नैव शुश्रुमः ॥7-41
55. आसप्तमं कुलं हन्ति शिरोभ्यङ्गे चतुर्दशी ।
मांसाशने पंचदशी कामधर्मे तथाष्टमी ॥7-48
56. दोषंकारोपि हन्तव्यो गृहजातोपि मूषकः ।
तपप्रधानै हितकृत्मार्जारः प्राप्यते गृहे ॥7-51
57. [19]शुष्केन्धने वह्निमुपैति वृद्धि मूर्खेषु शोकः चपलेषु कोपः ।
कान्तासु कामो निधनेषु विद्या दानं दयावत्सु महत्सु धैर्यम् ॥7-53
58. यत्नेनार्जितमन्येन यत्नादन्येन भुज्यते ।
विलं दुःखाखनन्षा(या ?) खुः सुखं वासाय भोगिनः ॥7-54

59. वयोवृद्धस्तपोवृद्धज्ञानवृद्धस्तथैव च ।[20]
सर्वे ते धनवृद्धस्य द्वारे तिष्ठति किंकर (रा): ॥7-55

60. [21]वनानि दहतो वहि्नः सखा भवति मारुतः ।
स एव दीपनाशाय क्षीणे कस्यास्ति गौरवम् ॥7-57

61. महत्सु मैत्री महतां फलाय सैवात्मनाशाय भवेत्कृशानाम् ।
समीरणेनोन्नतिमेति वहि्न तेनैव दीपः प्रशमं प्रयाति ॥7-58

62. ताम्बूलरहिता वक्त्रा दन्तधावनवर्जिता (:) ।
सर्वे मन्त्रा पलायन्ते सिंहाद्वनचरा इव ॥7-62

63. कामं प्रदीपयति रूपमभिव्यनक्ति
सौभाग्यमावहति वक्त्रसुगंधिन च ।
डो (?) जवकरोति कफजां विनिहन्ति रोगां-
स्ताम्बूलमेवपरश्च गुणां करोति ॥7-63

64. बुद्धिः पौरुषमार्जवं गुणवता विद्या कुलं सेवनात्
कालेस्मिन्वि (हि ?) फलत्वमेव सकलमेतत्पुरा स्वामिनाम् ।
यो दोषं कुरुते पुरे सुखकरं चारस्य यो रोधकः
पापाद्यो द्रविणस्य वर्धनकरं तेषां भवेत्सो प्रियः ॥8-9

65. वयो वित्तं गृहेश्छिद्रं मन्त्र मैथुनमौषदं (धम् ?) ।
तपो दानावमानानि नवगोप्यानि यत्नतः ॥8-39

66. आपदि[22] ये नापकृतं येन हसित दशासु विषमासु ।
तपकृत्यतयोरुभयोः पुर्नाविजातनरं मन्ये ॥8-46

67. [23]वैद्यं पानरतं विभुं च विरसं स्वाध्यायहीनं द्विजं
शूरं कापरुषं नरं कु (?) पटनं मूर्ख परिभ्राजकम् ।
राजानं कुमंत्रिभिः परिवृतं देशं च सोपप्लवं
भार्यां यौवनगर्विता पररतां मुञ्चन्ति ये ते बुधाः ॥8-59

68. श्रोत्र[24] श्रुतेनैव न कुंडलेन दानेन पाणि न तु कंकणेन ।
विभाति काया करुणापराणां परोपकारेण न चन्दनेन ॥8-72

69. विद्यारत्नं [25]सरसकविता गानरत्नं गुरंग
वाञ्छारत्न परमपदवी भोगरत्नं मृगाक्षी ।
अम्भोरत्न विबुधतटिनी मासरत्नं वसन्तो
भूभृद्रत्नं कनकशिखरी भूपरत्नं च रामः ॥8-76

70. चन्द्रो भाति सुनिर्मले गतघने तारा विचित्राम्बरे
हारो भाति कामिनीकुचतटे पीनोन्नते यौवनात् ।
हंसो भाति सरोवरे सनलिने वैडूर्यवर्णादिके
राजा भाति च मन्त्रिभिः परिवृतः श्रीधाम्नि सिंहासने ॥8-77

71. दिनेन तुल्यं धनमस्ति किंचित् सन्तोषतुल्यं सुखमस्ति किं वा ।
विभूषणं शीलसमं कुतोऽस्ति लाभोऽस्ति आरोग्यसमः पृथिव्याम् ॥8-78

72. रक्तत्वं[26] कमलानां सत्यपुरुषाणां परोपकारित्वम् ।
असतां निर्दयत्वं स्वभावसिद्धं त्रिषु त्रितम् ॥8–81

73. रामश्चकार गहनेऽपि वने निवासं
भीष्मो जहार मनसोऽपि विवाहचिन्ताम् ।
कर्णो जघान समरे पतितं न भीम-
मंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥8–87

74. निर्गुणेष्वपि[27] सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न हि संहरति ज्योत्स्नां चन्द्रश्चण्डालवेश्मनि ॥8–91

75. विदितं ननु कन्दुकं ते हृदयं प्रमदाधरसंगमलुब्ध इव ।
वनिताकरतामरसाभिहतः प ततः पतितः पुनरुत्पतति ॥

76. संसारं चासारं च सारं वस्त्र (तु ?) चतुष्टयम् ।
दानं परोपकारं च सत्संगं च शिवार्चनम् ॥9–93

77. उन्नतं सदनमुच्चकैर्हयो माक्षिकं दधि शर्करं पयः ।
एन (ण ?) मांसमबलासकोमला लभ्यते कथमन्त्रचितेशिवे ॥ 8–94

78. देशे देशे लभेद्भार्या पुत्रस्तत्रैव जायते ।
तं देशं नैव जानामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥8–95

इति चाणिक्य राजनीति शास्त्रे अष्टमोध्यायः ।
फा० शुति तृतीयस्यां रवौ श्रीवरली देशान्तरे मया
भानुदया नाभिहि (?) लिखितं शुभं संवत् 1845

कतिपय श्लोकों में पूर्वार्घ अथवा उत्तरार्ध परिवर्तित हैं। लुडविक स्टर्नबेक के संग्रह में 2/10 का उत्तरार्ध इस प्रकार है—

कृपणादविशेषज्ञं तस्माच्च कृतनाशनम् । तथा इस प्रति में इस प्रकार—
कृपणादविशेषज्ञं सर्वथा पुरुषाक्षरम् ।

लुडविक स्टर्नबेक के संकलन में 7/52 का उत्तरार्ध इस प्रकार है—

खलमाश्रयते लक्ष्मीः प्राज्ञः प्रायेण निर्धनः ।

तथा इस प्रति में 7/32 में पंक्ति के पौर्वापर्य में—

लक्ष्मीलक्षणहीनस्य जातिहीने सरस्वती ।

लुडविक	भाण्डारकर
नाश्नन्ति पितरः पिण्डान् 7/74	ब्राम्हणाः पितरो देवा । 7/42
षष्ठ्यष्टम्योश्चतुर्दश्योरमावस्या तथा । 7/32	षष्ठ्यष्टम्योरमावस्या तथोभयोः । 7/47

लुडविक की प्रति का 8/98 श्लोक—

तावत्ततपस्वी तेजस्वी शूरः प्राज्ञः कुलोन्नतः ।
पुमान् इत्युच्यते तावद् यावदर्थी न कस्यचित् ॥

का भाण्डार प्रति में (चतुर्थ चरण) इस प्रकार है—

कामिन्या नावलोकितः । 8/90

लुडविक 8/133

—प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रापदां भाजनम् ।

तथा भाण्डारकर 8/96 में

दैवहतकस्तत्रैव यात्यापदः ।

कतिपय स्थलों पर श्लोक की पंक्तियों में स्थानपरिवर्तन उपलब्ध होता है। प्रथम को द्वितीय तथा द्वितीय को प्रथम के रूप में लिखा गया है। 2/39 का ऐसा श्लोक लुडविक स्टेर्नबेक के ग्रन्थ में 2/49 पर प्राप्त होता है। तीसरे अध्याय का 11वाँ लुडविक के संस्करण में 10 वें श्लोक के रूप में भी ऐसा ही परिवर्तन है। 7/32 लुडविक के संस्करण में 7/52 पर इसी प्रकार से प्राप्त होता है।

दोनों प्रतियों के 8/23 के तृतीय तथा चतुर्थ चरण का स्थान परिवर्तित है। तथैव भाण्डारकर प्रति का 8/53 तथा लुडविक की प्रति में 8/63 की पंक्तियों में स्थान परिवर्तन है। भाण्डारकर प्रति का 8/74 तथा लुडविक प्रति के 8/113 वे श्लोक पंक्तियों में स्थान परिवर्तन है।

इसके अतिरिक्त ऐसे पाठभेद प्रायः प्रत्येक श्लोक में उपलब्ध होते हैं जो या तो त्रुटिपूर्ण हैं अथवा जो लेखक की त्रुटि से हो गये हैं अथवा अमहत्त्वशाली हैं। ऐसे पाठभेद कृति के लिए अधिक उपादेय नहीं कहे जा सकते। अतः इन पाठभेदों को यहाँ प्रदर्शित नहीं किया जा रहा है।

सन्दर्भ :

1. भोजप्रबन्ध, 5
2. भर्तृहरि, नीतिशतक, 17
3. भर्तृहरि, नीतिशतक, 21
4, वही, 14
4. वृद्धचाणक्य, 10/9
6. त्रिविक्रम भट्ट, नलचम्पू 1 6
7. भर्तृहरि, शृंगारशतक, 82
8. भर्तृहरि, नीतिशतक, 39
9. सुश्रुतसंहिता, 1/13, निर्णयसागर प्रेस, 1938
10. श्रीमद्भागवतपुराण, 5/10/13, निर्णयसागर प्रेस, 1950
11. लघुचाणक्य, 2/7, भोजप्रबन्ध, 44
12. भर्तृहरि,वैराग्यशतक, 87
13. विक्रमचरित, 249
14. लघुचाणक्य, 3/5
15. चाणक्यसारसंग्रह, 2/12
16. वही, 1/95
17. भोजप्रबन्ध, 145
18. विक्रमचरितम्, 57 तथा सुभाषितावली, 2990
19. वानराष्टक, 6, सुभाषितरत्नभाण्डागार, 173/873
20. लघुचाणक्य, 8/3
21. शार्ङ्गधरपद्धति, 488
22. पंचतन्त्र, 1/366
23. पंचरत्नस्तोत्र, 3
24. भर्तृहरि, नीतिशतक, 72
25. प्रसंगाभरण, 14
26. भर्तृहरि-सुभाषित-संग्रह, 702
27. शार्ङ्गधरपद्धति. 232

परिशिष्ट–2

सुभाषित-ग्रन्थों में विकीर्ण भोज के सुभाषित

सुभाषित-रत्नकोष[1]

शान्त्यै वोस्तु कपालदाम जगतां पत्युर्यदीयां लिपिं
क्वापि क्वापि गणाः पठन्ति पदशो नेति प्रसिद्धाक्षराम् ।
विश्वं स्रक्ष्यति रक्षति क्षितिमपामीशिष्यते शिष्यते
नागै रागिषु रंस्यते स्यति जगन्निर्वेक्ष्यति द्यामिति ॥

भोजदेवस्य 54

कस्मात्पार्वति निष्ठुरासि, सहजः शैलोद्भवानामयं
निःस्नेहासि कथं, न भस्मपुरुषः स्नेहं बिभर्ति क्वचित् ।
कोपस्ते मयि निष्फलः प्रियतमे, स्थाणौ फलं किं भवेद्
इत्थं निर्वचनीकृतो गिरिजया शंभुश्चिरं पातु वः ॥ श्लोक 35

भोजदेवस्य

वारं वारमनेकधा सखि मया चूतद्रुमाणां वने
पीतः कर्णदरीप्रणालवलितः पुंस्कोकिलानां ध्वनिः ।
तस्मिन्नद्य पुनः श्रुतप्रणयिनि प्रत्यंगमुत्कम्पितं
तापश्चेतसि नेत्रयोस्तरलिमा कस्मादकस्मान्मम ॥ 350

भोजदेवस्य

तन्वङ्ग्याः स्तनयुग्मेन मुखं न प्रकटीकृतम् ।
हाराय गुणिने स्थानं न दत्तमिति लज्जया ॥ 436 भोज्यदेवस्य

असौगतः सौगत एव यस्मात्कुर्यान्निरालम्बनतां ममैव ।
सखि प्रियस्ते क्षणिकः किमन्यन्निरात्मकः शून्यतमः स वन्द्यः ॥ 706 भोज्यदेवस्य

नश्यद्वक्रिमकुन्तलान्तलुतस्वच्छाम्बुबिन्दूत्करा
हस्तस्वस्तिकसंयमे नवकुचप्राग्भारमातन्वती ।
पीनोरुद्वयलीनचीनवसना स्तोकावनम्रा जलात्
तीरोद्देशनिमेषलोलनयना बालेयमुत्तिष्ठति ॥ 1160 भोज्यदेवस्य

जाने सासहना स चाहमपक्रन्मय्यङ्गणस्थे पुनस्
तस्याः संभविता स साध्वसभरः कोपि प्रकोपापहः ।
यत्रोद्यत्पुलकैः प्रकम्पविकलैरंगैः क्व कर्णोत्पलं
कुत्रात्मा क्व च मेखलेति गलति प्रायः समानग्रहः ॥ 1651

तुरुष्कराजभोजदेवयोः

54, 350, 436. 706, 1160, 1651 (तुरुष्क सहित) भोजकृत हैं ।
(उपर्युक्त) 35, (आगे के) 1038, 1110, 1706 भोजकृत कतिपय लेखानुसार—

किं ते नम्रतया किमुन्नततया किं ते घनच्छायया
किं ते पल्लवलीलया किमनया चाशोकपुष्पश्रिया ।
यत्त्वन्मूलनिषण्णखिन्नपथिकस्तोमः स्तुवन्नन्वहो

न स्वादूनि मृदुनि खादति फलान्याकण्ठमुत्कण्ठितः ॥

श्लोक 1038 कविराजस्य ? भोजदेवस्य ?

कतिपयदिवसस्थायी पूरो दूरोन्नतोपि भविता ते ।
तटिनि तटद्रुमपातनपातकमेकं चिरस्थायि ॥

श्लोक 1110 ; भोजदेवस्य

अस्तंगतभारविरवि कालवशात्कालिदासविधुविधुरम् ।
निर्वाणबाणदीप जगदिदमद्योति रत्नेन ॥

1706, भोजदेवस्य ।

परिशिष्ट–(कतिपय प्रतियों में प्राप्त)

अच्छिन्नमेखलपलब्धदृढोपगूढ–
मप्राप्तचुम्बनमवीक्षितवक्त्रकान्ति ।
कान्ताविमिश्रवपुषः कृतविप्रलम्भ–
सम्भोगसख्यमिव पातु वपुः स्मरारेः ॥ 56

जटासंसृतिरव्याद्वो धूर्जटेः कपिलायता ।
कपालाणुविनिर्मुक्ता प्रसूतिः फणिनामिव ॥ 57

सूक्तिमुक्तावली[2]

ग्रीष्मपद्धति

अंगारैः खचितेव भूर्वियदपि ज्वालाकरालं (लैः) करै–
स्तिग्मांशोः किरतीव तीव्रमथितो वायुः कुकालानलम् ।
अप्यम्भांसि नखम्पचानि सरितामाशा ज्वलन्तीव च
ग्रीष्मेस्मिन्नववह्निदीपितमिवाशेषं जगद् वर्तते ॥

–पृ० 214

संकीर्णवस्तुपद्धति

अध्यापितोसि केनैतां मशकक्षुद्रतामिह ।
यस्यैव कर्णे लगसि पीडां तस्य करोषि यत् ॥ पृ० 128

संकीर्णवस्तुपद्धति

अमी तिलास्तैलिक नूनमेतां स्नेहादवस्थां भवतोपनीताः ।
द्वेषो भविष्यद्यदमीषु नूनं तदा न जाने किमिवाकरिष्यथः ।
कस्यापि इति शार्ंगधरपद्धति, पृ० 125

कुलटापद्धति

अये कोयं वृद्धो गृहपरिवृढः किं तव पिता
न मे भर्ता किन्तु व्यपगतदृगन्यच्च बधिरः ।
हुहुं श्रान्तोद्याहं शिशयिषुरिहैवापवरके
क्व यामिन्यां यामि स्वपिमि ननु निर्दंशमशके ॥ पृ० 300

संकीर्णवस्तुवर्णनपद्धति

अस्पृश्यसंगतिमिह प्रविधाय सोढा
दण्डाहतीः पटहयन्थमपि प्रपद्य ।
दोषं प्रकाशयसि यत्प्रतिरथ्यमेव
लोकस्य तद्विमुखतां प्रकटीकरोषि ॥ 125

नमस्कारपद्धति

आदाय चापमचलं कृत्वाहीनं गुणं विषमदृष्टिः ।
यश्चित्रमच्युतशरो लक्ष्यमभांक्षीन्नमस्तस्मै ॥ 8

बकपद्धति

आधाय द्रुतमाकुलेरुपशमाद्विश्वासनं सन्निधा–
वेकैकं शफरं बकोट कपटाचार्यो जिघृक्षन्मुहुः ।
औदासीन्यनिवेदनाय निदधद्दिक्षु क्षणं चक्षुषी
चंच्वा किंच परामृशन् वपुरयं गाम्भीर्यमभ्यस्यति ॥ पृ० 79

दाडिम-अन्योक्ति

आपुष्पप्रसवान्मनोहरतया विश्वास्य विश्वं जने
हंहो दाडिम तावदेव सहसे वृद्धिं स्वकीयामिह ।
यावन्नैति परोपभोगसहतामेषा ततस्तां तथा ।
ज्ञात्वा ते हृदयं द्विधा दलति यत्तेनैव वन्द्यो भवान् ॥ पृ० 113

रविपद्धति

उत्पाद्य यत्स्वयमपि प्रबलानुरागभाजस्तथानुसरतोपि दिवाकरस्य ।
छाया प्रसर्पति सुदूरमनेन मन्त्रे क्लृप्तं तया सदृशमेव कुलीनतायाः ॥ पृ० 63

वर्षापद्धति

उपरि पयोधरमाला दूरे दयिता किमेतदापतितम् ।
हिमवति दिव्यौषधयः कोपाविष्टः फणी शिरसि ॥ पृ० 224

चातकपद्धति

कालातिक्रमणं कुरुष्व तडितां विस्फूर्जितैस्त्रासय
स्फारैर्भीषय गर्जितैरतितरां कार्ष्ण्यं मुखे दर्शय ।
यस्यानन्यगतेः पयोद मनसो जिज्ञासया चातक–
स्यावेहि त्वमिहाखिलं तदपि न त्वत्तः परं याचते ॥ पृ० 84

कस्यापीति शाङ्र्गधरपद्धति

अशोक–अन्योक्ति

किन्ते नम्रतया किमुन्नततया किं वा घनच्छायया
किं वा पल्लवलीलया किमनया चाशोकपुष्पश्रिया ।
यत्वन्मूलनिषण्णखिन्नपथिकस्तोयः स्तुवन्नन्वहं
न स्वादूनि मृदूनि खादति फलान्याकण्ठमुत्क ण्ठतः ॥

सदुक्तिकर्णामृत, पृ० 112

चन्द्रोक्ति

खेदं ये जनयन्ति ये विदधति क्षिप्रं जगन्नीरसं
ये रुक्षाः स्थितिभेदिनः सुमनसां तिग्मद्युतेरंशवः ।
कृत्वा तानपि निर्भरामृतमुचस्तापं त्वया छिन्दता
विश्वस्यास्य सुधामयूख महतामात्मा धुरि स्थापितः ॥ पृ० 66

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

गम्भीरस्य महाशयस्य सहजस्वच्छस्य सेव्यस्य ते
सर्वं साध्विह कूप किन्तु तदपिस्तोकं किमप्युच्यते ।
पात्रं दूरमधः करोषि गुणवद्यः सोपि (तृष्णाश्रम)
प्रौढिप्रोन्मथने भवानतिपटुर्यत्तेन लज्जामहे ॥ पृ० 125

भ्रमरपद्धति

जातिं यथानुसरसि त्वमिह द्विरेफ तद्वद्विजातिमिह यन्निविडानुरागः ।
तद्वेद्मि मूढ न परं वपुरेव कृष्णमित्थं चरित्रमपि रे तव कृष्णमेव ॥ पृ० 81

कोकिलपद्धति

तदेतद्वाचि माधुर्यं जाने कोकिल कृत्रिमम् ।
यैः पोषितोसि तानेव जातपक्षो जहासि यत् ॥ पृ० 71

रविपद्धति

तुच्छस्यापि समेत्यतोसस्य तमसो दृष्ट्वापि तेजस्विता-
मुन्मुच्य त्यजति स्वमण्डलमहो यस्सोपि भासां पतिः ।
शूरः शूर इति स्वतन्त्रवचसा लोकेषु यत्कीर्त्यते
ख्यातिस्तत्र गरीयसी न बलवद्रूपं पुनर्वास्तवम् ॥ पृ० 63

खद्योतपद्धति

तेजो दर्शयसि त्वमीदृशमपि क्षुद्र स्फुरन्यासु ताः
खल्वन्याः प्रततातिसान्द्रतिमिरच्छन्नावकाशा निशाः ।
खद्योतोऽत्र स कोऽपि तिष्ठति पुनस्तेजस्विनामग्रणी-
रन्येषां भुवनेपि यस्य पुरतः शाम्यन्ति तेजः कथाः ॥ पृ० 83.

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

ते सन्ति हन्त बहवो भुवि ये परेषां
रन्ध्राण्यवाप्य विदधत्यपकारमुद्राम् ।
छिद्रेण यः परमुपेत्य पुनर्निजेन
पीडां करोषि हतशृंगक स त्वमेकः ॥ पृ० 125

समुद्रान्योक्ति

पाथोनाथ जगत्यहंकृतिभृतो लोकत्रयीघस्मराः
सन्त्यन्येप्यपकारिणः किमु भवानेकोत्र तेषां धुरि ।
आकांक्षन् जगतः क्षयाय समयं दोषाकरैकप्रियो
यस्तं हन्त सदा वहस्यगणितस्वांगन्ययो वाडवम् ॥ पृ० 96

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

पापाव्याल रोपकारकरणे नामापि ते दूरतः
शक्तिश्चैव परोपकारजनने निष्पाणिपादस्य ते ।
इत्थं चेद्विधिरेव तालुनि जगद्व्यापत्करं कण्टकं
नाधास्यत् ध्रुवमेवमेतदपि ते जन्मा भविष्यद्वृथा ॥ पृ० 128

सर्पपदार्थसंस्तुति

ब्रूमः किं तमसो निसर्गमहतस्तत्तद्विभूत्यद्भुतं
यस्यान्तर्भुवनान्यमूनि दधति क्षुद्राणुभिस्तुल्यताम् ।
किं चान्यद्भुवनत्रयैकनयनं देवो निधिस्तेजसां
यस्मिन् विस्मयधाम्नि सोऽपि तरणिः खद्योतवत् द्योतते । पृ० 383

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

भीमश्यामप्रतनुवदन क्रूरपातालकुक्षि–
क्रोडप्रान्तोपहित विभवस्याथ ते किं ब्रवीमि ।
येन त्वत्तस्समभिलषतो वांछितं क्षुद्र कूप–
क्लाम्यन्मूर्तेर्भवति सहसा कस्य नाधोमुखत्वम् ॥ पृ० 126

चन्दन अन्योक्ति

भ्रातश्चन्दन किं ब्रवीमि विकटस्फूर्जत्फणाभीषणा
गन्धस्यापि महाविषाः कणभृतो गुप्त्यै यदेते कृताः ।
दैवात्पुष्पफलान्वितो यदि भवानग्रे भविष्यत्तदा
नो जाने किमकल्पयिष्यदधिकं रक्षार्थमस्यात्मनः ॥ पृ० 111

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

महत्त्वं धिग्धिगेतस्य गगनस्यात्मवृद्धये ।
उद्वीक्षमाणमेवास्ते यत्परस्य परिक्षयम् ॥ पृ० 123

वसन्तवर्णन

माकन्देषु न यद्यपि प्रतिदिनं गर्भांकुरग्रन्थयो–
भिद्यन्ते न च यद्यपि प्रतनुते पुष्पाण्यशोकद्रुमः ।
धत्ते नान्यभृतस्य यद्यपि कलः कण्ठे पदं पंचमो
भ्रातः पश्य तथाप्ययं हतमधुश्चेतः करोत्युत्सुकः ॥ पृ० 207

चातकपद्धति

यः कृष्णं कुरुत मुखं जनयति त्रासं तडिद्भिश्च यो
यश्च प्रार्थयतः परं दलयति श्रोत्रं निजैर्गर्जितैः ।
सत्यं चातक ते तथाविधमपि भ्रातस्त्वया याचता
जीमूतं कृतमेव तुल्यमनयोरर्थित्वतिर्यक्त्वयोः ॥ पृ० 84

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

यः पीयूषसहोदरैः स्नपयति ज्योत्स्नाजलस्सर्वतो
यश्च त्वामधिकाधिकं ज्वलयति प्रोद्दामतापैः करैः ।

भ्रातर्व्योम तयोरपि स्थितिमिह व्यातन्वतो विक्रिया-
निर्मुक्तस्य महत्त्वमेतदसमं दूरेऽधिरूढं तव ॥

पृ० 123

हंसपद्धति

यस्सन्तापमपाकरोति जगतां यश्चोपकारक्षमः ।
सर्वेषाममृतात्मकेन वपुषा प्रीणाति नेत्राणि यः ।
तस्याप्युन्नतिमंबुदस्य सहसे यन्न त्वमेतावता
वर्णेनैव परं मराल धवलः कृष्णश्चरित्रैरसि ॥ पृ० 74

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

यत्सद्गुणोपि सरलोऽपि तटस्थितोपि
वंशोन्नतोपि विदधासि नृशंसकर्म ।
वक्रात्मनो बडिशदण्ड तदेतदस्य
जानामि संगतिफलं तव कण्टकस्य ॥ पृ० 125

सरः पद्धति

यद्वल्गस्यभितो वृथा तटभुवो वीचीशतैस्ताडयन्
लब्ध्वा काश्चिदपि क्षणं जलधरोद्वान्ताः पयोविप्लुषः ।
तन्मन्ये भवतस्तडाग निबिडक्रीडार्करोचिश्चय-
प्लुष्टाम्बुप्रसरो मनागपि न स ग्रीष्मः स्मृतिं रोहति ॥ पृ० 103

करभपद्धति

रूक्षं वपुर्न च विलोचनहारि रूपं
न श्रोत्रयोस्सुखदमारटितं कदापि ।
इत्थं न साधु तव किंचिदिदं तु साधु
तुल्ये रतिः करभ कण्टकिनि द्रुमे यत् ॥ पृ० 90

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

वह्निं विशाम्भसि निमज्ज सहस्व टंक-
च्छेदं तुलां समधिरोह भवातिशुभ्रम् ।
अन्तस्तथापि दधतः कलधौत कार्ष्ण्यं
दर्वर्णमित्ययमपैति न ते प्रवादः ॥ पृ० 124

हेमन्तवर्णन

शीतार्तिप्रसरश्लथाकुलपदन्यासैस्समुत्कम्पिभिः
पान्थैर्निर्यदतुच्छगोधननदद्घण्टारवैस्सूचिताः ।
प्राप्यन्ते हिमपिण्डितातिनिभृत प्रोद्गाढधूम्याघन-
स्तोकालक्ष्यकुटीरकाः कथमपि प्रातर्गिरिग्रामकाः ॥ पृ० 235

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

शुभ्रत्वं यदिदं य एष गरिमा स्वच्छत्वमेतच्च यत्
भ्राजत्येतदिहोपकारनिरते सर्वं रसेन्द्र त्वयि ।

मूर्च्छामप्यनुभूय यो हुतभुजि न्यस्यापि च स्वं वपुः
स्वीकृत्यापि मृतिं करोष्यविरतं वस्तूव्यवस्तन्यपि ॥ पृ० 124

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

श्लाघ्यं महत्त्वमेकस्य नभसो भुवनत्रये ।
परस्य वृद्ध्यै यन्नैव गणयत्यात्मनः क्षयम् ॥ पृ० 123

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

सद्वंशस्य प्रविततगुणश्लाघिनः सन्नतस्य
त्वं चापस्य त्यजसि यदहो संगमंगीकृतोपि ।
तेन भ्रातर्विशिख नियतं भीतिकर्तुः परेषां
मर्मच्छेदि प्रकृतिकठिनं युक्तमेतत्फलं ते ॥ पृ० 125

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

सद्वृत्तस्य च वंशजस्य च गुणश्लिष्टस्य च क्षुब्धक
स्नेहं प्रत्यसमस्य एष किमपि द्वेषोत्र जागर्ति ते ।
स्वीकृत्य भ्रमिमभ्युपेत्य निविडं तद्वन्धनं सन्तता-
मंगीकृत्य च तृप्तिमत्र यदमुं प्रोद्धर्तुमेवाग्रहः ॥ पृ० 124

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

सान्द्रज्योतिःपटलदलितध्वान्तचक्रोऽपि वाढं
तस्माल्लोके भवसि न खलु स्पर्शयोग्यः प्रदीप ।
प्राप्नोषि त्वं नियतमधिकं येभ्य एवात्मलाभं
येषामेव प्रशमविधिना यत्तनोषि स्वतेजः ॥ पृ० 126

संकीर्णवस्त्वन्योक्ति

स्नेहाढ्यस्त्वमिहावसज्य निविडं कर्षस्यसृग्देहिना-
मन्तःशून्य न कश्चिदेव भवतस्स्वार्थोमुना सेत्स्यति ।
सम्यक् पूर्णमवेत्य हन्त निपुणं लोकः पुरा तद्यत-
स्त्वामुद्गालयति प्रसह्य विगतातंकः क्षणात्तुम्बक ॥ पृ० 125

वर्षापद्धति

स्फुरद्भीमाभोगस्तरुणमहिषस्कन्धमलिनो
ललद्विद्युज्जिह्वः कृतकटकटध्वाननिनदः ।
विशन्नुद्यच्चापभ्रुकुटिघटनाभिः प्रतिभयं
घनर्तुः प्रारंभे ग्रसितुमिव विश्वं व्यवसितः ॥ पृ० 220

रत्नपद्धति

स्वच्छस्यास्य प्रथितमहसः शुद्धजातेरतुल्यं
वज्रस्यैव स्फुरतु भुवने दार्ढ्यमेकस्य तस्य ।
यस्य छिद्रप्रणयनविधौ सप्रयत्नोपि नित्यं
सर्वः कुण्डीभवति विकटस्पष्टटंकोपि लोकः ॥ पृ० 100

वकपद्धति

हंहो वकोट यदिहोद्धुरकन्धरत्वं

त्वं नाटयन वहसि रे धवलत्वमेतत् ।
ग्रासातिमात्रघटनाकुलितोदकोऽसि
चञ्चा न किं मुहुरनेन समोऽस्तु कस्ते ।। पृ० 79

सदुक्तिकर्णामृत[1]

देवप्रवाह :

वृषघन धनदप्रिय प्रियार्घ–
प्रथनविदग्ध विदग्धचित्तयोने ।
पुरहर हरिणांकचूड चूडा–
भुजगभयंकर धूर्जटे नमस्ते ।। श्लोक 15 (भोज)

देवप्रवाह

कस्मात्पार्वति निष्ठुराऽसि सहजं शैलोद्भवानामिदं
निःस्नेहासि कुतो न भस्मपरुषः स्नेहं क्वचिन्निन्दति ।
कोपस्ते मयि निष्फलः प्रियतमे स्थाणौ फलं किं भवे–
दित्थं निर्वचनीकृतो दयितया शम्भुः शिवायास्तु वः ।। श्लोक 11 (भोज)

देवप्रवाह

रेवतीदशनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ ।
वहन् हली मदक्षीवः पानगोष्ठ्यां पुनातु वः ।। श्लोक 239 (माघभोजदेवयोः)

देवप्रवाह

मन्थानोल्लासलीलाचलचिकुरमिलत्कुण्डलां कर्णपालि
मिथ्यैवोन्मोचयन्त्याः कृतकपटपरावृत्तयस्ते कटाक्षाः ।
लक्ष्म्याः पायासुरग्तः स्मरभरविकसत्स्मेरगण्डस्थलाया
लज्जालोलं वलन्तो मधुरिपुवदनाम्भोजभृंगाश्चिरं वः ।। श्लोक 329

शृंगारप्रवाह (मुग्धा)

वारंवारमनेकधा सखि मया चूतद्रुमाणां वने
पीतः कर्णदरीप्रणालवलितः पुंस्कोकिलानां ध्वनिः ।
तस्मिन्नद्य पुनः श्रुतिप्रणयिनि प्रत्यंगमुत्कम्पिते
तापश्चेतसि नेत्रयोस्तरलता कस्मादकस्मान्मम ।। श्लोक 496 (भोज)

चाटुप्रवाह (प्रियाख्यान)

सौजन्याम्बुनिधे बुधप्रिय गुणप्राकारधर्मद्रुम–
प्रारोहप्रतिपन्नवत्सलमहात्यागिन् विवेकाश्रय ।
लक्ष्म्यावासमनस्विनी मनसिजव्यापारदीक्षागुरो ।
स्वामिन्मुञ्ज किमित्यमुं जनमुपस्रष्टुं दृशा नार्हसि ।। श्लोक 1421 (भोज)

अपदेशप्रवाह (नदनद्यौ)

कतिपयदिवसस्थायी पूरो दूरोन्नतोपि भविता ते ।
तटिनि तटद्रुमपातनपातकमेकं चिरस्थायि ।। श्लोक 1738 (भोज)

आदेशप्रवाह (नानाकवयः)

अस्तंगतभारवि-रवि कालवशात्कालिदासविधु विधुरम् ।
निर्वाणवाणदीपं जगदिदमद्योति रत्नेन ॥ 2127 (भोज)

शाङ्‍र्गधरपद्धति में भोज के श्लोक

ग्रीष्मस्वभावाख्यानम्

अत्यच्छं सितमंशुकं शुचिमधु स्वामोदमच्छं रजः
कार्पूरं विधृतार्द्रचन्दनकुचद्वन्द्वः कुरङ्गीदृशः ।
धारावेश्म सपाटलं विचकिलस्रग्दाम चन्द्रात्विषो
धातः सृष्टिरियं वृथैव तव न ग्रीष्मोऽभविष्यद्यदि ॥

3837, भोजदेवस्य

येषां वल्लभया समं क्षणमिव क्षिप्रं क्षपा क्षीयते
तेषां शीतकरः शशीविरहिणामुल्केव सन्तापकृत् ।
अस्माकं न च वल्लभा न विरहस्तेनोभयभ्रंशिना-
मिन्दू राजति दर्पणाकृतिरयं नोष्मो न वा शीतलः ॥

4110, भोजराजचोरकविकृतं पद्यम्

भोज के ताम्रपत्रों में श्लोक

जयति व्योमकेशोऽसौं यः सर्गाय विर्भात ताम् ।
ऐन्दवीं शिरसा लेखां जगद्वीजाङ्कुराकृतिम् ॥
तन्वन्तु वः स्मरारातेः कल्याणमनिशं जटाः ।
कल्पान्तसमयोद्दाम-तडिद्वलयपिङ्गलाः ॥

सन्दर्भ :

1. विद्याकर डी० डी० कोसाम्बी तथा वी० पी० गोखले, कैम्ब्रिज, मासाचुसेट्स, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1957
2. जल्हण गायकवाड़, ओरियण्टल सीरिज, वड़ौदा, 1938 ई०
3. श्रीधरदास, फर्म के० एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1965

परिशिष्ट–3

कवि तथा कविप्रिय भोज से सम्बद्ध सुभाषित

तत्पिबन्त्वमृतं देवाः काव्यमेवामृतं भुवि ।
यत्सम्बन्धेन जीवन्ति भोजराजादयो मृताः ॥[1]

भूयात्स भूरिविजयो भुवि भोजराजो
भूयानुदारकवितारसवासभूमिः ।[2]

माघश्चौरो मयूरो मुररिपुरपरोभारविस्सारविद्यः
श्रीहर्षः कालिदासः कविरथ भवभूत्याह्वयो भोजराजः ।
श्रीदण्डी डिण्डिमाख्यः श्रुतिमुकुटगुरुर्भल्लटो भट्टबाणः
ख्याताश्चान्ये सुबन्ध्वादय इह कृतिभिर्विश्वमाह्लादयन्ति ॥[3]

श्वासा यस्य निबन्धनान्यनुपमः कण्ठीरवोयं कविः
क्रीडाचन्द्रति बाणति प्रबलति क्षेमेन्द्रति प्रौढति ।
श्रीकण्ठत्यपि भर्तृमीढति पुनः श्रीसार्वभौमित्यहो
नैको वा नवखण्डभूमिषु गुणं गृह्णन् विभुर्भोजति ॥[4]

भोजादिभिः कृतपदं कविभिर्महद्भि–
श्चम्पूक्तिसौधमधिरोढुमहं यतिष्ये ।
निःशंकमम्बरतलं पततः पतत्रि–
राजस्य मार्गमनुसर्तु-मिवाण्डजोन्यः ॥[5]

तत्त्वानामपि तत्त्वं येनाखिलमेव हेलया कलितम् ।
श्रीभोजदेवनृपतिः न्यवधत्तः तत्वप्रकाशं सः ॥[6]

निःशेषवाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ताः
श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य ।
तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो
राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ॥[7]

यद्वक्त्राम्बुजमाप्य गर्वमसमं वाग्देवतापि श्रिता
स श्रीभोजपतिः फणाधिपतिकृत्सूत्रेषु वृत्तिं व्यधात् ॥[8]

विवेके विनये ज्ञत्वे विद्यायां विक्रमेऽपि च ।
विद्वज्जना इति प्राह भोजतुल्यो न भूपतिः ॥[9]

गीते कवित्वे साहित्ये चातुर्यं विनये नये ।
नृपो भोजसमो भूम्यां न भूतो न भविष्यति ॥[10]

कविषु वादिषु भोगिषु योगिषु द्रविणदेषु सतामुपकारिषु ।
धनिषु धन्विषु धर्मपरीक्षिषु क्षितितले न हि भोजसमो नृपः ॥[11]

तत्र श्रीभोजराजोऽस्ति राजा निर्व्याजवैभवः ।
अवैरं यन्मुखाम्भोजं भारतीश्रीनिवासयोः ॥
अथ श्रीभोजराजस्य वाग्देवीकुलसद्मनः ।
कलासिन्धुमहासिन्धोर्विद्वल्लीलामहौकसः ॥[12]

द्वे प्रेयस्यौ जगति विदिते श्रीश्च वाग्देवता च ।[13]

न भोजराजः कविरञ्जनाय मुञ्जोथवा कुंजरदानदक्षः [14]

स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ ।
सूरी तस्मिन् क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कविबान्धवौ ॥[15]

भोज इवायं निरतो नानाविद्यानिबन्धनिर्माणे ।
समयोच्छिन्नप्राये सोद्योगः कामशास्त्रेऽपि ॥[16]

श्रुत्वा सत्कविवर्ण्यभोजमसिभृत्सर्वज्ञशिङ्गक्षमा-
भृत्पाण्डित्यमवेक्ष्य भूतलपतीनज्ञानिदानीन्तनान् ॥[17]

साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं तद्यन्न केनचित् ।
किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते ॥[18]

त्यागैः कल्पद्रुम इव भुवि त्रासिताशेषदौस्थ्यः
साक्षाद्वाचस्पतिरिव जवाद् दृब्धनानाप्रबन्धः ।[19]

एषा धारेन्द्रपरिषन्महापण्डितमण्डिता ।[20]

अथ धारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती ।
पण्डिता मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवं गते ॥[21]

मुक्ताः केलिविसूत्रहारगलिताः सम्मार्जनीभिर्हृताः
प्रातः प्राङ्गणसीम्नि मन्थर चलद्बालांघ्रिलाक्षारुणः ।
दूराद्दाडिमबीजशङ्कितधियः कर्षन्ति केलीशुकाः
यद्विद्वद्भवनेषु भोजनृपतेस्तत्त्यागलीलायितम् ॥[22]

सन्दर्भ

1. हरिहर, सुभाषितावली, 24
2. चिदम्बर, पंचकल्याणचम्पू, डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, भाग 4, खण्ड 1, ए०, पृ० 4257
3. वेंकटध्वरी, विश्वगुणादर्शचम्पू, 762
4. घनश्याम, संजीवनी व्याख्या (चम्पूरामायण) डि०के०सं०मे०, सरस्वतीमहल लायब्रेरी, तंजौर, 7, क्र० 4145
5. अप्पा दीक्षित, गौरीमयूर माहात्म्यचम्पू, 1/5 जर्नल आफ ओरियन्टल रिसर्च, मद्रास, वाल्यूम 3
6. तत्त्वप्रकाश, अन्तिम श्लोक
7. तिलकमंजरी, 50
8. राजमार्तण्ड योगसूत्रवृत्ति, अन्तिम श्लोक
9. राजवल्लभ, भोजचरित्र, 2/14
10. वही, 2/32
11. वही, 2/33; प्र० चि०, 126; भोजप्रबन्ध, 181
12. प्रभावकचरित, 17/7, 18/13
13. विक्रमांकदेवचरित, 18/56
14. विक्रमांकदेवचरित, 3/71
15. राजतरंगिणी, 7/259
16. वीरभद्र, कन्दर्पचूडामणि, 1/2
17. एकामरनाथ, जाम्बवतीपरिणय, डि० के० सं० मे० लायब्रेरी, मद्रास, भाग 20, पृ० 7735
18. ए० इ० भाग 1, उदयपुर प्रशस्ति, 18
19. प्र० चि० 127
20. भोजप्रबन्ध, 250
21. वही, 327
22. काव्यप्रकाश, श्लोक 506

परिशिष्ठ–4

भोज के कतिपय ग्रन्थों का अन्तःसम्बन्ध

राजा कविः कविसमाजं विदधीत, राजनि कवौ सर्वो लोकः कविः स्यात् । स काव्यपरीक्षायै सभां कारयेत् ।

काव्यमीमांसा, दशम अध्याय ।

राजशेखर के विचारों के अनुरूप धारा का राजा भोज कवि था और उसने अपने युग मे सुप्रसिद्ध कविसमाज की स्थापना की थी। चूँकि वह स्वयं कवि था, अतः उसका सारा समाज ही कवि बन गया। उसने काव्यपरीक्षा के लिए धारा में सरस्वतीकण्ठाभरण या शारदासद्म नामक सभा बनवायी जहाँ देशभर के लगभग 500 साहित्यकारों और विद्वानों में वाङ्मय चर्चा होती रहती थी। यह शारदासद्म आजकल भोजशाला के नाम से प्रसिद्ध है। भोज के इस सारस्वत अनुराग के कारण देश भर के पण्डित मण्डित हो गये थे।

राजा, आशुकवि और घुमक्कड़ यायावरों की कविताएँ मात्र एक दिन में दशों दिशाओं में फैल जाती हैं–

कार्यावसरसज्जानां परिव्राजां महीभुजाम्,
काव्यं सद्यः कवीनां च भ्रमत्यह्ना दिशो दश ।

काव्यमीमांसा, दशम अध्याय ।

राजा भोज की कविता और काव्यप्रेम की चर्चा भी सहसा पूरे देश में फैल गयी, बल्कि देश और काल को पार कर गयी।

धाराधीश भोज के विषय में प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार यह प्रसिद्धि थी कि उसके 104 गीतप्रबन्ध, 104 विरुद और इतने ही भवन थे। काशिराज कर्ण से स्पर्धा के कारण उसने उज्जैन में 50 हाथ ऊँचा 105वां प्रासाद बनवाया था। कहा जाता है कि इन भवनों, विरुदों तथा ग्रन्थों की संज्ञा एक समान थी। भोज के सरस्वतीकण्ठाभरण नामक दो ग्रन्थ हैं– एक काव्यशास्त्र का और दूसरा व्याकरण का। सरस्वतीकण्ठाभरण भोज का विरुद था और उसके धारा में स्थित शारदासद्म का नाम भी था। उज्जैन में उसका एक सरस्वतीकण्ठाभरण प्रासाद भी था, जिसका गर्भगृह प्रशस्ति के शिलाखण्डों से खचित था और जिसके पुस्तकालय में जयसिंह सिद्धराज ने भोज के विविध विषयक अनेक ग्रन्थ देखे थे। इसी प्रकार उसके ग्रन्थों, भवन और विरुद का नाम राज मार्तण्ड भी था। सरस्वतीकण्ठाभरण का टीकाकार अजड़ लिखता है कि भोज के 84 ग्रन्थ थे और इतने ही विरुद थे। चतुरशीतिविरुदप्रकाशितस्वकृतग्रन्थसमाजः श्री भोजराजः। मदन कवि की पारिजातमंजरी के अनुसार धारा के 84 चौराहों पर 84 देवालय थे–

चतुरशीतिचतुष्पथसुरसदनप्रधाने ।

भोज के ये ग्रन्थ विविध विषयक थे। जब जयसिंह सिद्धराज 1132 ई. में उज्जैन आया तो यहाँ की पाठशाला में उसने भोजविरचित विविध–विषयक ग्रन्थ देखे। ये ग्रन्थ थे–व्याकरण और शब्दशास्त्र, शब्दालंकार, ज्योतिष, तर्कशास्त्र, चिकित्सा, राजसिद्धान्त, वास्तु, अंक, शाकुन, अध्यात्म, स्वप्न, सामुद्रिक, प्रश्नचूडामणि मेघमाला, अयसद्भाव इत्यादि से सम्बद्ध।

भोजव्याकरणं ह्येतत् शब्दशास्त्रं प्रवर्तते ।
असौ हि मालवाधीशो विद्वच्चक्रशिरोमणिः ।।

शब्दालङ्. कारदैवज्ञतर्कशास्त्राणि निर्ममे ।
चिकित्साराजसिद्धान्ततरुवास्तूदयानि च ।।
अङ्.कशाकुनकाध्यात्मस्वप्नसामुद्रिकाण्यपि ।
ग्रन्थान्निमित्तव्याख्यानप्रश्नचूडामणीनिह ।।

चन्द्रप्रभुसूरिकृत प्रभावकचरित ।

र स्वतीकण्ठाभरण की चर्चा प्रवन्धचिन्तामणि में भी हुई है—

कः कण्ठाभाभरणादिभिर्वहलयत्यात्मानमन्यैरपि ।

यह भी कहा जाता है कि सरस्वतीकण्ठाभरण के व्याकरणसूत्रों की पुष्टि में चम्पूरामायण रचा गया ।

भोज-विरचित लगभग 60 ग्रन्थों के नाम प्राप्त होते हैं, जिनमें से प्रायः 40 ग्रन्थ प्राप्त होते हैं । इनमें से 20 के लगभग प्रकाशित हैं और 20 अप्रकाशित हैं । ये ग्रन्थ साहित्य, साहित्य-शास्त्र कोष, व्याकरण, संगीत, इतिहास, दर्शन, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, राजनीतिशास्त्र, आयुर्वेद, स्थापत्य आदि से संवद्ध हैं । भोज ने जीवनभर तलवार के क्षेत्र में कभी समझौता नहीं किया पर सारस्वत क्षेत्र में सदा समझौता किया । भोज के समकालीन तथा निकट परवर्ती अगणित ग्रन्थकारों, टीकाकारों, शिलालेखों और ताम्रपत्रों ने उसकी सारस्वत साधना की सतत चर्चा और प्रशंसा की है । उसके विविध विषयक ग्रन्थों को वार-वार उदधृत किया गया है ।

यह भी आशंका उठाई जाती है कि जीवनभर समर और शासनव्यवस्था में व्यस्त राजा इतने ग्रन्थ कैसे रच सकता है ? संभव है, ये उसके आश्रित पंडितों की रचनाएँ हों । प्रवन्ध-चिन्तामणि के अनुसार भोज वड़ी त्वरा से अनेक ग्रन्थ एक साथ रच लेता था—

त्वरया दृब्धनानाप्रवन्धः ।

इसका प्रमाण देता हुआ भोजचम्पू के युद्धकाण्ड का रचयिता राजचूड़ामणि दीक्षित (1620 ई.) कहता है कि भोज ने जिस चम्पू को एक रात में सुन्दरकाण्ड तक लिखा था, उसे वह एक दिन में युद्धकाण्ड लिखकर पूरा कर रहा है ।

भोजेन रामचरितं ग्रथितं निशयैकया ।
एकेन पूरयत्यह्ना श्रीचूडामणिदीक्षितः ।।

इसी चम्पू को घनश्याम कवि ने भी 18वीं सदी के पूर्वार्ध में युद्धकाण्ड लिखकर 18 वर्ष की उम्र में पूर्ण किया था । ये तंजोर के मंत्री थे । मंत्री का गुरुतर कार्य करते हुए इन्होंने संस्कृत में 64, प्राकृत में 20 और 25 निज भाषा में ग्रन्थ रचे । ये किसी अवकाश के दिन भी कोई ग्रन्थ पूरा लिख लेते थे ।

वास्तव में प्राचीन विद्वानों को पठित-प्राय ग्रन्थ कण्ठस्थ होने से नया ग्रन्थ तैयार करने में वह कठिनाई नहीं होती थी जो आज के विद्वानों को वारवार संदर्भ देखने से होती है । पुनः भोज ने जो यह कहा, वह उस के लिए सार्थक प्रतीत होता है कि वह सभी शास्त्रों, कलाओं और विज्ञानों को जानता था तथा उसे एक वार सुनने पर सब कुछ कण्ठस्थ हो जाता था ।

सर्वाणि शास्त्राणि निखिलाः कलाः सर्वाणि विज्ञानानि च जानामि, सकृच्छुतं च गृह्णामि ।

शृंगारमंजरी कथा, पृष्ठ 57

पुनः भोज को अपने विश्वस्त मौल सेवकों पर विश्वास था जो राजकाज, विजय-अभियान आदि सभी महत्वपूर्ण कार्य भोज की इच्छानुसार सम्हाल लेते थे। उदयपुर प्रशस्ति (श्लोक 19) से इसकी पुष्टि होती है—

चेदीश्वरेन्द्ररथतोग्गलभीममुख्यान्
कर्णाटलाटपतिगुर्जरराट्तुरुष्कान्,
यद् भृत्यमात्रविजितानवलोक्य मौला
न्दोष्णां बलानि कथयन्ति न योद्धृलोकान्।

उदयपुरप्रशस्ति।

शक संवत् 923 (1001 ई.) रचित पुरान्तक के श्यामलादण्डक के अनुसार भोज का सरस्वती-कण्ठाभरणम् तब तक प्रसिद्ध हो गया था। इस प्रति के अनुसार श्यामलादण्डक कालिदास या शंकराचार्य का नहीं बल्कि पुरान्तक का है। यह पुरान्तक महाकाल के पुजारी महादेव ब्राह्मण का पुत्र था। इसे 1001 ई. में नर्मदातटवर्ती 100 ग्राम दिए गए थे। वहीं भोज ने तभी सरस्वतीकण्ठाभरण रचा।

धाराधीशो धराधीशो धारायां धनदोपमः।
बभार राज्यं भोजाख्यो दानमानैश्च पण्डितान्॥
म्लेच्छानम्लोचयद्धीरो द्वारकायां विराजितम्।
शङ्करार्यगुरूणां स्वं मोषिणो मतदूषिणः॥
लोकाक्षिरससंख्याकशाकाब्दे पूर्णिमा-तिथौ।
श्रावणे मासि विप्रेभ्यः कविभ्यो व्यतरन्मुदा॥
ग्रामान्सोमोद्भवातीरे शतं यो गिरिशप्रियः।
सरस्वतीकण्ठभूषां सरसालंकृति द्रुतिम्॥
प्राणवत्कीर्तिकायस्य प्रायच्छत्स्वस्य नित्यताम्।
जीयतां तद्यशो नित्यमाचन्द्रार्कं द्युभूषणम्॥
महादेवद्विजश्चैव महाकालस्य पूजकः।
पुरान्तकस्तस्य पुत्रः पुरारेः कृपयाऽभवत्॥
श्यामलायाः प्रसादाद्यः श्यामलादण्डकं व्यधात्।
वाग्देवी यस्य वश्याभूद् वाचो वाचस्पतेरिव।
तस्मै ग्रामान्शतमदात् शिवावारसवेदिनः॥[1]

इससे स्पष्ट है कि 1001 ई. या इससे पूर्व सरस्वतीकण्ठाभरण की रचना हो चुकी थी। यह अलंकारशास्त्र का ग्रन्थ है। शृंगारप्रकाश में तिलकमंजरी और काव्यप्रकाश का एक-एक श्लोक उद्धृत होने से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ इनके बाद रचा गया। पर इन दोनों ग्रन्थों में भोज-प्रशंसा होने से यह भी स्पष्ट है कि शृंगारप्रकाश की रचना से पूर्व ही भोज की विद्वान् और दानी के रूप में ख्याति हो चुकी थी। यह सर्वज्ञात तथ्य है कि भोजकृत शृंगारप्रकाश सरस्वतीकण्ठाभरण का प्रस्तार है। अलंकार, गुण, दोष, दृश्य और श्रव्यकाव्य आदि का प्रायः वहीं 24-24 भेदपरक विवेचन है। दोनों में विविध समानताओं का व्यापक विवेचन डॉ. राघवन् ने अपने शोधग्रन्थ (भोजाज् शृंगारप्रकाश) में किया ही है।

शृंगारप्रकाश के 36 वें प्रकाश में पूर्वराग के नीली, कुसुम्भी आदि भेदों की चर्चा की गई है। उनकी चर्चा और उदाहरण स्वरूप कथानिकाओं के लिए शृंगारमंजरी कथा की रचना हुई। शृंगारप्रकाश की ललित और प्रौढ गद्यशैली और उसमें निहित विविध विद्या का ज्ञान शृंगारमंजरी कथा में भी पाया जा सकता है। जिस प्रकार शृंगारप्रकाश (एकादश प्रकाश) में ग्रन्थ-विशेषता बताते हुए कहा गया है–

एतस्मिन् शृंगारप्रकाशे सुप्रकाशमेवाशेषशास्त्रार्थसम्पदुपनिषदाम् अखिलकला-काव्यौचित्य कल्पनारहस्यानाञ्च सन्निवेशो दृश्यते।

उसी प्रकार शृंगारमंजरी कथा में भी उसकी विशेषता निर्दिष्ट है–

(क) **शृंगारमञ्जरीगद्यप्रवृत्तिरिव सुललितपदा।**

(ख) **एतत्कथाकारमिवविराजितपरमारावनीपवंशम्।**

चम्पूरामायण में हेमन्त वर्णन है, अतः शृंगारमंजरी कथा में शेष पाँचों ऋतुओं का व्यापक वर्णन मिल जाता है। लगता है वे कृतियाँ आपस में पूरक भी हैं। करुणरस-प्रधान चम्पूरामायण में भोज ने शृंगार रस की प्राथमिकता को जिस विश्वास के साथ बीज रूप में व्यक्त किया था–

इक्ष्वाकुनाथतनयान्प्रथमो रसानां
तारुण्ययोगचतुरश्चतुरः सिषेवे।

च. रा., बालकाण्ड–116

उसकी पुष्टि सरस्वतीकण्ठाभरण से हुई तथा व्यापक पल्लवन शृंगारप्रकाश में। वहाँ तो घोषणा ही कर दी गयी –

शृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः।

क्योंकि – शृंगार एव हृदि मानवतो जनस्य।

इसी शृंगारप्रकाश के 36 वें प्रकाश में बारह प्रकार के राग बताये गये हैं, जो इस प्रकार हैं–

सात्त्विक–हरिद्रा, रोचन, कांपिल्य, रीति।

राजस–कुसुंभ, लाक्षा अक्षीब, मंजिष्ठा।

तामस-कर्दम, कषाय, सकल नीली (ये पुरुषों में विशेष होते हैं)।

शृंगारमंजरी कथा के आरंभ (पृष्ठ 18–19) में इन्हीं रागों का विश्लेषण किया गया है। वहाँ इन रागों का वर्गीकरण भिन्न प्रकार से प्राप्त होता है। इनका आधार मनोवैज्ञानिक है, जो अधिक स्वाभाविक है। यहाँ इन रागों को चार वर्गों में बाँटा गया है और उस वर्ग के मुख्य राग को प्रथम स्थान दिया गया है।

(क) नीली, रीति और अक्षीब। नीली राग से रीति और अक्षीब अस्थिर होने पर भी नीली से प्रकाशित होने से दिखाई देने लगते हैं।

(ख) मंजिष्ठा, कषाय और सकल। मजिष्ठा के कारण शेष दो दिखाई देते हैं।

(ग) कुसुम्भ, लाक्षा और कर्दम। यहाँ भी कुसुम्भ प्रमुख है।

(घ) हरिद्रा, रोचन और काम्पिल्य। इनमें से हरिद्रा प्रमुख है।

इनमें से आरम्भ के चार प्रमुख रागों–नीली, मंजिष्ठा, कुसुम्भ और हरिद्रा के उदाहरण के रूप में शृंगारमंजरी कथा की आरंभिक चार कथानिकाएँ देकर इन रागों को स्पष्ट किया गया है। शेष कथानिकाएँ वेश की भिन्न भिन्न परिस्थितियों और मानसिकता को प्रकाशित करती हैं।

राजा भोज के चम्पू शब्द को सिद्ध करने के लिए अपने व्याकरण-ग्रन्थ सरस्वती-कण्ठाभरण में सूत्र रचा – चमिचपोर्नुम् च। शृंगारप्रकाश में चम्पू को सुपरिभाषित किया–

आख्यायिकैव साङ्का सोच्छ्वासा दिव्यगद्यपद्यमयी।
सा दमयन्तीवासवदत्तादिरिहोच्यते चम्पूः ॥

शृंगारप्रकाश, पृष्ठ 470

और उदाहरण के रूप में स्वयं ने चम्पूरामायण की रचना भी की। इसी प्रकार रागों को शृंगार-प्रकाश में प्रस्तुत कर पुष्टि के लिए उदाहरण रूप में शृंगारमंजरी कथा रची। शृंगारमंजरी कथा में रागों के विभाजन को मनोवैज्ञानिक आधार दिया। एकानुराग, उभयानुराग के साथ ही लोक में प्राप्य श्रुतिराग, दृष्टि राग तथा संभोज राग जैसे विभाजन भी वहाँ पाये जाते हैं। यह शृंगार-प्रकाश से आगे की यात्रा है। इससे भी स्पष्ट होता है कि यह शृंगारप्रकाश की अनुवर्ती रचना है। कथा के आरम्भ में भोजराज का जो वर्णन दिया गया है, उसमें उसकी किसी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपलब्धि का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, पर वहाँ शत्रुओं पर विजय पाने की चर्चा अवश्य है—

भार्गव इव निर्मूलिताखिलक्षुद्रक्षत्रियः। पृष्ठ-8
"यस्य च कृपाणं सततमाश्रयति शतशः सङ्ग्रामसीम्नि विजयलक्ष्मीः।" पृष्ट-9

राजा भोज को वहाँ–"भुवनभारोद्धारक्षमः" कहा गया है। सम्पूर्ण अवनिकूर्मशतम् में तथा कूर्मरूप भोज की यही ध्वनि निखारी गयी है।

भुवणे वि जा न जाओ सरिसो ता किं करेउ सो वरओ,
एक्को च्चिअ वहइ भरं कुम्मो बीअं अपावन्तो। 105
कुम्मस्स वि विस्सामो दिन्नो एक्केण भोअराएण,
हरिऊण वेरिआसं कुम्मसयं विरइयं तेण। 107

पातंजल योगसूत्र पर राजमार्तण्ड नामक सूत्रवृत्ति के अंत में भोज के चरणों में नत राजाओं की चर्चा के साथ ही उसके मुख में वाग्देवता का वास बताया गया है–

सर्वे यस्य वशाः प्रतापवसतेः पादान्तसेवानति–
प्रभ्रश्यन्मुकुटेषु मूर्धसु दधत्याज्ञां धरित्रीभृतः।
यद्वक्त्राम्बुजमाप्य गर्वमसमं वाग्देवतापि श्रिता
स श्रीभोजपतिः फणाधिपतिकृत्सूत्रेषु वृत्तिं व्यधात् ॥

सरस्वतीकण्ठाभरण के आरम्भ में वाग्देवी की स्तुति की गयी है–

ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्यास्पदचतुष्टयम्।
यस्याः सूक्ष्मादिभेदेन वाग्देवीं तामुपास्महे ॥

भोज-विरचित एक पूरी वाग्देवी की स्तुति –

सारस्वतं वपुरिवातिविशुद्धवर्णं
लोकत्रयीमपि विशच्च यशो यदीयम्,

चेतांसि मोदयति भोजनृपेण तेन
वाग्देवतास्तुतिरियं रुचिरा व्यधायि ।

भोज द्वारा संवत् 1091 में वाग्देवी की एक अनुपम प्रतिमा बनवायी गयी थी, जो अब लंदन के संग्रहालय में सुरक्षित है। उसके पादपीठ पर उत्कीर्ण लेख में कहा गया है—

वाग्देवीं प्रथमं विधाय..................

शृंगारमंजरी कथा के आरम्भ में भोज को भगवती सरस्वती का आराधक बताया गया है। ग्रन्थ के अंत में कहा गया है—

सिंगारमंजरिं पाविउण देवी सरस्सई अज्ज ।

वहाँ यह भी कहा है—

प्रतिकलमतिहर्षाद् भारती नृत्यतीव ।

भारती का यह नर्तन भोज के वाग्देवी-स्तोत्र में भी पाया जा सकता है।

अखिलेऽपि जगद्रङ्गे नृत्यन्ती ललितैः पदैः ।
नर्तयत्यखिलं विश्वं या नः सा पातु भारती ॥ 24

इसी स्तोत्र में दुर्गासप्तशती के समान वाणी के नामों की गणना भी की गयी है, जो उसके नाममालिकाकोष की शैली से समता रखती है।

नमो वाग्देवते तुभ्यं नमस्तुभ्यं सरस्वति ।
वाणि भाषे नमस्तुभ्यं वाग्मि तुभ्यं नमो नमः ॥

भोज के अप्राप्त स्तोत्र-ग्रन्थ महाकालिविजयस्तोत्र की भी संभवतः यही शैली रही होगी। भोज की वाग्देवी के प्रति असीम आस्था इन ग्रन्थों और मूर्ति में स्पष्ट प्रतिबिम्बित ही नहीं हो रही, यह भी स्पष्ट कर रही है कि ये सभी परस्पर एक ही आस्था की अन्तर्धारा का वहन कर रहे हैं।

भोज ने शृंगारमंजरी कथा को कथा कहा है। परन्तु यह ऐसी कथा है, जिसने तेरह कथानिकाओं या कहानियों से अपनी काया सरजी है। कथा के ऐसे स्वरूप की चर्चा भोज ने न तो सरस्वतीकण्ठाभरण में की है और न ही शृंगारप्रकाश में। अग्निपुराण में कथानिका का उल्लेख अवश्य मिलता है—

आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा ।
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पंचधा ॥ 337/12

यहाँ कथानिका को स्वतंत्र गद्यरचना माना गया है, परन्तु भोज ने कथारचना में इनका उपयोग कर नवीन शैली की सृष्टि की है। इस शैली की चर्चा उसके अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं है। इससे स्पष्ट है कि यह कथा सरस्वतीकण्ठाभरण और शृंगारप्रकाश के बाद की रचना है, जिसमें कथानिकाओं के द्वारा कथा रचने की अपनी नवीन परिकल्पना को मूर्त रूप दिया गया है। वैसे इस शैली में दशकुमारचरित और पंचतंत्र की शैलियों का कुछ समन्वय होने पर भी वह अनोखी है।

भवन, मूर्ति आदि से सम्बद्ध पारिभाषिक शब्दों के साथ ही प्रौढ ज्ञान की पुष्टि शृंगारमंजरी कथा के साथ ही चम्पूरामायण के अयोध्या और लंका-वर्णन से होती है। चम्पूरामायण में विशुद्ध संस्कृत है तो शृंगारमंजरी कथा में भाषागत उदारता प्राप्त होती है। वहाँ प्राकृत तथा

अपभ्रंश के शब्दों तथा वाक्यों का भी यथास्थान उपयोग किया गया है। भोज का अवनिकूर्मशतम् प्राकृतरचना है। शृंगारमंजरी कथा के अन्त में प्राकृत गाथाएँ लिखकर भोज ने अवनिकूर्मतम् की शैली और परम्परा की पुष्टि ही की है। कूर्मशतम् में एक ही बात को बार बार दुहराने की शैली इस कथा की प्राकृत गाथाओं में भी पायी जाती है।

शृंगारमंजरी कथा के धारावर्णन में धारागिरिलीलोद्यान में वर्तमान जिन विभिन्न यन्त्रों की चर्चा प्राप्त होती है, वह प्राय. समरांगणसूत्रधार (3/138) में भी मिलती है–जैसे नारियों के स्तनचुचूकों से, नाभियों से, सजल पलकों से, नखाग्रों से फूटती वारिधारा अथवा कृत्रिम मगर, मछली, जलपक्षी, कमल, यन्त्रवानर, यन्त्रपक्षी आदि इन सबका और उनके अतिरिक्त अन्य यंत्रों का भी शृंगारमंजरी कथा में जो ललित उपयोग किया गया है, उससे अनोखा वातावरण ही उपस्थित हो गया है। योधयन्त्र, द्वारपालयन्त्र आदि समरांगणसूत्रधार में भी प्राप्त होते हैं। वहाँ इन विविध यत्रों की निर्माण-विधि भी बतलाई गई है शृंगारमंजरी कथा में एक यंत्रपुत्रक की चर्चा है जो भोज का ललित वर्णन करता है। यह आज के रोबोट के समान है। उसी प्रकार पत्तनिका से छाप द्वारा चित्र लेने की चर्चा है। इसका उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता। इस कथा में व्योमयानं की चर्चा भी पायी जाती है जिसका सांकेतिक उल्लेख भोज के युक्तिकल्पतरु (व्योमयानं विमानं वा पूर्वमासीन्महीभुजाम्।) और कुछ विस्तृत विवरण समरांगणसूत्रधार में प्राप्त होता है।

शृंगारमंजरी के गजवर्णन की सूक्ष्मता की पुष्टि भोज के युक्तिकल्पतरु से होती है (पृष्ठ 193 से 205), उससे ही वृषभ (पृष्ठ 206 से 209) और अश्ववर्णन (पृष्ठ 181 से 193) की पुष्टि होती है। भोज का अश्वसबन्धी सम्पूर्ण ग्रन्थ शालिहोत्र भी प्राप्त होता हैं। इनके अतिरिक्त भोज ने अश्वचर्चा अन्य किसी ग्रन्थ म भी की थी, जिसके उद्धरण मल्लिनाथ की माघटीका मे प्राप्त होते हैं। सम्भवतः यह ग्रन्थ भोज का अप्रकाशित अविश्रान्तविद्याविनोद हो।

भोज के ग्रन्थों में धर्म, दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद, आयुध-विज्ञान, नीति आदि से संबद्ध कई महत्त्वपूर्ण तथ्य जहाँ-तहाँ प्राप्त होते हैं और सब जानते हैं कि इन विविध विषयों पर भोज ने पृथक्-पृथक् कई ग्रन्थ लिखे हैं। भोज के ग्रन्थों म विविध ज्ञानों का एकत्र समन्वय पाया जा सकता है। चारुचर्या में तो भोज ने नीति, धर्म और आयुर्वेद के समन्वय की स्वयं प्रतिज्ञा की हैं।

सुनीतिशास्त्रसद्वैद्यधर्मशास्त्रानुसारतः।
विरच्यते चारुचर्या भोजभूपेन धीमता॥

भोज के ताम्रपत्रों और शिलालेखों में प्राप्त विरुद उनके प्रायः ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। यथा–"इति श्रीमहाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीभोजदेवविरचिता शृंगारमंजरी कथा समाप्ता"। कहीं-कहीं संक्षेप मे भोजभूप भी कह दिया गया है, यथा—

(क) **कृतेयं भोजराजेन कथा शृंगारमंजरी॥ अथवा**

(ख) **चाणक्यमाणिक्यमिदं कण्ठे बिभ्रति ये बुधाः। ग्रथितं भोजराजेन भुवि तैः किं न प्राप्यते॥**

पातंजल योगसूत्र की वृत्ति के आरंभ में रणरङ्गमल्ल विरुदधारी इस भोज ने स्पष्ट किया है कि उसने पातंजल महाभाष्य पर शब्दानुशासन और वैद्यक पर राजमृगांक नामक ग्रन्थ भी रचे थे—

शब्दानामनुशासनं विदधता पातंजले कुर्वता
वृत्तिं राजमृगाकसंज्ञकमपि व्यातन्वता वैद्यके,

वाक्चेतोवपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृत–
स्तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः ।

यह रणरङ्गमल्ल भोज ही है, यह इसी ग्रन्थ के अंतिम पूर्वोक्त श्लोक से सिद्ध होता हैं। पातंजल महाभाष्य पर भोजकृत शब्दानुशासन अभी असुलभ है। परन्तु शृंगारप्रकाश के आरंभिक प्रकाश व्याकरण संबन्धी विवेचन में ही निरत हैं और वह पतंजलि की धारा से अलग नहीं है। सरस्वती-कण्ठाभरण के व्याकरण-सूत्रों में पाणिनि के बाद की पूरी परम्परा का समन्वय कर लिया गया है। यहाँ तक कि मूर्ख अर्थ में देवानां प्रिय को भी वहाँ सूत्र में स्थान मिल गया है। पतंजलि के वैद्यक ग्रन्थ पर राजमृगांक नामक जो भोज की वृत्ति थी, वह भी अब असुलभ है।

इस संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि भोज के ग्रन्थों में परस्पर अन्तःसम्बन्ध सतत पाया जाता है और अन्तःसम्बन्ध उनकी एकसूत्रता और एक ही लेखनी की प्रसूति व्यक्त करने में सक्षम है।

संदर्भ

1. किसी श्यामलादण्डक की हस्तलिखित प्रति से शृंगारप्रकाश (भाग-2) की भूमिका में उद्धृत :

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

वैदिक ग्रन्थ

1. अंगुत्तर निकाय
2. ऋग्वेद
3. जैमिनीय ब्राह्मण
4. तैत्तिरीय आरण्यक
5. धम्मपद
6. यजुर्वेद (शुक्ल)
7. शतपथ ब्राह्मण

संस्कृत तथा प्राकृत ग्रन्थ

1. अमरसिंह : अमरकोष, भानुजिदीक्षित की टीका सहित
   चौखम्बा, वाराणसी, 1970
2. अमितगति : सुभाषितरत्नसंदोह, निर्णयसागर, 1932
3. आचार्य नारायणदास : सुभाषितरत्नभाण्डागार,
   निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1952
4. आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक,
   सं० विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी, 1962
5. अप्पादीक्षित : गौरीमयूरमाहात्म्य,
   जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास, भाग 3

5. (अ) उत्तराध्ययन टीका (प्राकृत)—

6. कल्हण : राजतरंगिणी, बम्बई बनारस संस्कृत सीरीज, 1896 ई०
7. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, सं० एस० के० बेल्वल्कर,
   साहित्य एकेडेमी, दिल्ली, 1956 ई०
8. कालिदास—ऋतुसंहार, मास्टर खेलाडीलाल एण्ड सं०, वाराणसी, 1962 ई०
9. कालिदास—कुमारसम्भव, निर्णयसागर प्रेस बम्बई, 1935 ई०
10. कालिदास—मेघदूत, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1962
11. कालिदास—रघुवंश, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1910
12. कालिदास—विक्रमोर्वशीयम्, रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद—2
    प्रथम संस्करण
13. केशव भट्ट, नृसिंह-चम्पू, कृष्णाजी गणपत प्रेस, बम्बई, 1909
14. क्षेमेन्द्र—कलाविलास, निर्णयसागर, बम्बई, 1929
15. क्षेमेन्द्र—चारुचर्या, काव्यमाला, सं० 10
    निर्णयसागर, 1888
16. क्षेमेन्द्र—देशोपदेश तथा नर्ममाला,
    (काश्मीर सीरीज आफ टेक्स्ट एण्डस्टडीज, 40), 1923
17. क्षेमेन्द्र—समयमातृका, निर्णय ा गर, 1888

18. गुप्त मैथिलीशरण : साकेत, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, (सं० 2025)
19. चन्दकवि : पृथ्वीराजरासो, साहित्य विद्यापीठ, उदयपुर, 1960
20. जगन्नाथ पण्डितराज : काव्यसंग्रह, हैदराबाद, 1958
21. जयानक, पृथ्वीराजविजय,
22. जल्हण, सूक्तिमुक्तावली, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, 1938 ई०
23. जिनविजयमुनि : पुरातन प्रबन्धसंग्रह, सिंघी जैन ग्रन्थमाला–2, 1936 ई०
24. तुलसीदास, कवितावली, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, स० 1961
25. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर
26. त्रिविक्रम भट्ट, नलचम्पू
चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1932
27. दण्डी : काव्यादर्श, प्रेमचन्द तर्कवागीश की टीका,
सं० एस० के० बेल्वेल्कर, पूना, 1924
28. दण्डी, दशकुमारचरित, निर्णयसागरप्रेस, बम्बई, 1898 ई०
29. दामोदरगुप्त, कुट्टनीमत, काव्यमाला, 3, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
30. दिवेकर, डा० हरिरामचन्द्र, वेदविद्या, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर
31. दीक्षित, राजचूड़ामणि, काव्यदर्पण, वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम
32. दैवज्ञसूरि, नृसिंहचम्पू, वाराणसी
33. धनंजय, दशरूपक सहित, सं०—डा० भोलाशंकर व्यास,
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1962
34. धनपाल, तिलकमंजरी, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1938
35. नयचन्द्रसूरि, हम्मीरमहाकाव्य, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1968
36. नयचन्द्रसूरि, रम्भामंजरी, बम्बई, 1889
37. नाइलगच्छिय, जम्बूचरिय
38. पंचरत्नस्तोत्र, हार्वलिन से प्रकाशित
39. पद्मगुप्त–नवसाहसांकचरित, सं० वामन शर्मा, निर्णयसागर प्रेस, 1895
40. पाणिनि, अष्टाध्यायी, निर्णयसागर, 1920
41. पार्श्वदेव, संगीतसमयसार, तंजौर संस्कृत सीरीज–87, 1925
42. प्रभाचन्द्राचार्य, प्रभावकचरित, सिंघी जैनग्रन्थमाला–13, 1940
43. बल्लाल–भोजप्रबन्ध, निर्णयसागरप्रेस, 1932
44. बाणभट्ट, कादम्बरी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1961 ई०
45. बाणभट्ट, हर्षचरित, निर्णयसागर, बम्बई,
46. बिल्हण–विक्रमाङ्कदेवचरित, बनारस संस्कृत सीरीज, 14, 1875
47. (फोर्वेस) रासमाला, आक्सफोर्ड, 1924
48. भट्टनारायण, वेणीसंहार, चौखम्बा वाराणसी
49. भट्टि, रावणवध, निर्णयसागरप्रेस, बम्बई 1912
50. भट्टोजि दीक्षित, सिद्धान्त कौमुदी, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1909

51. भवभूति, उत्तररामचरित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 1953
52. भरत, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा, वाराणसी, 1929
53. भर्तृहरि,–शतकत्रय, रामचन्द्र बुधेन्द्र की 'सहृदयानन्दिनी' टीका सहित
वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
54. भर्तृहरि, भार्तृहरि सुभाषितसंग्रह,
डी० डी० कोसाम्बी, सिंघी जैनग्रन्थमाला–23, बम्बई, 1948
55. भामह, काव्यालंकार, काशी संस्कृत सीरीज, 61, 1928
56. भारवि, किरातार्जुनीयम्, चौखम्बा, वाराणसी, 1939
57. भावमिश्र, भावप्रकाश, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सं० 2006
58. भास, स्वप्नवासवदत्तम्, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, 1956
59. भोजराज (?) कोदण्ड (काव्य ?)
परमार इन्स्क्रिप्शन्स्।
धार स्टेट हिस्टोरिकल रेकार्ड्स, 1944
60. भोजराज–चम्पूरामायण—
साहित्यमंजूषा, टीकासहित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई,
दशम संस्करण, 1956
61. भोजराज–चम्पूरामायण, रामशास्त्री शास्त्रुलु, मद्रास 1915 तथा 1941 ई० में क्रमशः
तेलुगु तथा देवनागरी में प्रकाशित
62. भोजराज–चम्पूरामायण : चौखम्बा, वाराणसी, 1956 ई०
63. भोजराज–चम्पूरामायण, पूना 1948 ई०
64. भोजराज– चम्पूरामायण : जीवानन्द भट्टाचार्य, सरस्वती प्रेस, कलकत्ता, 1878 ई०
65. भोजराज–चाणक्यराजनीतिशास्त्र,
सं० ईश्वरचन्द्रशास्त्री, कलकत्ता ओरियण्टल सीरीज, 2, 1919 ई०
66. भोजराज–चाणक्यराजनीतिशास्त्र,
सं० लुडविक स्टेर्नबेक,
विश्वेश्वरानन्द भारतभारती, ग्रन्थमाला–28 होशियारपुर, 1964
67. भोजराज–चारुचर्या : सं० वि० वेङ्कटेश शास्त्रुलु,
रामस्वामी शास्त्रुलु एण्ड सन्स, वबिल्लाप्रेस, मद्रास, 1949
68. भोजराज–चारुचर्या,
सं० वेटुरिवेंकट शास्त्री, आर्ष रसायनशाला, मुक्त्याल,
कृष्णा जिला, आन्ध्रप्रदेश, 1956 ई०
69. भोजराज, तत्त्वप्रकाश, तात्पर्यार्थदीपिका सहित
सं० टी० गणपतिशास्त्री, गवर्नमेण्टप्रेस, त्रिवेन्द्रम, 1920
70. भोजराज–नाममालिका, सं० इ० डी० कुलकर्णी तथा वी० डी० गोखले
डकन कालेज, पूना, 1955

92. याज्ञवल्क्य–याज्ञवल्क्यस्मृति, चौखम्बा, वाराणसी
93. राजशेखर, काव्यमीमांसा, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, 1934
94. राजशेखरसूरि–प्रबन्धकोष, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, 1936
95. रुद्रट, काव्यालंकार, बम्बई, 1928
96. वर्धमान, गणरत्नमहोदधि, लन्दन, 1879
97. वल्लभदेव, सुभाषितावली, सं० पी० पीटर्सन, 1886
98. वाक्पतिराज–गउडवहो,
भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, 1927
99. वाग्भट्ट –वाग्भटालंकार, निर्णयसागर प्रेस, 1915
100. वात्स्यायन, कामसूत्र, काशी संस्कृत सीरीज,–29, 1929
निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
101. वानराष्टक–हार्वलिन तथा जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता
102. वामन, काव्यालंकारसूत्र, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
काव्यमाला–15, 1895
103. वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण, सं० 2020
104. विक्रमचरित अथवा लेखारम्भ, सुभाषितरत्न भाण्डागार के अनुसार
105. विद्याकर, सुभाषित रत्नकोष,
सं० डी० डी० कोसाम्बी तथा वी० पी० गोखले,
केम्ब्रिज, मासाचुसेट्स, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1957
106. विश्वनाथ–साहित्यदर्पण, सं० डा० सत्यव्रतसिंह, चौखम्बा, वाराणसी, 1957
107. विष्णु शर्मा, पंचतन्त्र, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1950
108. वीरभद्र, कन्दर्पचूडामणि, गुजराती न्यूज प्रेस, बम्बई, 1924
109. वेदान्तदेशिक, पंचरात्ररक्षा, द्वितीयसंस्करण, अडियार, 1967
110. वेंकटाध्वरी, उत्तरचम्पू, ग्रन्थरत्नमाला, भाग 3, बम्बई, 1890 ई०
111. व्यास–अग्निपुराण, सं० एच० एन० आप्टे, बम्बई, 1900
112. व्यास–कूर्मपुराण, नीलमणि मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1990
113. व्यास-गरुड़पुराण, जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, 1890
114. व्यास–पद्मपुराण, विष्णुनारायण, पूना, 1893
115. व्यास–ब्रह्मपुराण, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, 1906
116. व्यास, भविष्यपुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
117. व्यास, मत्स्यपुराण, हरिनारायण आप्टे, प्रकाशक, आनन्दाश्रम
मुद्रणालय, पूना, 1907
118. व्यास, महाभारत, भाण्डारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, पूना,
119. व्यास, विष्णुपुराण, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
120. व्यास, श्रीमद्भागवतपुराण, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1950

121. शारदातनय, भावप्रकाश, गायकवाड ओरियण्टल सीरीज-45, 1930
122. शाङ्‌र्गदेव, संगीतरत्नाकर, आनन्दआश्रम संस्कृतसीरीज, पूना, 1896
123. शाङ्‌र्गधर, शाङ्‌र्गधरपद्धति, सं० पी० पीटर्सन, 1888 ई०
124. शुभशील, भोजप्रबन्ध, अहमदाबाद।
125. शूद्रक, मृच्छकटिक, सं० एम० आर० काले, बम्बई 1962 (द्वितीय संस्करण)
126. शूद्रक, पद्मप्राभृतकम्, (चतुर्भाणी),
सं० डा० मोतीचन्द एवं डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय प्रा० लि०, बम्बई, 1959
127. श्रीधरदास, सदुक्तिकर्णामृत
फर्म के० एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1965
128. श्रीहर्ष, नैषधचरित,
मल्लिनाथ की टीका सहित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
129. समुद्रगुप्त, कृष्णचरित, रसशाला, गोंडल, सं० 1997
130. संघदासगणिवाचक, वसुदेवहिण्डि, भावनगर, 1930-31
131. सिंढायच दयालदास, पँवारवंश दर्पण,
सं० दशरथ शर्मा, सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट,
बीकानेर, 1960 ई०
132. सुबन्धु, वासवदत्ता, श्रीरङ्गम्, 1906
133. सुश्रुत, सुश्रुतसंहिता, निर्णयसागर प्रेस बम्बई, 1938
134. सोमप्रभसूरि, यशस्तिलकचम्पू, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1916
135. सोमेश्वरसूरि, कुमारपालप्रतिबोध
136. स्टेर्नबेक लुडविक, चाणक्यनीतिदर्पण, विश्वेश्वरानन्द भारतभारती ग्रन्थमाला-27,
होशियारपुर, 1963
137. स्टेर्नबेक लुडविक, चाणक्यनीतिशास्त्र,
विश्वेश्वरानन्द भारतभारती ग्रन्थमाला-27
होशियारपुर, 1963
138. स्टेर्नबेक लुडविक, चाणक्यसारसंग्रह,
विश्वेश्वरानन्द भारतभारती ग्रन्थमाला-27,
होशियारपुर, 1963
139. स्टेर्नबेक लुडविक, लघुचाणक्य, विश्वेरानन्दे भारतभारती ग्रन्थमाला-28
होशियारपुर, 1964
140. स्टेर्नबेक लुडविक, वृद्धचाणक्य,
विश्वेश्वरानन्द भारतभारती ग्रन्थमाला-27
होशियारपुर, 1963

141. हरिचन्द्र, जीवन्धरचम्पू, सरस्वतीविलास सीरीज, तंजौर 1905

142. हर्षवर्धन, रत्नावली, चौखम्बा, वाराणसी

143. हर्षवर्धन, प्रियदर्शिका, श्रीरंगम्, 1906

144. हर्षवर्धन, नागानन्द, तंजौर संस्कृत सीरीज, 1917

145. हलायुध, अभिधानरत्नमाला, लन्दन, 1861

146. हाल, गाथासप्तशती, काव्यमाला-21, 1889

147. हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, सं० आर० सी० पारीख, बम्बई, 1938

148. हेमचन्द्र, देशीनाममाला, कलकत्ता, 1931

149. हेमचन्द्र, परिशिष्टपर्व, विब्लियोथेका इण्डिका, 96, 1932 ई०

हिन्दी तथा अंग्रेजी
सन्दर्भ-ग्रन्थों की सूची

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण : भारतीय कला, पृथ्वीप्रकाशन, वाराणसी, 1966

2. अय्यंगर, पी० टी० श्रीनिवास : भोजराजा, अन्नामलाय युनिवर्सिटी, हिस्टोरीकल सीरीज, 1931

3. आप्टे, वामन शिवराम : संस्कृत-हिन्दीकोश, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, दिल्ली, पटना, 1966

4. आफ्रेक्ट, थियोडार : केटेलोगस केटेलागारम, भाग 1, 2, 3, 1962

5. उपाध्याय, बलदेव : संस्कृत सुकवि-समीक्षा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1963

6. उपाध्याय, डा० भगवतशरण : कालिदास का भारत, प्रथम भाग (तृतीय संस्करण, 1963), भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

8. उपाध्याय, डा० भगवतशरण : कालिदास के सुभाषित, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 1969

9. काणे, पी० वी० : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, भाग 1, पूना, 1930

10. काणे, पा० वा० : हिस्ट्री आफ संस्कृत पोएटिक्स, 1961

11. कीथ, ए० बी० : संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी) डा० मंगलदेव शास्त्री मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1967

12. कृष्णमाचारियर, एम० : हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, तिरुमलाय, तिरुपति देवस्थानमन प्रेस, मद्रास, 1937 ई०

13. खरे, जी० एच० : सोर्सेस आफ द मिडिवल हिस्ट्री आफ द दकन, भाग 1, पूना

14. गांगुली, डी० सी० : द हिस्ट्री आफ परमार डायनेस्टी, ढाका, 1933 ई०

15. गैरोला, वाचस्पति : संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1960

16. गोड़े, डा० के० पी० : स्टडीज इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री, वाल्यूम 3,
प्रो० पी० के० गोड़े : कलेक्टेड वर्क्स पब्लिकेशन कमिटी, पूना 4,
भारतीय विद्याभवन, बम्बई 1953

17. ग्रे, लुइस एच० : द नेरेटिव आफ भोज (भोजप्रबन्ध)
अमरिकन ओरियण्टल सोसायटी, न्यू हेवल, कानेक्टीकर, 1950

18. जोलि, डा० जूलियस : इण्डियन मेडिसिन,
सी० जी० काशिकर द्वारा अंग्रेजी में अनूदित, सदाशिवपेठ,
पूना 2, 1951 ई०

19. डे, नन्दलाल : ज्याग्राफीकल डिक्शनरी आफ एणशण्ट एण्ड मिडिवल
इण्डिया, कलकत्ता, 1899

20. त्रिपाठी, डा० छबिनाथ : चम्पूकाव्य का आलोचनात्मक एवं ऐतिहासिक
अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1965 ई०

21. त्रिपाठी, डा० रमाशंकर : प्राचीन भारत का इतिहास, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी,
1956

22. द्विवेदी, डा० हजारीप्रसाद : साहित्य-सहचर,
नैवेद्य निकेतन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1968

23. द्विवेदी, हरिहरनिवास : मध्यभारत का इतिहास, सूचनाविभाग, मध्यभारत,
1956

24. पाण्डे, राजबली : सम्राट् अशोक, ज्ञानमण्डल लि० वाराणसी

25. भाटिया, प्रतिपाल : द परमार्स,
1963 में दिल्ली से पी० एच० डी० के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध

26. मजुमदार, आर० सी० : द स्ट्रगल फार द इम्पायर
भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 1957

27. मुकर्जी, राधाकुमुद : हिन्दू सभ्यता,
हिन्दी अनुवाद, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल,
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण, 1966

28. मुन्शी, क० मा० : क्लासिकल एज,
भारतीय विद्याभवन, बम्बई

29. मुन्शी, कन्हैयालाल माणकलाल : द ग्लोरि दैट वाज गुर्जर देश,
भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 1944

30. रस्तोगी, डा० उमेशप्रसाद : संस्कृत साहित्य में मौलिकता एवं अनुहरण
—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1965

31. राघवन्, वि० : भोजाज श्रृंगारप्रकाश,
पुनर्वसु, 7, श्रीकृष्णपुरम् स्ट्रीट, मद्रास 14, 1963

32. राघवन् वि० : श्रृंगारमंजरी आफ सेंट अकबरशाह, हैतराबाद, 1751

33. राजपुरोहित, डा० भगवतीलाल, भोजराज, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी

34. राय, डा० राजकुमार : रामायणकोष,
चौखम्बा, वाराणसी, 1960
35. रेउ, विश्वेश्वरनाथ : राजा भोज,
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, 1932
36. लेले, काशीनाथ कृष्ण तथा ओक, शिवराम काशीनाथ,
: भोजदेव की साहित्य-सेवा,
इतिहास आफिस, धार, 1934 ई०
37. लेले काशीनाथ कृष्ण, केप्टन सी० इ० लुआर्ड, धार स्टेट गजेटियर, 1908
38. लेले, सी० बी० : परमार इन्स्क्रिप्शन्स, धार स्टेट हिस्टोरिकल रेकार्ड्स, 1944
39. वरदाचार्य, के० : संस्कृत साहित्य का इतिहास,
(हिन्दी अनुवाद) डा० कपिलदेव द्विवेदी,
रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद–2, 1962
40. वर्मा, ओंकारप्रसाद : द यादवाज एण्ड देअर टाइम्स,
विदर्भ संशोधन-मण्डल, नागपुर, 1970
41. वाजपेयी, के० डी० : द ज्याग्रोफिकल इनसायक्लोपीडिया आफ
एन्शण्ट एण्ड मिडिवल इण्डिया, भाग 1
42. वैद्य, सी० वी० : डाउनफाल आफ हिन्दू इण्डिया, 1926
43. शर्मा, आचार्य प्रियव्रत, वाग्भट-विवेचन,
चौखम्बा विद्याभवन, 1968
44. शर्मा, हीरालाल : महाप्रतापी भोज,
श्री दीनानाथ बुक डीपो, इन्दौर, सं० 2014
45. शुक्ल, रामचन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, 15 वाँ संस्करण, सं० 2022
नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
46. सचाउ, एडवर्ड सी० : अलबरूनीज इण्डिया,
एस० चन्द एण्ड कं०, दिल्ली, 1964 ई०
47. सरकार, डी० सी० : सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, खण्ड 1,
युनिवर्सिटी आफ कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, 1965
48. हाजरा, आर० सी० : स्टडीज इन द पौराणिक रेकार्ड्स आन हिन्दू
राइट्स एण्ड कस्टम्स,
द युनिवर्सिटी आफ ढाका, 1940
47. हिण्डिक्वि के० के० : यशस्तिलकचम्पू एण्ड इण्डियन कल्चर,
48. हिन्दीसाहित्यकोश, ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी,
सं० 2020

हस्तलिखित ग्रन्थ-सूचियों की सूची

1. अल्फाबेटिकल इण्डेक्स आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन द अडियार लायब्रेरी, 1944
2. अल्फाबेटिकल केटेलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट, सरस्वती पुस्तकालय, वाराणसी
3. अल्फाबेटिकल केटेलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन सरस्वतीमहल लायब्रेरी, तन्जौर

4. केटलाग आफ द पैलेस ग्रन्थप्पुर, त्रिवेन्द्रम भाग 5, 1929
5. केटलाग आफ विश्वेश्वरानन्द शोधसंस्थान, होशियारपुर, मेन्युस्क्रिप्ट कलेक्शन, सं० 2015
6. केटलाग आफ कवीन्द्राचार्याजि मेन्युस्क्रिप्ट, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, 17 बड़ौदा, 1921
7. केटलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट इन द सेण्ट्रल प्राविन्सेस एण्ड बरार, 1926
8. केटलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट, जोधपुर
9. केटलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट इण्डिया आफिस
10. केटलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स् काण्टेण्ड इन द प्रायवेट लायब्रेरी, आफ गुजरात, काठियावाड़, कच्च, सिन्ध एण्ड खानदेश, 1872, सं० बूलर
11. क्लासिफाइड इण्डेक्स टू द संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन द पैलेस एट तंजौर, 1880 ए० डी० बर्नेल
12. डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ मेन्युस्क्रिप्ट इन जैन भण्डार इन पाटण, गायकवाड़ सीरीज–76
13. डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट, सरस्वती महल लायब्रेरी, तन्जौर, भाग 6 तथा 7
14. डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन द ओरियण्टल रिसर्च लायब्रेरी, मद्रास, भाग 1–4, 20–22
15. डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट, अडियार, भाग 7, 10
16. डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन उस्मानिया युनिवर्सिटी
17. डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट इन द युनिवर्सिटी आफ बाम्बे
18. नोटिसेस आफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट, राजेन्द्रलाल मित्र एण्ड हरप्रसाद शास्त्री

विविध पत्र पत्रिकाएँ तथा शोध-पत्रिकाएँ

1. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, भाग 6 तथा 8
2. एनल्स आफ भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, ग्रन्थ 37
3. ओरियण्टल थाट, ग्रन्थ 6, भाग 4
4. कन्नड साहित्य परिषद् पत्रिका, बेंगलोर, भाग 26 अंक 1
5. जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, ग्रन्थ 32
6. जर्नल आफ बाम्बे आफ द रायल एशियाटिक सोसायटी, भाग 24
7. जर्नल आफ ओरियण्टल रिसर्च मद्रास, ग्रन्थ 3
8. जर्नल आफ द अमरिकन ओरियण्टल सोसायटी, खण्ड 86 (भाग 1, 1966)
9. जर्नल आफ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, भाग 18
10. जर्नल आफ शिवाजी युनिवर्सिटी, कोल्हापुर, खण्ड 1 भाग 1
11. द पूना युनिवर्सिटी जर्नल ज्ञानखण्ड, 1955
12. द विक्रम युनिवर्सिटी जर्नल, (द विक्रम) कालिदास विशेषांक, दशम ग्रन्थ, 1967
 ,, ,, 1766
13. द हेरिटेज आफ कर्नाटक, बेंगलोर, 1946
14. नवनीत, (हिन्दी डायजेस्ट) दिसम्बर, 1970

15. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 3, 43, 55
16. परिषद् पत्रिका (पटना), वर्ष 10 अंक 4
17. पुराणम्, वाराणसी, खण्ड 6, भाग 1
18. मध्यप्रदेश सन्देश, 12 सितम्बर 1964, 4 अप्रेल 1970 तथा 28 दिसम्बर, 1970
19. राजस्थानभारती, भाग 3, भाग 14, अंक 1
20. रूपम, कलकत्ता, 1924
21. वियना ओरियण्टल जर्नल, भाग 21
22. विश्वभारती एनल्स, शान्तिनिकेतन, भाग 8, 1958 ई०
23. वीणा (इन्दौर) 1932 नवम्बर
24. हिन्दुस्तानी (इलाहाबाद), भाग 34, अंक 1 (जनवरी मार्च, 1973)

विक्रम विश्वविद्यालय के द्वारा 1970 में आयोजित भोजसेमिनार में

प्रस्तुत शोधपत्र

1. उपाध्ये, डा० ए० एन०—भोज एण्ड प्राकृत लिटरेचर : हिज कूर्मशतक
2. चतुर्वेदी, डा० कृष्णकान्त—कामसूत्र का वैशिक अधिकरण एवं शृंगारमंजरी
3. राघवन् वि० —उद्घाटन भाषण
4. राजपुरोहित, भगवतीलाल—मल्लिनाथ में भोज-सन्दर्भ

आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस में प्रस्तुत शोधपत्र—22वें अधिवेशन में—

1. प्रो० वेंकटाचलम् वि० —फ्रेश इण्ट्रेस्टिंग लाइट आन द पर्सनल टाइटल्स आफ किंग भोज, हिज लिटरेरी वर्क्स एण्ड हिज पेलेसेस एवं
2. राजपुरोहित भगवतीलाल —भोज की एक अल्पज्ञात कृति चारुचर्या
3. राजपुरोहित भगवतीलाल —भोज की कतिपय अल्पज्ञात साहित्यिक कृतियाँ

क्रमशः 24 वें तथा 25 वें अधिवेशन में प्रस्तुत

शिलालेखों से सम्बद्ध सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. इण्डियन एण्टिक्वेरी, भाग 4,6,12,17,18,62
2. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 1,2,4,6,7,8,9,11,17,18,20 तथा 33
,, कर्नाटिका, भाग 9
3. एन्युअल रिपोर्ट आफ एपिग्राफी, 1952-53
4. कार्पस इन्स्क्रिप्शनम् इण्डिकम्, खण्ड 3-4
5. रिपोर्ट आफ द आर्कोलाजिकल डिपार्टमेण्ट, 1903-4 तथा 1934-35
6. डॉ० भगवतशरण उपाध्याय तथा डॉ० भगवतीलाल राजपुरोहित—
प्राचीन भारतीय अभिलेख—लोकभारती, इलाहाबाद